

संयुक्त-निकाय

पहला भाग

[मगाथा वर्ग, निदान वर्ग, ग्रन्थ वर्ग]

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप एम ए.
त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

प्रकाशक

महाबोधि सभा
सारनाथ, बनारस

प्रथम संस्करण }
१९००

दु० सं० २४९८
द्वि० सं० १९५४

प्रकाशकीय निवेदन

आज हमें हिन्दी पाठकों के सम्मुख संयुक्त-निकाय के हिन्दी अनुवाद को लेकर उपस्थित होने में बड़ी प्रसन्नता हो रही है। भगले वर्ष के लिए 'विसुद्धिमग्ग' का अनुवाद तैयार है। उसके पश्चात् 'अंगुत्तर निकाय' में हाथ लगाया जायेगा। इसके अतिरिक्त हम और भी कितने ही प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करना चाहते हैं। हमारे काम में जिस प्रकार से कितने ही सज्जनों ने आर्थिक सहायता और उत्साह प्रदान किया है, उससे हम बहुत उत्साहित हुए हैं।

आर्थिक कठिनाइयाँ एवं अनेक अन्य अड़चनों के कारण इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने में जो अनपेक्षित विलम्ब हुआ है, उसके लिए हमें स्वयं दुःख है। भविष्य में इतना विलम्ब न होगा—ऐसा प्रयत्न किया जायेगा। हम अपने सभी दाताओं एवं सहायकों के कृतज्ञ हैं, जिन्होंने कि सहायता देकर हमें इस महत्वपूर्ण कार्य को सन्पादित करने में सफल बनाया है।

२३-४-५४

विनम्र

भिक्षु एम० संघरत्न
मन्त्री, महाबोधि-सभा
सारनाथ, बनारस

प्राक्कथन

संयुक्त निकाय सुत्त-पिटक का तृतीय ग्रन्थ है। यह आकार में दीघ निकाय और मज्झिम निकाय से बड़ा है। इसमें पाँच बड़े-बड़े वर्ग हैं—सगाथा वर्ग, निदान वर्ग, खन्ध वर्ग, सञ्जायतन वर्ग और महावर्ग। इन वर्गों का विभाजन नियमानुसार हुआ है। संयुक्त निकाय में ५४ संयुक्त हैं, जिनमें देवता, देवपुत्र, कोसल, भार, ब्रह्म, ब्राह्मण, सक्क, अभिसमय, धातु, अनमत्तम्ग, लाभसक्कार, राहुल, लक्खण, लन्ध, राध, दिट्ठि, सञ्जायतन, वेदना, मातुगाम, असंखत, भग्ग, वोण्णज्ज, सत्तिपट्टान, इन्द्रिय, सम्मप्यधान, बल, इन्द्रिपाद, अनुरुद्ध, झान, भानापान, सोत्तापत्ति और सच्च—यह ३२ संयुक्त वर्गों में विभक्त है, जिनकी कुल संख्या १७३ है। शेष संयुक्त वर्गों में विभक्त नहीं हैं। संयुक्त निकाय में सौ भाणवार और ७७६२ सुत्त हैं।

संयुक्त निकाय का हिन्दी अनुवाद पूज्य भद्रन्त जगदीश काश्यप जी ने आज से उन्नीस वर्ष पूर्व किया था, किन्तु अनेक बाधाओं के कारण यह अभी तक प्रकाशित न हो सका था। इस दीर्घकाल के बीच अनुवाद की पाण्डुलिपि के बहुत से पन्ने—कुछ पूरे संयुक्त तक खो गये थे। इसकी पाण्डुलिपि अनेक प्रेरों को दी गई और चापस ली गई थी।

गत वर्ष पूज्य काश्यप जी ने संयुक्त निकाय का भार मुझे सौंप दिया। मैं प्रारम्भ से अन्त तक इसकी पाण्डुलिपि को छुहरा गया और अपेक्षित सुधार कर ढाला। मुझे ध्यान संयुक्त, अनुरुद्ध संयुक्त आदि कई संयुक्तों का स्वतन्त्र अनुवाद करना पड़ा, क्योंकि अनुवाद के वे भाग पाण्डुलिपि में न थे।

मैंने देखा कि पूज्य काश्यप जी ने न तो सुत्तों की संख्या दी थी और न सुत्तों का नाम ही लिखा था। मैंने इन दोनों बातों को आवश्यक समझा और प्रारम्भ से अन्त तक सुत्तों का नाम तथा सुत्त-संख्या को लिख दिया। मैंने प्रत्येक सुत्त के प्रारम्भ में अपनी ओर से विषयानुसार शीर्षक लिख दिये हैं, जिनसे पाठक को इस ग्रन्थ को पढ़ने में विशेष अभिरुचि होगी।

ग्रन्थ में आये हुए स्थानों, नदियों, विहारों आदि का परिचय पाण्डुलिपियों में यथासम्भव कम दिया गया है, इसके लिए अलग से 'बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय' लिख दिया गया है। इसके साथ ही एक नकशा भी दे दिया गया है। आशा है, इनसे पाठकों को विशेष लाभ होगा।

पूरे ग्रन्थ के छप जाने के पश्चात् इसके दीर्घकाल को देखकर विचार किया गया कि इसकी जितद्वन्द्वी दो भागों में करारहूँ जाय। अतः पहले भाग में सगाथा वर्ग, निदान वर्ग और स्कन्ध वर्ग तथा दूसरे भाग में सञ्जायतन वर्ग और महावर्ग विभक्त करके जितद्वन्द्वी करा दी गई है। प्रत्येक भाग के साथ विषय-सूची, उपमा-सूची, नाम-अनुक्रमणी और शब्द-अनुक्रमणी दे दी गई है।

सुत्त-पिटक के पाँचों निकायों में से दीघ, मज्झिम और संयुक्त के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् अंगुत्तर निकाय तथा खुट्क निकाय अवशेष रहते हैं। खुट्क निकाय के भी खुट्क पाठ, धम्मपद, वदान, सुत्त निपात, थेरी भाषा और जातक के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इतिवृत्तक, बुद्धवंस और

चरिपाठिक के भी अनुवाद देने कर दिये हैं और वे ग्रन्थ प्रेस में हैं। अंगुत्तर निकष का मौरा हिन्दी अनुवाद भी प्रायः समाप्त-सा ही है। संयुक्त निकष के पश्चात् क्रमशः विस्तृतमया और अंगुत्तर निकष को प्रकाशित करने का कार्यक्रम बचाया गया है। आशा है कुछ वर्षों के भीतर पूरा सुत-पिठक और अमिषम-पिठक के कुछ ग्रंथ हिन्दी में अनूचित होकर प्रकाशित हो पायेंगे।

भारतीय महाबोधि समा ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करके सुद-शासन पूर्व हिन्दी-जगत् का बहुत बड़ा उपकार किया है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए समा के प्रधान मन्त्री श्री हेमचन्द्र बडिंसिंह तथा महन्त संभरलाली का प्रयास स्तुत्य है। शावमण्डल पन्नाछप फाटी के व्यवस्थापक श्री जोसुमन्नास कपूर की तत्परता से ही यह ग्रन्थ पूर्णरूप से सुद और शीघ्र सुमित हो सका है।

महाबोधि समा
 सारनाथ बनारस
 १३-४-५४

मिस्तु धर्मरक्षित

आमुख

संयुक्त निकाय सुत्त-पिटक का तीसरा ग्रन्थ है। द्वीध निकाय में उन सूत्रों का संग्रह है जो आकार में बड़े हैं। उसी तरह, प्रायः मसूले आकार के सूत्रों का संग्रह मज्झिम निकाय में है। संयुक्त निकाय में छोटे-बड़े सभी प्रकार के सूत्रों का 'संयुक्त' संग्रह है। इस निकाय के सूत्रों की कुल संख्या ७७६२ है। पिटक के इन ग्रन्थों के संग्रह में सूत्रों के छोटे-बड़े आकार की दृष्टि रखी गई है, यह सचमुच जँचने वाली बात नहीं लगती है। प्रायः इन ग्रन्थों में एक अत्यन्त दार्शनिक सूत्र के बाद ही दूसरा सूत्र जाति-वाद के खण्डन का आता है और उसके बाद ही हिंसामय यज्ञ के खण्डन का, और बाद में और कुछ दूसरा। स्पष्टतः विषयों के इस अव्यवस्थित खिलसिले में साधारण विद्यार्थी कद-सा जाता है। ठीक-ठीक यह कहना कठिन मालूम होता है कि सूत्रों का यह क्रम किस प्रकार हुआ। चाहे जो भी हो, यहाँ संयुक्त निकाय को देखते इसके व्यवस्थित विषयों के अनुकूल वर्गीकरण से इसका अपना महत्व स्पष्ट हो जाता है।

संयुक्त निकाय के पहले वर्ग—सगाथा वर्ग को पढ़कर महाभारत में स्थान-स्थान पर आये प्रश्नोत्तर की शैली से सुन्दर गायार्थों में गम्भीर से गम्भीर विषयों के विवेचन को देखकर इस निकाय के दार्शनिक तथा साहित्यिक दोनों पहलुओं का आभास मिलता है। साथ-साथ तत्कालीन राजनीति और समाज के भी स्पष्ट चित्र उपस्थित होते हैं।

दूसरा वर्ग—निदान वर्ग बौद्ध सिद्धान्त 'प्रतीत्य समुत्पाद' पर भगवान् बुद्ध के अत्यन्त महत्वपूर्ण सूत्रों का संग्रह है।

तीसरा और चौथा वर्ग स्कन्धवाद और आयतनवाद का विवेचन कर भगवान् बुद्ध के अनात्म सिद्धान्त की स्थापना करते हैं। पाँचवाँ—महावर्ग 'मार्ग', 'बोध्दंग', 'स्मृति-प्रस्थान', 'इन्द्रिय' आदि महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालता है।

सन् १९३५ में पेनाग (मलाया) के किल्यात चीनी महाविहार 'धांग ह्या तास्ज' में रह मैंने, 'मिलिन्द प्रश्न' के अनुवाद करने के बाद ही संयुक्त निकाय का अनुवाद प्रारम्भ किया था। दूसरे वर्ष लंका जा सलगल अरण्य के योगाश्रम में इस ग्रन्थ का अनुवाद पूर्ण किया। तब से न जाने कितनी बार इसके छपने की व्यवस्था भी हुई, पाण्डुलिपि प्रेल में भी दे दी गई और फिर वापस चली आई। मैंने तो ऐसा समझ लिया था कि कदाचिद् इस ग्रन्थ के भाष्य में प्रकाशन लिखा ही नहीं है, और इस ओर से उदासीन-सा हो गया था। अब पूरे उन्तीस वर्षों के बाद यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है। भाई त्रिपिटकाचार्य मिश्र धर्मरक्षित जी ने सारी पाण्डुलिपि को दुहरा कर शुद्ध कर दिया है। संयुक्त निकाय आज इतना अच्छा प्रकाशित न हो सकता, यदि मिश्र धर्मरक्षित जी इतनी उत्परता से इसके प्रूप देखने और इसकी अन्य व्यवस्था करने की कृपा न करते।

मैं महाबोधि सभा सारनाथ तथा उसके मन्त्री श्री मिश्र संवरण जी को भी अनेक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में इतना उस्साह दिखाया।

नमः नालन्दा महाविहार
नालन्दा

मिश्र जगदीश काश्यप

३ ३. { २४९७ रु० स०
१९५४ ई० स०

बुद्धकालीन भारतका मानचित्र

६०० ई० पूर्व



सं० १

भूमिका

बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय

बुद्धकाल में भारतवर्ष तीन मण्डलों, पाँच प्रदेशों और सोलह महाजनपदों में विभक्त था। महामण्डल, मध्यमण्डल और अन्तर्मण्डल—ये तीन मण्डल थे। जो क्रमशः ९००, ६००, ३०० योजन विस्तृत थे। सम्पूर्ण भारतवर्ष (= जम्बूद्वीप) का क्षेत्रफल १०,००० योजन था। मध्यम देश, उत्तरापथ, अपरान्तक, दक्षिणापथ और प्राच्य—ये पाँच प्रदेश थे। हम यहाँ इनका संक्षेप में वर्णन करेंगे, जिससे बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय प्राप्त हो सके।

§ १ मध्यम देश

भगवान् बुद्ध ने मध्यम देश में ही विचरण करके बुद्धधर्म का उपदेश किया था। तथागत पद-चारिका करते हुए पश्चिम में मथुरा^१ और कुसु के थुल्लकोट्टित^२ नगर से आगे नहीं बढ़े थे। पूर्य में कज्जला निगम के मुखेल वन^३ और पूर्व-दक्षिण की सल्लवती नदी^४ के तीरे को नहीं पार किया था। दक्षिण में सुसुमारगिरि^५ आदि विन्ध्याचल के आसपास वाले निगमों तक ही गये थे। उत्तर में हिमालय की तलहटी के सापुग^६ निगम और उत्तरीध्वज^७ पर्वत से ऊपर जाते हुए नहीं दिखाई दिये थे। विनय पिटक में मध्यम देश की सीमा इस प्रकार बतलाई गई है—“पूर्व दिशा में कज्जला निगम * पूर्व दक्षिण दिशा में सल्लवती नदी । दक्षिण दिशा में सेतकण्णिक^८ निगम * पश्चिम दिशा में थूण^९ नामक ब्राह्मणों का ग्राम **। उत्तर दिशा में उत्तरीध्वज पर्वत ।”^{१०}

मध्यम देश ३०० योजन लम्बा और २५० योजन चौड़ा था। इसका परिमण्डल ९०० योजन था। यह जम्बूद्वीप (= भारतवर्ष) का एक बृहद् भाग था। तत्कालीन सोलह जनपदों में से ये १४ जनपद इसी में थे—काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जी, मल्ल, चेदि, वत्स, कुसु, पञ्चाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वक और अवन्ति। शेष दो जनपद गन्धार और कम्बोज उत्तरापथ में पड़ते थे।

§ काशी

काशी जनपद की राजधानी वाराणसी (बनारस) थी। बुद्धकाल से पूर्व समय-समय पर

१ अगुत्तर निकाय ५ २. १०। इस खूब में मथुरा नगर के पाँच दोष दिखाये गये हैं।

२ मज्झिम निकाय २ ३ ३२। दिल्ली के आसपास कोई तत्कालीन प्रसिद्ध नगर।

३ मज्झिम निकाय ३ ५ १७। ककजोल, सथाल परगना, बिहार।

४. वर्तमान सिलई नदी, हजारी बाग और बीरभूमि।

५ सुनार, जिला मिर्जापुर।

६ अगुत्तर निकाय ४ ४ ५ ४।

७ हरिद्वार के पास कोई पर्वत।

८ हजारीबाग जिले में कोई स्थान।

९ आधुनिक थानेश्वर।

१०. विनय पिटक ५, ३ २।

मुद्रासन, मुद्रासन प्रकाशकन पुत्रवर्ती माठिनी और रम्यनगर इसके नाम थे। इस नगर का विस्तार १२ योजन था। भगवान् बुद्ध से पूर्व काशी राजनीतिक क्षेत्र में प्रकृशाकी जनपद था। काशी और कोशक के राजाओं में प्रायः युद्ध हुआ करते थे जिसमें काशी का राज्य विजयी होता था। उस समय सम्पूर्ण उत्तर भारत में काशी जनपद सब से बड़शाही था। किन्तु बुद्धकाल में उसकी राजनीतिक शक्ति क्षीय हो गई थी। इसका कुछ भाग कोशक प्रदेश और कुछ भाग मगध प्रदेश के अधीन था। उनमें भी प्रायः काशी के किय ही युद्ध हुआ करते थे। अन्त में काशी कोशक प्रदेश प्रसेनजित् के अधिकार से विक्रककर मगध प्रदेश अन्तर्गत के अधीन हो गया था।

वाराणसी के पास क्षत्रियतन मृगशाय (सारनाथ) में भगवान् बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तन करके इसके महत्त्व का बढ़ा दिया। क्षत्रियतन मृगशाय बौद्ध धर्म का एक महातीर्थ है।

वाराणसी शिक्षा व्यवसाय विद्या आदि का पट्ट बड़ा केन्द्र था। इसका द्वावसायिक सम्बन्ध भावस्ती लक्ष्मिका राजगृह आदि नगरों से था। काशी का अन्त और काशी के राज-विहीन प्रदेश बहुत प्रसिद्ध थे।

§ कोशक

कासल की राजधानियों भावस्ती और साकेत नगर थे। गङ्गा नदी के किनारे स्थित एक कन्धा था किन्तु बुद्धकाल में इसकी प्रतिष्ठि न थी कहा जाता है कि भावस्ती नामक क्षत्रियों के नाम पर ही भावस्ती नगर का नाम पड़ा था किन्तु पद्मसूत्रकी के अनुसार 'सब कुछ होन के कारण (= सब+अरिन) इसका नाम भावस्ती पड़ा था।

भावस्ती नगर बड़ा समृद्धिवासी एवं सुन्दर था। इस नगर की आबादी साठ करोड़ थी। भगवान् बुद्ध ने यहाँ २५ वर्षोंकास किया था और अधिकांश उपदेश यहीं पर किया था। धनाधमिष्ठिक यहाँ का बहुत बड़ा सड़ था और मृगारमाठा विद्याका बड़ी अद्यायान् उपासिका थी। पद्यचारा कृसा गीतनी मन्त्र, कर्पा रेवठ और कोशक प्रदेश की महिला सुमना इसी नगर के प्रसिद्ध व्यक्ति थे।

प्राचीन कोशक राज्य दो भागों में विभक्त था। सरयू नदी की दोनों भागों के मध्य स्थित थी। उत्तरी भाग को उत्तर-कोशक और दक्षिणी भाग को दक्षिण-कोशक कहा जाता था।

कोशक जनपद में जनक प्रसिद्ध विगम और प्राप्त थे। कोशक का प्रसिद्ध व्यापार पोषकसादि उद्योग नगर में रहता था जिस प्रसेनजित् ने उस प्रदान किया था। कोशक जनपद के शासक नगरविन्द और बेनागपुर ग्रामों में ऊपर भगवान् बुद्ध ने बहुत से लोगों को दीक्षित किया था। बाहरी कोशक का प्रसिद्ध अध्यापक था की दक्षिणायन में ऊपर गीरावरी नदी के किनारे अथवा आभम बनाया था।

इस ऊपर कह आये हैं कि कोशक और मगध में वाराणसी के किण प्रायः युद्ध हुआ करते थे किन्तु बाद में दोनों में मित्र्य हो गई थी। मन्त्रि के वधान् कोशक प्रदेश प्रसेनजित् ने अपनी पुत्री ब्रिजा वा विवाह मगध प्रदेश अन्तर्गत-सनु से कर दिया था। कोशक की उत्तरी सीमा पर स्थित कविल-अनु के शासक प्रसेनजित् के अधीन थे जोर थे कोशक प्रदेश प्रसेनजित् से बड़ा हीर्षा रखते थे।

इन्द्रवज्रक मन्त्रराज वाराणसी और वक्रावचन—ये कोशक जनपद के प्रसिद्ध प्रायः थे जहाँ पर भगवान् मन्त्रप-नामक पर गये थे और उपवास दिये थे।

§ मगध

अत्र जनपद की राजधानी चम्पा नगरी थी जो चम्पा और गंगा के संगम पर बनी थी। चम्पा विविधाने ६ योजन दूर थी। अत्र जनपद वर्तमान भागलपुर और मुँतेर जिलों के साथ उत्तर में गङ्गा नदी तक फैला हुआ था। कभी यह मगध जनपद के अन्तर्गत था और सम्भवतः मगध के दिवने तक विन्मन था। अग की प्राचीन राजधानी के लिये मन्त्रि आगलपुर के निकट चम्पा नगर

और चम्पापुर—इन दो गाँवों में विद्यमान है। महापरिनिर्वाण मुक्त के अनुसार चम्पा युद्धकाल में भारत के छः बड़े नगरों में से थी। चम्पा से सुवर्ण-भूमि (लोअर बर्मा) के लिये व्यापारी नदी और समुद्र-मार्ग से जाते थे। अंग जनपद में ८०,००० गाँव थे। आपण अंग का एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था। महागोविन्द मुक्त से प्रगट है कि अंग भारत के सात बड़े राजनीतिक भागों में से एक था। भगवान् बुद्ध से पूर्व अंग एक शक्तिशाली राज्य था। जातक से ज्ञात होता है कि किसी समय मगध भी अंग नरेश के अधीन था। बुद्धकाल में अंग ने अपने राजनीतिक महत्व को खो दिया और एक युद्ध के पश्चात् अंग मगध नरेश सेनिय विभिन्नसार के अधीन हो गया। चम्पा की रानी गम्गरा द्वारा गम्गरा-पुष्करिणी खोदवाई गई थी। भगवान् बुद्ध भिक्षुसंघ के साथ वहाँ गये थे और उसके किनारे वास किया था। अंग जनपद का एक दूसरा नगर अद्वपुर था, जहाँ के बहुत से कुलपुत्र भगवान् के पास आकर भिक्षु हो गये थे।

§ मगध

मगध जनपद वर्तमान गया और पटना जिलों के अन्तर्गत फैला हुआ था। इसकी राजधानी गिरिविजय अथवा राजगृह थी, जो पहाड़ियों से घिरी हुई थी। इन पहाड़ियों के नाम थे—ऋषिमिण्डि, वेपुल्ल, वैभार, पाण्डव और गृद्धकूट। इस नगर से होकर तपोदा नदी बहती थी। नैनानी निगम भी मगध का ही एक रमणीय वन-प्रदेश था। एकनाला, नालकग्राम, खाणुमत, और अन्धकविन्द इस जनपद के प्रसिद्ध नगर थे। वज्जी और मगध जनपदों के बीच गंगा नदी सीमा थी। उस पर दोनों राज्यों का समान अधिकार था। अंग और मगध में समय-समय पर युद्ध हुआ करता था। एक बार वाराणसी के राजा ने मगध और अंग दोनों को अपने अधीन कर लिया था। बुद्धकाल में अंग मगध के अधीन था। मगध और कोशल में भी प्रायः युद्ध हुआ करता था। पीछे अजातशत्रु ने लिच्छवियों की सहायता से कोशल पर विजय पाई थी। मगध का जीवक कौमारभृत्य भारत-प्रसिद्ध वैद्य था। उसकी शिक्षा तक्षशिला में हुई थी। राजगृह में वेल्लवन फलन्दक निवाप प्रसिद्ध बुद्ध विहार था। राजगृह में ही प्रथम संगति हुई थी। राजगृह के पास ही नालन्दा एक छोटा ग्राम था। मगध का एक सुप्रसिद्ध किला था, जिसकी मरम्मत वर्षकार ने करायी थी। बाद में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र नगर हुआ था। अशोककाल में इसकी दैनिक आय २००,००० कारपाण थी।

§ वज्जी

वज्जी जनपद की राजधानी वैशाली थी, जो इस समय बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले के बसाइ गाँव में मानी जाती है। वज्जी जनपद में लिच्छवियों का गणतन्त्र शासन था। वहाँ से खोदाई में प्राप्त लेखों से वैशाली नगर प्रमाणित हो चुका है। इस नगर की जनसंख्या की वृद्धि से नगर-प्राकार को तीन बार विस्तार करने के ही कारण इसका वैशाली नाम पड़ा था। वैशाली समृद्धिवाली नगरी थी। उसमें ७७०७ प्रासाद, ७७०७ कूटगार (कोठे), ७७०७ उद्यान-गृह (आराम) और ७७०७ पुष्करिणियाँ थीं। वहाँ ७७०७ राजा, ७७०७ युवराज, ७७०७ सेनापति और इतने ही भण्डारगारिक थे। नगर के बीच में एक सस्थागार (ससद-भवन) था। नगर में उद्वन, गौतमक, सप्तचक्र, बहुपुत्रक, और सारदद चैत्य थे। भगवान् बुद्ध ने वैशाली के लिच्छवियों की उपमा सावर्तिस लोक के देवों से की थी। वैशाली की प्रसिद्ध गणिका अम्बपाली ने बुद्ध को भोजन दान दिया था। विमला, सिंहा, वासिष्ठी, अम्बपाली और रोहिणी वैशाली की प्रसिद्ध भिक्षुणियाँ थीं। वर्द्धमान स्थविर, अजनवनिथ, वज्जीपुत्त, सुयाम, पियञ्जह वसभ, वल्लिय और सखकामी यहाँ के प्रसिद्ध भिक्षु थे। सिंह सेनापति, महानाम, दुर्मुख, सुनफुल्ल और उम गृहपति वैशाली के प्रसिद्ध गृहस्थ थे। वैशाली के पास महावन में कूटगारशाला नामक विहार था। वहाँ पर सर्वप्रथम महाप्रजापति गौतमी के साथ अनेक श्राप्य महिलायें भिक्षुणी हुईं

थी। बैसाही में ही दूसरी संघीति हुई थी। बैसाही यन्त्रण को बुद्ध-परिनिर्वाण के तीन वर्ष बाद ही, बुद्ध काफ़र मगध-नरेश अजातशत्रु ने हथकिया था।

३ मसल

मसल यन्त्रण जनपद था। यह दो भागों में विभक्त था। कुशीनारा भीर पावा इसकी दो राजधानियाँ थीं। जम्बूद्वीप प्रायमान उद्वेककल्प बलिहरय वनसख भोगनगर भीर आजमान इसके प्रसिद्ध नगर थे। देवरिया जिसे का कुशीनारा ही कुशीनारा थी और अश्विजमगर-सठिबौव पावा। कुशीनारा राजधानी के महाभोगे कुशीनगर के निकट अनुकचका ग्राम में विद्यमान है। कुशीनारा का प्राचीन नाम कुशावती था। यह नगर पद्म सप्त पर्व बलिचिती था। बोधिसत्व यहाँ छः बार परवर्ती राता होकर उत्पन्न हुए थे। पूर्व काळ में यह १९ बोजन ऊँचा और ० बोजन चौड़ा था। महापरिनिर्वाण सुप्त से राजगृह से कुशीनारा तक जाने का मार्ग विरहित होता है। मगधान् बुद्ध ने अन्तिम समय में इसी मार्ग से यात्रा की थी—राजगृह अम्बलविका नागम्पा पाण्डिग्राम कोटिग्राम नादिका बैसाही मण्डग्राम इस्तिग्राम (वर्तमान हाथीकाळ), आजग्राम (जनपा) जम्बूग्राम भोगनगर भीर पावा। पावा में बुद्ध के घर बुद्ध व अन्तिम भोजन ग्रहण किया था। पावा भीर कुशीनारा के मध्य तीन मदिर्वाँ थीं जिनमें कम्पवा (पाधी) और हिरण्यवती के नाम ग्रन्थों में मिलते हैं। हिरण्यवती के पश्चिमी तट पर ही कुशीनारा थी और यहाँ साफ़ल उपनयन में बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था। पावा के सुम्ब कम्मरापुत्र, पम्बसुम्ब गोधिक सुबाहु बलिक्य और जपिय प्रसिद्ध व्यक्ति थे। कुशीनारा की महा-विन्धिर्वाँ थी एवं स्वधिर कामुप्मान् सिंह पद्मवत् स्वधिर बम्बुकमसक वीर्यकारायण रोजमसल कन्नपानि मसक और वीरराजा मसिका। बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद पावा और कुशीनारा में बाहु-न्यून बने थे।

३ खेदि

खेदि जनपद यमुना के पास बुद्ध जनपद के निकट था। यह वर्तमान मुम्बलकण्ड को छिये हुए विस्तृत था। इसकी राजधानी सोरियवती नगर था। इसके दूसरे प्रमुख नगर सहजाति और विपुरी थे। वैदिक कालत से ज्ञात होता है कि कासी और खेदि के बीच बहुत सन्धे रहते थे। जटुनगर नगर से खेदि राज ३ बोजन दूर था। सहजाति में महाबुद्ध ने उपदेश दिया था। यह बौद्ध-धर्म का एक बड़ा केंद्र था। भापुप्मान् अनुकन्द ने खेदि राज के प्राचीनवंस मृगादाव में रहते हुए अदोव प्राप्त किया था। सहजातिक भी खेदि जनपद का एक प्रसिद्ध ग्राम था जहाँ मगधान् बुद्ध गये थे।

३ यत्त

यत्त जनपद भारत के उत्तर हिस्से में से एक था। इसकी राजधानी काश्यामी थी। इस समय इसके महाभोगे हलाहाबाद थे ३ मीक पश्चिम यमुना नदी के किनारे कोसम नामक ग्राम में स्थित हैं। मुंगुमारगिरि का भर्ग राज्य यत्त जनपद में ही पड़ता था। कोश्यामी बुद्धकालीन पर्वी नगरी थी। जटिर्वाँ के नेता कावरी ने काश्यामी की बात्रा की थी। काश्यामी में पोपिताग्राम कुम्भकाराम और पावारिकग्राम तीन प्रसिद्ध विहार थे जिन्हें क्रमशः यहाँ के प्रसिद्ध छठ धोवित कुम्भट और पावारिक से बरकामे थे। मगधान् बुद्ध ने इन विहारों में विचार किया था और सिद्ध संघ को उपदेश दिया था। यहाँ पर संघ में बृद्ध भी पैदा हुई थी जो पीछे शास्त्र हो गये थे। बुद्धकाल में राजा कद्वन यहाँ राज्य करता था उसकी भागवती स्वामावती और कामुप्पदा तीन राजिर्वाँ थीं जिनमें स्वामावती वरम बुद्ध-भग्न वपासिजा थी।

३ बुद्ध

प्राचीन साहित्य में दो बुद्ध जनपदों का वर्णन मिलता है—उत्तर बुद्ध और दक्षिण बुद्ध।

प्रश्वेद में गणित कुरु गम्भवत उचार कुरु ही हैं। पालि साहित्य में प्रणित कुरु जनपद ८००० योजन विस्तृत था। कुरु जनपद के राजाओं को कौरव्य कहा जाता था। कम्सामधम्म कुरु जनपद का एक प्रसिद्ध नगर था, जहाँ बुद्ध ने महाप्रतिपद्दान और महानिदान जैसे महात्वपूर्ण एक गम्भीर सूत्रों का उपदेश किया था। इस जनपद का दूसरा प्रमुख नगर धुतुकोटित था। राष्ट्रपाल म्धविर इसी नगर से प्रयोजित हुए प्रसिद्ध भिक्षु थे।

कुरु जनपद के उत्तर सरस्वती तथा दक्षिण स्वधती नदियाँ बहती थीं। वर्तमान सोनपत, अमिग, कर्नाल और पानोपत के लिये कुरु जनपद में ही पड़ते हैं। महासुतसोम जातक के अनुसार कुरु जनपद ३०० योजन विस्तृत था। इसकी राजधानी इन्द्रपट्टन (इन्द्रप्रस्थ) नगर था, जो सात योजन में फैला हुआ था।

§ पञ्चाल

पञ्चाल जनपद भार्गवी नदी से दो भागों में विभक्त था—उत्तर पञ्चाल और दक्षिण पञ्चाल। उत्तर पञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्र नगर था, जहाँ हुमुस्व नामक राजा राज्य करता था। वर्तमान समय में बरेली जिले का रामनगर ही अहिच्छत्र माना जाता है। दक्षिण पञ्चाल की राजधानी काम्पिल्य नगर था जो फरक्काबाद जिले के कम्पिल के स्थान पर स्थित था। समय-समय पर राजाओं की इच्छा के अनुसार काम्पिल्य नगर में भी उत्तर पञ्चाल की राजधानी रहा करती थी। पञ्चाल-नरेश की भगिनी का पुत्र विशाख श्रावन्ती जाकर भगवान् बुद्ध के पास दीक्षित हुआ और छ अभिज्ञाओं को प्राप्त किया था। पञ्चाल जनपद में वर्तमान बद्राऊँ, फरक्काबाद, और उत्तर प्रदेश के समीपवर्ती जिले पड़ते हैं।

§ मत्स्य

मत्स्य जनपद वर्तमान जयपुर राज्य में पड़ता था। इसके अन्तर्गत पूरा अलवर राज्य और भरतपुर का कुछ भाग भी पड़ता है। मत्स्य जनपद की राजधानी विराट नगर था। मादिका के गिञ्जिकावसथ में विहार करते हुए भगवान् बुद्ध ने मत्स्य जनपद का वर्णन किया था। यह इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण-पश्चिम और सुरमेत के दक्षिण स्थित था।

§ शूरसेन

शूरसेन जनपद की राजधानी मथुरा नगरी (मथुरा) थी, जो कौशांबी की मूर्ति यमुना के किनारे बसी थी। यहाँ पर भगवान् बुद्ध गये थे और मथुरा के विहार में वास किया था। मथुरा प्रदेश में महा-कात्यायन ने घूम-घूम कर बुद्ध धर्म का प्रचार किया था। उस समय शूरसेन का राजा अचन्तिपुत्र था। वर्तमान मथुरा से ५ मील दक्षिण पश्चिम स्थित महोली नामक स्थान प्राचीन मथुरा नगरी मानी जाती है। दक्षिण भारत में भी प्राचीन काल में मथुरा नामक एक नगर था, जिसे दक्षिण मथुरा कहा जाता था। यह पाण्ड्य राज्य की राजधानी था। उसके महावशेष इस समय मद्रास प्रान्त में वैगी नदी के किनारे विद्यमान है।

§ अश्वक

अश्वक जनपद की राजधानी पोतन नगर था। अश्वक-नरेश महाकात्यायन द्वारा प्रयोजित हो गया था। जातक से ज्ञात होता है कि दन्तपुर नरेश कालिग और अश्वक नरेश में पहले संधर्ष हुआ करता था, किन्तु पीछे दोनों का मैत्री सम्बन्ध हो गया था। पोतन कभी काशी राज्य में भी गिना जाता था। यह अश्वक गोदावरी के किनारे तक विस्तृत था। दापरी गोदावरी के किनारे अश्वक जनपद में ही

बाधन बना कर रहता था। वर्तमान पैठन जिला ही अक्षय्य शमपद् माना जाता है। वहाँ से न्यारबक नदी का एक सिकासेल भी प्राप्त हो चुका है। महागोविन्द मुक्त के अनुसार यह महागोविन्द द्वारा निर्मित हुआ था।

३ अयन्ति

अयन्ति शमपद् की राजधानी उज्जैनी नगरी थी जो अण्डुतगामी द्वारा बसायी गई थी। अयन्ति शमपद् में वर्तमान मालव विहार और मध्यभारत के निकटवर्ती प्रदेश पड़ते थे। अयन्ति शमपद् दो भागों में विभक्त था। उत्तरी भाग की राजधानी उज्जैनी में थी और दक्षिणी भाग की राजधानी माहिष्मती में। महागोविन्द मुक्त के अनुसार अयन्ति की राजधानी माहिष्मती थी वहाँ का राजा वैशम्पत्तः। कुरुरधर और सुवर्धनपुर अयन्ति शमपद् के प्रसिद्ध नगर थे।

अयन्ति शमपद् भीष्मचर्म का महारक्षक केन्द्र था। अयन्तिकुमार इसिदासी इसिदत्त सोलकुटि कण्व और महाकाल्यायन अयन्ति शमपद् की महाविभूतियाँ थीं। महाकाल्यायन उज्जैनी-नदीस पण्ड प्रद्योत के पुरोहित पुत्र थे। पण्डप्रद्योत की महाकाल्यायन ने ही शीघ्र बनाया था। मिथु इसिदत्त अयन्ति के वैजुग्राम के रहने वाले थे।

कौशाम्बी और अयन्ति के राजबाराँ में वैवाहिक सम्बन्ध था। पण्डप्रद्योत तथा उद्वन में कई बार युद्ध हुए। अन्त में पण्डप्रद्योत ने अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह उद्वन से कर दिया था और दोनों मित्र हो गये थे। उद्वन ने मगध के साथ भी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर दिया था जिससे कौशाम्बी दोनों ओर से सुरक्षित थी।

अयन्ति की राजधानी उज्जैनी से अशोक का एक सिकासेल निकल चुका है।

४ मगध, ग्राम और कस्ये

अपट गया—मगधात् उदकेका स तथा गये ये और गया छ अपर-गया वहाँ उन्हें नागराज सुवर्धन ने विभक्तित किया था।

अम्बसम्ब—राजपुर के पूरव अम्बसम्ब नामक एक ब्राह्मण ग्राम था।

अम्बकविन्द—मगध के अम्बकविन्द ग्राम में मगधात् रहे थे वहाँ सहस्रपति ब्रह्मा ने उदका पूर्जन करके स्तुति की थी।

अयोध्या—वहाँ मगधात् गये थे और वास किया था। पाकि साहित्य के अनुसार यह रंगी नदी के किनारे स्थित था। फिर भी वर्तमान अयोध्या नगर ही माना जाता है। पुष्पाक में यह बहुत छोटा नगर था।

अम्बपुर—यह एक नगर था जो उदकाह नदी के किनारे बसा था।

आसरी—आसरी में अम्बक नामक प्रसिद्ध शैल था वहाँ युद्ध में वास किया था। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश के उज्जैन जिले के मणक (वा देवक) को आसरी माना जाता है।

अनूपिया—यह मगध शमपद् का एक प्रमुख विभाग (कस्य) था। वहाँ पर सिद्धार्थ कुमार ने प्रवृत्त होने के बाद एक सप्ताह विवास किया था और वहाँ अनुराध मरिच किमिक भद्र देवक नामक और कपालि प्रवृत्त हुए थे। पुष्पमक की वहाँ प्रवृत्त हुए थे। वर्तमान समय में देवदिया जिले में डाका के पास मगध नदी के किनारे का नैबडर ही अनूपिया नगर माना जाता है जिसे आम्बक 'शौचक' कहते हैं।

अस्मपुर—राजा शेरि के कर्मों में इस्तिपुर अस्मपुर सिद्धपुर उत्तर पञ्जाब और बदापुर नगरों को बनाया था। इस्तिपुर ही नैबे इस्तिमापुर हो गया था और इस समय इसके मणकलेख मीरद

जिले की मरदान तहसील में विद्यमान हैं। मिहपुर हुणनसाम के समय में तक्षशिला से ११७ मील पूरव स्थित था। अन्य नगरों का कुछ पता नहीं।

अल्लकप्प—वैशाली के लिच्छवियों, मिथिला के विदेहों, कपिलवस्तु के शाक्यों, रामग्राम के कोलियों, सुंसुमारगिरि के भगीं और पिपरलिखन के मौर्यों की भाँति अल्लकप्प के बुलियों का भी अपना स्वतन्त्र राज्य था, किन्तु बहुत शक्तिशाली न था। यह १० योजन विस्तृत था। इसका सम्बन्ध वेठदीप के राजवंश से था। श्री बील का कथन है कि वेठदीप का द्रोण ब्राह्मण शाहाबाद जिले में मसार से वैशाली जानेवाले मार्ग में रहता था। अतः अल्लकप्प वेठदीप से बहुत दूर न रहा होगा। अल्लकप्प के बुलियों को बुद्धधातु का एक अक्ष मिला था, जिसपर उन्होंने स्तूप बनवाया था।

भद्रिय—भल्ल जनपद के भद्रिय नगर में महोपासिका विशाखा का जन्म हुआ था।

वेलुवग्राम—यह वैशाली में था।

मण्डग्राम—यह वज्जी जनपद में स्थित था।

धर्मपाल ग्राम—यह काशी जनपद का एक ग्राम था।

एकशाला—यह कोशल जनपद में एक ब्राह्मण ग्राम था।

एकनाला—यह मगध के दक्षिणागिरि प्रदेश में एक ब्राह्मण ग्राम था, जहाँ भगवान् ने वास किया था।

प्रकच्छ—यह वसण राज्य का एक नगर था।

अपिपत्तन—यह अपिपत्तन मुग्दाय वर्तमान सारनाथ है, जहाँ भगवान् ने धर्मचक्र प्रवर्तन किया था।

गया—गया में भगवान् बुद्ध ने सूचिलोम वक्ष के प्रश्नों का उत्तर दिया था। प्राचीन गया वर्तमान साहबगंज माना जाता है। यहाँ से ६ मील दक्षिण बुद्धगया स्थित है। गयातीर्थ बुद्धकाल में स्नानतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध था और यहाँ बहुत से जटिल रहा करते थे।

हस्तिग्राम—यह वज्जी जनपद का एक ग्राम था। भगवान् बुद्ध वैशाली से कुशीनगर जाते हुए हस्तिग्राम से होकर गुजरे थे। वर्तमान समय में यह बिहार प्रान्त के हथुवा से ८ मील पश्चिम शिचपुर कोठी के पास अवस्थित है। आजकल उसके मष्टावशेष को हाथीखाल कहा जाता है। हस्तिग्राम का उगत गृहपति सधसेवकों में सबसे बढकर था, जिसे बुद्ध ने अन्न की उपाधि दी थी।

हलिहवसन—यह कोलिय जनपद का एक ग्राम था। यहाँ भगवान् बुद्ध गये थे। कोलिय जनपद की राजधानी रामग्राम थी और यह जनपद शाक्य जनपद के पूर्व तथा मल्ल जनपद के पश्चिम दोनों के मध्य स्थित था।

हिमवन्त प्रदेश—कोशल, शाक्य, कोलिय, मल्ल और वज्जी जनपदों के उत्तर में फैली पहाड़ों ही हिमवन्त प्रदेश कहलाती हैं। इसमें नेपाल के साथ हिमालय प्रदेश के सभी दक्षिणी प्रदेश सम्मिलित हैं।

हृल्लानगल—कोशल जनपद में यह एक ब्राह्मण ग्राम था। भगवान् ने हृल्लानगल वनसङ्घ में वास किया था।

जन्तुग्राम—चालिका प्रदेश के चालिका पर्वत के पास जन्तुग्राम था। भगवान् के चालिका पर्वत पर विहार करते समय मेधिय स्वधिर जन्तुग्राम में शिक्षाटन करने गये थे और उसके बाद किमिकाला नदी के तीरे जाकर विहार किया था।

कलयालगामक—यह मगध में एक ग्राम था। यहाँ पर मौद्गल्यायन स्वधिर को अर्हन्व की प्राप्ति हुई थी।

कज्रगड—यह मध्यम देश की पूर्वी सीमा पर स्थित एक ग्राम था। यहाँ के वैजयन्त और मुक्तयुवन में लड़ागत व बिहार किया था। मिथिला प्रदेश के अनुसार यह एक माझग ग्राम था और इसी ग्राम में नागसब का जन्म हुआ था। वर्तमान समय में बिहार प्रान्त के लंका परगना में कंकड़ोक नामक स्थान को ही कज्रगड माना जाता है।

कोटिग्राम—यह बज्जी जनपद में एक ग्राम था। भगवान् पाटकिग्राम से यहाँ आये थे, यहाँ से नादिका गये थे और नादिका से बीछाडी।

कुबिहय—यह कोटिप जनपद में एक ग्राम था। कुबिहय के कुबिहयानवत में भगवान् ने बिहार किया था और सुप्यबासा को स्वस्ति-पूर्वक पुत्र जन्मे का आशीर्वाद दिया था।

कपिलथस्तु—यह शाक्य जनपद की राजधानी थी। सिद्धार्थ पाठम का जन्म कपिलथस्तु के ही शाक्य राजवंश में हुआ था। शाक्य जनपद में जातना सामगाम बहुतम सत्कर शीकवती और कामयुस्य प्रसिद्ध ग्राम पूर्व नगर थे। इसे कोशकपरेश विह्वल ने आक्रमण करके बर कर दिया था। वर्तमान समयमें इसके लडाबसेप नेपाक की तराई में यस्ती जिंके के सुहरतगइ रेशम मे १५ मीक उत्तर लौकिहवा बाहार के पास तिलीराकोट नाम से विद्यमान है।

कोशपुत्र—यह कोशक जनपद के जन्तर्गत एक छोय-सा स्वतन्त्र राज्य था। यहाँ के ककाय मरु शाक्य सौर्य और किञ्चबी राजाओं की भक्ति गज्जतन्त्र प्रजाही से शासन करते थे।

खेमयापती—यह खेमनरेश के राज्य की राजधानी थी।

मिथिला—मिथिला विदेह की राजधानी थी। कुडकाक में यह बज्जी जनपद के अन्तर्गत थी। बज्जी जनपद की बीछाडी और विदेहों की मिथिका—यह प्रसिद्ध नगरियाँ थीं। प्राचीनकाल में मिथिका बगरी सात पोजन विस्तृत थी और विदेह राज्य ३ पोजन। जम्पा और मिथिका में ९ पोजन की बूरी थी। विदेह राज्य में १५ ग्राम १९ मण्डारपुह और १९ गर्तकिर्वाँ थीं—येसा ज्ञातक इया सं ज्ञात होता है। मिथिका एक व्यापारिक केन्द्र था। भावस्ती और बारापसी से व्यापारी यहाँ जाते थे। वर्तमान छिरहुट (लीर मुष्टि) ही विदेह माना जाता है। मिथिका के प्राचीन जनरोप बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिलों के उत्तर में नेपाक को सीमा पर लनकपुर नामक करवे में पाये जाते हैं।

मखखग्राम—यह मगध में एक ग्राम था।

मालम्दा—यह मगध में राजपुह सं १ पोजन की बूरी पर स्थित था। यहाँ के पावारिक-भरक-वम में भगवान् ने बिहार किया था। वर्तमान समय में यह परवा जिंके के राजपुह से ७ मीक उत्तर पश्चिम में अवस्थित है। इसके विसाक लण्डरह वर्तमान है। यह छरी और सातवीं पातावरी ईस्वी में मवाक बीह-विद्या-केन्द्र था।

मासक—यह राजपुह के पास मगध में एक ग्राम था। इसी ग्राम में सारिपुत्र का जन्म हुआ था और यही वनज्य परिनिर्वाण थी। वर्तमान समय में राजपुह के पास का मासक ग्राम ही प्राचीन मासक माना जाता है।

नादिका—यह बज्जी जनपद का एक ग्राम था। पाटकिग्राम से गंगा पार कर कोटिग्राम और नादिका में भगवान् गये थे और यहाँ से बीछाडी।

गिल्लमियत—यह मीनों की राजधानी थी। यहाँ के मीनों व भगवान् कुड की पिडा से प्राप्त भंगार (कोयका) पर लूण बनबाया था। वर्तमान समय में इसके बहापसेप जिन्ना गीरखपुर के कुमुम्ही रेशम मे ११ मीक दक्षिण उपधीली नामक स्थान में प्राप्त हुए हैं।

रामग्राम—कपिल जनपद के दो प्रसिद्ध नगर थे रामग्राम और बुबहद। भगवान् के परि निर्वाण के बाद रामग्राम के कोकियों ने जनकी अरिच पर लूण बनाया था। श्री ५ वी पज

कारलायल ने वर्तमान रामपुर-देवरिया को रामग्राम प्रमाणित किया है जो कि मरवा ताल के किनारे बस्ती जिले में स्थित है, किन्तु महावंश (३१, २५) के वर्णन से ज्ञात है कि रामग्राम अचिरवती (राप्ती) नदी के किनारे था और बाद के समय वहाँ का चैत्य टूट गया था। सम्भवतः गोरखपुर के पास का रामगाँव तथा रामगढ़ ही रामग्राम है।

सामगाम—यह शाक्य जनपद का एक ग्राम था। यहाँ पर भगवान् ने सामगाम सुत्त का उपदेश दिया था।

सापुग—यह कोकिय जनपद का एक निगम था।

शोभावती—यह शोभ-नरेश की राजधानी थी।

सेतव्य—यह कौशल जनपद में एक नगर था। इसके पास ही उकट्टा थी और वहाँ से सेतव्य तक एक सड़क जाती थी।

संकस्स—भगवान् ने श्रावस्ती में यमक प्रातिहार्य कर, तुपित-भवन में वर्षावास करके महा-प्रवचरण के दिन संकस्स नगर में स्वर्ग से भूमि पर पटार्षण किया था। संकस्स वर्तमान समय में संकिसा-वसन्तपुर के नाम से कालिन्दी नदी के उत्तरी तट पर विद्यमान है। यह पटा जिले के फतेहगढ़ से २३ मील पश्चिम और कनौज से ४५ मील उत्तर-पश्चिम स्थित है।

सालिन्दि—यह राजगृह के पूरव एक ब्राह्मण ग्राम था।

सुंसुमारिगिरि नगर—यह भर्गु राज्य की राजधानी था। बुद्धकाल में उदयन का पुत्र बोधि-राजकुमार यहाँ राज्य करता था। जो बुद्ध का परम श्रद्धालु भक्त था। किन्तु, भर्गु राज्य पूर्णरूपेण प्रजातन्त्र राज्य था, क्योंकि गणतन्त्र राज्यों में इसकी भी गणना की जाती थी। भर्गु आजकल के मिर्जापुर जिले का गंगा से दक्षिणी भाग और कुल आस-पास का प्रदेश है, इसकी सीमा गंगा-दोस्त-कर्मनाशा नदियाँ एवं विन्ध्याचल पर्वत का कुल भाग रही होगी। सुंसुमारिगिरि नगर मिर्जापुर जिले का वर्तमान खुनार कस्बा माना जाता है।

सेनापति ग्राम—यह उरुवेला के पास एक ग्राम था।

श्रूण—यह एक ब्राह्मण ग्राम था और मध्यम देश की पश्चिमी सीमा पर स्थित था। आधुनिक पानेइवर ही श्रूण माना जाता है।

उक्काचेल—यह घञ्जी जनपद में गंगा नदी के किनारे स्थित एक ग्राम था। उक्काचेल बिहार प्रान्त के वर्तमान सोनपुर या हाजीपुर के आसपास कहीं रहा होगा।

उपतिस्सग्राम—यह राजगृह के निकट एक ग्राम था।

उग्रनगर—उग्रनगर का सेट उग्र श्रावस्ती में व्यापार के कार्य से आया था। इस नगर के सम्बन्ध में अन्य कोई जानकारी प्राप्त नहीं है।

उसीरध्वज—यह मध्यमदेश की उत्तरी सीमा पर स्थित एक पर्वत था, जो सम्भवतः कनखल के उत्तर पर्वत था।

वेरञ्जा नगर—भगवान् श्रावस्ती से वेरञ्जा गये थे। यह नगर कनौज से संकस्स, सोरेव्य होते हुए मथुरा जाने के मार्ग में पर्वत था। वेरञ्जा सोरेव्य और मथुरा के मध्य कहीं स्थित था।

वेत्रवती—यह नगर वेत्रवती नदी के किनारे बसा था। वर्तमान वेतवा नदी ही वेत्रवती मानी जाती है।

वेणुवग्राम—यह कौशाभी के पास एक छोटा ग्राम था। वर्तमान समय में इलाहाबाद से ३० मील पश्चिम कोसम से थोड़ी दूर उत्तर-पूर्व स्थित वेनपुरवा की ही वेणुवग्राम माना जाता है।

५ नदी और जलाशय

बुढ़काछ में मध्यम देश में जो नदी जलाशय और पुष्करिणी थीं उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार बताया जाहिये—

अधिरघती—इसे वर्तमान समय में राप्ती कहते हैं। यह भारत की पाँच महानदियों में एक थी। इसी के किनारे कोशाळ की राजधानी बसावती बसी थी।

अनोमा—इसी नदी के किनारे सिद्धार्थ कुमार ने प्रथम प्रहस्य की थी। श्री कर्त्तियम ने गौरग्य पुर बिछे की जामी नदी को अनोमा माना है और श्री फरकापछ ने बस्ती बिछे की कुइया नदी को। किन्तु इन पंक्तियों के लेखक की दृष्टि में वैशरिया बिछे की मझव नदी ही अनोमा नदी है। (देखो कुसीनगर का इतिहास, पञ्चम प्रकरण पृष्ठ ५८)।

दाहुका—बुढ़काछ में यह एक पवित्र नदी मानी जाती थी। वर्तमान समय में इसे जुमेछ नाम से पुकारते हैं। यह राप्ती की सहायक नदी है।

धाहुमती—वर्तमान समय में इसे बागमती कहते हैं जो नेपाळ से हाटी हुई बिहार प्राय में जाती है। इसी के किनारे काठमांडू नगर बसा है।

धम्पा—यह मगध और अंग जनपदों की सीमा पर बहती थी।

छहुम्ल—यह हिमाळय में स्थित एक शरीर था।

रंगगा—यह भारत की मसिह नदी है। इसी के किनारे हरिहार प्रयाग और धाराजसी स्थित हैं।

गंगारा पुष्करिणी—अंग जनपद में धम्पा नगर के पास थी। इसे राप्ती गंगारा के छोड़ बाधा था।

हिरण्यघती—कुसीनारा और मझौ का शाकबन उपवन हिरण्यघती नदी के किनारे स्थित थे। वैशरिया बिछे का सोनरा नाका ही हिरण्यघती नदी है, यह कुकुका स्थान के पास जमुना नदी में मिलती है। इसी को हिरवा की नारी और कुसुमी नारा भी कहते हैं जो 'कुसीनारा' का अर्थ है।

फोसिनी—यह रंगगा की एक सहायक नदी है। वर्तमान समय में इसे कुसी नदी कहते हैं।

कजुत्या—यह नदी पावा और कुसीनारा के बीच स्थित थी। वर्तमान पाधी नदी ही कजुत्या मानी जाती है। (देखो कुसीनगर का इतिहास पृष्ठ ३)।

काहमवह—इस नदी के किनारे महाकाष्यायन ने कुछ दिनों तक बिहार किया था।

कामिकासा—यह नदी पाछिवा में थी। मेघिन स्वधिर ने जन्तुग्राम में मिहाराज कर इस नदी के किनारे बिहार किया था।

रंगाल पुष्करिणी—इसी के किनारे बड़े हुए तबागल को राजकुल के परिविर्वाय का समाचार मिला था।

मही—यह भारत की पाँच नदी नदियों में स एक थी। वही मगधक को ही मही कहते हैं।

रघुदाट—यह हिमाळय में एक शरीर था।

रादिनी—यह धावध और कोशिक जनपद का सीमा पर बहती थी। वर्तमान समय में भी इस रीतिनी ही बदन है। यह नारलपुर के पास राप्ती में गिरती है।

सपिनी—यह नदी राजगृह के पास बहती थी। वर्तमान पञ्जाब नदी ही वर्तमान सपिनी नदी है।

सुननु—इस नदी के किनारे भासुप्याम् कजुह ने बिहार किया था।

निरतमा—यह नदी उदयैला प्रदेश में बहती थी। इसी के किनारे सुइया स्थित है। इस समय इसे विवाजवा नदी बहते हैं। विवाजवा और मोइवा नदियों मिलकर ही कजु नदी बहती जाती है। विवाजवा नदी इन्दीया बिछे के विमेरिया नामक ज्वाल के पास में मिलती है।

सुन्दरिका—यह कोशल जनपद की एक नदी थी ।

सुमागधा—यह राजगृह के पास एक पुष्करिणी थी ।

सरयू—इस समय इसे सरयू कहते हैं । यह भारत की पाँच बड़ी नदियों में से एक थी । यह हिमालय से निकल कर बिहार प्रान्त में गंगा से मिलती है । इसी के किनारे अयोध्या नगरी बसी है ।

सरस्वती—गंगा की भौति यह एक पवित्र नदी है, जो शिवालिक पर्वत से निकल कर अम्बाला के आदि-नदी में मैदान में उतरती है ।

वेत्रवती—इसी नदी के किनारे वेत्रवती नगर था । इस समय इसे वेतवा नदी कहते हैं और इसी के किनारे भेलसा (प्राचीन विदिशा) नगर बसा हुआ है ।

वैतरणी—इसे यम की नदी कहते हैं । इसमें नारकीय प्राणी कुछ भोगते हैं । (देखो, संयुक्त निकाय, पृष्ठ २२) ।

यमुना—यह भारत की पाँच बड़ी नदियों में से एक थी । वर्तमान समय में भी इसे यमुना ही कहते हैं ।

पर्वत और गुहा

चित्रकूट—इसका वर्णन अपदान में मिलता है । यह हिमालय से काफी दूर था । वर्तमान समय में पुन्ड्रकूट के काम्पतनाथ गिरि को ही चित्रकूट माना जाता है । चित्रकूट स्टेशन से ४ मील दूर स्थित है ।

चौरपपात—यह राजगृह के पास एक पर्वत था ।

गन्धमादन—यह हिमालय पर्वत के कैलाश का एक भाग है ।

गयाशीर्ष—यह पर्वत गया में था । यहीं से सिद्धार्थ गौतम उरुवेला में गये थे और यहीं पर बुद्ध ने जटिलों को उपदेश दिया था ।

गृद्धकूट—यह राजगृह का एक पर्वत था । इसका शिखर गृद्ध की भौति था, इसीलिए इसे गृद्धकूट कहा जाता था । यहाँ पर भगवान् ने बहुत दिनों तक विहार किया और उपदेश दिया था ।

हिमवन्त—हिमालय को ही हिमवन्त कहते हैं ।

इन्द्रशाल गुहा—राजगृह के पास अन्यसण्ड नामक ब्राह्मण ग्राम से थोड़ी दूर पर वैदिक पर्वत में इन्द्रशाल गुहा थी ।

इन्द्रकूट—यह भी राजगृह के पास था ।

क्रांतिगिरि—राजगृह का एक पर्वत ।

कुरुरधर—यह अवन्ति जनपद में था । महाकाव्यायन ने कुरुरधर पर्वत पर विहार किया था ।

कालगिरि—यह राजगृह में थी ।

पाचीनवंश—यह राजगृह के वैशुत्य पर्वत का पौराणिक नाम है ।

पिप्पलि गुहा—यह राजगृह में थी ।

सत्तपणी गुहा—प्रथम सर्गति राजगृह की सत्तपणी गुहा में ही हुई थी ।

सिनेरु—यह चारों महाद्वीपों के मध्य स्थित सर्वोच्च पर्वत है । मेरु और सुमेरु भी इसे ही कहते हैं ।

श्वेत पर्वत—यह हिमालय में स्थित है । कैलाश को ही श्वेत पर्वत कहते हैं । (देखो, संयुक्त निकाय, पृष्ठ ६६) ।

सुंसुमारगिरि—ब्रह्म भग्न प्रदेश में था । सुन्दर के आसपास की पहाड़ियाँ ही सुंसुमार गिरि हैं ।

सप्यसौषिक पम्मार—राजपुर में ।

वेपुच्छ—राजपुर में ।

वेमार—राजपुर में ।

३ वाटिका और वन

मास्रवन—ग्राम के बने वान को मास्रवन कहते हैं । तीन मास्रवन प्रसिद्ध हैं । एक राजपुर में बीचक का मास्रवन था । दूसरा ककुत्था नदी के किनारे पावा और कुसीतारा के बीच, और तीसरा कामन्दा में तोदेष्य मास्रम का मास्रवन था ।

अम्बपाण्डिवन—यह वैशाखी में था ।

अम्पाटक वन—यह बन्नी बगवद् में था । अम्पाटक वन के मण्डिकर वनसङ्घ में बहुत से मिष्ठुनों के बिहार करते समय शिव पूहपति ने उनके पास जाकर धर्म-बर्षा की थी ।

अन्विय-अम्बवन—यह मण्डराह में बहूपिया में था ।

अञ्जनवन—यह सावत में था । अञ्जनवन मृगादाय में मृगाबाहु ने बिहार किया था ।

अम्बवन—यह आबस्ती के पास था ।

इच्छानकृष्ट वन-सप्य—यह कोसक बगवद् में इच्छानकृष्ट मास्रम ग्राम के पास था ।

जेतवन—यह आबस्ती के पास था । वर्तमान महेन्द्र ही जेतवन है । खोदाई से सिकाकेक जादि प्राप्त हो चुके हैं ।

जातिपवन—यह भरिय राज्य में था ।

कप्पासिय वन-सप्य—यस मन्त्रवर्षियों ने इसी वन-सप्य में बुद्ध का दर्शन किया था ।

कम्बुकनिषाप—यह राजपुर में था । गिकहरियों को ममक दान देने के कारण ही कम्बुक-विषाप कहा जाता था ।

कृत्तियन—कृत्तियन में ही विम्बिसार ने बुद्धधर्म को ग्रहण किया था ।

कुम्बिनी वन—यहाँ पर सिद्धार्थ गौतम का अन्त्य हुआ था । वर्तमान् कुम्बिनदेई ही प्राचीन कुम्बिनी है । यह गौरकपुर त्रिके के नीचनवा स्टेसन से १ मील पश्चिम नेपाल राज्य में स्थित है ।

महावन—यह कपिकवस्तु से केजर हिमालय के किनारे-किनारे वैशाखी तक और वहाँ से अमृगवत्त तक विस्तृत महावन था ।

मन्त्रकुक्षि मृगादाय—यह राजपुर में था ।

मोर निषाप—यह राजपुर की घुमगावा गुफरिनी के किनारे स्थित था ।

मारावन—यह बन्नी बगवद् में इस्तिग्राम के पास था ।

पाषाणिकववन—यह कामन्दा में था ।

मेसककावन—पर्व प्रदेश के सुंभुमारगिरि में मंसककावन मृगादाय था ।

सिसपावन—यह कोसक बगवद् में सेतक नगर के पास उत्तर दिशा में था । श्रीश्यामी और आकनी में भी सिसपावन थे । सीसम के वन को ही सिसपावन कहते हैं ।

शीतवन—यह राजपुर में था ।

उपपत्तन शासवन—यह मण्डराह में शिरववत्री नदी के तट कुसीतारा के पास उत्तर ओर था ।

वेलुवन—यह राजपुर में था ।

३ वीत्य और विहार

बुद्धका में दो प्रसिद्ध वीत्य और विहार थे, जन्में से वैशाखी में जायाक वीत्य महाप्रक वीत्य,

सारम्बद चैत्य, उदयन चैत्य, गौतमक चैत्य और बहुपुत्रक चैत्य थे। कूटागार शाला, बालुकाराम और महाधन विहार वैशाली में ही थे। राजगृह में कादयपकाराम, मित्रोधाराम और परिप्राजकाराम थे। पाटलिपुत्र में अशोककाराम, गिञ्जकायसथ और कुम्भकुटाराम थे। कौशाम्बी में यदरिकाराम, बोपिताराम और कुम्भकुटाराम थे। साकेत में कालकाराम था। उज्जैनी में दक्षिणागिरि विहार था। और श्रावस्ती में पूर्वाराम, सल्लगागर और जेतवन महाविहार थे।

§ २. उत्तरापथ

उत्तरापथ की पूर्वी सीमा पर श्रूण प्राहाण ग्राम था और यह उत्तर में हिमालय तक फैला हुआ था। उत्तरापथ दो महा जनपदों में विभक्त था—गन्धार और कम्बोज। पूरा पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त उत्तरापथ में ही पड़ता था।

§ गन्धार

गन्धार जनपद की राजधानी तक्षशिला नगर था। कश्मीर और तक्षशिला के प्रदेश इसके अन्तर्गत थे। वर्तमान पेशावर और रावलपिण्डी के जिले गन्धार जनपद में पड़ते थे। तीसरी सगति के पश्चात् गन्धार जनपद में बौद्धधर्म के प्रचारार्थ भिक्षु भेजे गये थे। तक्षशिला नगर चाराणसी से २००० योजन दूर था। यह एक प्रधान व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ दूर-दूर प्रदेशों से व्यापारी आते थे। बुद्धकाल में पुक्कुसाति तक्षशिला का राजा था। वह मैत्री भाव के लिए मगध नरेश को पत्र और उपहार भेजा करता था।

§ कम्बोज

कम्बोज जनपद का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है। यह पश्चिमोत्तर भारत में पड़ता था। लुदर के लेख से केवल नमिदपुर नगर का ही कम्बोज जनपद में नाम मिला है। लुपनखान के वर्णन और अशोक-शिलालेख के आधार पर माना जाता है कि वर्तमान राजौरी पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त का हजारा जिला कम्बोज जनपद था। कम्बोज खोहों का उत्पत्ति-स्थान माना जाता था। अशोक-काल में कम्बोज में थोनक महारक्षित स्थविर ने धर्म-प्रचार किया था।

§ नगर और ग्राम

गन्धार-कम्बोज जनपद में कुछ प्रसिद्ध नगर और ग्राम थे। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

अरिद्वपुर—यह शिवि जनपद की राजधानी थी। पंजाब का वर्तमान शोरकोट प्रदेश ही शिवि जनपद माना गया है। इस जनपद में चित्तौष के पास जेतुनर नामक एक और भी नगर था।

कश्मीर—कश्मीर राज्य गन्धार जनपद के अन्तर्गत था। अशोक-काल में यहाँ बुद्धधर्म का प्रचार हुआ था।

तक्षशिला—यह गन्धार जनपद की राजधानी थी। यह प्राचीन भारत का प्रधान शिक्षा-केन्द्र था। जीवक, यन्बुल मल्ल प्रतेनजिघ, महालि आदि की शिक्षा तक्षशिला में ही हुई थी। वर्तमान समय में पंजाब के रावलपिण्डी जिले में तक्षशिला के नष्टावशेष विद्यमान हैं।

सुगाल—यह मगध देश की राजधानी था। वर्तमान समय में इसे स्यालकोट कहते हैं और यह पंजाब में पड़ता है। कुशावती के राजकुमार कुन का विवाह मद्रराजकुमारी प्रभावती से हुआ था। प्राचीन काल में मद्र की चिरयों अत्यधिक सुन्दरी मानी जाती थीं और प्रायः लोग मद्र-कन्याओं से ही विवाह करना चाहते थे।

§ ३ अपरान्तक

अपरान्तक प्रदेश में वर्तमान सिन्ध पश्चिमी राजपूताना गुजरात और नर्मदा के बेसिन के कुछ भाग पड़ते हैं। सिन्ध गुजरात और बड़नी तीन राज्य अपरान्तक के अन्तर्गत थे। अपरान्तक की राजधानी सुप्यारक नगर में थी। बाणिकप्राम, पचीच महाराष्ट्र तासिक चूरत और छोट राठ अपरान्तक प्रदेश में ही पड़ते थे।

§ ३ मगर और प्राम

मरुकण्ड—यह समुद्र के किनारे स्थित एक बन्दरगाह था। व्यापारी यहाँ से चीन द्वारा बिदेसी के किने प्रस्थान करते थे। जंज, यवन देश आदि में जाने के किने यहाँ नीऊ मिळती थी। सुवर्ण भूमि (कोबर बर्मा) को भी व्यापारी यहाँ से जाया करते थे। कठिनाबाक प्रदेश का वर्तमान मड़ौच ही प्राचीन मरुकण्ड है।

महाराष्ट्र—वर्तमान मराठ प्रदेश ही महाराष्ट्र है। यह अजर गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच फैला हुआ है। यहाँ पर भर्मे प्रचारार्थ महाबलैरक्षित स्थापित गये थे।

सोयीर—सोबीर राज्य की राजधानी रोएक नगरी थी। वर्तमान समय में गुजरात प्रदेश के पुरै को ही सोबीर माना जाता है।

सुप्यारक—यह भी एक बन्दरगाह था। वर्तमान सोपारा ही सुप्यारक है। यह बम्बई से १० मील उत्तर और बसीन से ३ मील उत्तर-पश्चिम भाग जिके में स्थित है।

सुरङ्ग—यह एक राह का जिससे होकर सातोदिक नदी बहती थी। वर्तमान कठिनाबाक और गुजरात का अन्य भाग ही सुरङ्ग (सुराङ्ग) माना जाता है।

काकरडु—इसे ही काकराडू भी कहते हैं। मध्य और दक्षिण गुजरात काकरडु माना जाता है।

§ ४ दक्षिणापथ

दक्षिणापथ की उत्तरी सीमा सतकनिष्क निगम था। आचार्य बुद्धधोप के मतानुसार गंगा से दक्षिण और गोदावरी से उत्तर का सारा विस्तृत प्रदेश दक्षिणापथ वा दक्षिण अन्तपथ कहा जाता था। ऐसा जान पड़ता है कि इत्युक्त में गोदावरी से दक्षिण के प्रदेशों का उत्तर भारतवासियों को ज्ञान न था। यद्यपि जंजा को जानते थे किन्तु यहाँ समुद्र मार्ग से ही जान-भासा होता था। गोदावरी से दक्षिण प्रदेशों का पूर्व-परिचय ज्योत्सनाक से मिळता है।

अश्वक और अश्वत्थ महाबलपथ भी दक्षिणापथ में गिने जाते थे। महापेरिकिण्ड मूल के अश्वत्थ अश्वत्थ की राजधानी माहिष्मती थी जो दक्षिणापथ में पड़ती थी। हृष्टीकिमे अश्वत्थ को 'अश्वत्थ दक्षिणापथ' कहा जाता था। अश्वत्थ राज्य गोदावरी के किनारे का और यह भी दक्षिणापथ के अन्तर्गत था। महाकोसक नामक अन्तपथ भी दक्षिणापथ में था जिसका बर्मेन प्रभाग के ज्योत्सना-स्तम्भ पर है। इसे दक्षिण कोशक भी कहा जाता था। वर्तमान बिकाचपुर रामपुर और सम्भकपुर के जिके तथा गजाम के कुछ भाग दक्षिण-कोशक के अन्तर्गत हैं।

§ ५ मगर और प्राम

अमरावती—इस नगर में पूर्वजक में बोधिधत्व उत्पन्न हुए थे। यह आनुमिक समय में अरबीकोड नदी के दाहिने अमरावती नाम से विद्यमान है। इसके पूर्वस्थित स्थल बहुत अधिक हैं।

मोत्र—रीहिसार्व भौकण्ड कृपि मीरानाडू के रहने वाले थे। अमरावती जिके के पकिचपुर के दक्षिण-पूर्व ३ मील की दूरी पर स्थित उम्मक को मोत्र माना जाता है।

तमिल रट्ट—द्राविड़ राष्ट्र को ही दमिलरट्ट कहते हैं । इस राष्ट्र का कावेरी पट्टन वन्दरगाह बड़ा प्रसिद्ध नगर था, जो मालावार के आसपास समुद्र के किनारे स्थित था ।

कलिङ्ग—कलिङ्ग राष्ट्र इतिहास-प्रसिद्ध कलिङ्ग ही है । इसकी राजधानी दन्तपुर नगरी थी ।

वनवासी—रक्षित स्थविर वनवासी में धर्म-प्रचारार्थ भेजे गये थे । उत्तरी कनारा ही वनवासी कहा जाता था । यह तुंगभद्रा और वडोडा के मध्य स्थित था । आधुनिक मैसूर के उत्तरी भाग को वनवासी जानना चाहिए ।

§ ५. प्राच्य

मध्यमदेश के पूरव प्राच्य देश था । इसकी पश्चिमी सीमा पर कजगल निगम, अग और मगध जनपद थे । प्राच्य प्रदेश में वग जनपद पड़ता था । वंगहार जनपद भी इसका ही नाम था । प्रसिद्ध ताम्रलिप्ति वन्दरगाह प्राच्य प्रदेश में ही था, जहाँ से सुवर्ण भूमि, जावा, लंका आदि के लिए व्यापारी प्रस्थान करते थे । अशोक ने घोषिषुक्ष को इसी वन्दरगाह से लड़ा भेजा था । वर्तमान समय में सिदनापुर जिले का तामलुक ही प्राचीन ताम्रलिप्ति है । यहाँ एक बहुत बड़ा बौद्ध विडवविद्यालय भी था । लका में प्रथम भारतीय उपनिवेश स्थापित करने वाला राजा विजय वग राष्ट्र के राजा सिहवाहु का पुत्र था । सम्भवतः उपसेन वगन्तपुत्र स्थविर वंगराष्ट्र के ही रहने वाले थे । वग राष्ट्र का वर्धमानपुर भी प्रसिद्ध नगर था । शिलालेखों में वर्धमानशुक्ति के नाम से इसका उल्लेख है । आधुनिक वर्धवान ही वर्धमानपुर माना जाता है ।

संक्षेप में युद्धकालीन भारत का यही भौगोलिक परिचय है ।

सुक्त (=सूत्र)-सूची

पहला खण्ड

सगाथा वर्ग

पहला परिच्छेद

१. देवता संयुक्त

पहला भाग : नल वर्ग

नाम	विषय	पृष्ठ
१. ओषधतरण सुक्त	तृष्णा की बाढ़ से पार जाना	१
२. निमोक्ख सुक्त	मोक्ष	२
३. उपनेय्य सुक्त	सासारिक भोग का त्याग	२
४. अच्चेन्ति सुक्त	सासारिक भोग का त्याग	२
५. कतिछिन्द सुक्त	पाँच को काटे	३
६. जागर सुक्त	पाँच से बुद्धि	३
७. अपरदिविदित सुक्त	सर्वज्ञ बुद्ध	४
८. सुसम्मूढ सुक्त	सर्वज्ञ बुद्ध	४
९. नमानकाम सुक्त	मृत्यु के राज्य से पार	४
१०. मरब्ब सुक्त	बेहरा खिला रहता है	५

दूसरा भाग : नन्दन वर्ग

१. नन्दन सुक्त	नन्दन वन	६
२. नन्दति सुक्त	चिन्ता रहित	६
३. नदिथ पुत्तसम सुक्त	अपने ऐसा कोई प्यारा नहीं	७
४. सन्निय सुक्त	बुद्ध श्रेष्ठ हैं	७
५. सन्तिकाय सुक्त	ज्ञानि से आनन्द	७
६. विदातन्दी सुक्त	विद्वां और तन्द्रा का त्याग	८
७. कुम्म सुक्त	कहुआ के समान रक्षा	८
८. क्षिरि सुक्त	पाप से लजाना	८
९. ऊटि सुक्त	क्षोषही का भी त्याग	९
१०. समिद्धि सुक्त	काल अज्ञात है, काम-भोगों का त्याग	९

तीसरा भाग : शक्ति वर्ग

१. सक्ति सुक्त	सत्काय-दृष्टि का प्रहाण	१३
----------------	-------------------------	----

१ कुसली सुप्त	मिर्चोंप को दोष नहीं समझता	१३
२. बटा सुप्त	महा कौन सुकृष्ण सज्जना है ?	१४
३ समाधिकारण सुप्त	मन को रोकना	१५
५. अरहन्त सुप्त	भर्त्स्य	१५
६. पञ्चाश सुप्त	प्रसीत	१६
७ सरा सुप्त	नाम रूप का विराध	१६
८ महाजन सुप्त	पृथ्वा का त्याग	१७
९ अतुपक सुप्त	नामा ऐसे होगी	१७
१ पृथिवी सुप्त	दुःख से मुक्ति	१८

वीथी भाग

ः सतुच्छपकाधिक वर्ग

१ सविम सुप्त	सत्युद्धों का साथ	१९
२. मच्छरी सुप्त	कञ्जरी का त्याग	२
३. साडु सुप्त	दाम देना उत्तम है	२१
४ नतमित सुप्त	क म विच नहीं	२३
५. शाहाबपञ्जी सुप्त	तद्वागत दुराहनों से परे है	२४
६ सदा सुप्त	प्रसाद का त्याग	२५
७ समब सुप्त	मिथु सम्मेलन	२६
८ ककिक सुप्त	भराबाहू के पैर में पीड़ा वैचताओं का आगमन	२७
९. परतुच्छरी सुप्त	बर्त प्रहस से स्वर्ग	२८
१ सुदुःखपरतुच्छरी सु	बुद्ध बर्त का सार	२९

पौचर्चा भाग

ः सज्जता वर्ग

१ आदित सुप्त	छोक में बाग समी है	३
२. कि बर्त सुप्त	क्या वैनेबाका क्या पाठा है ?	३
३ अज सुप्त	अज सबको मिय है	३१
४ एचमूक सुप्त	एक अज बाका	३१
५. धर्मोसनाम सुप्त	सर्व-पूर्व	३२
६. अच्छरा सुप्त	राह कौरे कटेगी ?	३२
७ बनरोप सुप्त	किनके पुण्य सदा करते हैं ?	३३
८ इर्द रि सुप्त	मैतवव	३३
९. मच्छर सुप्त	कञ्जरी के छुपक	३३
१ बटीकर सुप्त	इन्द्र-बर्त से ही मुक्ति, अन्य से नहीं	३५

छठे भाग

ः अरा वर्ग

१ बरा सुप्त	पुण्य जुराया नहीं का सज्जता	३७
२. अजराया सुप्त	प्रका मनुष्यों का रज है	३७
३. मित सुप्त	मित्र	३७
४ बरतु सुप्त	आचार	३८
५ अनेति सुप्त	पैदा होना (१)	३८

६. जनेति सुत्त	पंद्रह होना (२)	३८
७. जनेति सुत्त	पंद्रह होना (३)	३८
८. उपपथ सुत्त	वेराह	३९
९. दुतिया सुत्त	माधी	३९
१०. कवि सुत्त	कविता	३९

सातवों भाग • अरु वर्ग

१. नाम सुत्त	नाम	४०
२. चित्त सुत्त	चित्त	४०
३. तण्हा सुत्त	गृहणा	४०
४. मयोजन सुत्त	बन्धन	४१
५. बन्धन सुत्त	फॉस	४१
६. अज्जात्त सुत्त	सताया जाना	४१
७. उद्धित सुत्त	लौंवा गया	४१
८. पिहित सुत्त	छिपा देका	४२
९. इच्छा सुत्त	इच्छा	४२
१०. लोक्क सुत्त	लोक	४२

आठवों भाग • इत्था वर्ग

१. इत्था सुत्त	नादा	४३
२. रथ सुत्त	रथ	४३
३. वित्त सुत्त	धन	४३
४. बुद्धि सुत्त	बुद्धि	४४
५. भीत सुत्त	डरना	४४
६. न जीरति सुत्त	पुराना न होना	४४
७. इत्सर सुत्त	पेश्वर्य	४५
८. काम सुत्त	अपने को न दे	४६
९. पाथेय्य सुत्त	राह-खर्च	४६
१०. पज्जोत्त सुत्त	प्रद्योत	४६
११. अरण सुत्त	कलेश से रहित	४७

दूसरा परिच्छेद

२. देवपुत्त संयुत्त

पहला भाग : प्रथम वर्ग

१. कस्सप सुत्त	भिक्षु-अपुशासन (१)	४८
२. कस्सप सुत्त	भिक्षु-अपुशासन (२)	४८
३. भाव सुत्त	किसके भाव से सुख ?	४८
४. नागाव सुत्त	चार प्रश्नोत्त	४९

५	शामक सुप्त	माझण इतकृत्य है	४९
६	कामव सुप्त	सुप्रव सन्तोष	५
७	पद्माकवण सुप्त	स्मृति-शाम से धर्म का साक्षात्कार	५
८	वायव सुप्त	शिशिकता न करे	५१
९.	चम्बिम सुप्त	बन्ध-ग्रहण	५२
१	सुरिम सुप्त	सूर्य-ग्रहण	५३

दूसरा भाग : अनाथपिण्डिक वर्ग

१	चम्बिमस सुप्त	ध्यानी पार कायेंगे	५४
२	बेण्ड सुप्त	ध्यानी मृत्यु के बस नहीं आते	५४
३.	हीमकडि सुप्त	मिथु-अनुपासन	५४
४	बन्धन सुप्त	शीकवान् कौन ?	५५
५	बन्धन सुप्त	कौन नहीं बूबता ?	५५
६	बासुवण सुप्त	अमुकता का प्रहाण	५६
७	सुबल सुप्त	शिव की ब्रह्माहट कैसे दूर हो ?	५६
८	कडुप सुप्त	मिथु का अग्रबन्ध और शिष्टा नहीं	५६
९	बत्तर सुप्त	सांसारिक भोग को त्यागे	५७
१	अनाथपिण्डिक सुप्त	अंतवन	५८

तीसरा भाग : नामातीर्थ वर्ग

१	सिच सुप्त	सप्तुर्णों की संशति	५९
२	शैम सुप्त	पाप कर्म न करे	५९
३.	सरि सुप्त	पाम का महात्म्य	६
४	बटीकार सुप्त	पुत्रकर्म से ही मुक्ति अन्ध से नहीं	६१
५	बन्ध सुप्त	अग्रमादी को प्रजाय	६२
६	रोहितसस सुप्त	कोक का अन्ध बककर नहीं पापा का सकटा बिना अन्ध पाप मुक्ति भी नहीं	६२
७	बन्ध सुप्त	समय भीत रहा है	६३
८	नम्बिबिसाक सुप्त	पात्रा कैसे होगी ?	६३
९	सुमिम सुप्त	बासुप्पान् सारियुण के गुण	६३
१	नावा तिथिय सुप्त	नावा तीर्थों के मत ब्रह्म अगुणा	६४

तीसरा परिच्छेद

३ कोसल संयुक्त

पहला भाग : प्रथम वर्ग

१	बत्तर सुप्त	चार को छोड़ न समसे	६७
२	पुविम सुप्त	शोक अहितकर कर्म	६८
३.	राजस्य सुप्त	अन्ध-धर्म पुराना नहीं होता	६९

३. विष सुक्त	अपना प्यारा फाँस !	६९
५. अक्षरविगत सुक्त	अपनी रक्षावाली	७०
६. अणुसुक्त	मिलोँ भी पाँदे हीँ	७०
७. अणुकरण सुक्त	वज्रारी में इत दौलतें का फल हुआ	७१
८. मल्लिका सुक्त	अपने में प्यारा कोई नहीं	७१
९. यज्ञ सुक्त	पौत्र प्रकार के यज्ञ, पीला और द्विधा-रक्षित यज्ञ	
	हैं अतिर	७२
१०. यन्त्र सुक्त	एक यन्त्र	७२

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

१. जटिल सुक्त	वपरी रूप-रंग में जानना कठिन	७४
२. यज्ञराज सुक्त	जो सिने द्विय हैं, धारी उमें मच्छा है	७५
३. दोगधाक सुक्त	साध्या में भोजन करें	७६
४. पटम नगाम सुक्त	लक्ष्मी की दो धारें, प्रसेनजित की द्वार	७६
५. द्वितीय नगाम सुक्त	अज्ञातयज्ञ की द्वार, लुटेरा लूटा जाता है	७७
६. धीनु सुक्त	गिर्यो भी पुरुषों में श्रेष्ठ होती है	७८
७. अप्रमाद सुक्त	अप्रमाद के गुण	७८
८. द्वितीय अप्रमाद सुक्त	अप्रमाद के गुण	७९
९. अयुक्त सुक्त	कज्जरी न बरे	८०
१०. द्वितीय अयुक्त सुक्त	कज्जरी त्याग कर पुण्य करे	८१

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

१. पुग्गल सुक्त	चार प्रकार के व्यक्ति	८३
२. अय्यका सुक्त	मृत्यु नियत है, पुण्य करे	८४
३. लोक सुक्त	तीन अहितकर धर्म	८५
४. इम्मस्य सुक्त	दान किसे दे ? किसे देने में महाफल ?	८५
५. पव्वत्तपम सुक्त	मृत्यु बरे आ रही है, धर्माचरण करे	८७

चौथा परिच्छेद

४. मार संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

१. तपोकम्म सुक्त	कठोर तपश्चरण बेकार	८९
२. नाग सुक्त	हाथी के रूप में मार का भाता	९०
३. बुभ सुक्त	सयमी मार के बक में नहीं जाते	९०
४. पाख सुक्त	बुद्ध मार के जाल से मुक्त	९०
५. पास सुक्त	बहुजन के हित-सुख के लिये विचरण	९१

६ सप्य युद्ध	एकाम्बरास स विचित्रित न हो	९२
७ सोमसि युद्ध	यिपुष्प युद्ध	९३
८ भानुस्य युद्ध	अनासक्त चिन्तित नहीं	९३
९ वायु युद्ध	वायु की अल्पता	९३
१० वायु युद्ध	वायु का क्षय	९४

दूसरा भाग : द्वितीय पर्व

१ पासाण युद्ध	युद्धों में बलवृद्धता नहीं	९५
२ सीह युद्ध	युद्ध समाप्तों में गरजते हैं	९५
३ सकलिक युद्ध	परधर से पैर कटना तीव्र बेइमना	९५
४ पठिरुप युद्ध	युद्ध अतुरोह-विरोध से युक्त	९६
५ मानस युद्ध	इच्छाओं का नाश	९७
६ पथ युद्ध	भार का बँक बनकर आना	९७
७ आपतक युद्ध	आपतकों में ही भय	९८
८ पिण्ड युद्ध	युद्ध को मित्रता न मित्री	९८
९ कस्तक युद्ध	भार का रूपक के रूप में आना	९९
१० रज युद्ध	सांसारिक कामों की विजय	१

तीसरा भाग : तृतीय पर्व

१ सम्बन्धक युद्ध	भार का पहलकरता	१ १
२ समिद्धि युद्ध	समृद्धि को उरना	१ २
३ गोत्रिक युद्ध	गोत्रिक की आरम्भहत्या	१ ३
४ सप्तवस्त्राणि युद्ध	भार द्वारा सात छाक पीछा किया जाना	१ ४
५ भारदुहिता युद्ध	भार कल्याणों की पराजय	१ ५

पाँचवाँ परिच्छेद

५ मिथुणी संयुक्त

१ अक्षयिक युद्ध	काम भोग हीर जैसे हैं	१ ८
२ सोमा युद्ध	स्त्री-भाव बना करेगा ?	१ ८
३ किष्ठा गोवर्मा युद्ध	अज्ञानान्धकार का भास	१ ९
४ विजया युद्ध	काम-तृष्णा का भास	१ ९
५ अत्यकलना युद्ध	अत्यकलनों की अस्मिता	११
६ चाका युद्ध	काम-प्रवृत्त के दोष	११
७ अयथाका युद्ध	शोक मुक्त-प्रवृत्त रहा है	१११
८ सौम्यकाय युद्ध	युद्ध आसन में रुचि	११२
९ सैक्य युद्ध	हैट्टु में अत्यन्त और विरोध	११२
१० अमिरा युद्ध	आत्मा का अभाव	११३

छठाँ परिच्छेद

६. ब्रह्म संयुक्त

पहला भाग : प्रथम वर्ग

१. आत्मानुत्त	ब्रह्मा द्वारा बुद्ध को धर्मोपदेश के लिये उल्लासित करना	११४
२. गारव सुत्त	बुद्ध द्वारा धर्म का सत्कार किया जाना	११५
३. ब्रह्मदेव सुत्त	आहुति ब्रह्मा को नहीं मिलती	११६
४. एकब्रह्मा सुत्त	यक ब्रह्मा का मान-मर्दन	११८
५. अपरादिष्टि सुत्त	ब्रह्मा की बुरी दृष्टि का नाश	११९
६. पमाद सुत्त	ब्रह्मा को सविभन करना	१२१
७. कोकालिक सुत्त	कोकालिक के सम्बन्ध में	१२२
८- तिस्सक सुत्त	तिस्सक के सम्बन्ध में	१२२
९. सुदुमह्य सुत्त	कोकालिक को समझाना	१२२
१०. कोकालिक सुत्त	कोकालिक द्वारा अप्रश्रावकों की निन्दा	१२२

दूसरा भाग : द्वितीय वर्ग

१. सनकुमार सुत्त	बुद्ध सर्वश्रेष्ठ	१२५
२. देवदत्त सुत्त	सत्कार से खोटे पुरुष का विनाश	१२५
३. अन्धकविन्द सुत्त	सध-वाल का महात्म्य	१२५
४. अरुणवती सुत्त	अभिभू का ऋद्धि-प्रदर्शन	१२६
५. परिनिव्यान सुत्त	महापरिनिर्वाण	१२८

सातवाँ परिच्छेद

७. ब्राह्मण संयुक्त

पहला भाग : अर्हत् वर्ग

१. धनज्ञानि सुत्त	क्रोध का नाश करे	१२९
२. अक्कोस सुत्त	गालियों का दान	१३०
३. असुरिक सुत्त	सह लेना उत्तम है	१३१
४. विलङ्गिक सुत्त	भिर्दोषी को दोष नहीं लगता	१३१
५. अर्हिसक सुत्त	अर्हिसक कौन ?	१३२
६. जटा सुत्त	जटा को सुलझाने वाला	१३२
७. सुद्धिक सुत्त	कौन शुद्ध होता है ?	१३३
८. अगिक सुत्त	ब्राह्मण कौन ?	१३३
९. सुन्दरिक सुत्त	दक्षिणा के योग्य पुरुष	१३४
१०. यहुवीत सुत्त	वेष्टों की खोज में	१३६

दूसरा भाग : उपासक वर्ग

१ कसि मुक्त	बुद्ध की लेखी	१३८
२ उदय मुक्त	बार-बार सिद्धासन	१३९
३ वैभवित मुक्त	बुद्ध की दम्पता दाम का पात्र	१४
४ महासाहस मुक्त	पुत्रों द्वारा निष्प्रसिद्ध पिता	१४१
५ मानव्यद मुक्त	अभिमान न करे	१४२
६ पण्डितिक मुक्त	झगड़ा न करे	१४३
७ नवकर्म मुक्त	बंगल कर बुझा दे	१४३
८ कङ्कहार मुक्त	विर्जन वन में बास	१४४
९ मातृपोसक मुक्त	माता-पिता के पोषक में पुत्र	१४५
१० मित्रप्रक मुक्त	मिश्रक मिश्र नहीं	१४५
११ संपारक मुक्त	स्नान से छुड़ि नहीं	१४६
१२ प्रोमदुष्मक मुक्त	सन्त की पहचान	१४६

आठवाँ परिच्छेद

८ वकीश संयुक्त

१ मिश्रक मुक्त	बंगीश का रङ संकल्प	१४८
२ अरति मुक्त	राग छोड़े	१४८
३ अतिमन्त्रना मुक्त	अभिमान का त्याग	१४९
४ आनन्द मुक्त	अमराग से मुक्ति का उपाय	१५
५ शुभाशित मुक्त	शुभाशित के फलम	१५१
६ सारिपुत्र मुक्त	सारिपुत्र की स्तुति	१५१
७ पवारना मुक्त	प्रचारना-कर्म	१५२
८ बरोमहम्म मुक्त	बुद्ध-स्तुति	१५३
९ कोण्डन् मुक्त	अज्ञाकोण्डन् के पुत्र	१५४
१० मोलाकपाल मुक्त	महामौलकपाल के पुत्र	१५५
११ गमारा मुक्त	बुद्ध-स्तुति	१५५
१२ बहीम मुक्त	बंगीश के उपाय	१५५

नयाँ परिच्छेद

९ वन संयुक्त

१ विवेक मुक्त	विवेक में अराग	१५७
२ उपहास मुक्त	उधे सोना छोड़ो	१५७
३ अन्वयगोल मुक्त	बहकिया को उपदेश	१५८
४ मन्वदूक मुक्त	मिश्रुओं का स्वरूपम् विहार	१५८
५ आनन्द मुक्त	प्रसाद न करना	१५९
६ अमुदूक मुक्त	संस्कारों की अनिश्चिता	१५९

७. नागदत्त सुक्त	देर तक गाँवों में रहना अच्छा नहीं	१६०
८. कुलधरणी सुक्त	सह लेना उत्तम है	१६०
९. वज्रिपुत्र सुक्त	भिक्षु-जीवन के सुख की स्मृति	१६१
१०. सञ्ज्ञाय सुक्त	स्वाध्याय	१६१
११. अयोनिस् सुक्त	उचित विचार करना	१६१
१२. मञ्जान्तिक सुक्त	जगल में मंगल	१६२
१३. पाकतिन्द्रिय सुक्त	दुराचार के दुर्गुण	१६२
१४. पद्मपुष्प सुक्त	विना दिये पुष्प सूँधना भी चोरी है	१६२

दसवाँ परिच्छेद

१०. यक्ष संयुक्त

१. इन्द्रक सुक्त	वैदाह्य	१६४
२. सक्क सुक्त	उपदेश देना बन्धन नहीं	१६४
३. सूचिलोम सुक्त	सूचिलोम यक्ष के प्रश्न	१६४
४. मणिमह सुक्त	स्मृतिमात्र का सदा कल्याण होता है	१६५
५. सातु सुक्त	उपोसथ करने वाले को यक्ष नहीं पीड़ित करते	१६६
६. पियङ्कर सुक्त	विशाच-योनि से मुक्ति के उपाय	१६७
७. पुनर्वसु सुक्त	धर्म सबसे प्रिय	१६७
८. सुदत्त सुक्त	अनायपिण्डिक द्वारा बुद्ध का प्रथम दर्शन	१६८
९. सुक्का सुक्त	शुक्रा के उपदेश की प्रशंसा	१६९
१०. सुक्का सुक्त	शुक्रा को भोजन-दान की प्रशंसा	१६९
११. चीरा सुक्त	चीरा को चीवर-दान की प्रशंसा	१७०
१२. आलवक सुक्त	आलवक-दान	१७०

ग्यारहवाँ परिच्छेद

११. शक्र संयुक्त

पहला भाग	: प्रथम वर्ग	
१. सुधीर सुक्त	उत्साह और वीर्य की प्रशंसा	१७२
२. सुसीम सुक्त	परिश्रम की प्रशंसा	१७३
३. धजग्य सुक्त	देवासुर-संग्राम, त्रिरत्न का महात्म्य	१७३
४. वैपचित्ति सुक्त	क्षमा और सीजन्य की महिमा	१७४
५. सुभासित जय सुक्त	सुभाषित	१७६
६. कुलावक सुक्त	धर्म से शक्र की विजय	१७७
७. न हुन्नि सुक्त	धोखा देना महापाप है	१७७
८. धिरोचन असुरिन्द्र सुक्त	सफल होने तक परिश्रम करना	१७८
९. आरभ्यकइसि सुक्त	शील की सुगन्ध	१७९
१०. समुदकइसि सुक्त	जैसी करनी वैसी भरनी	१७९

दूसरा भाग : द्वितीय धरा

१	परम बल गुण	पाक के साथ प्रथम सखुदण	१८१
२	दुर्लभ बल गुण	इन्द्र के साथ काम और उसके प्रथ	१८१
३	तन्त्रिय धरा गुण	इन्द्र के काम और प्रथ	१८२
४	इन्द्रिय गुण	बुद्ध भक्त इन्द्रिय बही	१८२
५	सामग्यवक गुण	रमणीय स्थान	१८३
६	बनमान गुण	सांख्यिक ज्ञान का महात्म्य	१८३
७	बन्धना गुण	बुद्ध जन्मना का बंध	१८४
८	परम महत्त्वमयता गुण	धर्मिकान् मिथु और गृहस्थों को जमरकर	१८४
९	दुर्लभ महत्त्वमयता गुण	सर्वभेद बुद्ध का जमरकर	१८५
१०	तन्त्रिय महत्त्वमयता गुण	मिथु-सिद्ध को जमरकर	१८५

तीसरा भाग : तृतीय धरा

१	अज्ञान गुण	बोध का बंध करने का गुण	१८७
२	दुर्लभतन्त्रिय गुण	बोध ब करने का गुण	१८७
३	माया गुण	सम्बन्धी भाषा	१८८
४	अज्ञान गुण	भरसाध और क्षमा	१८८
५	अज्ञान गुण	बोध का स्थान	१८९

दूसरा खण्ड

निदान वर्ग

पहला परिच्छेद

१२ अभिगमय संवृत्त

पहला भाग

:

गुह्य धरा

१	देवता गुण	सर्वात्मसुन्दर	१९३
२	विशुद्ध गुण	सर्वोच्च-सुन्दर का अन्तर्गत	१९३
३	वर्तमान गुण	क्रिया और अन्तर्गत-सर्व	१९५
४	विलम्बी गुण	विशुद्धी बुद्ध का सर्वात्मसुन्दर का अन्त	१९५
५	शिक्षी गुण	शिक्षी बुद्ध को सर्वात्मसुन्दर का अन्त	१९६
६	केवल गुण	केवल बुद्ध को सर्वात्मसुन्दर का अन्त	१९७
७	सुख गुण	सर्व बुद्ध को सर्वात्मसुन्दर का अन्त	१९७
८	सर्व गुण	सर्वात्मसुन्दर अन्त	१९७

दूसरा भाग

:

महात्मा धरा

१	अज्ञान गुण	अज्ञान के अन्तर्गत और बुद्धों के अन्तर्गत	१९८
---	------------	---	-----

०	काम्युन सुक्त	चार आहार और उनकी उत्पत्तियाँ	१९
३	पठम समणब्राह्मण सुक्त	यथार्थ नामके अधिकारी श्रमण-ब्राह्मण	२०
४.	द्वितीय समणब्राह्मण सुक्त	परमार्थ के जानकार श्रमण-ब्राह्मण	२०
५.	कञ्चानगीत सुक्त	सम्यक् दृष्टि की व्याख्या	२०८
६.	धम्मकथिक सुक्त	धर्मोपदेशक के गुण	२०१
७	अचेल सुक्त	प्रतीत्य समुत्पाद, अचेल काश्यप की प्रब्रज्या	२०२
८.	तिम्बरुक सुक्त	सुख-दुःख के कारण	२०४
९	बालपण्डित सुक्त	मूर्ख और पण्डित में अन्तर	२०४
१०.	पञ्चम सुक्त	प्रतीत्य समुत्पाद की व्याख्या	२०५

तीसरा भाग

१	पठम दसवल सुक्त	दशवल वर्ग	
२	द्वितीय दसवल सुक्त	बुद्ध सर्वोत्तम कहलाने के अधिकारी	२०७
३	उपनिषा सुक्त	प्रब्रज्या की सफलता के लिये उद्योग	२०७
४	अम्यतिरिथिय सुक्त	आश्रव-अय, प्रतीत्यसमुत्पाद	२०८
५	भूमिल सुक्त	दुःख प्रतीत्यसमुत्पन्न है	२०९
६	उपवान सुक्त	सुख-दुःख सहैतुक है	२११
७	पञ्चय सुक्त	दुःख समुत्पन्न है	२१२
८.	भिक्षु सुक्त	कार्य-कारण का सिद्धान्त	२१३
९	पठम समणब्राह्मण सुक्त	कार्य-कारण का सिद्धान्त	२१३
१०	द्वितीय समणब्राह्मण सुक्त	परमार्थ ज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण	२१४
		संस्कार-पारगत श्रमण-ब्राह्मण	२१४

चौथा भाग

१	भूतमिद सुक्त	कलार ध्वनिय वर्ग	
२	कलार सुक्त	यथार्थ ज्ञान	२१५
३	पठम अणवस्थु सुक्त	प्रतीत्यसमुत्पाद, सारिपुत्र का सिंहासन	२१६
४	द्वितीय अणवस्थु सुक्त	ज्ञान के विषय	२१८
५	पठम अविज्जा पञ्चया सुक्त	ज्ञान के विषय	२१९
६	द्वितीय अविज्जा पञ्चया सुक्त	अविद्या ही दुःखों का मूल है	२१९
७.	न दुग्ह सुक्त	अविद्या ही दुःखों का मूल है	२२०
८	पठम चेतना सुक्त	शरीर अपना नहीं	२२१
९	द्वितीय चेतना सुक्त	चेतना और संकट के अभाव में मुक्ति	२२१
१०	तृतीय चेतना सुक्त	चेतना और संकट के अभाव में मुक्ति	२२२
		चेतना और संकट के अभाव में मुक्ति	२२२

पाँचवाँ भाग

१	पठम पञ्चवेरभय सुक्त	गृहपति वर्ग	
२.	द्वितीय पञ्चवेरभय सुक्त	पाँच वेर-भय की शान्ति	२२३
३.	दुम्पल सुक्त	पाँच वेर-भय की शान्ति	२२४
४.	लोक सुक्त	दुःख और उपसका हय	२२६
५.	आशिका सुक्त	लोक की उत्पत्ति और लय	२२७
६.	अञ्जतर सुक्त	कार्य-कारण का सिद्धान्त	२२५
		नप्यम-नार्ग का उद्देश	२१६

७ अनुसूचि गृह	प्रथम भाग का उपदेश	२२१
८ आर्यभट्ट गृह	आंकिक भागों का व्याप	२२१
९. पदम अरिपमायक गृह	आर्यभट्ट को प्रतीपसमुपाद् में सम्बद्ध नहीं	२२०
१०. बुधिव अरिपमायक गृह	आपभायक का प्रतीपसमुपाद्में सम्बद्ध नहीं	२२०

छठी भाग

	१	गृह्य धरा	
१ परिविमाग गृह	पर्यन्तः दुर क्षय क क्षिय प्रतीपसमुपाद् का मत		२२८
२ उदाहरण गृह	सौमरिक आकर्यों में बुधार्द्र देवत में बुध का भाग		२२९
३ पदम मान्यजन गृह	आर्यभट्ट-व्याप म गृह्या का भाग		२३
४ बुधिव मान्यजन गृह	आर्यभट्ट-व्याप से गृह्या का भाग		२३०
५. पदम महापृष्ठ गृह	गृह्या महापृष्ठ है		२३०
६ बुधिव महापृष्ठ गृह	गृह्या महापृष्ठ है		२३१
७ मान्यजन गृह	गृह्या तदन दृष्ट के मयान है		२३१
८ विमान्य गृह	सौमरिक आर्यभट्ट-व्याप में विमान्य की उत्पत्ति		२३१
९ विमान्य गृह	सौमरिक आर्यभट्ट-व्याप में विमान्य की उत्पत्ति		२३१
१० विद्वान गृह	प्रतीपसमुपाद् की सम्भीरता		२३२

सातवीं भाग

	१	महा धरा	
१ पदम आगुपरा गृह	चित्त अक्षर जगा है		२३३
२ बुधिव आगुपरा गृह	पञ्चमण्डल के शीतल से मुक्ति		२३३
३ उपसर्ग गृह	पर प्रकार के आहार		२३४
४ अधिपरा गृह	पर प्रकार के आहार		२३५
५. अगार गृह	अर्ध अष्टांगिक भागों प्राचीन बुध-भागों है		२३६
६ पदममान्य गृह	आर्यभट्ट मङ्गल मयम		२३६
७ मङ्गलमान्य गृह	आर्यभट्ट की उत्पत्ति का विषय		२३६
८ अणुशरी गृह	मङ्ग का विषय ही विचारों		२४
९ अणुशरी गृह	मङ्गलमण का हस्त		२४३
१० अणु म गृह	अर्ध अणुमान्य मण क अणुमान्य विचारों का ज्ञान		२४३

आठवीं भाग

	१	अथवा प्राथम्य धरा	
१ अथवा गृह	अथवा-प्राथम्य अथवा-प्राथम्य		२४४
२-३ अथवा गृह	अथवा-प्राथम्य अथवा-प्राथम्य		२४५
३ अथवा गृह	अथवा-प्राथम्य अथवा-प्राथम्य		२४५

१ अथवा अथवा

अथवा-प्राथम्य के विषय बुध की ओर	२४६
अथवा-प्राथम्य के विषय अथवा-प्राथम्य	२४६
अथवा-प्राथम्य के विषय अथवा-प्राथम्य	२४६
अथवा-प्राथम्य के विषय अथवा-प्राथम्य	२४६
अथवा-प्राथम्य के विषय अथवा-प्राथम्य	२४
अथवा-प्राथम्य के विषय अथवा-प्राथम्य	२४६

७ आतप्य सुक्त	यथार्थज्ञान के लिये उद्योग करना	२४८
८ विरिय सुक्त	यथार्थज्ञान के लिये वीर्य करना	२४९
९ ज्ञातव्य सुक्त	यथार्थज्ञान के लिये परिश्रम करना	२४९
१० सति सुक्त	यथार्थज्ञान के लिये स्मृति करना	२४९
११ सम्पन्नोऽथ सुक्त	यथार्थज्ञान के लिये संपन्न होना	२४९
१२ अप्यमाह सुक्त	यथार्थज्ञान के लिये अप्रमादी होना	२४९

दसवाँ भाग

: अभिसमय वर्ग

१. नक्षसिख सुक्त	स्रोतापन्न के दु ख अत्यल्प हैं	२५०
२. पोक्खरणी सुक्त	स्रोतापन्न के दु ख अत्यल्प हैं	२५०
३ सम्भोज्जउदक सुक्त	महानदियों के संगम से तुलना	२५०
४ सम्भोज्जउदक सुक्त	महानदियों के संगम से तुलना	२५१
५. पठवी सुक्त	पृथ्वी से तुलना	२५१
६ पठवी सुक्त	पृथ्वी से तुलना	२५१
७ समुह सुक्त	समुद्र से तुलना	२५१
८ समुह सुक्त	समुद्र से तुलना	२५१
९ पव्वत सुक्त	पर्वत की उपमा	२५१
१० पव्वत सुक्त	पर्वत की उपमा	२५२
११ पव्वत सुक्त	पर्वत की उपमा	२५२

दूसरा परिच्छेद

१३ धातु संयुक्त

पहला भाग

: नानात्व वर्ग

१ धातु सुक्त	धातु की विभिन्नता	२५३
२ सम्फस्स सुक्त	स्पर्श की विभिन्नता	२५३
३ नो चेत् सुक्त	धातु विभिन्नता से स्पर्श विभिन्नता	२५३
४ पठम वेदना सुक्त	वेदना की विभिन्नता	२५४
५ द्वितिय वेदना सुक्त	वेदना की विभिन्नता	२५४
६ धातु सुक्त	धातु की विभिन्नता	२५५
७ सम्जा सुक्त	संज्ञा की विभिन्नता	२५५
८ नो चेत् सुक्त	धातु की विभिन्नता से संज्ञा की विभिन्नता	२५५
९ पठम फस्स सुक्त	विभिन्न प्रकार के लाम के कारण	२५६
१० द्वितिय फस्स सुक्त	धातु की विभिन्नता से ही संज्ञा की विभिन्नता	२५६

दूसरा भाग

: द्वितीय वर्ग

१ सत्तिम सुक्त	सात धातुयें	२५८
२ सन्निदान सुक्त	कारण से ही कार्य	२५८
३ निअकावसय सुक्त	धमत्तु के कारण ही नञा, दृष्टि तथा चित्तकर्म की उत्पत्ति	२५९
४ हीनाधिमुत्ति सुक्त	धातुओं के अनुसार ही नेलजोळ का होना	२६०

२. अज्ञानं भुक्त	धातु के अनुसार ही सर्वों में मेकजोळ का होगा	२११
३. सगामा भुक्त	धातु के अनुसार ही मेकजोळ का होगा	२११
४. अससक भुक्त	धातु के अनुसार ही मेकजोळ का होगा	२१२
५-१. पञ्च भुक्तव्या	धातु के अनुसार ही मेकजोळ का होगा	२१२

तीसरा भाग

	1	कर्मपथ धर्म	
१. असमाहित भुक्त		असमाहित का असमाहितों से मेक होगा	२१३
२. दुस्मीक भुक्त		दुस्मीक का दुस्मीकों से मेक होगा	२१३
३. पञ्चसिक्कापथ भुक्त		धुरै धुरों का साथ करते तथा अच्छे अच्छों का	२१३
४. सप्तसम्मपथ भुक्त		सात कर्मपथ धर्मों में मेकजोळ का होगा	२१३
५. दससम्मपथ भुक्त		दस कर्मपथ धर्मों में मेकजोळ का होगा	२१४
६. नडुडिक भुक्त		अज्ञानियों में मेकजोळ का होगा	२१४
७. दसद भुक्त		दशानों में मेकजोळ का होगा	२१४

चौथा भाग

	1	धामुर्ध धर्म	
१. अणु भुक्त		चार धामुर्ध	२१५
२. पुण्य भुक्त		पूर्वज्ञान धामुर्धों के आस्वाद और दुष्परिणाम	२१५
३. अचरि भुक्त		धातुओं के आस्वादन में विचलन करना	२१५
४. सो चेई भुक्त		धातुओं के धामुर्धज्ञान से ही मुक्ति	२१६
५. दुबल भुक्त		धातुओं के धामुर्धज्ञान से मुक्ति	२१६
६. अभिमतम्न भुक्त		धातुओं की चित्ति से ही दुःख से मुक्ति	२१७
७. उपपाद भुक्त		जादु-विराह से ही दुःख-विरोध	२१७
८. परम समनप्राक्षण भुक्त		चार धामुर्ध	२१७
९. बुद्धि समनप्राक्षण भुक्त		चार धामुर्ध	२१७
१०. तद्विष समनप्राक्षण भुक्त		चार धामुर्ध	२१८

तीसरा परिच्छेद

१४ अनमतम्न संयुक्त

	1	प्रथम धर्म	
१. तिनबड भुक्त		संसार के प्रारम्भ का वता नहीं धाम-कडुई की उपमा	२१९
२. पडही भुक्त		संसार के प्रारम्भ का वता नहीं दुष्परि की उपमा	२१९
३. अणु भुक्त		संसार के प्रारम्भ का वता नहीं अणु की उपमा	२१९
४. भीर भुक्त		संसार के प्रारम्भ का वता नहीं दूध की उपमा	२२०
५. परवत भुक्त		बन की र्थिता	२२०
६. भागव भुक्त		बन की र्थिता	२२१
७. सावक भुक्त		कीले हुए बन अणुव ई	२२१
८. नीता भुक्त		कीले हुए बन अणुव ई	२२१
९. पण्य भुक्त		संसार के प्रारम्भ का वता नहीं	२२१

१०. पुष्पगल सुक्त	संसार के प्रारम्भ का पता नहीं	२७२
	:	
दूसरा भाग	द्वितीय वर्ग	
१. हुग्गत सुक्त	दुःखी के प्रति सहानुभूति करना	२७३
२. सुश्रित सुक्त	सुखी के प्रति सहानुभूति करना	२७३
३. तिस्रति सुक्त	आदि का पता नहीं, समुद्रों के जल में खन ही अधिक	२७३
४. माता सुक्त	माता न हुए सख असम्भव	२७४
५-९. पिता सुक्त	पिता न हुए सख असम्भव	२७४
१०. वेपुल्लपर्वत सुक्त	वेपुल्लपर्वत की प्राचीनता, सभी संस्कार अनित्य हैं	२७४

चौथा परिच्छेद

१५ काश्यप संयुक्त

१. सन्तुष्ट सुक्त	प्राप्त जीवर आदि से सन्तुष्ट रहना	२७६
२. अनोत्तापी सुक्त	आतापी और भीतापी को ही ज्ञान-प्राप्ति	२७६
३. चन्द्रोपम सुक्त	चाँद की तरह कुलों में जाना	२७७
४. कुलपग सुक्त	कुलों में जाने योग्य भिक्षु	२७८
५. जिष्ण सुक्त	आरण्यक होने के लाभ	२७८
६. षष्ठम ओषाद् सुक्त	धर्मोपदेश सुनने के लिये अयोग्य भिक्षु	२७९
७. द्वादश ओषाद् सुक्त	धर्मोपदेश सुनने के लिये अयोग्य भिक्षु	२८०
८. त्रितय ओषाद् सुक्त	धर्मोपदेश सुनने के लिये अयोग्य भिक्षु	२८०
९. क्षान्नाभिज्ञा सुक्त	ध्यान-अभिज्ञा में काश्यप बुद्ध-मुल्य	२८१
१०. उपस्रय सुक्त	धुल्लतित्त्वा भिक्षुणी का संघ से बहिष्कार	२८२
११. चीवर सुक्त	आनन्द 'कुमार' जैसे, धुल्लनन्दा का संघ से बहिष्कार	२८३
१२. परम्परण सुक्त	अव्याकृत, चार आर्य-सख	२८५
१३. सद्धम्मपतिरूपक सुक्त	नकली धर्म से सद्धर्म का लोप	२८५

पाँचवाँ परिच्छेद

१६. लाभसत्कार संयुक्त

	:	
पहला भाग	प्रथम वर्ग	
१. दारुण सुक्त	लाभसत्कार दारुण है	२८७
२. बालिस सुक्त	लाभसत्कार दारुण है, वशी की उपमा	२८७
३. कुम्म सुक्त	लाभादि भयानक हैं, कष्टुभा और ज्याघा की उपमा	२८८
४. दीवलीमी सुक्त	लम्बे धालधाले में दे की उपमा	२८८
५. पलक सुक्त	लाभसत्कार से आनन्दित होना अहितकर है	२८८
६. असनि सुक्त	बिजली की उपमा और लाभसत्कार	२८९
७. दिङ्ग सुक्त	बिपैला तीर	२८९
८. सिगाळ सुक्त	रोगी श्यगाल की उपमा	२८९

२. बेरम्ब सुप्त	इन्द्रियों में संयम रक्षता बेरम्ब वायु की कथना	२८९
३. सगोत्रा सुप्त	कामसत्कार वाङ्मय है	२९०

दूसरा भाग

द्वितीय धर्म

१. षष्ठम पाठी सुप्त	कामसत्कार की भर्षकरता	२९१
२. द्वादश पाठी सुप्त	कामसत्कार की भर्षकरता	२९१
३-१०. सिद्धी सुप्त	कामसत्कार की भर्षकरता	२९१

तीसरा भाग

तृतीय धर्म

१. मातृगाम सुप्त	कामसत्कार वाङ्मय है	२९२
२. कन्ध्यापी सुप्त	कामसत्कार वाङ्मय है	२९२
३. पुत्र सुप्त	कामसत्कार में न रईसना सुदृढ़ क आदर्श आशय	२९२
४. पृक्कीटा सुप्त	कामसत्कार में न रईसना सुदृढ़ की आदर्श भाविकर्मों	२९२
५. पदम समनत्राह्वज सुप्त	कामसत्कार के पदार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति	२९३
६. द्वितीय समनत्राह्वज सुप्त	कामसत्कार के पदार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति	२९३
७. तृतीय समनत्राह्वज सुप्त	कामसत्कार के पदार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति	२९३
८. छवि सुप्त	कामसत्कार काक की छेद देता है	२९३
९. रक्त सुप्त	कामसत्कार की रस्ती काक की छेद देती है	२९३
१०. मिरक्त सुप्त	कामसत्कार काक के छेद से विष्णुकारक	२९४

चौथा भाग

चतुर्थ धर्म

१. मिम्बि सुप्त	कामसत्कार के कारण संघ में फूट	२९५
२. मूक सुप्त	पुत्र के मूक का करता	२९५
३. बम्ब सुप्त	कुशाघ घर्म का करता	२९५
४. सुक्कम्म सुप्त	सुक्क घर्म का करता	२९५
५. पञ्चम सुप्त	संबन्ध के बन्ध के लिए कामसत्कार का उत्पन्न होना	२९५
६. रय सुप्त	संबन्ध का कामसत्कार अमकी हानि के लिए	२९६
७. भावा सुप्त	कामसत्कार वाङ्मय है	२९६
८-१३. पिवा सुप्त	कामसत्कार वाङ्मय है	२९६

छठों परिच्छेद

१७ राहुल संयुक्त

पहला भाग

प्रथम धर्म

१. बन्धु सुप्त	इन्द्रियों में अतिय दुःख अकारम के मन्त्र से विमुक्ति	२९७
२. रूप सुप्त	रूप में अतिय दुःख अकारम के मन्त्र से विमुक्ति	२९७
३. विज्ञान सुप्त	विज्ञान में अतिय दुःख, अकारम के मन्त्र से मुक्ति	२९८
४. सम्बन्ध सुप्त	संबन्ध का मन्त्र	२९८
५. वेदना सुप्त	वेदना का मन्त्र	२९८
६. मन्त्रा सुप्त	मन्त्रा का मन्त्र	२९८

७. संज्ञेतना सुक्त	संज्ञेतना का मनन	२९८
८. तण्हा सुक्त	तृष्णा का मनन	२९८
९. धातु सुक्त	धातु का मनन	२९८
१०. खन्ध सुक्त	स्कन्ध का मनन	२९८

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

१. चक्षु सुक्त	अनित्य-दुःख-अनात्म की भावना	२९९
२-१०. रूप सुक्त	अनित्य-दुःख-अनात्म की भावना	२९९
११. अनुसय सुक्त	सम्यक् मनन से मानानुशय का नाश	२९९
१२. अपगत सुक्त	ममत्व के त्याग से मुक्ति	३००

सातवाँ परिच्छेद

१८. लक्षण संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

१. अद्विपेसि सुक्त	अस्थि-कंकाल, गौहत्या का दुष्परिणाम	३०१
२. गोघातक सुक्त	मांसपेसी, गौहत्या का दुष्परिणाम	३०२
३. पिण्डलाकुणी सुक्त	पिण्ड और चिद्दिमार	३०२
४. निच्छयोरविभ सुक्त	'खाल उत्तरा और भेदों का कसाई	३०२
५. असिसूकरिक सुक्त	तलवार और सूअर का कसाई	३०२
६. सत्तिमागवी सुक्त	दर्छी-जैसा लोम और बहेलिया	३०२
७. उमुकारणिक सुक्त	वाण-जैसा लोम और अन्धायी हाकिम	३०२
८. सूचि सारथी सुक्त	सुई-जैसा लोम और सारथी	३०३
९. सूचक सुक्त	सुई-जैसा लोम और सूचक	३०३
१०. गामहृटरु सुक्त	दुष्ट गाँव का पञ्च	३०३

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

१. कूपमिसुग सुक्त	परकी-गमन करनेवाला कूयें में गिरा	३०४
२. गूधस्वावी सुक्त	गूध खाने वाला दुष्ट ब्राह्मण	३०४
३. निच्छपित्थी सुक्त	खाल उत्तारी हुई छिनाल खी	३०४
४. मगळिरथी सुक्त	रमल फेंकने वाली मगुली खी	३०४
५. शोकिलिनी सुक्त	सूखी—सौत पर अगार फेंकनेवाली	३०४
६. सीसछिन्न सुक्त	सिर कटा हुआ टाकू	३०५
७. भिक्षु सुक्त	भिक्षु	३०५
८. भिक्षुनी सुक्त	भिक्षुणी	३०५
९. सिधयमाणा सुक्त	शिक्षयमाणा	३०५
१०. सामणेर सुक्त	श्रामणेर	३०५
११. सामणेरी सुक्त	श्रामणेरी	३०५

आठवाँ परिच्छेद

१९ औपम्य संयुक्त

१	दूर सुप्त	समी अकुसल अविद्यामूकक ई	१ ६
२	नक्षत्रिण सुप्त	प्रमाद य करमा	१ ६
३	कुल सुप्त	मैत्री-भाषणा	१ ६
४	बोव्या सुप्त	मैत्री-भाषणा	१ ७
५	सचि सुप्त	मैत्री भाषणा	१०७
६	धनुम्याह सुप्त	अप्रमाद के साथ बिहरमा	१ ७
७	भाषी सुप्त	गम्भीर धर्मों में मग कथाया मविष्य कथन	१ ८
८	कठिनार सुप्त	ककड़ी के बने लकट पर सोबा	१ ८
९	नाग सुप्त	काकच-रहित भोजन करना	१ ९
१०	बिहार सुप्त	संभम के साथ मिश्राहन करना	१ ९
११	पद्म सिगाळ सुप्त	अप्रमाद के साथ बिहरमा	११
१२	हुतिष सिगाळ सुप्त	कृतय होना	११

अथाँ परिच्छेद

२० भिक्षु संयुक्त

१	कोकिल सुप्त	आर्म मौन-भाव	१११
२	अपतिष्ठ सुप्त	सारिपुत्र को लोक नहीं	१११
३.	धट सुप्त	अप्रमादकों की परस्पर स्तुति आरुच-कीर्त	१११
४	नव सुप्त	सिचिकता से निर्वाण की प्राप्ति नहीं	११३
५.	सुखाण सुप्त	कुब द्वारा सुजात की प्रशंसा	११३
६	भरिण सुप्त	शरीर से नहीं ज्ञान से तथा	११४
७	विसाळ सुप्त	धर्म का उपवेश कर	११४
८	मन्द सुप्त	मन्त्र की उपवेश	११५
९	तिष्ठ सुप्त	नहीं सिचिकता उत्तम	११५
१०	भेरवाम सुप्त	जबैका रहने बाका कौन ?	११६
११	कपिन सुप्त	आनुष्मान् कपिन के गुणों की प्रशंसा	११६
१२	सहाव सुप्त	दो अदिमान भिक्षु	११७

तीसरा खण्ड

स्कन्ध वर्ग

पहला परिच्छेद

२१. स्कन्ध संयुक्त

मूल पण्णासक

पहला भाग

१. नकुलपिता सुत्त
२. देवदह सुत्त
३. पठम ह्वाल्लिकानि सुत्त
४. दुतिय ह्वाल्लिकानि सुत्त
५. समाधि सुत्त
६. पटिसस्लान सुत्त
७. पठम उपादान परितस्सना सुत्त
८. दुतिय उपादान परितस्सना सुत्त
९. पठम अतीतानागत सुत्त
१०. दुतिय अतीतानागत सुत्त
११. ततिय अतीतानागत सुत्त

नकुलपिता वर्ग

- | | |
|---------------------------------|-----|
| चित्त का आशुर न होना | ३२१ |
| गुरु की शिक्षा, छन्द-राग का दमन | ३२२ |
| मागन्दिम-प्रश्न की व्याख्या | ३२४ |
| शक्र-प्रश्न की व्याख्या | ३२६ |
| समाधि का अभ्यास | ३२६ |
| ध्यान का अभ्यास | ३२७ |
| उपादान और परितस्सना | ३२७ |
| उपादान और परितस्सना | ३२८ |
| भूत और भविष्यत् | ३२८ |
| भूत और भविष्यत् | ३२९ |
| भूत और भविष्यत् | ३२९ |

दूसरा भाग

१. अनित्य सुत्त
२. दुक्ख सुत्त
३. अनात्म सुत्त
४. पठम यदनित्य सुत्त
५. दुतिय यदनित्य सुत्त
६. ततिय यदनित्य सुत्त
७. पठम हेतु सुत्त
८. दुतिय हेतु सुत्त
९. ततिय हेतु सुत्त
१०. आनन्द सुत्त

अनित्य वर्ग

- | | |
|-------------------|-----|
| अनित्यता | ३३० |
| दु ख | ३३० |
| अनात्म | ३३० |
| अनित्यता के गुण | ३३० |
| दु ख के गुण | ३३१ |
| अनात्म के गुण | ३३१ |
| हेतु भी अनित्य है | ३३१ |
| हेतु भी दु ख है | ३३१ |
| हेतु भी अनात्म है | ३३१ |
| निरोध किसका ? | ३३२ |

तीसरा भाग

१. भार सुत्त
२. परिष्णा सुत्त
३. अभिजान सुत्त
४. छन्दराग सुत्त

भार वर्ग

- | | |
|------------------------------------|-----|
| भार को उतार फेंकना | ३३३ |
| परिष्ण और परिष्णा की व्याख्या | ३३३ |
| रूप को समझे बिना दु ख का क्षय नहीं | ३३४ |
| छन्दराग का त्याग | ३३४ |

५. पद्म अस्ताद् गुरु	रुपादि का अस्ताद्	३३४
६. द्वितीय अस्ताद् गुरु	आस्ताद् की खोज	३३५
७. तृतीय अस्ताद् गुरु	आस्ताद् से ही आसक्ति	३३५
८. अग्निमन्त्र गुरु	अग्निमन्त्र से गुरुत्व की उत्पत्ति	३३५
९. उपाद् गुरु	रूप की उत्पत्ति गुरुत्व का अस्ताद् द्वै	३३६
१. अथगुरु गुरु	गुरुत्व का मूल	३३६
११. परमं गुरु	अथमं गुरुता	३३६

बौध्दा भाग

१. पद्म व तुम्हाक गुरु
२. द्वितीय न तुम्हाक गुरु
३. पद्म मिश्रण गुरु
४. द्वितीय मिश्रण गुरु
५. पद्म आत्मन् गुरु
६. द्वितीय आत्मन् गुरु
७. पद्म अनुबन्ध गुरु
८. द्वितीय अनुबन्ध गुरु
९. तृतीय अनुबन्ध गुरु
१. अत्यन्त अनुबन्ध गुरु

पौष्य भाग

६. अक्षरीय गुरु
२. पद्विपदा गुरु
३. पद्म अक्षर्यता गुरु
४. द्वितीय अक्षर्यता गुरु
५. समनुपसर्गता गुरु
६. अक्षर्य गुरु
७. पद्म सौम्य गुरु
८. द्वितीय सौम्य गुरु
९. द्वितीय अक्षर्यता गुरु
१. द्वितीय अक्षर्यता गुरु

१. न तुम्हाक धर्म

की धर्मता नहीं उत्पन्न त्याग	३३७
की धर्मता नहीं उत्पन्न त्याग	३३७
अनुबन्ध के अनुसार समझना	३३७
अनुबन्ध के अनुसार मापना	३३८
किन्तु अस्ताद् अथ और विपरिभास ?	३३८
किन्तु अस्ताद् अथ और विपरिभास ?	३३९
विरक्त होकर विहरना	३३९
अवित्य समझना	३४
गुरुत्व समझना	३४
अध्यात्म समझना	३४

भारतमहोप धर्म

अथवा आधार अथ धर्मता	३४१
उत्पत्ति की उत्पत्ति और निरोध का मार्ग	३४१
अवित्यता	३४२
अवित्यता	३४२
आत्मा मानने से ही अस्मि की अवित्यता	३४२
पौष्य स्वभाव	३४३
पदाथी का ज्ञान	३४३
अमल और आद्यत्व कीध ?	३४४
आत्मन् का रूप कैसे ?	३४४
अथ का अथार्थ मूल	३४५

दूसरा परिच्छेद

पञ्चम पञ्चासक

पहला भाग

१. अथ गुरु
२. बीज गुरु
३. अथ गुरु
४. अथादाथ वरिष्ठ गुरु

१. अथ धर्म

अथासक विमुक्त द्वै	३४१
पौष्य प्रकृत के बीज	३४१
आत्मन् का अथ कैसे ?	३४४
अथादाथ स्वभावों की व्याख्या	३४८

५. सत्तद्दान सुक्त	पात स्वामी में कुशल ही उत्तरा पुरुष है	३४९
६. बुद्ध सुक्त	बुद्ध और प्रज्ञापिसुक्त भिक्षु में भेद	३५१
७. पञ्चवर्गिय सुक्त	धर्मिय, दुःख, अनात्म का उपदेश	३५१
८. महाकलि सुक्त	सर्वों की शुद्धि का हेतु, पूर्णकाश्यप का अष्टेष्टु-वाद	३५२
९. आदित्य सुक्त	रूपादि जल रक्षा है	३५३
१०. निरुक्तिपथ सुक्त	तीन निरुक्तिपथ सदा एक-सा रहते हैं	३५३

दूसरा भाग

अर्हत् वर्ग

१. उपादिय सुक्त	उपादान के स्वाम से मुक्ति	३५४
२. मञ्जमान सुक्त	मार से मुक्ति कैसे ?	३५४
३. अभिनन्दन सुक्त	अभिनन्दन करते हुए मार के ध्वषण में	३५५
४. अनिच्छ सुक्त	छन्द का त्याग	३५५
५. दुक्ल सुक्त	छन्द का त्याग	३५५
६. अनत्त सुक्त	छन्द का त्याग	३५५
७. अनत्तनेटय सुक्त	छन्द का त्याग	३५५
८. राजनीयसण्ठित सुक्त	छन्द का त्याग	३५५
९. राध सुक्त	अहंकार का नाश कैसे ?	३५६
१०. सुराध सुक्त	अहंकार से चित्त की विमुक्ति कैसे ?	३५६

तीसरा भाग

खज्जनीय वर्ग

१. अस्वाद सुक्त	आस्वाद का यथार्थ ज्ञान	३५७
२. पठम समुदय सुक्त	उत्पत्ति का ज्ञान	३५७
३. दुतिय समुदय सुक्त	उत्पत्ति का ज्ञान	३५७
४. पठम अरहन्त सुक्त	अर्हत् सर्वश्रेष्ठ	३५७
५. दुतिय अरहन्त सुक्त	अर्हत् सर्वश्रेष्ठ	३५८
६. पठम सीह सुक्त	बुद्ध का उपदेश सुन देवता भी भयभीत हो जाते हैं	३५८
७. दुतिय सीह सुक्त	देवता दूर ही से प्रणम्य करते हैं	३५९
८. पिण्डोल सुक्त	लोभी की मुर्दाही से तुलना	३६१
९. पारिलेख सुक्त	आश्रवों का क्षय कैसे ?	३६३
१०. पुणमा सुक्त	पञ्चस्कन्धों की व्याख्या	३६५

चौथा भाग

स्थविर वर्ग

१. धानन्द सुक्त	उपादान से अर्हभाव	३६७
२. तिस्स सुक्त	राग-रहित को शोक नहीं	३६७
३. धम्मक सुक्त	सत्य के बाद अर्हत् क्या होता है ?	३६९
४. अनुराध सुक्त	दुःख का निरोध	३७२
५. वक्कलि सुक्त	जो धर्म देखता है, वह बुद्ध को देखता है, वक्कलि द्वारा आत्म-दृष्ट्या	३७३
६. अस्सजि सुक्त	वेदनाओं के प्रति आसक्ति नहीं रहती	३७५
७. धोमक सुक्त	उदय-व्यय के समन से मुक्ति	३७७

४	कब सुच	बुद्ध का मध्यम मार्ग	१७९
९	पदम राहुक सुच	पञ्चस्कन्ध के ज्ञान से अहंकार से मुक्ति	१८०
१	दुतिय राहुक सुच	किछके ज्ञान से मुक्ति ?	१८०

पाँचवाँ भाग

		:	पुण्य दम	
१	नदी सुच		अमित्यता के ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं	१८१
२	पुण्य सुच		बुद्ध संसार से अनुपकृष्ट रहते हैं	१८१
३.	केल सुच		शरीर में छोड़ें सार नहीं	१८२
४	गोमय सुच		सभी संस्कार अतित्य हैं	१८३
५	बखसिका सुच		सभी संस्कार अतित्य हैं	१८४
६	सामुद्रक सुच		सभी संस्कार अतित्य हैं	१८५
७	पदम गरुडुज सुच		अविद्या में पड़े प्राणियों के बुद्ध का जन्म नहीं	१८५
८	दुतिय गरुडु सुच		विरह्यर आत्मचिन्तन करो	१८६
९	बाब सुच		भावना से व्याधियों का क्षय	१८६
१	सञ्जा सुच		अतित्य-संज्ञा की भावना	१८६

तीसरा परिच्छेद

चूळ पण्णासक

पहला भाग

		:	अन्त बग	
१	अन्त सुच		चार अन्त	१८९
२	दुक्ख सुच		चार भावेतन्त्र	१८९
३.	सकम्प सुच		सकम्प	१९०
४	परिज्जेव सुच		परिज्जेव धर्म	१९०
५.	पदम समज सुच		पाँच उपादान स्कन्ध	१९०
६	दुतिय समज सुच		पाँच उपादान स्कन्ध	१९०
७	छोटापन्न सुच		छोटापन्न की परमज्ञान की प्राप्ति	१९०
८	बरादा सुच		धर्म्म	१९१
९	पदम उम्बरय सुच		उम्बरय का त्याग	१९१
१	दुतिय उम्बरय सुच		उम्बरय का त्याग	१९१

दूसरा भाग

		:	धर्मकथिक वर्ग	
१	पदम मिकलु सुच		अविद्या क्या है ?	१९२
२	दुतिय मिकलु सुच		विद्या क्या है ?	१९२
३.	पदम कथिक सुच		कोई धर्मकथिक कैसे होता ?	१९२
४	दुतिय कथिक सुच		कोई धर्मकथिक कैसे होता ?	१९३
५.	बन्धव सुच		बन्धव	१९३
६	पदम परिमुचित सुच		रूप के बर्णार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं	१९३
७	दुतिय परिमुचित सुच		रूप के बर्णार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं	१९३
८	सञ्जीव सुच		संयोग	१९४

९. उपादान सुक्त	उपादान	३९४
१०. सीक सुक्त	शीलवान् के मनन-योग्य धर्म	३९४
११. सुवषा सुक्त	श्रुतवान् के मनन-योग्य धर्म	३९५
१२. पठम कप्य सुक्त	अहंकार का त्याग	३९५
१३. द्वितिय कप्य सुक्त	अहंकार के त्याग से मुक्ति	३९५

तीसरा भाग

१. पठम समुदयधम्म सुक्त	अविद्या क्या है ?	३९६
२. द्वितिय समुदयधम्म सुक्त	अविद्या क्या है ?	३९६
३. ततिय समुदयधम्म सुक्त	विद्या क्या है ?	३९६
४. पठम अस्साद सुक्त	अविद्या क्या है ?	३९७
५. द्वितिय अस्साद सुक्त	विद्या क्या है ?	३९७
६. पठम समुदय सुक्त	अविद्या	३९७
७. द्वितिय समुदय सुक्त	विद्या	३९७
८. पठम कोदित सुक्त	अविद्या क्या है ?	३९७
९. द्वितिय कोदित सुक्त	विद्या	३९८
१०. ततिय कोदित सुक्त	विद्या और अविद्या	३९८

चौथा भाग

१. कुक्कुल सुक्त	रूप धधक रहा है	३९९
२. पठम अनिच्च सुक्त	अनित्य से हृष्टा हृष्टाभो	३९९
३-४. द्वितिय-ततिय-अनिच्च सुक्त	अनित्य से छन्दराग हृष्टाभो	३९९
५-७. पठम-द्वितिय-ततिय दुक्ख सुक्त	दुःख से राग हृष्टाभो	३९९
८-१०. पठम-द्वितिय-ततिय अनत्त सुक्त	अनारम से राग हृष्टाभो	४००
११. पठम कुलपुत्त सुक्त	वैराग्य-पूर्वक विहरना	४००
१२. द्वितिय कुलपुत्त सुक्त	अनित्य बुद्धि से विहरना	४००
१३. दुक्ख सुक्त	अनारम-बुद्धि से विहरना	४००

पाँचवाँ भाग

१. अज्झत्तिक सुक्त	अध्यात्मिक सुख-दुःख	४०१
२. एव मस सुक्त	'यह मेरा है' की समझ क्यों ?	४०१
३. एसो अत्ता सुक्त	'आत्मा लोक है' की मिथ्यादृष्टि क्यों ?	४०२
४. नो च ये तिया सुक्त	'न मैं होता' की मिथ्यादृष्टि क्यों ?	४०२
५. मिच्छा सुक्त	मिथ्या-दृष्टि क्यों उत्पन्न होती है ?	४०२
६. सक्काम सुक्त	सक्काम दृष्टि क्यों होती है ?	४०२
७. अन्तात्तु सुक्त	आत्म-दृष्टि क्यों होती है ?	४०३
८. पठम अभिनिवेस सुक्त	संयोजन क्यों होते हैं ?	४०३
९. द्वितिय अभिनिवेस सुक्त	संयोजन क्यों होते हैं ?	४०३
१०. आनन्द सुक्त	सनी सस्कार अनित्य और दुःख हैं	४०३

दूसरा परिच्छेद

२२ राध संयुक्त

पहला भाग

:

प्रथम धर्म

१ मार युक्त	मार क्या है ?	४०५
२ सत्य युक्त	भासक कैसे होता है ?	४०५
३ मन्त्रोक्ति युक्त	संसार की खोरी	४१
४ परिच्छेद युक्त	परिच्छेद परिज्ञा और परिज्ञाता	४१
५. पदम समन युक्त	उपादान-रत्नों के ज्ञाता ही समन-प्राप्त	४१
६ बुद्धि समन युक्त	उपादान रत्नों के ज्ञाता ही समन-प्राप्त	४३
७ सौतापन्न युक्त	सौतापन्न निश्चय ही ज्ञान प्राप्त करता	४३
८ अरहा युक्त	उपादान-रत्नों के बंधाई ज्ञानसे अर्हत्पत्ती प्राप्ति	४३
९ पदम छन्दराग युक्त	रूप के छन्दराग का त्याग	४३
१० बुद्धि छन्दराग युक्त	रूप के छन्दराग का त्याग	४०८

दूसरा भाग

:

द्वितीय धर्म

१ मार युक्त	मार क्या है ?	४१
२ मारधम्म युक्त	मार धर्म क्या है ?	४१
३. पदम अविचर युक्त	अमित्य क्या है ?	४१
४ बुद्धि अविचर युक्त	अमित्य धर्म क्या है ?	४१
५-६ पदम-बुद्धि वृत्त युक्त	रूप वृत्त है	४१
७-८ पदम-बुद्धि अरहण युक्त	रूप अरहण है	४१
९ अरहण युक्त	अरहण क्या है ?	४२
१० अरहण युक्त	प्यधर्म क्या है ?	४१
११ समुत्पन्न युक्त	समुत्पन्न धर्म क्या है ?	४१
१२. विरोधधम्म युक्त	विरोध धर्म क्या है ?	४१

तीसरा भाग

:

आपावन धर्म

१ मार युक्त	मार के प्रति वृत्त का त्याग	४११
२. मारधम्म युक्त	मारधर्म के प्रति छन्दराग का त्याग	४११
३-४ पदम-बुद्धि अविचर युक्त	अमित्य और अमित्य धर्म	४११
५-६ पदम-बुद्धि वृत्त युक्त	वृत्त और वृत्त-धर्म	४११
७-८ पदम-बुद्धि अरहण युक्त	अरहण और अरहण-धर्म	४११
९-१० अरहण-अरहण युक्त	अरहण धर्म और प्यधर्म	४११
११ समुत्पन्न युक्त	समुत्पन्न धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग	४११
१२. विरोधधम्म युक्त	विरोध धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग	४११

चौथा भाग

:

उपनिषिद्ध धर्म

१ मार युक्त	मार से वृत्त हटाने	४११
-------------	--------------------	-----

२. मारधम्म सुत्त	मारधर्म से इच्छा इच्छाओं	४१३
३-४. पटम-दुत्तिय अनिच्च सुत्त	अनित्य और अनित्य-धर्म	४१३
५-६. पटम-दुत्तिय दुक्कय सुत्त	दुःख और दुःख धर्म	४१३
७-८. पटम-दुत्तिय धानता सुत्त	अज्ञान और अज्ञान-धर्म	४१३
९-११. एवपय-समुदय सुत्त	ज्ञान, ज्ञान और समुदय	४१३
१२. निरोधधम्म सुत्त	निरोध-धर्म से इच्छा इच्छाओं	४१४

तीसरा परिच्छेद

२३. दृष्टि संयुक्त

पहला भाग	स्रोतापत्ति वर्ग	
१. वात सुत्त	मिथ्या-दृष्टि का मूल	४१५
२. धत्त मम सुत्त	मिथ्या दृष्टि का मूल	४१६
३. सो अत्त सुत्त	मिथ्या-दृष्टि का मूल	४१६
४. नो च मे त्रिया सुत्त	मिथ्या-दृष्टि का मूल	४१६
५. नधि सुत्त	उच्छेदवाद	४१६
६. करोतो सुत्त	अक्रियवाद	४१७
७. हेतु सुत्त	हेतुवाद	४१७
८. मादिदु सुत्त	अकृततावाद	४१८
९. मरुत्तो छोकी सुत्त	दाशवतवाद	४१८
१०. अमत्ततो सुत्त	अशाश्वतवाद	४१९
११. अन्तवा सुत्त	अन्तवान्वाद	४१९
१२. अनन्तवा सुत्त	अनन्त-वाद	४१९
१३. त जीवं त सरीरं सुत्त	'जो जीव है वही शरीर है' की मिथ्यादृष्टि	४१९
१४. अन्न जीव अन्नं सरीरं सुत्त	जीव अन्य है और शरीर अन्य है	४१९
१५. होति तयागतो परम्मरणा सुत्त	मरने के बाद तथागत फिर होता है	४१९
१६. न होति तथागतो परम्मरणा सुत्त	मरने के बाद तथागत नहीं होता	४१९
१७. होति च न च होति तथागतो परम्मणा सुत्त	तथागत होता भी है, नहीं भी होता	४१९
१८. नेव होति न न होति सुत्त	तथागत न होता है, न नहीं होता	४१९

दूसरा भाग

द्वितीय गमन

१. वात सुत्त	मिथ्यादृष्टि का मूल	४२०
२-१८. सच्चं सुत्तन्वा सुब्बे आगता येव	...	४२०
१९. रूपी अत्ता होति सुत्त	'आत्मा रूपवान् होता है' की मिथ्यादृष्टि	४२०
२०. अरूपी अत्ता होति सुत्त	'अरूपवान् आत्मा है' की मिथ्यादृष्टि	४२०
२१. रूपी च अरूपी च अत्ता होति सुत्त	रूपवान् और अरूपवान् आत्मा	४२०
२२. नैवरूपी नारूपी अत्ता होति सुत्त	न रूपवान्, न अरूपवान्	४२१
२३. एकन्त सुखी अत्ता होति सुत्त	आत्मा एकान्त सुखी होता है	४२१
२४. एकन्त दुक्खी अत्ता होति सुत्त	आत्मा एकान्त दुःखी होता है	४२१

३५ सुख-दुःखकी भत्ता होति सुख	आत्मा सुख-दुःखी होता है	४२१
३६ अदुःखमसुखी भत्ता होति सुख	आत्मा सुख-दुःख से रहित होता है	४२१
तिसरा भाग		
१ बाव सुख	तृतीय गमन	
२-२५ सन्धे सुत्तन्ता पुढे आगता येव	मिथ्यादृष्टि का मूक	४२२
३६ अरोगो होति परम्परया सुख	'आत्मा अरोग होता है की मिथ्यादृष्टि	४२२
चौथा भाग		
१ बाव सुख	असुर्य गमन	
२-२६ सन्धे सुत्तन्ता पुढे आगता येव	मिथ्यादृष्टि का मूक	४२३
		४२३

चौथा परिच्छेद

२४ ओक्कन्त संयुक्त

१ अरु सुख	अधु अमित्य है	४२४
२ रूप सुख	रूप अमित्य है	४२४
३ विज्ञान सुख	अधु-विज्ञान अमित्य है	४२४
४ अस्त सुख	अधु-विज्ञान अमित्य है	४२४
५ वेदना सुख	वेदना अमित्य है	४२५
६ सन्ध सुख	रूप संज्ञा अमित्य है	४२५
७ चेतना सुख	चेतना अमित्य है	४२५
८ तन्हा सुख	तुष्य अमित्य है	४२५
९ पातु सुख	तुष्यी पातु अमित्य है	४२५
१० अन्ध सुख	पञ्चसदन्ध अमित्य है	४२५

पाँचवाँ परिच्छेद

२५ उत्पाद संयुक्त

१ अरु सुख	अधु-निरोध स दुःख-निरोध	४२६
२ रूप सुख	रूप-निरोध से दुःख-निरोध	४२६
३ विज्ञान सुख	अधु विज्ञान	४२६
४ अस्त सुख	रूप	४२६
५ वेदना सुख	वेदना	४२६
६ सन्ध सुख	संज्ञा	४२७
७ चेतना सुख	चेतना	४२७
८ तन्हा सुख	तुष्य	४२७
९ पातु सुख	पातु	४२७
१० अन्ध सुख	अन्ध	४२७

छात्राँ परिच्छेद

२६. क्लेश संयुक्त

१. चक्षु सुक्त	पशु का छन्दराग चित्त का उपक्लेश है	४२८
२. रूप सुक्त	रूप	४२८
३. विज्ञान सुक्त	विज्ञान	४२८
४. सम्फल्ग्य सुक्त	स्पर्शा	४२८
५. वेदना सुक्त	वेदना	४२८
६. सन्धा सुक्त	संज्ञा	४२८
७. सचेतना सुक्त	चेतना	४२८
८. तण्हा सुक्त	मृग्णा	४२९
९. धातु सुक्त	धातु	४२९
१०. सन्ध सुक्त	स्कन्ध	४२९

सातवाँ परिच्छेद

२७. सारिपुत्र संयुक्त

१. विवेक सुक्त	प्रथम ध्यान की अवस्था में	४३०
२. अभितक्क सुक्त	द्वितीय ध्यान की अवस्था में	४३०
३. पीत्ति सुक्त	तृतीय ध्यान की अवस्था में	४३१
४. उपेक्खा सुक्त	चतुर्थ ध्यान की अवस्था में	४३१
५. आकास सुक्त	आकाशानन्त्यायतन की अवस्था में	४३१
६. विज्ञान सुक्त	विज्ञानानन्त्यायतन की अवस्था में	४३१
७. आकिञ्चल्य सुक्त	आकिञ्चन्यायतन की अवस्था में	४३१
८. नेवसन्न सुक्त	नेवसन्नानासजायतन की अवस्था में	४३१
९. निरोध सुक्त	सञ्जावेदयितनिरोध की अवस्था में	४३२
१०. सूचिमुखी सुक्त	भिक्षु धर्मपूर्वक आहार ग्रहण करते हैं	४३२

आठवाँ परिच्छेद

२८. नाग-संयुक्त

१. सुद्धिक सुक्त	चार नाग-योनिर्वा	४३३
२. पणीतवर सुक्त	चार नाग-योनिर्वा	४३३
३. पठम उपोसथ सुक्त	कुछ नाग उपोसथ रखते हैं	४३३
८-६ द्वितिय-ततिय-चतुस्य उपोसथ सुक्त	कुछ नाग उपोसथ रखते हैं	४३३
७. पठम तस्स सुतं सुक्त	नाग योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३४
८-१० द्वितिय-ततिय-चतुस्य तस्स सुतं सुक्त	नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३४
११. पठम दासुपकार सुक्त	नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३४
१२-१४ द्वितिय-ततिय-चतुस्य दासुपकार सुक्त	नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३४

नयाँ परिच्छेद

२९ सुपर्ण-संयुक्त

१ सुदृक् सुक्त	चार सुपर्ण-योनिर्वा	४३५
२ हरण्डि सुक्त	हर के बाले हैं	४३५
३. पद्म हृषिकारी सुक्त	सुपर्ण-योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३५
४-६ कुठिष-उठिष-बहुष हृषिकारी सुक्त	सुपर्ण-योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३५
७ पद्म दानुपकार सुक्त	दान आदि देने से सुपर्ण-योनि में	४३६
८-१ कुठिष-उठिष-बहुष दानुपकार सुक्त	दान आदि देने से सुपर्ण-योनि में	४३६

दसवाँ परिच्छेद

३० गन्धर्वकाय संयुक्त

१ सुदृक् सुक्त	गन्धर्वकाय वंश कीज है ?	४३७
२ सुचरित सुक्त	गन्धर्व योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३७
३ पद्म दाता सुक्त	दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति	४३७
४-११ दाता सुक्त	दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति	४३८
१३ पद्म दानुपकार सुक्त	दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति	४३८
१४-२३ दानुपकार सुक्त	दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति	४३८

ग्यारहवाँ परिच्छेद

३१ बलाहक-संयुक्त

१ देववा सुक्त	बलाहक देव कीज है ?	४३९
२ सुचरित सुक्त	बलाहक-योनि में उत्पन्न होने का कारण	४३९
३. पद्म दानुपकार सुक्त	दान से बलाहक योनि में उत्पत्ति	४३९
४-७ दानुपकार सुक्त	दान से बलाहक-योनि में उत्पत्ति	४३९
८ शीत सुक्त	शीत होने का कारण	४३९
९ उष्ण सुक्त	गर्मी होने का कारण	४४
१ अग्नि सुक्त	लाहक होने का कारण	४४
११ वात सुक्त	वायु होने का कारण	४४
१२ बभ्रु सुक्त	बर्षा होने का कारण	४४

बारहवाँ परिच्छेद

३२ बत्सगोत्र-संयुक्त

१ अजान सुक्त	अज्ञान से बत्सगोत्र की उत्पत्ति	४४१
२-५. अजान सुक्त	अज्ञान से अजान-रक्षिणी की उत्पत्ति	४४१
६-१ अदस्य सुक्त	अदर्शन से अजान-रक्षिणी की उत्पत्ति	४४१
११-१५. अजान सुक्त	अज्ञान से अजान-रक्षिणी की उत्पत्ति	४४१

- १६-२० अननुयोध सुत्त
 २१-२५ शष्पटिवेध सुत्त
 २६-३० असत्लक्षण सुत्त
 ३१-३५ अनुपलक्षण सुत्त
 ३६-४० अपच्युपलक्षण सुत्त
 ४१-४५ असमपेक्षण सुत्त
 ४६-५० अपच्युपेक्षण सुत्त
 ५१. अपच्युपेक्षण सुत्त
 ५२-५५ अपच्युपेक्षण सुत्त

भली प्रकार न जानने में मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति
 अप्रतिवेध न होने से मिथ्या-दृष्टियाँ
 भली प्रकार विचार न करने में मिथ्या-दृष्टियाँ
 अनुपलक्षण से मिथ्या दृष्टियाँ
 अप्रशुपलक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ
 अप्रत्योप-प्रेक्षण में मिथ्या-दृष्टियाँ
 अप्रत्योप-प्रेक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ
 अप्रत्यक्ष कर्म में मिथ्या-दृष्टियाँ
 अप्रत्यक्ष कर्म से मिथ्या-दृष्टियाँ

तेरहवाँ परिच्छेद

३३. ध्यान-संयुक्त

- १ ममाधि समापत्ति सुत्त
 २. त्रित्तिसुत्त
 ३. बुद्धान सुत्त
 ४ कटिलत सुत्त
 ५ आरम्भण सुत्त
 ६. गोचर सुत्त
 ७ अभिनीहार सुत्त
 ८ सक्कच्च सुत्त
 ९. सातच्च सुत्त
 १० सप्पाय सुत्त
 ११. त्रित्तिसुत्त
 १२ बुद्धान सुत्त
 १३ कटिलत सुत्त
 १४. आरम्भण सुत्त
 १५ गोचर सुत्त
 १६ अभिनीहार सुत्त
 १७ सक्कच्च सुत्त
 १८. सातच्च सुत्त
 १९ सप्पाय सुत्त
 २०. त्रित्तिसुत्त
 २१-२७ पुब्बे भागत सुत्तन्ता येव
 २८-३४ बुद्धान सुत्त
 ३५-४० कटिलत सुत्त
 ४१-४५ आरम्भण सुत्त
 ४६-४९ गोचर सुत्त
 ५०-५२ अभिनीहार सुत्त
 ५३-५४ सक्कच्च सुत्त
 ५५ सातच्च सुत्त

ध्यायी चार हैं
 स्थिति कुशल ध्यायी श्रेष्ठ
 व्युत्थान कुशल ध्यायी उत्तम
 फटव कुशल ध्यायी श्रेष्ठ
 आलम्बन कुशल ध्यायी
 गोचर कुशल ध्यायी
 अभिनीहार-कुशल ध्यायी
 गौरव करनेवाला ध्यायी
 निरन्तर लगा रहनेवाला ध्यायी
 सप्रायकारी ध्यायी
 ध्यायी चार हैं
 स्थिति कुशल
 कल्प-कुशल
 आलम्बन कुशल
 गोचर-कुशल
 अभिनीहार-कुशल
 गौरव करने में कुशल
 निरन्तर लगा रहने वाला
 सप्रायकारी
 स्थिति-कुशल

ध्यायी चार हैं

खण्ड-सूची

	पृष्ठ
१. पहला खण्ड : सगाथा वर्ग	१-१९०
२. दूसरा खण्ड : निदान वर्ग	१९१-३१८
३. तीसरा खण्ड : खन्ध वर्ग	३१९-४४८

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्भुद्धस्स

संयुक्त-निकाय

पहला भाग

नल वर्ग

§ १. ओषत्तरण सुत्त (१ १ १)

तृष्णा की वाढ़ से पार जाना

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती मे अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे ।

तब, कोई देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो वह देवता भगवान् से बोला — भगवान् ! वाढ़ (= ओष) को भला, आपने कैसे पार किया ।^१

आबुस ! मैंने बिना रुकते और बिना कोशिश करते वाढ़ को पार किया ।^२

भगवान् ! तो कैसे आपने बिना रुकते और बिना कोशिश करते वाढ़ को पार किया ?

आबुस ! यदि कहीं रुकने लगता, तो डूब जाता, यदि कोशिश करने लगता, तो थक जाता । आबुस ! इसी तरह मैंने बिना रुकते और बिना कोशिश करते वाढ़ को पार किया ।

[देवता —]

अहो ! चिरकाल के वाढ़ देखता हूँ,
ब्राह्मण को, जिसने निर्वाण पा लिया है,
बिना रुकते और बिना कोशिश करते,
जिसने ससार की तृष्णा^३ को पार कर लिया है ॥

१ वाढ़ चार हैं—काम की वाढ़, भव की वाढ़, मिथ्या-दृष्टि की वाढ़ और अविद्या की वाढ़ । पाँच काम गुणों (=रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श) के प्रति तृष्णा का होना 'काम की वाढ़' है । रूप और अरूप (देवताओं) के प्रति तृष्णा का होना भव की वाढ़ है । जो वासठ (देखो—टीषनिकाय, ब्रह्मजालयत्त) मिथ्या धारणाएँ हैं, उन्हें 'दृष्टि की वाढ़' कहते हैं । चार आर्य सत्त्यों के ज्ञान का न होना 'अविद्या की वाढ़' है ।

२ बौद्धधर्म दो अन्तों का वर्जन कर मध्यम मार्ग के आचरण की शिक्षा देता है । कहीं रुक रहने से कामभोग और बहुत कोशिश करने से आत्मपीडन वाले तपश्चरण का निर्देश किया गया है । बुद्धने इन दोनों अन्तों को त्याग मध्यम मार्ग से बुद्धत्व का लाभ किया ।

३ विसत्तिकं—“रूपादि आलम्बनों में आलोक्य-विसक्त होने के कारण तृष्णा विसत्तिका कही जाती है ।” —अटकथा ।

उस देवता से यह कहा । शास्ता (=जुद्ध) ने स्वीकार किया ।

तब यह देवता शास्ता की स्वीकृति को जान भगवान् को अभिवादन और प्रवृत्तिना कर वहीं पर मन्तवर्षान हो गया ।

§ २ निमोक्ष सुक्त (१ १ २)

मोक्ष

भावस्ती मे ।

यह देवता भगवान् से बोला— भगवान् ! जीवों के निमोक्ष=प्रमोक्ष=विशेष का क्या आप करते हैं ?

बाबुस ! जीवों के निमोक्ष=प्रमोक्ष=विशेष को मैं आनता हूँ ।

भगवान् ! तो कैसे आप जीवों के निमोक्ष=प्रमोक्ष=विशेष को आनते हैं ?

गुणगुणक कर्मव्ययन के लक्ष हो जाने से

संज्ञा और विश्रान के भी मित्र आपसे

बदनाओं का जो निष्कृष्य तथा आनन्द हो जाना है ।

बाबुस ! मैं ऐसा आनता हूँ,

जीवों का निमोक्ष,

प्रमोक्ष और विशेष ॥

§ ३ उपनेय्य सुक्त (१ १ ३)

सांसारिक भोग का त्याग

यह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोली—

त्रिगुणी भीत रही है उन्न भीती है ;

जुगाप से बचने का कोई उपाय नहीं ।

धनु के इस भय को देखते हुये

मुझ देवतासे तुम्हों को करे ॥

[भगवान्—]

त्रिगुणी भीत रही है उन्न भीती है ;

जुगाप से बचने का कोई उपाय नहीं ।

धनु के इस भय का देखते हुये

शामिल चाहनेवाला सांसारिक भोग छोड़ दे ॥

§ ४ अप्पेन्ति सुक्त (१ १ ४)

सांसारिक भोग का त्याग

यह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोली—

बन्ध गुजर रहा है शान्ति भीत रही है ;

त्रिगुणी के जमाने एक कर एक निष्कृष्य रहे हैं ;

१ "तमी का भय निराण ही है । निराण को पाकर एक निमु छ, प्रमु छ, विक्रिण हो जते है । एतन्वि यतो निमोक्ष प्रमोक्ष और विशेक एक ही चीज है ।" — बाइबिया ।

मृत्यु के हम भय को डेपते हुये ।
सुख देनेवाले पुण्यों को करे ॥

[भगवान्—]

बक सुन्न रह्य ई, रतें घीत रही हे,
जिन्गी के समाने एक पर एक भिन्न रह्य हे ।
मृत्यु के हम भय को डेपते हुये,
शान्ति चाहनेवाला सामारिक भोग छोड़ दे ।

§ ५. कतिच्छिन्द सुत्त (१. १. ५)

पाँच को काटे

• यह वेवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

कितने को काटे, कितने को छोड़े ?
कितने ओर अधिक का अभ्यास करे ?
कितने सगों को पार कर कोई भिक्षु,
“वाद पार कर गया” कहा जाता है ?

[भगवान्—]

पाँच को काटे, पाँच को छोड़ दे,
पाँच ओर अधिक का अभ्यास करे,
पाँच सगों को पार कर भिक्षु,
“वाद पार कर गया” कहा जाता है ॥

§ ६. जागर सुत्त (१. १. ६)

पाँच से वृद्धि

यह वेवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

जाने हुआ में कितने सोये हे ?
सोये हुआ में कितने जाने हे ?
कितने से मैल लग जाता हे ?
कितने से परिशुद्ध हो जाता हे ?

[भगवान्—]

जाने हुआ में पाँच सोये हे,
सोये हुआ में पाँच जाने हे,

१ “पाँच अवर-भागीय बन्धन (संयोजन) को काटे, पाँच उर्ध्व-भागीय बन्धन छोड़े, यहाँ काटने और जोड़ने का एक ही अर्थ है..।

“अद्धा आदि पाँच इन्द्रियों का अभ्यास करे ! पाँच सग ये हैं—राग, द्वेष, मोह, मान, दृष्टि ।” —अहकथा ।

पाँच से मूक झग जाता है
पाँच से परिमुद हो जाता है ॥

§ ७ अप्पदिविदिस सुत्त (१ १ ७)

सर्वस्य पुत्र

बह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

जिनमे धर्मों को (=कार्य मरक) नहीं ज्ञाना
जा जैसे तैसे के मत में पड़कर बहक गये हैं ।
सोये हुए वे नहीं जगते हैं,
उनके जागने का जब समय आ गया ॥

[भगवान्—]

जिनमे धर्मों को पूरा पूरा ज्ञान किया
जा जैसे तैसे के मत में पड़कर नहीं बहक गये ।
वे सम्मुद हैं सब कुछ जानते हैं
विषम ज्ञान में भी उनका आचरण सम रहता है ॥

§ ८ सुसम्मुद सुत्त (१ १ ८)

सम्मुद पुत्र

बह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

जो धर्मों के विषय में विपुल मूढ़ हैं
जैसे तैसे के मत में पड़कर बहक गये हैं ।
सोये हुए वे नहीं जगते
उनके जागने का जब समय आ गया ॥

[भगवान्—]

जो धर्मों के विषय में मूढ़ नहीं हैं
जैसे तैसे के मत में पड़कर नहीं बहक गये ॥
वे सम्मुद हैं सब कुछ जानते हैं
विषम ज्ञान में भी उनका आचरण सम रहता है ।

§ ९ नमानकाम सुत्त (१ १ ९)

मृत्यु का राज्य से पार

बह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

जन्ममाल काटनेवाला अपना समय नहीं कर सकता

१ भद्रा भादि पाँच इन्द्रियों के जाग रहत पाँच जीवरण गोये रहते हैं इसी तरह पाँच जीवजनों के सोये रहते पाव इन्द्रका जन्मा रहती है पाव जीवजनों (=कामधन्व, ध्याहार शयानमृद, अज्ञान कीदृश (विचित्रता) व मृत्यु का जन्मा है । पाँच इन्द्रियों (=भद्रा, बीर्ष, प्रजा, मृति लसधि) में परिमुद हो जाता है । —अदृश्यता ।

बिना समाधिस्थ हुए चार मार्गों का ज्ञान भी नहीं हो सकता,
जंगल में अकेला प्रमाद के साथ विहार करते हुये,
मृत्यु के राज्य को पार नहीं कर सकता ॥

[भगवान्—]

मान को छोड़, अच्छी तरह समाधिस्थ,
प्रसन्न चित्त बाल्य, सर्वथा विमुक्त हो,
जंगल में अकेला सावधान हो विहार करते हुये,
मृत्यु के राज्य को पार कर जाता है ॥

§ १०. अरञ्ज सुत्त (१ १. १०)

चेहरा खिला रहता है

“वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

जंगल में विहार करने वाले, शान्त, ब्रह्मचारी,
तथा एक धार ही भोजन करनेवालों का चेहरा कैसे खिला रहता है ?

[भगवान्—]

बीते हुए का वे शोक नहीं करते,
आनेवाले पर बड़े मनसूचे नहीं बाँधते,
जो मौजूद है उसी से गुजारा करते हैं,
इसी से उनका चेहरा खिला रहता है ॥
आने वाले पर बड़े मनसूचे बाँध,
बीते हुए का शोक करते रह,
सूखे लोग फीके पड़े रहते हैं,
हरा नरकट जैसे कट जाने पर ॥

नल वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

नन्दन वर्ग

§ १ नन्दन सुप्त (१ ० १)

नन्दन-धन

पूसा ईने सुता—एक समय भगवान् धावल्ली में अनाथपिण्डिक के जेतथन काराम में बिहार करते थे। बहूँ भगवान् ने मिथुओं को जातगिरित क्रिया— “मिथुओ! “मन्त! कइकर उन मिथुओं ने भगवान् को उचर दिया।

भगवान् बोळ :—

मिथुओ! बहुत पहक प्रयत्निडा लौक का कोई देवता नन्दन-धन में अप्तराओं से हिक मिन्कर दिव्य पाँच कामगुणों का योग बिल्यास करते हुये उस समय बह गाथा बोस्य :—

वे सुप्त नहीं जाव सफले ईं जिनने मन्त को नहीं देण।

विष्ठा लौक क पछत्ती देवताओं के आवास को ॥

मिथुओ! उसक पमा कहने पर किन्ही दूम्रे देवता में उसकी बात में कगाकर बह गाथा कही—

सूर्य! तुम नहीं जानने

अमा आईल लोग पछते ईं।

समी संस्कार भलिष ईं

उपक होत और कष हो जात उनका स्वभाव ईं

पैदा होकर वे गुनर जाते ईं

उनका विष्णुन साम्न हो जात ही परम-पद ईं ॥

§ २ नन्दति सुप्त (१ ० २)

चिन्ता-रहित

बह देवता भगवान् के मन्तुन बह गाथा बोसा :—

पुत्रोंबाला पुत्रों से जातगु करता ईं

ईने ही गात्रोंबाला गीत्रों से क.कन्द करता ईं

सांसारिक कामुओं से ही मनुष्य को काराम होता ईं

जिन कोई कामु नहीं उन्ने जातगु भी नहीं ॥

[भगवान्—]

पुत्रोंबाला पुत्रों की चिन्ता में रहत ईं

ईने ही गीत्रोंबाला गीत्रोंकी चिन्ता में रहत ईं

सांसारिक वस्तुओं से ही मनुष्य को चिन्ता होती है,
जिसे कोई वस्तु नहीं उन्ने चिन्ता भी नहीं।

§ ३. नत्थि पुत्तसम सुत्त (१. २. ३)

अपने पैसा कोई प्यारा नहीं

...वह देवता भगवान् के सम्मुख बट गाया बोला —

पुत्र के पैसा कुछ प्यारा नहीं,
गौदा के पैसा कुछ धन नहीं,
सूर्य के पैसा कोई प्रकारा नहीं,
समुद्र सबने महान् जलराशि है ॥

[भगवान्—]

अपने के पैसा कुछ प्यारा नहीं,
धान्य के पैसा कुछ धन नहीं,
प्रज्ञा के पैसा कोई प्रकारा नहीं,
भूटि सबने महान् जलराशि है ॥

§ ४. स्वत्थिय सुत्त (१. २. ४)

बुद्ध श्रेष्ठ है

मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं,
चापायों में पल्लिवर्द,
भार्याओं में कुमारी श्रेष्ठ हैं,
और, पुत्रों में वह जो जेठा है ॥

[भगवान्—]

सम्बुद्ध मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं,
अच्छी तरह मिराया गया जानवर चापायों में,
सेवा करने वाली भार्याओं में श्रेष्ठ हैं,
और, पुत्रों में वह जो कहना सार्थ है ॥

§ ५. सन्तिकाय सुत्त (१. २. ५)

शान्ति से ध्यानस्थ

दुपहरिया के समय,
पक्षियों के (छिप कर) बैठ रहने पर,
सारा जगल शीब-शीब करता है,
उससे मुझे क्या डर लगता है ॥

[भगवान्—]

दुपहरिया के समय,
पक्षियों के बैठ रहने पर,

सारा बरगल झॉब-झॉब करता है,
उससे मुझे बड़ा आनन्द आता है ॥

§ ६ निहातन्दी सुत्त (१ २ ६)

निद्रा और तन्द्रा का रयाग

निद्रा तन्द्रा बँसाई लेना
जो नहीं लगता मोहन के बाद नशा सा भा जाता,
इससे ससार के बीबा को
आर्य-मार्ग का साक्षात्कार नहीं होता ॥

[मगधाम्—]

निद्रा तन्द्रा बँसाई लेना
जो नहीं लगता मोहन के बाद नशा सा भा जाता,
उत्साह-एर्षक इन्हें दबा देने से
आर्य-मार्ग झूठ हो जाता है ॥

§ ७ कुम्भ सुत्त (१ २ ७)

कपुभा के समान रक्षा

करना कठिन है सहना भी बड़ा कठिन है
जो मूर्ख है उससे भयम्-भाव का पाठना भी,
यहाँ आबायें बहुत हैं
जहाँ मूर्ख लोग हार खाते हैं ॥

[मगधाम्—]

कितने दिनों तक भयम्-भाव को पाकर
यदि अपने बित्त की बस्त में नहीं का बरकत,
पद-पद में किमत्त आयागा
इच्छामा के अर्थात् इहनेवाम्ता ॥
कपुभा केम बँगों को अपनी रीतिरिी में
बिने ही विभु अपने में ही मन के बित्तकी को समेटे,
अनन्तर किमी को कष्ट न देत हुए
शाल्य हा गया किमी को भी निन्दा नहीं करता है ॥

§ ८ हिरि सुत्त (१ २ ८)

पाप का मजाला

संसार में बहुत कम ऐसे पुरुष हैं
जो पाप कार्य करने में प्रयत्न हैं,
वे निन्दा में बिने ही भीक रहने हैं
अने निन्दाका बुला घोड़ा कापुष म ॥

[भगवान्—]

थोड़े में भी पाप करने में जो लज्जते हैं,
 यदा स्मृतिसमत् होकर चित्रण करते हैं,
 वे दुःखों का अन्त पाकर,
 विषम स्थान में भी तम आचरण करते हैं ॥

§ ९. कुटिसुत्त (१. २. ९)

शोपड़ी का भी त्याग

क्या आपको कोई शोपड़ी नहीं ?
 क्या आपको कोई घोंसला नहीं ?
 क्या आपको कोई बाल-ग्रच्छे (=सन्तान) नहीं ?,
 क्या वन्दन से नष्टे हुए हैं ?

[भगवान्—]

नहीं, मुझे कोई शोपड़ी नहीं,
 नहीं, मुझे कोई घोंसला नहीं,
 नहीं, मुझे कोई बाल-ग्रच्छे (=सन्तान) नहीं,
 हाँ, मैं वन्दन से नष्टे हुआ हूँ ॥

[देवता—]

आपकी शोपड़ी में किसे कहता हूँ ?
 आपका घोंसला में किसे कहता हूँ ?
 आपकी सन्तान में किसे कहता हूँ ?
 आपका वन्दन में किसे कहता हूँ ?

[भगवान्—]

माता को मान कर तुम शोपड़ी कहते हो,
 भार्या को मान कर तुम घोंसला कहते हो,
 पुत्रों को मानकर तुम सन्तान कहते हो,
 वृष्णा को मानकर तुम वन्दन कहते हो ॥

[देवता—]

ठीक है, आपको कोई शोपड़ी नहीं,
 ठीक है, आपको कोई घोंसला नहीं,
 ठीक है, आपको कोई सन्तान नहीं,
 आप वन्दन से सचमुच मुक्त हैं ॥

§ १०. समिद्धि सुत्त (१. २. १०)

काल ब्रह्मात है, काम भोगों का त्याग

येया मैने सुता ।

एक समय भगवान् राजशुद्ध के तपोदाराम में विहार कर रहे थे ।

तब आयुष्मान् समुद्रि रात के भित्तसारे उठकर गाल घीने क लिये वहाँ तपोदा (जगन्-गुण्ड) दे वहाँ गये । तपोदा में गाल थो एक ही बोहर पहले हुए पाहर वधे गाल सुखा रहे थे ।

रात कोइ वषत रात शतने पर अर्धवी चमक से सारे तपोदा को धमकाते हुए वहाँ आयुष्मान् समुद्रि ये वहाँ अया । सादर, आनस में पड़ा हो यह गया घोसा :-

मिथु दिन भोग' जिये आप भिछाउन करते हैं
भोग करके आप भिछाउन नहीं करते हैं
मिथुजी भाग करके आप भिछाउन करें
फाल फा पेने ही मत गवावें ॥

[समुद्रि—]

काल को मैं नहीं जानता
काक तो भक्षण है इतना पता नहीं
दुमीने बिना भोग किए भिक्षा करता है,
मेरा समय नहीं तो रहा है ॥

तब उग देवकान दूधरी पर उतर का आयुष्मान् समुद्रि को पदा—मिथुजी ! आपने वही टंठी भरना में प्रयत्न ले ली है । आपकी ता अभी पुमादापरमा हो है । आपके बोग करते हैं । इस वदगी उध में अपने गणर क कर्मों का स्वद तक नहीं लिपा है । मिथुजी ! अपर अभी लोक के पग प्रयाग परें । सामने की बात को छाड़कर सुरत में होनेबली के पीठे मत पर्वें ।

मरी अयुज । मैं सामने की बात को छोड़कर सुरत में हानगली के पीठ नहीं चढ़ता हूँ । अयुज मैं तो उम्मे सुरत में हानेगली बात को छाड़ सामने की बात के नेर में लगा हूँ । भगवान् मे ना क्या है—सांसारिक काम भाग सुरत का बीज है; उनक केर में पहले से पदा सुरत उठना पड़ता है वही पदाभी हाती है; उनमें बदे रूप है । भर यह धर्म देगत ही देखने कए देनेगला है (अतीन्द्रिक) बिना किये देती क; जा कहे हग धर्म को अत्रमा गइला है; यह धर्म परम वद तक ले जनेगला है (अतीन्द्रिक) बिना लोम हग धर्म का अपने ही अप अयुजव करग है ।

मिथुजी ! भगवान् ने सांसारिक काम भोग को सुरत की बीज किये बत है है ? उनक केर में पहले से कने बदे सुरत उठना पड़ता है किये वही परेजनी हाती है ? उनमें कने बदे-वदे रूप है ? धर्म देगने ही गगल कने बत देग है ? धर्म कने परम-वद तक ल वता है ? बिना लोम धर्म को अपने ही अप बग अयुजव करग है ?

अयुज ! मैं अभी बरा हलना ही प्रक.रा दुख हूँ । हग धर्म विजय का मैं विरलर/वृक्ष नहीं बना गइला ; पर भगवान् कर्तव्य गणुद राजगुद के तपाइगाम में बिहर कर रह है । तो कने बग ककर हग बत को पूरें ; किये भगवान् भगवें बना हो गमों ।

मिथुजी ! हम ईशो के जिये भगवान् में भिन्ना अगत नहीं । हमने बदे-वदे गवापी देवता उ दे खे वदे हलन है । मिथुजी ! यदि अप ही भगवान् के बग ककर हग बत को पूरें तो अलवधा में कर्त राक सुरते के लिये क गवना हूँ ।

“अयुज बगुन अकाने बदे आयुष्मान् समुद्रि ने पग देवता को उतर लिपा, फिर वहाँ अयुज वषत क अमिब वषत वद भेद है गव ।

१. “अयुज बगुन अकाने बदे आयुष्मान् समुद्रि ने पग देवता को उतर लिपा, फिर वहाँ अयुज वषत क अमिब वषत वद भेद है गव ।
२. “अयुज बगुन अकाने बदे आयुष्मान् समुद्रि ने पग देवता को उतर लिपा, फिर वहाँ अयुज वषत क अमिब वषत वद भेद है गव ।

एक और वैंट आलुभ्मान् समृद्धि भगवान् से बोले :— भन्ते ! मैं रात के भिन्नसारे उठकर गात धोने के लिये जहाँ तपोदा है वहाँ गया । तपोदा में गात धो चुक ही खीवर पहने हुये घाघर खड़े-खड़े गात सुपा रहा था । भन्ते ! तत्र, कोई देवता रात घीतने पर अपनी चमक से सारे तपोदा की चमकाले हुये जहाँ में था वहाँ आया । आकर आकाश में खड़ा हो यह गाथा बोला :—

मिथु, धिना भोग किये आप भिक्षादन करते है,
भोग करके आप भिक्षादन नहीं करते ।
भिखुजी ! भोग करके आप भिक्षादन करें,
काल को ऐसे ही मत गवार्ने ॥

भन्ते ! उसके ऐसा कहने पर मैंने देवता को इस गाथा में उत्तर दिया .—

काल को मैं नहीं जानता,
काल तो अज्ञ त है, इसका पता नहीं,
इसीसे, धिना भोग किये भिक्षा करता हूँ,
मेरा समय नहीं खो रहा है ॥

भन्ते, तत्र उस देवता ने पृथ्वी पर उतर कर मुझे कहा—भिखुजी ! आपने दही छोटी अवस्था में प्रव्रज्या ले ली है । आपकी तो अभी कुमारवस्था ही है । आपके वेश अभी काले ह । इस चढ़ती उन्न में आपने सस्र के कामों का स्वाद तक नहीं लिया है । भिखुजी ! आप अभी लोक के ऐश-आराम करें । सामने की घात को छोड़कर मुदत में होनेवाली के पीछे मत दोड़ें ।

भन्ते ! उसके ऐसा कहने पर मैंने यह उत्तर दिया—नहीं आबुस ! मैं सामने की घात को छोड़ कर मुदत में होनेवाली के पीछे नहीं दौड़ता हूँ । आबुस ! मैं तो उल्टे मुदत में होनेवाली घात को छोड़ सामने की घात के फेर में लगा हूँ । भगवान् ने तो कहा है—सासारिक काम-भोग मुदत की चीज है, उनके पीछे पडने से बढ़ा हुआ उठाना पक्ता है, बड़ी परेशानी होती है, उनमें बड़े-बड़े ऐव हैं । और यह धर्म देखते ही देखते फल देनेवाला है, धिना किसी देरी के, जो चढ़े इस धर्म को अजमा सकता है, यह धर्म परम-पद तक ले जा नेवाला है, विज्ञ लोग इस धर्म को अपने आप ही अनुभव करते हैं ।

भन्ते ! मेरे ऐसा कहने पर उस देवता ने कहा [ऊपर के जैसा] तो अलवचा मैं धर्म-देहाना सुनने के लिए था सकता हूँ । भन्ते ! यदि उम् देवता ने सच कहा है तो वह अवश्य यहाँ कहीं परस में खड़ा होगा ।

इस पर उस देवता ने अयुभ्मान् समृद्धि को यह कहा, “हाँ भिखुजी, चूँ । मैं पहुँच गया हूँ ।” तत्र भगवान् ने उस देवता को गाथा में कहा—

सभी जीव कहे जानेवाले संज्ञा भर के हैं,
उनकी स्थिति कहे जाने भर में हैं,
इस घात की धिना समझे,
लोग मृत्यु के अधीन हो जाते हैं ।
जो कहे भर को समझता है,

१ अयुभ्मेय्य-सडेजिनो—पाँच स्कन्धों के आधार पर किसी जीव की ख्याति होती है । इन स्कन्धों के परे कोई तात्विक आत्मा नहीं है ।

मिलाओ 'मिलिन्द प्रश्न' की रथ की-उपमा । जैसे चक्र, अरा, धुरा इत्यादि अदयवों के आधार पर 'रथ' ऐसी सजा होती है, वैसे ही नाम, रूप, देहना, सज्ञा और संस्कार इन पाँच स्कन्धों को लेकर कोई जीव जाना जाता है । —अनात्मवाद का आदेश किया गया है ।

बह भावना की मिय्या-दृष्टि में नहीं पड़ता^१;
उम (क्षीयाभवा) निष्ठु को ऐसा कुछ रह नहीं जाता
किममं उस पर कोई श्रेय आरोपित किया जाय^२ ॥

पक्ष ! यदि ऐसे किसी (क्षीयाभवा) को जानते हो तो कहो ।

मन्ते ! भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का अर्थ में विस्तार पूर्वक नहीं समझता । यदि कृपा कर भगवान् इस संक्षेप से कहे गये का अर्थ विस्तारपूर्वक बतावें तो मैं समझ सकूँ ।

[भगवान्—]

किसी के बराबर हूँ, किसी से ऊँचा हूँ, बराबा नीचा हूँ,
जो ऐसा मन में जाता है वह उसके कारण झगड़ सकता है,
जो तीनों प्रकार से अपने चित्त को स्थिर रखता है
उम बराबर वा ऊँचा होने का श्याक नहीं करता ॥

पक्ष ! यदि ऐसे किसी को जानते हो तो कहो ।

मन्ते ! भगवान् के संक्षेप से कहे गये इसका भी अर्थ में विस्तारपूर्वक नहीं समझता । यदि कृपा कर भगवान् इस संक्षेप से कहे गये का अर्थ विस्तार पूर्वक बतावें तो मैं समझ सकूँ ।

[भगवान्—]

किसी राग श्रेय और माह को छोड़ दिया है
जो फिर माता के गर्भ में नहीं पड़ता^३
नाम रूप के प्रति होमैवासी स्वारी तुम्हा को कर जाता है
उस कड़े गौंठ वाले दुःख-मुक्त, तुष्ण-रहित को
छोड़ते रहने पर भी नहीं पते
दुःखता कोग वा अनुप्य इस लोक में या परलोक में
स्वर्ग में वा समी काकों में ॥

पक्ष ! यदि पमे किसी को जानते हो तो कहो ।

मन्ते ! भगवान् के संक्षेप से कहे गये इसका विस्तारार्थ में जो कहता हूँ—

पाप नहीं करे बचन से या मन से
या कुछ भी शरीर से सारे संसार में
स्युनिमान् धार संपश हो कामों को छोड़
बर्ष करनेवाले दुःखों को न बड़ाय ॥

मन्तेन सर्गं समाप्त

१. पौंख रहनीं ल पर कोरु भावना महा है; इन बात को जितने अच्छी तरह जान किया है। इन स्थानों के अनिरुध भवमम और दुःख स्वभाव का तामाकार कर जो उनके प्रति सर्वथा तुष्ण-रहित हो चुका है।

२. 'ऐसा कोरु कारण नहीं रहता किमं उम क्षीयाभवा महात्मा के विषय में बार बार कह लके कि पर राग में एक श्रेय से द्विज वा मोर से मुद है।' — अष्टाध्याय।

३. मार्ग भज्यमाना—निर्वाण के मार्ग में मत्तु-बुधि ही 'मात्र से लभनी वा लक्षणी है।—अष्टाध्याय।

तीसरा भाग

शक्ति (= भाशा) वर्ग

§ १. सत्ति सुत्त (१. ३. १)

सत्काय-दृष्टि का प्रहाण

श्रावस्ती में ।

“ वह देवता भगवान् के सम्मुख याग गाथा बोला —

भाला लेकर जैसे कोई चढ़ आया हो,
जैसे शिर के ऊपर भाग लग गई हो,
काम-राग के प्रहाण के लिये,
स्मृतिमान् होकर भिक्षु विचरण करें ॥

[भगवान्—]

भाला लेकर जैसे कोई चढ़ आया हो,
जैसे शिर के ऊपर भाग लग गई हो,
सत्काय-दृष्टि के प्रहाण के लिये
स्मृतिमान् होकर भिक्षु विचरण करें ॥

§ २. फुसती सुत्त (१ ३ २)

निर्दोष को दोष नहीं लगता

नहीं दूनेवाले को नहीं दूता है,
दूने वाले को दूता है,
इसलिये, दूनेवाले को दूता है॥
निर्दोष पर दोष लगानेवाले को ॥

[भगवान्—]

जो निर्दोष पर दोष लगता है,
जो शुद्ध पुरुष निष्पाप है उस पर ।
तो सारा पाप उसी मूर्ख पर पलट जाता है,
उलटी हवा में फँकी गई जैसे पतली धूल ॥

ॐ जिस (अर्हत) को किसी कर्म के प्रति आसक्ति नहीं है, उससे उस कर्म का विपाक (=फल) भी नहीं लगता । आसक्ति के साथ कर्म करनेवाले ससारी जीव को उसका विपाक लगता है ।

“कर्म को स्पर्श न करनेवाले को विपाक भी स्पर्श नहीं करता, जो कर्म को स्पर्श करता है उसे विपाक भी स्पर्श करता है ।” —व्यटकथा ।

§ ३ अटा सुप्त (१ ३ ३)

अटा कौन सुखसा सकता है ?

मीतर में ज्यस भगी है बाहर भी अटा ही अटा है।
सभी बीच अटा में वेतरह उकसी पड़े है;
इसलिये हे गीतम ! अटा से पूछता हूँ,
कौन इस अटा को सुखसा सकता है ?

[भगवान्—]

धीस पर प्रतिष्ठित हा प्रज्ञावान् ममुज्ज
चित्त और प्रज्ञा की साधना करते हूँ,
तपस्वी और विवेकशील मित्र
वही इस अटा को सुखसा सकता है ॥
जिनके रागद्वेष और भयिष्ठा
विस्तृत हूट चुकी हैं
वा क्षीणतप महान्त है
उनकी अटा सुखसा चुकी है ॥
वहाँ काम और क्रम
विस्तृत मिश्र हो अन्त है
प्रतिष्ठ और रूप-संज्ञा भी
वहाँ वह अटा फट जाती है ॥

§ ४ मनानिधारण सुप्त (१ ३ ४)

मन को टोकना

वहाँ वहाँ से मन को हटा देता है
वहाँ वहाँ से इस दुःख वहाँ होता;
को सभी जगह से मन को हटा देता है।
वह सभी जगह दुःख से हट जाता है ॥

● बुद्धधर्म का विस्मृत प्रत्य विस्तृत रूपों वाली प्रज्ञोत्तर को पूरी तरह समझता है ।

१ 'जाक वैकने बानी तुम्हा ही अटा कही गई है । वह रूपदि वाक्कम्पनीं में ज्यर नीचे बार बार उत्पन्न होने और गुण जाने के कारण बीच इत्यादि की सड़ की तरह मानी अटा कैसी हो । इली से अटा कही गयी है । वही यह रज्जाय-परिपन्न पर-परिपन्न स्वात्मभाव परममम-भाव आध्यात्मानतन ब्रह्मावतन इत्यादि में उत्पन्न होने से म तर की अटा और बाहर की अटा कही गई है ।'

२ 'प्रमाधि धर विवर्तना की मज्जना करवै ।

३ प्रतिष्ठ सजा से काम मन छिना गया है । रूप-संज्ञा से रूप-मम । इन दोनों के से छिने जाने से अरूप मन मो ध्यामि कर कैना चाहिये । —अटक्या ।

४ 'उत्त देवता को ऐसी मिष्ठा बरण हो गई थी कि अन्धे वा भुरे कोकिक या लोकोत्तर सभी चित्त का निवारण करना चाहिये, उन्हें जलज मही करना चाहिये । —अटक्या ।

[भगवान्—]

सभी जगह से उस मन को हटाना नहीं है,
जो मन अपने वश में आ गया है,
जहाँ जहाँ पाप है,
वहाँ वहाँ से मन को हटाना है^१ ॥

§ ५. अरहन्त सुत्त (१. ३ ५)

अर्हत्व

जो भिक्षु कृतकृत्य हो अर्हत्व हो गया है,
क्षीणाश्रव, जो अपने अन्तिम देह को धारण कर रहा है,
'मैं कहता हूँ' ऐसा भी वह कहता है,
'मुझे कहते हैं' ऐसा भी वह कहता है^२ ॥

[भगवान्—]

जो भिक्षु कृतकृत्य हो अर्हत्व हो गया है,
क्षीणाश्रव, जो अपने अन्तिम देह को धारण कर रहा है,
'मैं कहता हूँ' ऐसा भी वह कहता है,
'मुझे कहते हैं' ऐसा भी वह कहता है ॥
(किन्तु) वह पण्डित लोगों की बोलचाल के कारण ही,
केवल व्यवहार-मात्र के लिये ऐसा प्रयोग करता है^३ ॥

[देवता—]

जो भिक्षु कृतकृत्य हो अर्हत्व हो गया है,
क्षीणाश्रव, जो अपने अन्तिम देह को धारण कर रहा है,
वया वह अभिमान के कारण,
'मैं कहता हूँ' ऐसा और
'मुझे कहते हैं' ऐसा भी कहता है ?

१ 'देवता की मिथ्या धारणा को हटाने के लिए भगवान् ने शर गाथा कही। कुछ चित्त निवारण करने योग्य भी हैं, और कुछ चित्त अम्यास करने योग्य भी। 'दान दूँगा, शील की रक्षा करूँगा' इत्यादि रूप से जो चित्त सयत्न हो गया है, उसका निवारण नहीं किन्तु अम्यास करना चाहिए। जहाँ-जहाँ पापमय चित्त उत्पन्न होता है, वहाँ-वहाँ से उसे हटाना उचित है।'^१—अटकथा।

२ किसी अरण्य में निवास करने वाले एक देवता ने कुछ क्षीणाश्रव अर्हत् भिक्षुओं को जापस में 'मैं कहता हूँ, मुझे कहते हैं, मेरा पात्र, मेरा चीवर' आदि कहते सुना। यह सुनकर उसे शका हुई कि जब पंच स्कन्ध से परे कोई 'अत्मा या जीव' नहीं है तो ये अर्हत् 'मैं, मेरा' का व्यवहार क्यों करते हैं।

३ "लोक के समस्त कुसलो विद्विवा बोद्धारमत्तेन सो बोद्धरेय्याति"

जनसाधारण के व्यावहारिक प्रयोग के अनुसार ही वह 'मैं, मेरा' कहता है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उसकी दार्शनिक 'आत्म-दृष्टि' हो गई है। 'स्कन्ध' भोजन करते हैं, स्कन्ध बैठते हैं, स्कन्धों का पात्र है, स्कन्धों का चीवर है आदि। वहने से व्यवहार नहीं चल सकता। कोई समझोगा भी नहीं। इसीलिए ऐसा न कह लौकिक व्यवहार के अनुसार ही प्रयोग करता है।

[भगवान्—]

विलम्ब मात्र प्रहीन हो गया ह
 उन्हें कोई गौंठ नहीं
 उनके सारे मान और प्रशिक्षणों मद्य हो चुकी हैं,
 वह परिदृष्ट कृष्णा से ऊपर उठ जाता है;
 'मैं कहता हूँ ऐसा भी वह कहता है
 'मुझे कहते हैं' ऐसा भी वह कहता है
 (किन्तु) वह लोगों की बोलचाल के कारण ही
 केवल व्यवहार मात्र के लिये ऐसा प्रयोग करता ह ॥

§ ६ पञ्चोत्त सुच (१ ३ ६)

प्रघोत

संसार में कितन प्रघोत हैं
 जिससे काक प्रकाशमान होता है ?
 पृथ्वी के लिये भगवान् के पाम्य भाव्य
 हम उस किस जानें ?

[भगवान्—]

लोक में चार प्रघोत हैं
 पौषणों नहीं नहीं हैं
 दिव में सूरज तपता है
 रात में चौर शोभता ह
 भया दिव और रात दोनों समक
 जगह-जगह पर शोभती होती है;
 किन्तु सत्यतः सभी प्रकाशों में श्रेष्ठ है
 वह आत्मा धर्मीकिक होती है ॥

§ ७ सरासुच (१ ३ ७)

नाम रूप का निरोध

संसार की धारा नहीं पट्टुच कर आगे नहीं बढ़ती ?
 नहीं धीर नहीं चकर जायगा ?
 नहीं नाम धीर रूप धारों
 विष्णु ही विन्द हो जान है ?

[भगवान्—]

जहाँ तक इच्छी जगि और वाहु प्रतिष्ठित नहीं होत
 नहीं धारा तक जानें है

१ 'बुद्ध की आभा क्या दे ? मान, प्रतिष्ठित भडा या धमकना आदि का जो आभाक है, सभी
 बुद्ध के प्रादुर्भाव के कारण उत्पन्न होत वणा आलोक बुद्धाभा ही दे । —महाकथा ।

वही भँवर नहीं चकर काटना,
वही नाम और रूप दोनों,
त्रिज्जुल ही निरुद्ध हो जाते हैं ॥

§ ८. महद्भन मुत्त (१. ३ ८)

तृष्णा का त्याग

महापग वाले, महाभोग वाले,
देश के अधिपति राजा भी
एक दूसरे की सम्पत्ति पर लोभ करते हैं,
कामों से उनकी तृप्ति नहीं होती ॥
उनके भी लोक के प्रति उत्सुक बने रहने,
और संसार की धारा में बहते रहने पर,
भला कैसे कौन होंगे जिनने अनुत्सुक हो,
संसार की तृष्णा को छोड़ दिया हो ?

[भगवान्—]

घर को छोड़, प्रमदजित हो,
पुत्र, पशु और प्रिय को छोड़,
राग और द्वेष को भी छोड़,
अविद्या को सर्वथा हटा कर,
जो क्षीणाश्रव अर्हत् भिक्षु हैं,
वही लोक में अनुत्सुक हैं ॥

§ ९. चतुचक्र मुत्त (१. ३. ९)

यात्रा कैसे होगी

चार चक्रों वाला, नव ढरवाजों वाला,
अशुचिपूर्ण, लोभ से भरा है ।
हे महावीर ! (मार्ग) कीचड़ कीचड़ हो गया है,
कैसे यात्रा होगी ?

[भगवान्—]

धैरभावल और लोभ को छोड़,
दृच्छा, लोभ, और पापमय विचार को ।
तृष्णा को एकदम जड़ से खीद,
ऐसे यात्रा होगी ॥

‡: "चार चक्रों वाला" से अर्थ है चार हरियापथ (=खड़ा होना; बैठना, सोना और चलना) वाला ।"—अट्टकथा ।

* नदि = उपनाह । "पहले मोघ होता है, वही आगे बढ़कर धैरभाव (=उपनाह) हो जाता है ।"—अट्टकथा ।

§ १० एषिजह्म सुप्त (१ ३ १०)

दुःख से मुक्ति

एषि युग क समाप्त जाँप वाले कृता नीर
 जन्माहारी कोम-रहित
 सिद्ध के समाप्त जन्मैय बलने वाले विष्वाप
 कर्मों में अवेक्षा-साध जिसके सिद्ध गये हैं
 वेस जापके पास आकर पहुँचा हूँ—
 दुःख से छुटकारा कैसे हो सकता है ?

[भगवान्—]

संसार में पाँच काम-गुण हैं
 कर्मों मत कहा गया है।
 हममें उत्पन्न होने वाली इच्छाओं को हटा
 इसी प्रकार दुःख से छुटकारा होगा ॥

शाकि वर्ग समाप्त

चौथा भाग

सतुल्लपकायिक वर्ग

§ १. सन्निभुत्त (१. ४ १)

। सत्पुरुषों का साथ

ऐसा मैंने सुना । एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

तब, कुछ सतुल्लपकायिक देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये ।

एक ओर सटे हो, उनमें से एक देवता भगवान् को यह गाथा बोला.—

सत्पुरुषों के ही साथ बैठे,
सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले,
सत्पुरुषों के अच्छे धर्म जानने से,
कल्याण होता है, अहित नहीं ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

सत्पुरुषों के ही साथ बैठे,
सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले,
सन्तों के अच्छे धर्म जानने से ही,
प्रज्ञा प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
शोक से पड़ कर भी शोक नहीं करता ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला .—

सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
आन्ध्रों में सधसे अधिक तेज वाला होता है ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
जीवों की अच्छी गति होती है ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
सत्त्व बढ़े सुख से रहते हैं ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् से यह कहा— भगवान् ! इनमें किसका कहना सबसे ठीक है ?

एक-एक ढंग से सभी का कहना ठीक है; तो भी मेरी आर से सुनो :—

सत्युद्योगों के साथ बैठे
सत्युद्योगों के ही साथ मिल जुग
समर्थों के अच्छे धर्म बालने से
सभी दुःख से दूर रहता है ॥

भगवान् ने यह कहा। संतुष्ट हो मे देवता भगवान् का जमिबापन और प्रशिक्षणा कर वहीं जन्मभाव हो गए।

४२ पच्छरी सुंत्त (१ ४ २)

कंजूसी का त्याग

एक समय भगवान् ध्यावस्थी में ध्यानाध्यापिष्ठिक के जेतवम आराम में विहार करते थे।

तब कुछ सत्सङ्गपकायिक देवता रत्न बालने पर अपनी कमक से सारे जेतवम की कमकरीत रूप जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का जमिबापन कर एक और जन्मे हो गये।

एक और जन्मे हो जन्में से एक देवता भगवान् को यह गाथा बोध्या :—

मात्सर्य से और प्रमाद से
सन्तुष्य शब्द नहीं करता है,
पुण्य की भाङ्गीछा रखने वाले
आभी पुण्य को दान करना चाहिये ॥

तब दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोध्या:—

कंजूस जिसके घर से शब्द नहीं देता है
नहीं बुने स उसे यह सब कथा ही रहता है,
सूख और प्यास—जिससे कंजूस करता है
वह उस सुख को जन्म प्रमान्तर में कमा रहता है ॥
इसकिय कंजूसी करना छोड़
पाप इच्छाने वाला पुण्य-कर्म शब्द करे
परछोक में केवल अपना किया पुण्य ही
प्राप्तिमें का आचार होता है ॥

तब दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोध्या:—

मरे दुर्भों में मे नहीं मरते
को ग्राह जकते साधियों की तरह
बोधी स्त्री भी और को अपस में बॉट कर (जाते हैं)
बही समस्तक जर्म है ॥
बोधा रहने पर भी कितन दान देते हैं
बहुत रहने पर भी कितने दान नहीं देते,
भीषा रहने पर भी जो दान दिया जाता है
वह हजार दिने गये भी भी बराबरी करता है ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

कठिन से कठिन दान कर देने वाले,
 दुष्कर काम को भी कर डालने वाले का,
 मूर्ख लोग अनुकरण नहीं करते;
 मन्तों की बात भासान नहीं होती ॥
 इसीलिये, सन्तों की और मूर्खों की,
 अलग अलग गति होती है,
 मूर्ख नरक में पड़ते हैं,
 और सन्त स्वर्ग-गामी होते हैं ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् से पूछा, “भगवन् ! इनमें किसका कहना ठीक है ?”
 एक-एक ढंग से सभी का कहना ठीक है, तौ भी मेरी ओर से सुनो —

यह बड़ा धर्म कमाता है जो बहुत तंगी से रहते भी,
 खी को पोसते हुये अपने थोड़े ही से कुछ दान करता है,
 हजारों दाता के सैकड़ों और हजारों का दान
 - जैसे की कल्प भर भी बराबरी नहीं कर सकता ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् को गाथा में कहा—

क्यों उनका बड़ा महार्घ दान,
 उसके दान की बराबरी नहीं कर सकता ?
 हजारों दाता के सैकड़ों और हजारों का दान,
 जैसे की कल्प भर भी बराबरी क्यों नहीं कर सकता ?

तब, भगवान् ने उस देवता को गाथा में कहा —

मार, काट, दूसरोंको सता,
 तथा और अनुचित कर्म करनेवाले,
 जो दान करते हैं, उनका यह,
 सला और भारपीट कर दिया दान,
 शांति से दिये गए दान की बराबरी नहीं कर सकता ॥
 इसीलिये, हजारों दाता के सैकड़ों और हजारों का दान भी,
 जैसे दान की कल्प भर बराबरी नहीं कर सकता ॥

§ ३. साधु सुत्त (१.४.३)

दान देना उत्तम है

श्रावस्ती में ।

तब, कुछ स्तुत्यलपकायिक देवता रात बीतने पर । एक ओर खड़े हो, उनमें से एक देवता ने भगवान् के सम्मुख यह उद्दान के शब्द कहे —

भगवन् ! दान कर्म सचमुच में बड़ा उत्तम है ।
 कज्जी से और प्रमाद्य से,

मनुष्यों को ज्ञान नहीं दिया जाता,
पुण्य की जाकीरणा रखने वाले
ज्ञानी पुण्य को दान करना चाहिये ॥

तब, एक दूसरे देखता मैं भगवान् के सम्मुख यह उदाह क शब्द बहो—

भगवन् ! ज्ञान-कर्म बड़ा उत्तम है
धीरे स भी ज्ञान देना बड़ा उत्तम है
कितने धीरे रहने पर भी ज्ञान करते हैं,
बहुत रहने पर भी कितने नहीं मूठे
धीरे में से बिक्रम कर जो दान दिया जाता है
वह हजार के ज्ञान के परापर है ॥

तब एक दूसरे देखता मैं भगवान् के सम्मुख उदाह के यह शब्द बहो—

भगवन् ! ज्ञान-कर्म बड़ा उत्तम है
धीरे स भी दान देना बड़ा उत्तम है
अज्ञा स दिया गया ज्ञान भी बड़ा उत्तम है
धर्म से कमाये गये का दान भी बड़ा उत्तम है ॥
जो धर्मानुष्ठान कमाकर दान देता है
उत्साह-पूर्वक परिश्रम करके अर्जित कर
वह धर्म की वैतरणी को कौंच
दिग्ध स्वार्थों को प्राप्त होता है ॥

तब एक दूसरे देखता मैं भगवान् के सम्मुख उदाह के यह शब्द बहो—

भगवन् ! ज्ञान-कर्म बड़ा उत्तम है
धीरे से भी ज्ञान देना बड़ा उत्तम है
अज्ञा से दिया गया ज्ञान भी बड़ा उत्तम है
धर्म से कमाये गये का ज्ञान भी बड़ा उत्तम है
बीर, समझ बूझकर दिया गया ज्ञान भी बड़ा उत्तम है ॥
असमझ बूझ कर दिये गये ज्ञान की बुद्ध में प्रसंसा की है
संसार में जो दक्षिणा के पात्र हैं
अन्यो दिये गये ज्ञान का बड़ा फल होता है।
अपत्याक श्रेय में जैसे रोये गये बीज का ॥

तब एक दूसरे देखता मैं भगवान् के सम्मुख उदाह के यह शब्द बहो—

भगवन् ! ज्ञान-कर्म बड़ा उत्तम है
धीरे से भी ज्ञान देना बड़ा उत्तम है
अज्ञा से दिया गया ज्ञान भी बड़ा उत्तम है
धर्म से कमाये गये का ज्ञान भी बड़ा उत्तम है
असमझ-बूझ कर दिया गया ज्ञान भी बड़ा उत्तम है,
बीर, बीरों के प्रति संभव रखना भी बड़ा उत्तम है ॥
जो प्राणियों को बिरा कर देते हुये विचरता है,

मिन्दा से दरता है, और पाप-कर्म नहीं करता,
पाप के सामने जो दरपोक है, वही प्रशस्नीय है, यह सूर नहीं,
सन्त लोग दरते हैं और पाप नहीं करते ॥

तब, एक दूसरे देवता ने भगवान् से पूछा —

भगवान् ! इनमें भित्तिका क्वाना ठीक है ?
एक-एक ढंग से सभी का कटना ठीक है, तो भी मेरी ओर से सुनो .—
श्रद्धा से दिये गये दान की बड़ी उदाई है,
दान से भी बढ़ कर धर्म का जानना है,
पहले, बहुत पहले जमानों में, सन्त लोग,
प्रज्ञा से निर्वाण तन्त्र पा लेते थे ॥

§ ४. नसन्ति सुत्त (१ ४ ४)

काम नित्य नहीं

एक समय भगवान् ध्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

तब कुछ सतुल्लपक्रायिक देवता । एक ओर खड़े हो, उनमें से एक ने भगवान् के सम्मुख
यह गाय कही—

सुनुप्यों में काम नित्य नहीं है,
ससार में लुभाने वाली चीज़ें हैं जिनमें ब्रम जाते हैं
जिनमें पद कर मनुष्य भूल जाते हैं,
मृत्युके राज्य से छूट कर निर्वाण^१ नहीं पाते ॥
इच्छा बढ़ाने से पाप होते हैं,
इच्छा बढ़ाने से दुःख होते हैं,
इच्छा को दूथा देने से पाप दब जाता है,
पाप के दब जाने से दुःख भी दब जाता है ॥
ससार के सुन्दर पदार्थ ही काम नहीं हैं,
राग-युक्त मन हो जाना ही पुरुष का काम है,
ससार में सुन्दर पदार्थ वैसे ही पड़े रहते हैं,
किन्तु, पण्डित लोग उनमें इच्छा उत्पन्न नहीं करते ॥
क्रोध को छोड़ दे, मान को बिल्कुल हटा दे,
सारे पन्धनों को काटकर गिरा दे,
नाम-रूप के प्रति अनासक्त रहनेवाले,
व्यागी को दुःख नहीं लगते ॥
काकाओं को छोड़ दिये, मनसुखे नहीं बाँधे,
नाम और रूप के प्रति होनेवाली वृष्णा को काट दिये,
उस गॉट-कटे, निष्पाप और बिरुष्ण की,
खोजते रहने पर भी नहीं पाते,

१. अपुनरागामन=निर्वाण, जहाँ से फिर लौटना नहीं है ।

देवता धर मनुष्य छाक में वा परलोक में
स्वर्ग में वा सभी लोकों में ॥

भाग्यमान् मोघराज ने कहा—

यदि जैसे मुक्त पुरुष को नहीं देख पाय
देवता भीर मनुष्य छाक वा परलोक में,
परमार्थ ज्ञानमे बाके उस बरोत्तम का,
जो उन्हें बमस्कार करते हैं वे बन्ध हैं ॥

भगवान् ने कहा—

मोघराज ! वे मिथु बन्ध हैं
जो जैसे मुक्त पुरुष का बमस्कार करते हैं,
धर्म को कब संज्ञाव को मिटा
वे मिथु सभी बन्धनों के ऊपर उठ जात हैं ॥

४ ५ उच्चमानसञ्जी मुच (१ ४ ५)

तथागत बुधर्यों से परे हैं

एक समय भगवान् आधरती में अनाद्यपिण्डिक क जेतवन वाराम में विहार करते थे ।
तब कुछ उच्चमान-संज्ञी देवता रात बीतने पर अपनी बमक से सारे जेतवन को बमक बहो
भगवान् ने बहो ध्याय । आकर आकास में लहे हो गये । आकास में लहे हो एक देवता ने भगवान् को
गाथा में कहा—

कुछ ब्रह्म ही होत हुए अपने को
जो कुछ ब्रह्म ही बताता है
उस भूत तथा ठग का
जो कुछ भोग-काम है वह खोरी मे होना है ॥
जो सब में करे बही बोलै
जो बहो करे वह मत बोलै
जिन करतें हुने कइने बतकों की
पण्डित लोग जिन्य करतें हैं ॥

[भगवान्—]

यह केवल कहने भर से
या केवल मुन मर केने से
प्राप्त बहो कर किवा वा सकता है
जो वह भाग इतना कर्मर है,
जिम्मे शाही पुरख मुन ही जात है
पदाव लगाने वाले मात के बन्धन मे ॥
उने शाही पुरुष कर्मो नहीं करतें
संसार की शानि-विधि ज्ञान कर,

प्रज्ञा या पण्डित लोग सुक्त हो जाते हैं,
हम यहाँ तक अमरसागर को पार कर लेते हैं ॥

तब, उन देवताओं ने पृथ्वी पर उतर भगवान के चरणों में शिर में प्रणाम कर भगवान् को कहा —

भन्ते ! हम लोगों में भारी भूल हो गई । मूर्ख जन्में, मद जन्में, वेवज्जफ जन्में हो कर हम लोगों ने भगवान् को निम्नाना चाहा ।

भन्ते ! भगवान् हमारे अपराध को क्षमा करें, भविष्य में ऐसी भूल नहीं होगी ।

हमपर भगवान् ने मुक्करा दिया ।

तब, वे देवता बहुत ही चिढ़ कर आकाश में उठ खड़े हो गये । एक देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

अपना अपराध आप स्वीकार करने वालों को,

जो क्षमा नहीं कर देता है,

भीतर ही भीतर कोप रखने वाला, महाद्वेषी,

यह वैर को और भी बाँध लेता है ॥

यदि कोई भी जुराई नहीं हो,

यदि संग्रह में कोई भूल भी न करे,

और यदि वैर भी दान्त न हो जाय,

तो भला, कौन ज्ञानी बन सकता है ?

जुराई किसमें नहीं है ?

भला, किसमें भूल नहीं होती ?

कौन गफलत नहीं कर चेंदता ?

कान पण्डित मदा स्मृतिमान् रहता है ?

[भगवान्—]

जो तथ्यागत बुद्ध है,

सभी जीवों पर अनुकम्पा रखते है,

उनमें कोई जुराई नहीं रहती,

उनसे कोई भूल भी नहीं होने पाती,

वे कभी भी गफलत नहीं करते,

यही पण्डित सदा स्मृतिमान् रहते ॥

अपना अपराध आप स्वीकार करने वालों को,

जो क्षमा नहीं कर देता है,

भीतर ही भीतर कोप रखने वाला, महाद्वेषी,

उस वैर को और भी बाँध लेता है ॥

ऐसा कहने वाले के प्रति मैं वैर नहीं रखता,

तुम्हारे अपराध को मैं क्षमा कर देता हूँ ॥

§ ६. सद्धा सुत्त (१. ४. ६)

प्रमाद का त्याग

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे ।

तब कुछ मनुसुपकायिक देवता रात के विलम्ब पर अपनी कमर से सारे जेठघन को कमकाले हुए जहाँ भगवान् थे वहाँ भाप और मगवान् का अभिवादन कर एक ओर लड़े हो गये। एक ओर एक हाँ उनमें से एक देवता ने भगवान् को गाथा में कहा —

किस पुरुष को सदा भद्रा बनी रहती है
 भार को अग्रहा में कनी नहीं पड़ता
 उससे उसकी कीर्ति भार पड़ाइ जाती है
 तथा शरीर दुःखने के पाद सीधे स्वर्ग को जाता है ॥

तब दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

श्रेष्ठ दूर करे अनिमान को छोड़ दे,
 सारे बन्धनों को छोड़ जाये
 मास कीर रूप में वहीं पसिमे बास
 उम रागी के पास लुप्या नहीं जाती ॥

[भगवान्—]

प्रमाद में सगे रहत हैं मूर्ख दुर्बुद्धि लोग
 शानी पुरुष अग्रमात् की अष्ट धन के पत्नी रक्षा करता है ॥
 प्रमाद में मत बनो ध्यम-राग का साथ मत हो
 प्रमाद उदित हो भ्रान्त जगत् वाला परम सुख पाता है ॥

§ ७ समय सुच (१ ४ ७)

मिथु सम्मोचन

जमा मने सुता ।

एक समय भगवान् पौष की सन्ती जहाँ मिथुओं के एक बड़े संघ के साथ शाप्य (जलपद) में कपिलवस्तु के महाजन में विहार करत थे। भगवान् और मिथु-संघ के दर्शनार्थ वहाँ काठ के बहुत देपता आ इकडे हुए थे।

तब दुःखायास के चार देवताओं के मध्य में वह हुआ 'यह भगवान् पौष का सन्ती जहाँ मिथुओं के एक बड़े संघ के साथ शाप्य (जलपद) में कपिलवस्तु के महाजन में विहार करते हैं। भगवान् और मिथु-संघ के दर्शनार्थ वहाँ काठ के बहुत देवता आ इकडे हुए हैं। तो हम लोग भी यहाँ जहाँ भगवान् निराजते हैं चकरकर भगवान् के पास एक एक गाथा कहें।

तब वे देवता जैसे कोई बछवान् पुरप समरी पौह को पसार दे और पसारी पौह की समेद क पसि ही दुःखायास लोक में भन्नादान हाँ भगवान् के सामने प्रार हुये। तब वे देपता भगवान् को प्रणाम कर एक और शब्द हो गये।

एक आर पड़े हाँ एक देपता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

बन-गण्ड में पड़ी लसा छाई है
 देवता लोग अकर इकडे हुये हैं,
 हम धर्म-मात्रा में हम लोग भी जाव है
 अन्तराजित मिथुनप क दर्शनार्थ ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला.—

उन भिक्षुओं ने समाधि लगा ली,
अपने चित्त को पूरा एकाग्र कर दिया,
सारथी के जैसा लगान को पकड़,
वे ज्ञानी इन्द्रियों को वज्र में रखते हैं ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

(राग-द्वेष-मोह) के आवरण,
तथा दृढ़ बन्धन को नष्ट कर, वे स्थिर चित्तवाले,
शुद्ध और निर्मल (दुर्गति पर) चलते हैं,
एगियार, सिखाये गये तरुण नाग जैसे ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

जो पुरुष बुद्ध की प्रणमना में आ गये हैं,
वे दुर्गति में नहीं पड़ सकते,
मनुष्य जरीर छोड़ने के बाद,
देव-लोक में उत्पन्न होते हैं ॥

§ ८. सकलिक सुत्त (१. ४. ८)

भगवान् ने पैर में पीड़ा, देवताओं का आगमन

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के मद्दकुश्रि नामक मृगदाघ में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् का पैर एक पत्थर के टुकड़े से कुछ कट गया था । भगवान् को बड़ी वेदना हो रही थी—शरीर की वेदना दुःख, तीव्र, कठोर, परेशान कर देनेवाली । भगवान् स्थिरचित्त से स्मृतिमान् और सप्रज्ञ हो उसे सह रहे थे ।

तब भगवान् सघाटी को चौपैत कर लिजवा, दहिनी करबट सिंह-शय्या लगा, कुछ हयते हुए पैर पर पैर रख, स्मृतिमान् और सप्रज्ञ हो लेट गये ।

तब रात सौ स्तुल्लपकायिक देवता रात शीतने पर अपनी चमक से सारे मद्दकुक्षि को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये । एक ओर खड़ा हो, एक देवता ने भगवान् के पास उठान के यह शब्द कहे —

अरे ! श्रमण गौतम नाग हैं,
वे अपने नाग-बल से युक्त हो,
प्राथमिक वेदना, दुःख, तीव्र, कठोर को,
स्थिरचित्त से स्मृतिमान् और सप्रज्ञ हो सह रहे हैं ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् के पास उठान के यह शब्द कहे —

अरे ! श्रमण गौतम सिंह के समान हैं । अपने सिंह-बल से युक्त हो शारीरिक वेदना को स्मृतिमान् और सप्रज्ञ हो स्थिर चित्त से सह रहे हैं ।

* अपाय=दुर्गति स्वार हैं—नरक, प्रेतलोक, असुरकाय, तिरिग् योनि ।

† भगवान् लेटते समय पैर की दुर्दृष्टियों को एक दूबने से थोटा-सा दबाकर रखते थे, उसे ही “पादे पाद अधाधाय” कहा गया है ।

तब दूसरे देवता ने भगवान् के पास उद्दान के यह शब्द कहे —

भरे ! भ्रमण गीतम भाव्याय है । अपन जात्रामीव-धन से स्थिर-चित्त स सह रहे है ।

तब दूसरे देवता ने भगवान् के पास उद्दान के यह शब्द कहे :—

भरे ! भ्रमण गीतम बेजोष है । अपन बेजोष धन से स्थिर-चित्त से सह रहे है ।

तब दूसरे देवता ने भगवान् के पास उद्दान के यह शब्द कहे:—

भरे ! भ्रमण गीतम बड़े भारी भार बाहक है । स्थिर-चित्त से सह रहे है ।

तब दूसरे देवता ने भगवान् के पास उद्दान के यह शब्द कहे:—

भरे ! भ्रमण गीतम बड़े शान्त है । स्थिर-चित्त स सह रहे है ।

तब दूसरे देवता ने भगवान् के पास उद्दान के यह शब्द कहे:—

समाधि के अभ्यास स इय विमुक्त चित्त को देखो । न तो उदा है न द्वा है नीर न कोई काशिश करके ध्याना गया है किन्तु बड़ा ही स्वाभाविक है । जो देवों को पुरण नाग सिंह, ध्यजातीय बेजोष भारबाहक शान्त कहे—सो केवल अपनी मूर्खता से कहता है ।

पन्चाङ्ग वेद को दाहाय भले ही धारण कर

सो क्यों तक मरु ही तपस्या करता रहे

किन्तु उसमें चित्त पूरा विमुक्त हो नहीं सकता

हीन कल्प वाले पार नहीं जा सकते ।

तुम्हा स प्रेरित ब्रत आदि के फेर में पड़े

सा बर्ष कठोर तपस्या करते हुये भी

उनका चित्त पूरा विमुक्त नहीं होता

हीन कल्प व से पार नहीं जा सकते ।

आत्म-रहित रहने वाले पुरण को

धायन मंत्रम नहीं हो सकता

असमाहित पुरण को मुनि भाव नहीं आ सकता

जंगल में अकेला प्रसावबुद्ध विहार करते हुये

कोई शत्रु के राज्य की पार नहीं कर सकता ।

मान क्रोध अन्धी तरह समाहित हो

सुन्दर चित्त बाधा समी तरह स विमुक्त,

सावधान है जंगल में अकेला विहार करते हुये

बह शत्रु के राज्य के पार चला जाता है ।

§ ९ पञ्चमशीतु मुच (१ ४ ९)

धर्म-प्रहण से स्वर्ग

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् विशाली में महायज्ञ की कूटागारस्थाळा में विहार करते थे ।

तब प्रष्ट मन की बेटी कौकनदा रात बीतने पर अपनी चमक से सारे महायज्ञ को चमकाती हुई जहाँ भगवान् थे वहाँ जाई, और भगवान् को अभिवादन कर एक नीर लकी हो गई ।

पूरे जोर लकी वह देवता कौकनदा प्रष्ट, मन की बेटी भगवान् के सम्मुख वह गाया बोली:—

वैशाली के वन में बिहार करते हुए,
 सर्वश्रेष्ठ भगवान् बुद्ध को,
 मैं कोकनदा प्रणाम करती हूँ,
 कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी ॥
 मैंने पहले धर्म के विषय में सुना ही था,
 जिसको सर्वज्ञ बुद्धने साक्षात् किया है,
 आज मैं उसे साक्षात् जान रही हूँ,
 मुनि सुगत (=बुद्ध) से उपदेश किया गया ॥
 जो कोई इस आर्य धर्म को,
 मूर्ख निन्दा करते फिरते हैं,
 वे घोर सौरव नरक में पड़ते हैं,
 चिर काल तक दुःखों का अनुभव करते ॥ ”
 और जो इस आर्य धर्म में
 धीरता और गान्धि के साथ आते हैं,
 वे मनुष्य-जरीर को छोड़ कर,
 देव-लोक में उत्पन्न होते हैं ॥

§ १०. बुद्धपञ्जुनधीतु सुत्त (१. ४ १०)

बुद्ध धर्म का सार

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में बिहार करते थे ।

तब, छोटी कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी रात कीतने पर अपनी चमक से लगे महावन की चम-
 काती हुई जहाँ भगवान् थे वहाँ आई और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गई ।

एक ओर खड़ी हो वह देवता छोटी-कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी भगवान् के सम्मुख गद्गद गाथा
 बोली —

यह मैं आई हूँ, त्रिप्रली की चमक जैसी कान्ति वाली,
 कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी,
 बुद्ध और धर्म को नमस्कार करती हुई,
 मैंने यह अर्थवती गाथा कही ॥
 यद्यपि अनेक दग से मैं कह सकती हूँ,
 ऐसे (महान्) धर्म के विषय में,
 (तथापि) संक्षेप में उसके सार को कहती हूँ,
 जहाँ तक मेरी बुद्धि की योग्यता है ॥
 सारे संसार में कुछ भी पाप न करे,
 शरीर, दचन या मनसे
 कामों की श्रेष्ठ, स्मृतिमान् और सपन्न,
 अनर्थ करनेवाले दुःख को मत चढ़ावे ॥

सत्सुखपकाधिक वर्ग समाप्त ।

पाँचवाँ भाग

जलता घग

§ १ आदित्त मुक्त (१ ५ १)

शोक में भाग लगी है

येना मैंने सुना ।

एक समय भगवान् भ्रातृस्त्री में अनाद्यपिपिडिक के जेतवन वाराम में बिहार करते थे ।

तब कोई वैभता रात बीतने पर अपनी बमक से सारे जतवन को बमकमते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ जाया और भगवान् का अभिवादन कर एक और लड़ा हो गया ।

एक और लड़ा हो वह वैभता भगवान् के सम्मुख बह गाया योनाः—

वर में भाग लगे जलने पर

जो अपने अस्तबाब बाहर निकाल देता है

बह उमड़ी भलाई के लिये होता है,

मही तो वह बड़ी जककर राप हो जाता है ॥

उनी प्रकर हय सारे कोड में भाग मग गई है

बरा की भाग और मर जाने की भाग

दान देकर बाहर निकाल लो

दान दिया गया अग्नी तरह रक्षित रहता है ॥

दान देने से मुक्त की प्राप्ति होती है

मही देने से उसे येना ही होता है,

बोर बुरा भले हैं, या राजा हर संते हैं

या भाग लगे जाती है या मर हो जाता है ॥

और अन्तर में ही मर ही पुर जाता है

बह शरीर भी और माब माप सारी सम्पत्ति

हूने जान बूझ कर पण्डित बुद्ध

योग भी करते हैं और दान भी देने हैं ॥

अपने सामर्थ्य के अनुसार देकर और योग कर

किन्दा रहित ही स्वर्ग में ग्यान पाता है ॥

§ २ किं दर्द मुक्त (१ ०)

क्या दान पाया क्या पाता है ?

क्या देने वाला बल देता है ?

क्या देने वाला बर्न देता है ?

क्या देने वाला सुग्य देता है ?
 क्या देने वाला अँग्य देता है ?
 हीन मय गुह्य देने वाला होता है ?
 मैं पृथ्वा हँ, ठपया जतायँ ॥

[भगवान्—]

अस देने वाला पल देता है,
 वस देने वाला वष देता है,
 घाहन देने वाला सुग्य देता है,
 प्रवीण देने वाला अँग्य देता है,
 और, वह मय गुह्य देने वाला है,
 जो आश्रय (=गृह) देता है,

आर अमृत देने वाला तो वह होता है,
 जो गुरु पार धर्म का उपदेश कर दे ॥

§ ३. अन्न सुक्त (१. ५. ३)

अन्न सबको प्रिय है

एक अन्न ही है जिसे सभी चाहते हैं,
 देवता और मनुष्य लोग दोनों,
 भला ऐसा कान-या प्राणी है,
 जिसे अन्न प्यारा न लगता हो ?

जो उस अन्न का श्रद्धा-पूर्वक दान करते हैं,
 अत्यन्त प्रसन्न चित्त से,
 उन्हीं को वह अन्न प्राप्त होता है,
 इस लोक में और परलोक में भी ॥

इन्लिये, कजुरी करना छोड़,
 पाप हटाने वाला पुण्य-कर्म दान करे,
 परलोक में पुण्य ही (केवल)
 प्राणियों का अन्धार होता है ॥

§ ४. एकमूल सुक्त (१. ५. ४)

एक जड़वाला

एक जड़ वाला, दो मुँह वाला,
 तीन मल वाला, पाँच फैलाव वाला,
 धारह भँवर वाला समुद्र,
 और पाताल, सभी को कृपि पार कर गये ॥

१. "अविद्या तृष्णा की जड़ है, तृष्णा अविद्या की। यहाँ (एक जड़ से) तृष्णा ही अभिप्रेत है। वह तृष्णा शाश्वत और उच्छेद दृष्टि के भेद से दो प्रकार (=मुँह) की होती है। उसमें राग, द्वेष और

§ ५ अनोमनाम सुक्त (१ ५ ५)

मय-पूर्ण

अनोम नाम वाले सूक्त प्रष्ट
 शत्रु देने वाले कर्मों में अनोमनाम;
 उन सर्वज्ञ परिष्ठ का देवो
 मार्ग-मार्ग पर चलने हुये महर्षि क्व ॥

§ ६ अक्षरा सुक्त (१ ५ ६)

राह कैसे कटगी ?

अक्षराओं के गण से अक्षर पदम प्रष्ट
 पितामा के गण से संवित
 सुभावे में अक्षर वेन वाक्य बह वन (मन्दन) है
 राह कैसे कटगी ?

[सगवान्—]

बह मार्ग बड़ा सीधा है
 बह स्थान हर भव से शून्य है
 कुछ भी आवाज़ न निकालन बाधा रथ है
 जिसमें धर्म के लक्ष्य लगे हैं ॥

ही उसकी बधाव है
 स्थिति जम पर निर्भी बधाव है
 धर्म को मैं सारथी बनाता हूँ
 सम्यक रहि अगे अगे हाथन बाधा (सधार) है ॥

जिसके पास हूँ प्रकर की सवारी है
 निमी की के पास वा किमी प्रकर के पास
 बह उस पर बधाव
 निर्वाण तक पहुँच जाता है ॥

मोह तीन मज होते हैं । " । पूर्व कामगुण अर्थात् वैश्याव है । वह गुणा कमी पूरी नहीं होती है, इत अर्थ में समुद्र करी गत है । अन्धकार अन्धकार के बाध म कतन अन्धकार कह गये हैं " । गुणा को गहरा का हव नहीं है इतन्विने पातक कहा गत है ।—अक्षरा ।

१ नमनजन । 'मोहनं पनं पाणि ।

२ अर्थ पात्रा मयिस्मन्ति—इस पुत्रनाथ रागा जैसे मुक्ति होगी ?

३ निवाण को रूप कर कहा गया है । अक्षरा ।

४ धार्मीरि-धीतनि-धीर्षे मेष्यान पम-अन्ध ५ पुत्र—अक्षरा ।

५ 'मि धीरिक् रथ मे ऊपर किं हुण का गिरन उ बजान के लिये अक्षरी का पद उगना दिना जला है, जैसे ही रथ मार्ग के रथ में अन्धकार और बन्ध होमेवन्ती शीघ्रपाव करने से मजा समस्तनी बाधिये ।—अक्षरा ।

§ ७. वनरोप सुत्त (१. ५. ७)

किनके पुण्य सदा बढ़ते हैं ?

किन पुरुषों के दिन और रात,
मदा पुण्य बढ़ते रहते हैं ?
धर्म पर दृढ़ रहने वाले शील में सम्पन्न,
कौन स्वर्ग जाने वाले हैं ?

[भगवान्—]

बर्गीचे ओर उपवन लगाने वाले,
नौ लोग पुल बंधवाते हैं,
पाँसाला बेटाने वाले, कूँचे खुदवाने वाले,
राहगीरो को शरण देने वाले,
उन पुरुषों के दिन और रात,
मदा पुण्य बढ़ते रहते हैं,
धर्म पर दृढ़ रहने वाले, शील में सम्पन्न,
वे ही स्वर्ग जाने वाले हैं ॥

§ ८. इदं हि सुत्त (१. ५. ८)

जेतवन

ऋषियों से सेवित यह शुभ-स्थान जेतवन,
जहाँ धर्मराज (ऋद्ध) वास करते हैं,
शुभमें भारी श्रद्धा उपपन्न कर वेत्ता है ॥

कर्म, विद्या, और धर्म,
शील और उत्तम जीवन ।
इन्हीं से मनुष्य शुद्ध होते हैं,
न तौ गोत्र से और न धन से ॥

इसलिये, जो पण्डित पुरुष है,
अपने परमार्थ को दृष्टि में रख,
ठीक तौर से धर्म कमाते हैं,
इस प्रकार उनका चित्त शुद्ध हो जाता है ॥
सारिपुत्र की तरह प्रज्ञा से,
शील से और मन की शान्ति से,
जो भी भिक्षु पार चला गया है,
वही उसका परम-पद है ॥

§ ९. मच्छेर सुत्त (१. ५. ९)

कंजूसी के कुफल

जो ससार में कज्जम कड़े जाते हैं,
मक्खलीचूस, चिक्कर गालियाँ देने वाले,

दूसरों को भी वान वन देग
 आ पुरप उम्ह बहका देव वास ह
 उनके कर्म का फल कैसा जाता है ?
 उनका परलोक कैसा होता है ?
 आप को पूजने के लिये आप,
 हम लोग उम कैसे समझे ?

[भगवान्—]

जो समार में कर्जम कहें व त ह
 मजलीबुय चिरकर शाकिरी होने बाफ
 दूसरा को भी वान देते देग
 जो उम्ह बहका देव बाके है
 वे तरक में तिरबीन योनि में
 वा बमलोक में पैदा होते हैं;
 पति व मनुष्य-बोनि में आते हैं
 तो किसी हरिद्र बुद्ध में जन्म लेते हैं
 कपवा खाना ऐसा भ्रायम लेक-वमाथा;
 उम्ह बची तती से सिद्धते हैं;
 मूय किसी दूसरे पर भरोसा करते हैं
 तब उसे भी वे बीजों नहीं सिद्धती
 मोंको क वलते ही वेगत उनका यह फल जाता है
 परलोक में उनकी बची बुगति होती है ॥

[वक्षता—]

हमने इसे ऐसा जाल किया
 जब हे गीतम ! एक दूसरी बात पूछत है—
 जो बहरी मनुष्य-बोनि में जन्म लेते हैं
 द्विकने-सिकने वाले लुक दिव बाके
 बुद्ध के प्रति महाकुभीर बर्म के प्रति
 संघ के प्रति बड़ा गौरव रखने बाके;
 उनके कर्म का फल कैसा जाता है ?
 उनका परलोक कैसा होता है ?
 आप को पूजने के लिये आप,
 हम लोग उसे कैसा समझे ?

[भगवान्—]

जो बहरी मनुष्य-बोनि में जन्म लेते हैं
 द्विकने-सिकने वाले लुक दिव बाके
 बुद्ध के प्रति महाकुभीर बर्म के प्रति
 संघ के प्रति बड़ा गौरव रखने बाके;
 व जन्म में शोभित होने हैं

जहाँ वे जन्म लेते हैं ॥
 यदि फिर मनुष्य-योनि में आते हैं,
 तो किन्नी बड़े धनाढ्य कुल में जन्म पाते हैं,
 रुपड़ा, पाना, पेश-आराम, खेल-तमाशा,
 जहाँ खूब मन भर मिलते हैं,
 मनचाहे भोगों को पा,
 वशावर्ती देवों के, ऐसा आनन्द करते हैं,
 आँखों के देखते तो यह फल होता है,
 और, परलोक में बड़ी अच्छी गति होती है ॥

§ १०. घटीकार सुत्त (१. ५. १०)

चुख धर्म से ही मुक्ति, अन्य से नहीं

[घटीकार देवता—]

अविह लोक में उत्पन्न हुये,
 मात मिथु विमुक्त हो गये,
 राग, द्वेष (और मोह) नष्ट हो गये,
 हम भवनागर को पार कर गये ॥

वे कौन थे जो काँचड़ को लॉभ गये,
 सृष्टु के उस बड़े दुम्तर राज्य को,
 जो मनुष्य के शरीर को छोड़ कर,
 सर्वोच्च स्थान को प्राप्त हुये ?

उपक, पल्लगण्ड और पक्कुस्ताति ये त्रिनि
 महिय और खण्डदेव, बाहुरगि और पिद्धिय,
 यही लोग मनुष्य-वेह को छोड़, सर्वोच्च स्थान को प्राप्त हुये ॥

[भगवान्—]

उनके विषय में तुम विष्कुल ठीक कहते हो,
 जिन्होंने मार के जाल को फाट डाला,
 वे किसके धर्म को जान कर,
 भव-बन्धन तोड़ने में समर्थ हुये ?

[देवता—]

भगवान् को छोड़ कहीं और नहीं,
 आपके धर्मको छोड़ कहीं और नहीं,
 जिस आपके धर्मको जान कर,
 वे भव-बन्धनको तोड़ सके ॥

जहाँ नाम और रूप दोनों,
 विष्कुल ही निरुद्ध हो जाते हैं,
 आपके उम धर्मको यहाँ जान,
 वे भव-बन्धन को तोड़ सके ॥

[भगवान्—]

तुम बड़ी गम्भीर बातें कर रहे हो
इसे ठीक जानना कठिन है ठीक से समझना बड़ा ही कठिन;
महा तुम किमके धर्म का वादकर
इस प्रकार की बातें कर रहे हो ?

[प्रेषता—]

पहले मैं एक कुम्हार था
वेद्वेदिका में एक घड़ा-साज
अपने माँ-बाप को पोस रहा था
(भगवान्) कल्पय का उपासक था ॥
मैथुन धर्म से बिरल
ब्रह्मचारी पूरा त्यागी
एक ही गाँव में रहने वाला था
पहले मित्र थे ॥
मो सं इन्हें जानता हूँ,
बिमुक्त हुए साठ मिथुनों का
राग ड्रेप (बार मोह) लघु हो गया है
जो भक्त-भक्त को पार कर चुके हैं ॥

पत्नी ही जन्म समय माप था
जसे भगवान् कहते हैं
पहले भाप एक कुम्हार था
वेद्वेदिका में एक घड़ा-साज
इस प्रकार इन पुराण,
मिथुनों का साथ हुआ था
ज्ञानों अविनाशमानों का
अन्तिम शरीर धारण करने वाला था ॥

जन्मना धर्म स्वभावात् ।

छठौं भाग

जरा वर्ग

§ १. जरा सुत्त (१. ६. १)

पुण्य चुराया नहीं जा सकता

कौन भी चीज़ है जो बुढ़ापा तक ठीक है ?

स्थिरता पाने के लिये क्या ठीक है ?

मनुष्यों का रत्न क्या है ?

क्या चोरो से नहीं चुराया जा सकता ?

शील पालना बुढ़ापा तक ठीक है ?

स्थिरता के लिये श्रद्धा ठीक है ,

प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है,

पुण्य चोरो से नहीं चुराया जा सकता ॥

§ २. अजरसा सुत्त (१. ६. २)

प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है

बुढ़ापा नहीं आने से भी क्या ठीक है ?

कौन भी अपिष्टित वस्तु ठीक है ?

मनुष्यों का रत्न क्या है ?

क्या चोरो से नहीं चुराया जा सकता ?

शील बुढ़ापा नहीं आने से भी ठीक है,

अपिष्टित श्रद्धा वही ठीक है,

प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है,

पुण्य चोरो से नहीं चुराया जा सकता ॥

§ ३. मित्र सुत्त (१. ६. ३)

मित्र

राहगीर का क्या मित्र है ?

अपने घर में क्या मित्र है ?

काम पढ़ने पर क्या मित्र है ?

परलोक में क्या मित्र है ?

हथियार राहगीर का मित्र है,

माता अपने घर का मित्र है,

सहायक काम या पढ़ने पर,

बार-बार मित्र होता है,

अपने किये जो पुण्य-कर्म हैं,

वे परलोक में मित्र होते हैं ॥

§ ४ वस्तु सुप्त (१ ६ २)

भाषार

मनुष्यों का आहार क्या है ?

यहाँ सबसे बड़ा मत्स्य कौन है ?

क्रियस सभी जीते हैं ?

पृथ्वी पर जितने प्राणी बसते हैं ॥

पुत्र मनुष्यों का आहार है

मार्का सबसे बड़ी मासिक है

बृष्टि हौले से सभी जीते हैं

पृथ्वी पर जितने प्राणी बसते हैं ॥

§ ५ अनेति सुप्त (१ ६ ३)

पैदा होना (१)

मनुष्य को क्या पैदा करता है ?

उमरु क्या है जो बढ़ता रहता है ?

कौन आवागमन के चक्र में पड़ता है ?

उमरु सबसे बड़ा मय क्या है ?

गृह्य मनुष्य को पैदा करता है

उमरु किस कीचड़ता रहता है

प्राणी आवागमन के चक्र में पड़ता है

गुण्य उमरु सबसे बड़ा मय है ॥

§ ६ अनेति सुप्त (१ ६ ६)

पैदा होना (२)

मनुष्य को क्या पैदा करता है ?

उमरु क्या है जो बढ़ता रहता है ?

कौन आवागमन के चक्र में पड़ता है ?

क्रियस धुरकार नहीं होता है ?

गृह्य मनुष्य को पैदा करता है

उमरु किस कीचड़ता रहता है

प्राणी आवागमन के चक्र में पड़ता है

गुण्य न उमरु धुरकार नहीं होता ॥

§ ७ अनेति सुप्त (१ ६ ७)

पैदा होना (३)

मनुष्य का क्या पैदा करता है ?

उमरु क्या है जो बढ़ता रहता है ?

कौन आवागमन के चक्र में पड़ता है ?

उमरु आशय क्या है ?

गृह्य मनुष्य को पैदा करता है

उमरु किस कीचड़ता रहता है

प्राणी आवागमन के चक्र में पड़ता है,
कर्म ही उसके आश्रय है ॥

§ ८. उप्पथ सुत्त (१. ६. ८)

वेराह

किस राह को लोग वेराह कहते हैं ?
रात-दिन क्षय होने वाला क्या है ?
ब्रह्मचर्य का मल क्या है ?
बिना पानी का कौन स्नान है ?

राम को लोग वेराह कहते हैं,
आयु रात-दिन क्षय होने वाली है,
स्त्री ब्रह्मचर्य का मल है,
जिसमें सभी प्राणी फँस जाते हैं,
तप और ब्रह्मचर्य यह बिना पानी का स्नान है ॥

§ ९. दुत्तिया सुत्त (१. ६. ९)

साथी

पुरुष का साथी क्या होता है ?
कौन उस पर नियन्त्रण करता है ?
जिसमें अभिरत होकर मनुष्य,
सब दुःखों से मुक्त हो जाता है ?

श्रद्धा पुरुष का साथी होता है,
प्रज्ञा उस पर नियन्त्रण करती है,
निर्वाण में अभिरत होकर मनुष्य,
सब दुःखों से मुक्त हो जाता है ॥

§ १०. कवि सुत्त (१. ६. १०)

कविता

गीत* कैसे होती है ?
उसके व्यञ्जन क्या हैं ?
उसका आधार क्या है ?
गीत का आश्रय क्या है ?

छन्द में गीत होती है,
अक्षर उसके व्यञ्जन हैं,
नाम के आधार पर गीत बनती है,
कवि गीत का आश्रय है ॥

जरा वर्ग समाप्त ।

सातवौं भाग

अद्भुत वर्ग

§ १ नाम सुच (१ ७ १)

नाम

क्या है जो सभी को अपने भीतर रखता है ?

किससे अधिक कुछ नहीं है ?

किस एक धर्म क

सभी कुछ बस में चले जाते हैं ?

नाम सभी को अपने भीतर रखता है

नामसे अधिक कुछ नहीं है

नाम ही एक धर्म क

सभी कुछ बस में चले जाते हैं ॥

§ २ विच सुच (१ ७ २)

विच

किससे छोटे विचमित्र होता है ?

किस से वह सब को प्राप्त होता है ?

किस एक धर्म के

सभी बस में चले जाते हैं ?

विच से छोटे विचमित्र होता है ?

विच से ही सब को प्राप्त होता है

विच ही एक धर्म क

सभी बस में चले जाते हैं ॥

§ ३ तन्हा सुच (१ ७ ३)

तुष्णा

किस एक धर्म क

सभी बस में चले जाते हैं ?

तुष्णा ही एक धर्म क

सभी बस में चले जाते हैं ॥

* 'कीइ जीव वा प्यीय येसी नहीं दे आ नाम स रहित हो । (नहीं तक कि) किस कुछ ना परपर का नाम नहीं होता है उमका नाम अनामक' (~~अन-नामकता~~) एवं देते है ।

§ ४. संयोजन सुक्त (१. ७. ४)

बन्धन

लोक किस बन्धन में बंधा है ?

इसका विचरना क्या है ?

किसके प्रहाण होने से,

'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है ?

“संसार में स्वाद लेना” यही लोक का बन्धन है,

वितर्क इसका विचरना है,

तृष्णा के प्रहाण होने से,

'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है ॥

§ ५. बन्धन सुक्त (१. ७. ५)

फौंस

लोक किस फौंस में फँसा है ?

इसका विचरना क्या है ?

किसके प्रहाण होने से,

सभी फौंस कट जाते हैं ?

“संसार में स्वाद लेना” यही लोक का बन्धन है,

वितर्क इसका विचरना है,

तृष्णा के प्रहाण होने से,

सभी फौंस कट जाते हैं ॥

§ ६. अन्भाहृत सुक्त (१. ७. ६)

सत्ताया जाना

लोक किससे सत्ताया जा रहा है ?

- किससे घिरा पदा है ?

किस तीर से जुभा हुआ है ?

किससे सदा बुँबा रहा है ?

मृत्यु से लोक सत्ताया जा रहा है,

जरा से घिरा पदा है,

तृष्णा की तीर से जुभा हुआ है,

हृच्छा से सदा बुँबा रहा है ॥

§ ७. उद्धृत सुक्त (१. ७. ७)

लौंघा गया

लोक किससे लौंघ लिया गया है ?

किससे घिरा पदा है ?

किससे लोक बँका छिपा है ?

लोक किन्में प्रतिष्ठित है ?

तृष्णा से लोक क्यों लिखा गया है
 जरा से बिरा पड़ा है
 मृत्यु से लोक क्यों किया है
 दुःख में लोक प्रतिष्ठित है ॥

§ ८ पिहित सुच (१ ७ ८)

छिपा-बँका

किससे लोक छिपा-बँका है ?
 किसमें लोक प्रतिष्ठित है ?
 किससे लोक क्यों लिखा गया है ?
 किसमें बिरा पड़ा है ?

मृत्यु से लोक बँका-किया है
 दुःखमें लोक प्रतिष्ठित है
 तृष्णासे लोक क्यों लिखा गया है
 जरा से बिरा पड़ा है ॥

§ ९ इच्छा सुच (१ ७ ९)

इच्छा

लोक किसमें बसता है ?
 किसकी वृथा कर कूट जाता है ?
 किसके महात्म होने से
 सभी बन्धन कर देता है ?

इच्छा में लोक बसता है
 इच्छा की वृथा कर कूट जाता है
 इच्छा के महात्म होने से
 सभी बन्धन कर देता है ॥

§ १० लोक सुच (१ ७ १०)

लोक

किसके हाने से लोक पैदा होगा है ?
 किसमें साथ रहता है ?
 लोक किसकी केंद्र होता है ?
 किसके कारण दुःख संकटा है ?

काल के हाने से लोक पैदा होगा है
 लो में साथ रहता है
 लो ही का केंद्र होता है
 लो के कारण दुःख संकटा है

अथ वग समाप्त ।

आठवाँ भाग

ज्ञत्वा वर्ग

§ १. ज्ञत्वा सुत्त (१. ८. १)

नाश

एक ओर खड़ा हो वह डैमना भगवान के सम्मुख यह गाथा बोला —

किम्को नाश कर सुग से मोता है ?

किम्को नाश कर शोक नहीं करता ?

किम् गुरु धर्म का,

बध करना सोत्तम बताते है ?

क्रोध को नाश कर सुग से मोता है,

क्रोध को नाश कर शोक नहीं करता,

महाधिप के मूल क्रोध के,

जो पहले तो अन्ध्रा लगता, है देवते ।

बध की पण्डित लोग प्रशाना करने हैं,

उन्ही को नाशकर शोक नहीं करता ॥

§ २. रथ सुत्त (१. ८. २)

रथ

क्या देखकर रथ का आना मालूम होता है ?

क्या देखकर कहीं अग्निका होना जाना जाता है ?

किन्ही राष्ट्रका चिह्न क्या है ?

कोई स्त्री किम्से पहचानी जाती है ?

वज्राको देखकर रथका आना मालूम होता है,

भूमको देखकर कहीं अग्निका होना जाना जाता है,

राजा किन्ही राष्ट्रका चिह्न होता है,

कोई स्त्री अपने पतिसे पहचानी जाती है ॥

§ ३. वित्त सुत्त (१. ८. ३)

धन

सम्भारमे पुरूपका सत्रमे श्रेष्ठ वित्त क्या है ?

किम्को उपार्जन करने से सुख मिलता है ?

रथों में सबसे स्वादिष्ट क्या है ?

मनुष्यको कैसे जीवनको लोग श्रेष्ठ कहते हैं ?

संसारमें पुण्यका सबस श्रेष्ठ विधा अज्ञा है
धर्मके उपार्जन करतमें सुख मिलता है
रसों में सब से स्वादिष्ट मद्य है
प्रशापूर्वक जीवन का लोभ श्रेष्ठ कहते हैं ॥

§ ४ युद्धि सुत्त (१८४)

वृष्टि

उगम बाकों में श्रेष्ठ क्या है ?
गिरने बाकों में सब से अच्छा क्या है ?
क्या है भूमते रहने बाकों में ?
बोसते रहने बाका में उत्तम क्या है ?

बीज उगने बाका में श्रेष्ठ है
वृष्टि गिरने बाकों में सब से भयङ्गी है
गाँवें भूमते रहने बाकों में
पुत्र बोसते रहने बाका में उत्तम है ॥
बिद्या उगने बाकों में श्रेष्ठ है
गिरने बाकों में अविद्या सब से बड़ी है
मिष्टुर्मय भूमते रहने बाका में
उद्व. बन्धना में सर्वोत्तम है ॥

§ ५ भीत सुत्त (१७)

उदरना

संसार में हतने जोग बरे हुये क्यों है ?
अनेक प्रकार से मार्ग कहा गया है ;
है महाशायी गातम ! मैं आप से पूछता हूँ,
कहाँ लडा रह परलोक से भय नहीं करे ?

बन्धन भीर मन को डीक राखे म लमा
अरीर से पापाचरण नहीं करते हुये
अन्न-पान न मरे मर में रहते हुये
अज्ञान सुदु, बौद्ध-बुद्ध कर भोग करनेवाका विष्णु-मिष्णु
हृदय मर भयों पर कड़ा रह
परलोक से कुछ डर न करे ॥

§ ६ न वीरति सुत्त (१८६)

पुराणा न होना

क्या पुराणा होता है क्या पुराणा नहीं होता है ?

१ " पुत्र का बहुत बोधना भक्त्या-पिता का कुरा नहीं करता ।

७. इस्सर सुत्त

१. ८. ७]

क्या वेराह में ले जाने वाला कहा जाता है ?
 धर्म के काम में क्या बाधक होता है ?
 क्या रात-दिन क्षय को प्राप्त हो रहा है ?
 ब्रह्मचर्य का मूल क्या है ?
 क्या बिना पानी का नहाना है ?
 लोक में कितने छिद्र हैं,
 जहाँ चित्त स्थिर नहीं होता ?
 आपको पूछने के लिये आये,
 हम लोग हमें कैसे समझें ?

मनुष्यों का रूप पुराना होता है,
 उसके नाम और गोत्र पुराने नहीं होते,
 राग वेराह में जाने वाला कहा जाता है,
 लोभ धर्म के काम में बाधक होता है,
 आयु रात-दिन क्षय को प्राप्त हो रही है,
 स्त्री ब्रह्मचर्य का मूल है, यहाँ लोग फँस जाते हैं,
 तप और ब्रह्मचर्य,
 यही बिना पानी का नहाना है,
 लोक में छिद्र छ हैं,
 जहाँ चित्त स्थिर नहीं होता ॥

आलस्य और प्रमाद,
 उत्साह-हीनता, असयम,
 निद्रा और तन्द्रा यही छ छिद्र हैं,
 उनका सर्वथा वर्जन कर देना चाहिये ॥

§ ७. इस्सर सुत्त (१. ८. ७)

पेश्वर्य

ससार में पेश्वर्य क्या है ?
 कौन सा सामान सयमे उत्तम है ?
 लोक में शास्त्र का मूल क्या है ?
 लोक में विनाश का कारण क्या है ?
 किसको ले जाने से लोग रोक्ते हैं ?
 ले जाने वाले में कौन प्यारा है ?
 फिर भी आते हुये किसका,
 पण्डित लोग अभिनन्दन करते हैं ?

ससारमें वश पेश्वर्य है,
 स्त्री सभी सामानसे अच्छी है,
 क्रोध लोकमें शास्त्रका मूल है,
 चौर लोकमें विनाशके कारण है,
 चोरको ले जानेमें लोग रोक्ते हैं,

मिष्टु से जानेवालोंमें चारा है
बार-बार आते हुए मिष्टुक
परिहत लोग नमिन्मदन करते हैं ॥

§ ८ काम सुष्ठ (१ ८ ८)

अपनेका न वे

परमार्थकी कामना रखनेवाला क्या नहीं है ?
मनुष्य किसका परिवाराग न करे ?
किम् कल्याणका निम्नक ?
भार किस दुरेको नहीं निकाले ?
परमार्थकी कामना रखनेवाला अपनेको नहीं वे वाले
मनुष्य अपनेको परिवाराग न करे
कल्याणकालको निम्नक
दुरे को नहीं निकाल ॥

§ ९ पापेय्य सुष्ठ (१ ८ ९)

राह-लक्ष

क्या राह-लक्ष बाँधता है ?
भोगोंका बास किसमें है ?
मनुष्यको क्या घसीट के जाता है ?
संसारमें क्या छोड़ना क्या कठिन है ?
इतने कीब किसमें बँधे हैं
जैसे आकमें कोई पक्षी ?
अच्छा राह-लक्ष बाँधती है ॥
ऐक्यमें समी मोग बसते हैं
इच्छा मनुष्यको घसीट के जाती है
संसारमें इच्छा छोड़ना क्या कठिन है
इतने कीब इच्छामें बँधे हैं
जैसे आकमें कोई पक्षी ॥

§ १ पद्योत सुष्ठ (१ ८ १)

पद्योत

लोक में पद्योत क्या है ?
लोक में कीम जानने वाला है ?
प्राणियों में कीम काम से महाबलक है

क 'महा उल्लेख कर रत्न देता है शीतकी रखा करता है उपीमय कम करता है—इलीने एका कहा गया है।'—महाबला ।

क्या नाश कर सुख से योता है ?
 क्या नाश कर शोक नहीं करता ?
 क्रिय एक धर्म का,
 बध करना शांति ही स्वीकार है ?

क्रोध को नाश कर सुख से योता है,
 क्रोध को नाश कर शोक नहीं करता,
 अग्नि अच्छा लगाने वाले तथा चक्र^१ को हराने वाले !
 धिप के मूल क्रोध ही,
 बध करना पण्डितों से प्रशंसित है,
 उन्मी को काट कर शोक नहीं करता ॥

§ ४. मागध सुत्त (२. १. ४)

चार प्रद्योत

एक ओर खड़ा हो, मागध देवपुत्र भगवान् से यह गाथा बोला—

लोक में कितने प्रद्योत हैं,
 जिनमें लोक प्रकाशित होता है ?
 आप को पृथ्वी के लिये आग,
 हम लोग उन्हे कैसे जानें ?

लोक में चार प्रद्योत हैं,
 पँधियों कोई भी नहीं,
 दिन में सूरज तपता है, रात में चाँद शोभता है,
 ओर आता तो दिन रात वहाँ वहाँ प्रकाश देती है,
 मन्थुल तपनेवालों में श्रेष्ठ है,
 उनका तेज अलौकिक ही होता है ॥

§ ५. दामलि सुत्त (२. १. ५)

ब्राह्मण दृढदृढत्व है

श्राद्धस्ती में ।

तब दामलि देवपुत्र रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमका जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो दामलि देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यहाँ अथक परिश्रम से ब्राह्मण को अभ्यास करना चाहिये,
 कामों का पूरा प्रहाण करने से फिर जन्म ग्रहण नहीं होता ॥

ब्राह्मण को कुछ करना नहीं रहता,
 हे दामलि ! भगवान् ने कहा,
 ब्राह्मण को तो जो करना था कर लिया गया होता है,
 जब तक कि प्रतिष्ठा नहीं पा लेता ॥
 पदियों में जन्तु सब अर्गों से तैरने का प्रयत्न करता है,

१ चक्र नामक अक्षर को हराने वाला, इन्द्र ।

दूसरा परिच्छेद

२ देवपुत्र-सयुक्त

पहला भाग

§ १ कस्तपु सुच (० १ १)

मिथु अनुशासन (१)

येमा मीने सुना ।

एक समय भगवान् भ्रातृस्ती में असाधारणिक के जेतवन धरम में बिहार करते थे ।

तब देव-पुत्र काश्यप रात बीतने पर अपनी कमक न मारे जेतवन की कमकते हुए जहाँ भगवान् से जहाँ आया और भगवान् का जमिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो काश्यप देवपुत्र भगवान् से बोझ—“भगवान् से मिथु को प्रकाशित किया है किन्तु मिथु के अनुशासककी नहीं ।”

तो काश्यप ! तुम्हीं बताओ जना तुमने समझा है ।

“अच्छे उपदेश और

धर्मों का सर्वांग

पूर्वार्ण में अक्षय वास

तथा विच की साधित का अन्वय करो ॥

काश्यप देवपुत्र ने यह कहा । भगवान् सहमत हुए । तब काश्यप देवपुत्र सुक को सहमत जान भगवान् का बन्धुना और प्रशिक्षणा कर जहाँ अन्वयार्ण ही गया ।

§ २ कस्तपु सुच (० १ २)

मिथु-अनुशासन (२)

भ्रातृस्ती में ।

एक बार खड़ा ही काश्यप देवपुत्र भगवान् के सम्मुख बह गया बन्धु—

परि मिथु प्यानी विमुक्त बिलबाला अपनी रिजी चाह (अर्थात्पुत्र) की प्राप्त करना चाह ता संसार का अन्वय होना और मर होना (एवमाक) जानकर पवित्र मनबाला और जनासक हो अन्वय यह पुत्र है ॥

§ ३ माय सुच (० १ ३)

किसके नाश से सुख ?

भ्रातृस्ती में ।

तब माय देवपुत्र रात बीतने पर अपनी कमक न मारे जेतवन का कमकते हुए जहाँ भगवान् से जहाँ आया और भगवान् का जमिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा ही माय देवपुत्र ने भगवान् की गाथा में कहा—

ध्यान-प्राप्त, ज्ञानी, निरहङ्कार, श्रेष्ठ, मुनि,
तब से भी जगह निकाल लेते हैं ।

हे पद्मालचण्ड ! भगवान् बोले—
जिनने स्मृति का लाभ कर लिया,
वे अच्छी तरह समाहित हो,
निर्वाण की प्राप्ति के लिए,
धर्म का साक्षात्कार कर लेते हैं ।

§ ८. तायन सुत्त (२. १. ८)

शिथिलता न करे

तब, तायन देवपुत्र, जो पहले जन्म से एक तीर्थङ्कर था, रात बीतने पर अपनी धमक से सारे जेतवन को धमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा ही, तायन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

सोता को काट दो, पराक्रम करो,
हे ब्राह्मण ! कामों को दूर करो,
कामों को बिना छोड़े हुए मुनि,
एकाग्रता को नहीं प्राप्त होता ॥
यदि करना है तो करवा चाहिये,
उसमें हड़ पराक्रम करे,
जो प्रसन्नित अपने उद्देश्य में शिथिल है,
बहु और भी अधिक मूल पड़ा लेता है ॥
एक दम नहीं करना उरी तरह करने से अच्छा है,
धुरी तरह करने से पीछे अनुताप होता है,
करे तो अच्छी तरह ही करना अच्छा है,
जिसके करने पर पछतावा नहीं होता ॥
अच्छी तरह न पढ़ा गया कृपा,
जैसे हाथ को ही काट लेता है,
वैसे ही, शिथिलता से ग्रहण किया गया श्रमण-भाव,
गरक को ही ले जानेवाला होता है ॥

जो कुछ शिथिल काम है, जो ब्रत सक्रिष्ट है,
झड़ा जो ब्रह्मचर्य है, यह अच्छा फल नहीं देता ॥

तायन देवपुत्र ने यह कहा । यह कह, भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

तब, रात बीतने पर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! इस रात को तायन देवपुत्र, जो पहले जन्म में एक तीर्थङ्कर था, मेरा अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा ही, तायन देवपुत्र मेरे सम्मुख यह गाथा बोला—

सोता को काट दो ।

किन्तु, बर्मीन न ऊपर आकर बर्मी कासित नहीं करता,
 वह तो मर पार कर चुका ॥
 दामलि ! माझण की पही उपमा है
 छीजाभव चतुर भार प्यामी की
 अम्म और मृत्यु के अन्त की पाकर
 वह कौचित्त नहीं करता वह तो पार कर चुका ॥

§ ६ कामद मुच (२ १ ६)

सुम्बद् सन्तोप

एक बार कथा ही कामद सुम्बुद्ध न भगवान् को यह कहा—

भगवन् ! यह दुष्कर है कथा ही दुष्कर है ।

दुष्कर होने पर भी लोग कर लेते हैं

हे कामद ! भगवान् बोध—

दीक्ष्य शीको क अम्यासी स्त्रियाण्य

प्रवर्णित को अति सुपद् सन्तोप होता है ॥

भगवन् ! यह सन्तोप क्या दुष्कर है ।

दुष्कर होने पर भी लोग पा लेते हैं

हे कामद ! भगवान् बोधे —

चित्त को शान्त करने में रत

जिनका दिन भीर रात

भावना करने में लगा रहता है ॥

भगवन् ! चित्त का प्रयास छगारना क्या कठिन है ।

चित्त छगारना कठिन होना पर भी लोग छगा करते हैं

हे कामद ! भगवान् बोधे—

इन्द्रिषी का दाम्प्य करन में रत

वे मृत्यु के दाक को बच कर

हे कामद ! पण्डित लोग बच जाते हैं ॥

भगवन् ! दुर्गम है मार्ग पण्डित है ।

दुर्गम यह ध्वजना पीद्व

हे कामद ! धर्म लोग पछे जाते हैं

अनार्य लोग हम बोद्ध मार्ग में

शिर के बल गिर पड़ते हैं

आर्यो क जिये तो मार्ग बराबर है

आर्ये जाल विपन्न मार्ग में भी बराबर पर चलते हैं ॥

§ ७ पञ्चालवण्ड मुच (२ १ ७)

वस्तुति-काम न धम का सात्सात्कार

एक बार कथा को पञ्चालवण्ड मुच भगवान् के समुच्च यह गाथा बोधा—

मैं भारी विपत्ति में आ पड़ा हूँ,
यो मुझे आप अपनी शरण दें ॥

तब, भगवान ने सूर्य देवपुत्र के लिए असुरेन्द्र राहु को गाथा में कहा—

अहं तु बुद्ध की शरण में,
सूर्य चला आया है,
हैं राहु ! सूर्य को छोड़ दो,
बुद्ध सभी के प्रति अनुकरणा रखते हैं ॥
जो शाले अन्धकार में प्रकाश देता है,
चमकने वाला, मण्डल घाला, उग्र तेज वाला,
आकाश में चलने वाला, उये राहु ! मत निगलो,
राहु ! मेरे पुत्र सूर्य को छोड़ दो ॥

तब, असुरेन्द्र राहु सूर्य देवपुत्र को छोड़, डरा हुआ-सा जहाँ वेपचिन्ति असुरेन्द्र था वहाँ आया
और सवेग से भरा, रोयें खड़ा क्रिये पुरु और खड़ा हो गया ।

एक जोर खटे असुरेन्द्र राहु को वेपचिन्ति असुरेन्द्र ने गाथा में कहा—

नयाँ इतना डरा-सा हो,
राहु ने सूर्य को छोड़ दिया ?
सवेग से भरा हुआ आकर,
तुम इतने भयभीत क्यों खड़े हो ॥

मरे धिर के सात डुकड़े हो जायें,
जन्म भर मुझे कभी सुख नहीं मिले,
बुद्ध से आज्ञा पाकर मैं,
यदि सूर्य को नहीं छोड़ दूँ ॥

पहला भाग समाप्त ।

मिथुनी ! लायन रेशपुत्र न यह कह। यह कह मुझे प्रणाम और प्रशिक्षण कर वहीं जन्तुवाँच हो गया। मिथुनी ! लायन की गाथाओं को सीपी उन्हें सम्पाद्य करो। मिथुनी ! लायन की गाथाएँ वहीं मन्त्री ब्रह्मचर्य की पहली पाठें हैं।

§ ९ चन्द्रिम सुच (२ १ ९)

चन्द्र-ग्रहण

आयस्ती में।

उस समय चन्द्रमा दश पुत्र असुरेन्द्र राहु से पकड़ किया गया था। तब चन्द्रमा रेशपुत्र भगवान् को स्मरण करते हुए उस समय यह गाथा बोला—

महावीर बुद्ध ! आप को नमस्कार ह
आप मन्त्री प्रणार से विमुक्त हैं ;
मं भारी विपत्ति में था पग हूँ,
यो मुझे आप अपनी शरण में ॥

तब भगवान् न चन्द्रमा रेशपुत्र के सिद्ध असुरेन्द्र राहु को गाथा में कहा—

महान बुद्ध की शरण में
चन्द्रमा क्या धना है
राहु शीत को छाड़ दो
बुद्ध मन्त्री के प्रति अनुकम्पा शक्य है ॥

तब असुरेन्द्र राहु चन्द्रमा रेशपुत्र को छाड़ कर दृभ्यन्ता जहाँ वेपथिलि असुरेन्द्र था वहीं आया और संबग म भरा राधे लक्ष्मी पृष्ठ और पड़ा हो गया।

एक बार लक्ष्मी बुद्ध असुरेन्द्र राहु को वेपथिलि असुरेन्द्र से गाथा में कहा—

क्या इतना दरा-ना हो
राहु ने चन्द्रमा का छाड़ दिया ?
संबग म भरा हुआ आनर
तुम इतना भयभीत क्यों लक्ष्मी हो ?

मेरे शिर के मात दृष्टि हो ज्यो
जन्म भर मुझ कर्मी मुग वहीं मिले
बुद्ध म आशा पा कर हूँ
परि चन्द्रमा का वहीं छाड़ हूँ ॥

६ १० सुरिय सुच (१ १०)

सूर्य-मरण

उस समय सूर्य देवपुत्र असुरेन्द्र राहु न पकड़ लिया गया था। तब सूर्य भगवान् को स्मरण करते हुए उस समय यह गाथा बोला—

महावीर बुद्ध ! आपका नमस्कार ह
आप मन्त्री प्रणार से विमुक्त हैं

तत्र, दीर्घयष्टि देवपुत्र रात चीतने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो, दीर्घयष्टि देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

चदि भिक्षु ध्यानी, विमुक्त चित्त बाला हो,
और मन की भीतराँ चाह (= अर्हत् फल) को प्राप्त करना चाहं,
तो खसार का उत्पन्न होना और नष्ट होना (स्वभाव) जान कर,
पवित्र मन बाला और अनात्मक हो, उगका यह गुण है ॥८

§ ४. नन्दन सुक्त (२. २ ४)

शीलवान् कौन ?

एक ओर खड़ा हो नन्दन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

हे गौतम ! आप महाज्ञानी को मैं पूछता हूँ,
भगवान् का ज्ञान-दर्शन खुला दे,
कैसे को लोग शीलवान् कहते हैं ?
कैसे को लोग प्रज्ञावान् कहते हैं ?
कैसा पुरुष तु खो के परे रहता है ?
कैसे पुरुष की देवता भी पूजा करते हैं ?

जो शीलवान्, प्रज्ञावान्, भावित्वात्म,
समाहित, ध्यानरत, स्मृतिमान्,
क्षीणाश्रव, अन्तिम देहधारी सर्वशोक-प्रहीण इ ॥
वैसे ही को लोग शीलवान् कहते हैं,
वैसे ही को लोग प्रज्ञावान् कहते हैं,
वैसा ही पुरुष तु खो के परे हो जाता है,
वैसे ही पुरुष की देवता भी पूजा करते हैं ॥

§ ५. चन्दन सुक्त (२. २. ५)

कौन नहीं डूबता ?

एक ओर खड़ा हो चन्दन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

रात दिन तत्पर रह,
कौन बाढ़ को तर जाता है ?
अप्रतिष्ठित और अनालम्ब,
गहरे (जल) में कौन डूबता नहीं है ?

जो सदा शील-सम्पन्न,
प्रज्ञावान्, प्रकाश-चित्त,
उत्साहशील तथा समीचीन है,
वह दुस्तर बाढ़ को तर जाता है ॥
जो काम सज्ञा से विरत,

दूसरा भाग

अनाधपिण्डिक-वर्ग

§ १ चन्द्रिमस सुप्त (० २ १)

प्यानी पार जायेंगे

भावस्ती में ।

तब चन्द्रिमस वैश्वानर रात पीतने पर चहों भगवान् से चहों न्यत्रा और भगवान् का धर्म
वाचन कर एक और लका हो गया । एक और लका हो चन्द्रिमस वैश्वानर भगवान् के सम्मुख यह
गाथा बोला—

ये ही कल्याण को प्राप्त होंगे
मन्त्र-रहित कर्मर में पशु के समान ;
जो प्यानों को प्राप्त
पूकाम प्रहायाम और स्तुतिमान हैं ॥
ये ही पार जायेंगे
मन्त्री के समान जाऊ का बाद कर
जो प्यानों को प्राप्त
जन्मरत और नकैसा-प्यागी हैं ॥

§ २ वेणु सुप्त (२ ० ५)

प्यागी मृत्यु से धरा नहीं जाते

एक और लका हो वेणु (= विष्णु) वैश्वानर भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

ये मनुष्य मुणी हं
जो बुद्ध की उपासना कर
गीतम के शासन में छटा
धर्ममत्त हाफर सिखा प्रहल करते ॥

हे वेणु ! भगवान् चहें—

मेरी शिक्षाओं का भी प्यागी पावन करते हैं
बधोचित धाम में प्रमाण नहीं करत हुए ये
मृत्यु के बरा में जायेवाले नहीं होत ॥

§ ३ दीपलदि सुप्त (= ० २)

मिह भगुनामन

देमा धिने सुप्त ।

एक गमक भगवान् वाजपयै व धनुष्यत पञ्चमक निगाय में बिदार करते ॥

तब, द्वीर्ग्रयष्टि देवपुत्र रात कीतने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ थाया आर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर लड़ा हो, द्वीर्ग्रयष्टि देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यदि भिक्षु ध्याना, विमुक्त चित्त वाला हो,
और मन की भीतरी चाह (= गहन फल) को प्राप्त करना चाहे,
तो स्वप्न का उपवन होगा आर नष्ट होना (स्वभाष) जान कर,
पवित्र मन वाग्म्य आर अनासक्त हो, उग्रका यह गुण है ॥७७

§ ४. नन्दन सुक्त (२. २. ४)

शीलवान् कौन ?

एक ओर खड़ा हो नन्दन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

हे गौतम ! आप महाज्ञानी ज्ञान में पूछता हैं,
भगवान् का ज्ञान-दर्शन तुला टे,
कैसे को लोग शीलवान् कहते हैं ?
कैसे को लोग प्रजावान् कहते हैं ?
कैसा पुरुष दुःखों के परे रहता है ?
कैसे पुरुष की देवता भी पूजा करते हैं ?

जो शीलवान्, प्रजावान्, भावित्वात्म,
ममाहित, ध्यानरत, स्मृतिमान्,
क्षीणाश्रय, अन्तिम वेदधारी सर्वशोक-प्रहीण ह ॥
जैसे ही को लोग शीलवान् कहते हैं,
वैसे ही को लोग प्रजावान् कहते हैं,
वैसा ही पुरुष दुःखों के परे हो जाता ह,
वैसे ही पुरुष की देवता भी पूजा करते हैं ॥

§ ५. चन्दन सुक्त (२. २. ५)

कौन नहीं डूबता ?

एक ओर खड़ा हो चन्दन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

रात दिन तरफर रह,
कौन बाढ़ को तर जाता है ?
अप्रतिष्ठित और अनालम्ब,
गहरे (जल) में कौन डूबता नहीं है ?

जो सदा शील-सम्पन्न,
प्रजावान्, एकाम-चित्त,
दस्सादृशील तथा सयमी है,
वह हुस्तर बाढ़ को तर जाता है ॥
जो काम लड़ा से विरत,

रूप-रक्षण का पार कर गया
 संसार में स्वात् नहीं क्या तथा बने रहन की जिम् झूठा नहीं रही ;
 बही गहरे जल में नहीं झूठा है ॥

§ ६ चामुदत्त सुप्त (० ६)

कामुकता का प्रहाण

एक और लखा हो सुदत्त देवपुत्र भगवान् क सम्मुख यह गाथा बोला —

जैसे भाव्य जुन गया हो
 या सिर क ऊपर भाग बना गई हो
 बसे ही माग-बिनाय की इच्छा क प्रहाण क दिने
 स्मृतिमान् हो भिक्षु विचरण करे ॥

§ ७ सुदत्त सुप्त (० ७)

धिस की धयझाइट कैसे हुए हा ?

एक और लखा हा सुदत्त देवपुत्र भगवान् क सम्मुख यह गाथा बोला—

यह चित्त सदा घबराया रहता है
 मन सदा जड़ेग से मरा रहता है
 भाते बाके कामों का टपाक कर,
 और धाध हुने कामों को करने में ॥
 मैं पूछता हूँ, आप बतायें कि क्या काइ
 ऐसा (उपाय) है जिनम चित्त घबराता नहीं है ॥

बोप्यत्र क जन्मान

इन्द्रिय-संहर

तथा सारे संसार न बिरल होना छोड

मैं किसी दूसरी तरह प्राणियों का बन्धान नहीं देखता हूँ ॥

सुदत्त देवपुत्र नहीं जन्मदान हा गया ।

§ ८ ककुच सुप्त (० ८)

भिक्षु की भानम् और खिन्ता नहीं

देना मैंने मुना ।

एक मद्यक भगवान् साकल क भजनपन सुगन्ध में विहार करते थे ।

तब ककुच देवपुत्र वहीं भगवान् से वहीं आया और भगवान् का अभिवादन कर एक और
 लखा हो ककुच देवपुत्र न भगवान् का यह क्या—

भिक्षु की भानम् ता है ?

भानुन क्या काकर ?

भिक्षु की तो क्या खिन्ता कर रहे है ?

भानुन मद्य मरा क्या विगहा है ?

भिक्षु जी, तो क्या आनन्द भी नहीं कर रहे हैं और न चिन्ता ?
आतुम ! ऐसी ही घात है ।

[ककुध—]

भिक्षु जी, न तो आप चिन्तित हैं,
न तो आपको कोई आनन्द है,
अकेला बैठे आप का,
क्या मन उदाय नहीं होता ?

[भगवान्—]

हे वक्ष ! न तो मैं चिन्तित हूँ,
न तो मुझे कोई आनन्द है,
अकेला बैठे मेरा मन,
उदाय नहीं होता है ॥

[ककुध—]

भिक्षु जी, आप को चिन्ता क्यों नहीं ?
आपको आनन्द भी क्यों नहीं है ?
अकेला बैठे आप का,
मन उदाय क्यों नहीं होता ?

[भगवान्—]

चिन्तित पुरुष को ही आनन्द होता है,
आनन्दित पुरुष को ही चिन्ता होती है,
भिक्षु को न चिन्ता है और न आनन्द,
आतुम ! इसे ऐसी ही समझो ॥

[ककुध—]

धिरकाल पर देग रहा हूँ,
मुक्त हुए धाम्पण को,
जिम भिक्षु को न चिन्ता है और न आनन्द,
जो भवसागर को पार कर गये हैं ॥

§ ९. उत्तर सुत्त (२ २ ९)

सांसारिक भोग को त्यागने

राजगृह में ।

एक ओर खड़ा हो उत्तर देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—
जीवन बीत रहा है, आयु थोड़ी है,
बुढ़ापा से बचने का कोई उपाय नहीं,
मृत्यु में यह भय देखते हुये,
सुख लाने वाले पुण्य कर्म करें ॥

[भगवान्—]

जीवन बीत रहा है, आयु थोड़ी है,
बुढ़ापा से बचने का कोई उपाय नहीं,

एवमुक्तं बहू मय देवते बुधे
सामारिक भोग छोड़ दे निर्वाण की लोच में ॥७

§ १० अनाद्यपिण्डिक मुच (= ० ० १०)

जैतघन

एक और कहा हा अनाद्यपिण्डिक देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यही वह जैतघन है
अपियों से मन्त्रित
धर्मराज (पुत्र) यहाँ बसते हैं,
मुझ में यही भ्रष्टा पैदा करता है ॥
धर्म विद्या और धर्म
लोक पावन करना और उत्तम जीवन
इसी में मनुष्य झुन्न होते हैं
य तो गोल से और न धन से ॥
इसकिसी परिहृत पुण्य
अपनी मलाई का क्याक करते बुधे
अच्छी तरह से धर्म क्रमाने
इस तरह वह विद्वान् होता है ॥
सारिपुत्र की तरह प्रज्ञा से
सीक स और धित की शान्ति से
को मिष्ट पार क्या क्या है
यही परम-पद पाया है ॥†

अनाद्यपिण्डिक देवपुत्र ने यह कहा । यह कह भगवान् को अभिवादन और प्रशिक्षण कर के यहीं अन्तर्धान हो गया ।

तब उस रात के बीतने पर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

मिष्टानो ! आज की रात यह देवपुत्र मेरे सम्मुख कहा हो वह गाथा बोला—

यही वह जैतघन है
यही परम-पद पाया है ॥

यह कह मुझे अभिवादन और प्रशिक्षण करके यहीं अन्तर्धान हो गया ।

इतना कहे जाने पर आशुप्मान् आनन्द ने भगवान् को कहा— 'मन्ते ! यही अनाद्यपिण्डिक देवपुत्र हो गया है ? अनाद्यपिण्डिक पृथ्वति आशुप्मान् सारिपुत्र के प्रति कहा भ्रष्टाण्ड वा ।

ठीक कहा आनन्द ! जो तर्क से समझा जा सकता है उसे तुमने समझ किया । आनन्द ! अनाद्यपिण्डिक ही देवपुत्र हुआ है ।

अनाद्यपिण्डिक धर्म समाप्त ।

* यही गाथामें १ १ ३ में ।

† यही गाथामें १ ५ ८ में ।

तीमरा भाग

नानातीर्थ-वर्ग

§ १. शिव सुत्त (२. ३. १)

सत्पुरुषों की संगति

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन धाराम में विहार करते थे ।
तब, शिव देवपुत्र एक ओर खड़ा हो भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

सत्पुरुषों के ही साथ रहो,
सत्पुरुषों के ही साथ मिलो-जुलो,
सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
भला ही होता है, बुरा नहीं ॥
“सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
ज्ञान का साक्षात्कार करता है, जो दूसरी तरह से नहीं होता ॥
सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
शोक के बीच में रह शोक नहीं करता ॥
सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
बान्धवों के बीच शोभता है ॥
सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
सर्व सुगति को प्राप्त होते हैं ॥
सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
सर्व परम-सुख पाते हैं ॥

तब, भगवान् ने शिव देवपुत्र को गाथा में उत्तर दिया—

सत्पुरुषों के ही साथ रहे,
सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले,
सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
सभी दुःखों से छूट जाता है ॥ ॐ

§ २. श्रेम सुत्त (२. ३. २)

पाप-कर्म न करने

एक ओर खड़ा हो, श्रेम देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—
मूर्ख दुर्बुद्धि लोग विचरण करते हैं,

अपना सबु आप ही हो कर
 पाप कर्म किंवा करते हैं
 जिसका फल बड़ा कटु होता है ॥
 उस काम का करना अच्छा नहीं
 जिसको करके अनुत्पाप करना पड़े
 जिसका मौजूद साथ रोते हुए,
 फल भोगना पड़ता है ॥
 उसी काम का करना अच्छा है
 जिसे करके अनुत्पाप न करना पड़े
 जिसका फलानन्द और सुखी सुखी से
 (अच्छा) फल मिलता है ॥
 पहले ही उस काम की कर
 जिससे अपना हित होना जाने
 गाड़ीवान् की तरह चिन्ता में न पड़
 भीर पुरुष पूरा पराक्रम करे ॥
 जैसे कोई गाड़ीवान्
 समतल पथी सड़क को छोड़
 ऊँची नीची राह में या
 बुरा टूट जाने से चिन्ता में पड़ जाता है ॥
 जैसे ही धर्म को छोड़
 अधर्म में पड़ जाने से
 सुख प्राप्त के सुख में गिर कर
 बुरा हो जाने काक जैसा चिन्ता में पड़ जाता है ॥

३ सेरि सुध (० ३ ३)

दान का महारम्य

एक भीरु बड़ा हो मेरी देवगुण भगवान् को बहू गाया बोध—

अन्न का भी ममी चाहते हैं
 दानों देवता भीर अनुत्पन्न
 भन्ना पैसा हीन प्राणी है
 जिसको अन्न नहीं माना हो ?

[भगवान्—]

जो अन्न अन्नापन्नक दान करते हैं
 अन्नान्न प्रयत्न चित्त से
 उन्हीं को अन्न माना हात है
 हम लोक में भीर वरलोक में ॥
 इत्यन्ति कर्तुमी छाप पुत्र वर गृह दान करे
 पुत्र ही वरलोक में प्राणियों का आधार होता है ॥

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! भगवान् ने यह टीका ही कहा है कि—
जो अन्न श्रद्धापूर्वक दान करते हैं ।

भन्ते ! बहुत पहले मैं खेरी नाम का एक राजा था । मैं दानी, दानपति और दान की प्रशंसा करनेवाला था । धारों फाटक पर मेरी ओर से दान दिया जाता था—ध्रमण, ब्राह्मण, गरीब, राणी, लोचर और भिखरियों को ।

भन्ते ! जब मैं जनान में जाता तो वे कहने लगतीं—आप से दान ले रहे हैं, हम नहीं ले रही हैं । अच्छा होता कि हम लोग भी आप से चालते दान करती और पुण्य कमातीं ।

भन्ते ! तब मेरे मन में यह हुआ—मैं दानी, दानपति और दान की प्रशंसा करने वाला हूँ । 'दान दूँगा' ऐसा कहनेवाली स्त्रियों को मैं क्या कहूँ । भन्ते ! तब, मैंने पहले फाटक को उनके लिये छोड़ दिया । वहाँ स्त्रियों की ओर से दान दिया जाने लगा, मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब, मेरे बहाने किये क्षत्रियों ने मेरे पास आकर कहा—महाराज की ओर से दान दिया जाता है और स्त्रियों की ओर से भी दान दिया जाता है, किन्तु हम लोगों की ओर से नहीं । महाराज के चलते हम लोग भी दान दें और पुण्य कमायें ।

भन्ते ! सो मैंने दूसरे फाटक को उन क्षत्रियों के लिये छोड़ दिया । वहाँ क्षत्रियों की ओर से दान दिया जाने लगा, मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब मेरे सिपाहियों ने । सो मैंने तीसरे फाटक को उन सिपाहियों के लिये छोड़ दिया । मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब, ब्राह्मण और गृहपतियों में... । सो मैंने चौथे फाटक को उन ब्राह्मण और गृहपतियों के लिये छोड़ दिया । मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब, लोगों ने मेरे पास आकर यह कहा—अब तो महाराज की ओर से कोई भी दान नहीं दिया जाता है ।

भन्ते ! इस पर मैंने उन लोगों को कहा—लोगों ! धार के प्रान्तों से जो आमदनी उठती है उसका भाधा राजमहल में ले आओ और आपे को वहाँ दान कर दो—ध्रमण, ब्राह्मण, गरीब, राणी, लोचर और भिखरियों को ।

भन्ते ! इस प्रकार बहुत दिनों तक दान दे कर मैंने जो पुण्य कमाये हैं उसकी कहीं हद नहीं पाता—इतना पुण्य है, इतना उम्का फल है, इतने काल तक स्वर्ग में रहना होगा ।

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! भगवान् ने टीका ही कहा है—

जो अन्न श्रद्धापूर्वक दान करते हैं,
अत्यन्त प्रसन्न चित्त से,
उन्हीं को भन्न प्राप्त होते हैं,
इस लोक में और परलोक में ॥
इसलिये, कजूसी छोड़,
छूट कर खूब दान करे,
पुण्य ही परलोक में
प्राणियों का आधार होता है ॥

§ ४. घटीकार सुक्त (२. ३. ४)

बुद्धधर्म से ही मुक्ति, अन्य से नहीं

एक ओर खबा हो घटीकार देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

बहिष् लोक में उत्पन्न हूये
(श्लो १ ५ १)

४ ५ अन्तु सुप्त (२ ३ ५)

अप्रमादी को प्रणाम्

ऐसा मैं ब सुभा ।

एक समय कुछ भिक्षु हिमवन्त के पास कोशाल के जंगलों में विहार करते थे । वे उद्धत मंड, चपक बकवादी तुरी बात निकायमें वाले गूढ़ स्थिति वाले अमप्रमत्त अप्रमादित चंचक चित्त पाये प्रसन्नत इन्द्रियों वाले थे ।

तब अन्तु दंबपुत्र पूर्विका के उपसंघ की जहाँ व भिक्षु थे वहाँ आया । आकर उसने उन भिक्षुओं को गाथाओं में कहा—

पहले युक्त से रहते थे भिक्षु गातम के आचरक ।
कोम-रहित मिश्रात्म करते थे कोम-रहित रहने की आगाह ।
संसार की अनिम्यता जान उनमें दुःखों का भन्त कर किया व
जब तो अपने की बिगाह गाँव में जमीनदार के पैसा ।
हँस कर खते भीर बड़ रहते हैं दूसरों के कर की पीलों के कोभी ।
मंच क प्रति हाथ जोर इनमें कितनों की प्रणाम् करवा हूँ ॥
पूटे हुये थे जनाब जैसे जैसे मुहाँ पेंका हो जैसे ।
को प्रमत्त होकर रहते हैं उनके प्रति मैं ऐसा कहा हूँ ।
भीर की अप्रमाद से विहार करते हैं
उन्हें मेरा प्रणाम् है ॥

४ ६ रोहितस्स सुप्त (२ ३ ६)

लोक का भन्त चककर नहीं पाया जा सकता बिना भन्त पाये मुक्ति भी नहीं
आचरनी में ।

एक भीर कहा ही रोहितस्स देवपुत्र भगवान् से कह बोला—भन्ते ! कहीं न कोई जनमता है न हुआ होता है न मरता है न शरीर छोड़कर फिर उत्पन्न होता है ? भन्ते ! क्या एक चककर लोक का भन्त जाना देखा या पाया जा सकता है ?

आयुस ! कहीं न कोई जनमता है न हुआ होता है न मरता है न शरीर छोड़ कर फिर उत्पन्न होता है, लोक के उस भन्त को एक चककर जाना देखा या पाया जाना मैं नहीं बताता ।

भन्ते ! आरुचर्न है अर्मुत्त है । को भगवान् ने ज्ञाना टीक कहा— लोक के उस भन्त को चक-चककर जाना देखा या पाया जाना मैं नहीं बताता ।

भन्ते ! बहुत पहले मैं रोहितस्स नाम का एक कवि भोजपुत्र बड़ा चकितान् आचार्य में विचरन करमेवाक्य था । भन्ते ! उस समय मेरी ऐसी शक्ति शक्ति थी जैसे थोड़े ही शिवाचार तीरन्दाज—सिखाया हुआ जिसका हान साध हो गया है त्रिपुत्र अम्मासी—एक इन्कै तीर की बड़ी आसानी ही साध की प्राण तक पेंक दे ।

भन्ते ! उस समय मेरा वेग ऐसा पड़ता था जैसे बुरब के समुद्र से केका बलिन के समुद्र तक । भन्ते ! तब मेरे कित मैं कह क्याक था—मैं चक-चककर लोक के भन्त तक पहुँचूँगा ।

भन्ते । मों में हम प्रकार का गति में, हम प्रकार के देग भरते, पाना-पीना छोड़, पायाना-पेनाय छोड़, सोना और आराम करना छोड़, मों वर्ष की आयु तक जीना रह यरावर चलते रहकर भी लोक के अन्त को पाना पाये जीव ही में मर गया ।

भन्ते । आशय है, अद्भुत है । जो भगवान् ने इतना ठीक कहा— 'लोक के अन्त को चल-चलकर जाना, देवा या पाया जाना मैं नहीं यताता ।

आतुम ! मैं कहता हूँ कि—धिना लोक का अन्त पाये दुर्गों का अन्त करना सम्भव नहीं है । आतुम ! और यह भी कि—इसी स्वाम भर यना प्राण करने वाले कलेवर (= जर्जर) में लोक, लोक को उत्पत्ति, लोक का निरोध और लोक के निरोध करने का मार्ग, सभी मौजूद हैं ।

चल चलकर नहीं पहुँचा जा सकता, लोक का अन्त कभी भी,

और धिना लोक का अन्त पाये, दुःख में घुटकारा नहीं है ॥

इसलिये, बुद्धिमान् लोक को पहिचाने,

लोक के अन्त को पानेवाला, प्रह्लाचय धारण करनेवाला,

लोक के अन्त को ठीक में जान,

न लोक की आना करता है और न परलोक की ॥

§ ७. नन्द सुत्त (२. ३. ७)

समय थीत रहा है

एक ओर खड़ा हो नन्द देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

समय थीत रहा है, रातें निकल रही हैं,

(देखो १ १ ४)

§ ८. नन्दिविशाल सुत्त (२. ३. ८)

याधा कैसे होगी ?

एक ओर खड़ा हो नन्दिविशाल देवपुत्र ने भगवान् को गाथा में कहा—

चार चक्रों वाला, नव दूरवाजों वाला,***

(देखो १ ३ ९)

§ ९. सुनिम सुत्त (२. ३. ९)

आयुष्मान् सारिपुत्र के गुण

प्रावस्ती में ।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्द को भगवान् ने कहा—आनन्द ! तुम्हें सारिपुत्र सुहाता है न ?

भन्ते ! शूष, दुष्ट, मूढ़ और सनके आठमी को छोड़ कर भला ऐसा कौन होगा जिसे आयुष्मान् सारिपुत्र नहीं सुहायें ! भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र महाज्ञानी हैं, महाप्रज्ञ हैं, बड़े पण्डित हैं । आयुष्मान् सारिपुत्र की प्रज्ञा अत्यन्त प्रसन्न है । उनकी प्रज्ञा बड़ी तीक्ष्ण है । उनकी प्रज्ञा बड़ी तीक्ष्ण है । उनकी प्रज्ञा में पैटना आसान नहीं । भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र बड़े अल्पेच्छ हैं, सतोपी हैं, विवेकी हैं,

अनासक्त हैं उल्लाही हैं बत्ता हैं बचन-कुसल हैं बताने वाले हैं पाप की मित्रता करने वाले हैं । भन्ते ! मूर्ख हुए, मूढ़ और सनने भावनी का श्रेय कर भला ऐसा कील होगा जिसको आयुष्मान् सारियुत्र नहीं सुहायें ।

आनन्द ! ऐसी ही बात है । भला ऐसा कर्म होगा जिसको सारियुत्र नहीं सुहायें !

आनन्द ! सारियुत्र महाशानी है महाप्रज्ञ है ।

तब सुसिम देवपुत्र आयुष्मान् सारियुत्र के गुण कहे जाने के समय देवपुत्रों का बड़ी मारी मण्डली के साथ बहौं भगवान् के बहौं भावा और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर लड़ा हुआ गया । एक ओर लड़ा हो सुसिम देवपुत्र ने भगवान् का कहा—

भगवान् ! सुगत ! ऐसी ही बात है । भला ऐसा कर्म होगा जिसको आयुष्मान् सारियुत्र नहीं सुहायें ।

भन्ते ! आयुष्मान् सारियुत्र महाशानी है महाप्रज्ञ है ।

तब सुसिम देवपुत्र की मण्डली ने आयुष्मान् सारियुत्र के गुण कहे जाने के समय संतुष्ट प्रसन्न और प्रीति-युक्त हो प्रसन्न कान्ति धारण की । उसे छुम लक्ष्मी अतिवाधा लक्ष्मी तरह काम किया गया पीछे छनी कपड़ में कपेट कर रक्ता वैभूष्य मणि भासता है तपता है और चमकता है—

तब ही सुसिम देवपुत्र की मण्डली ने प्रसन्न कान्ति धारण की ।
 जैसे लक्ष्मी सोने का आयुष्मान् देव सुवर्णकार से बड़ी कारीगरी के साथ गढ़ा गया पीछे छनी कपड़े में कपेट कर रक्ता भासता है तपता है और चमकता है—जैसे ही सुसिम देवपुत्र की मण्डली ने प्रसन्न कान्ति धारण की ।

जैसे रात के मिनसारे औपधि-ताराका (छत्र तारा) जैसे ही सुसिम देवपुत्र की मण्डली ने प्रसन्न कान्ति धारण की ।

जैसे दरएकाध में बादल के दूट जाने और अल्पस शुद्ध जाने पर सूरज आकाश में चम सारी अभिपारी की दूर कर के भासता है तपता है और चमकता है—जैसे ही सुसिम देवपुत्र की मण्डली ने प्रसन्न कान्ति धारण की ।

तब सुसिम देवपुत्र ने आयुष्मान् सारियुत्र के विषय में भगवान् के पास यह गाथा कहा—

परिहृत और बड़ा ज्ञानी श्रेय-रहित सारियुत्र

अल्पेन्द्र सुरत ज्ञान्य अपि भिनने बुद्ध के तेज का काम किया है ॥

तब भगवान् ने आयुष्मान् सारियुत्र के विषय में सुसिम देवपुत्र को गाथा में यह कहा—

परिहृत और बड़ा ज्ञानी श्रेय-रहित सारियुत्र

अल्पेन्द्र, सुरत ज्ञान्य अपनी मज्जदूरी की राह देख रहा है ॥

१० नाना तिरियम सुच (२ ३ १०)

नाना तीर्थों के मत बुद्ध अगुभा

ऐसा मीने सुभा ।

एक समय भगवान् राजगृह के येसुवन कच्छक मित्राप में विहार करते थे ।

तब कुछ दूसरे मतवाक आकर देवपुत्र—मत्स्य मण्डली निक, भाकोडक वेदवहरी और माणय गामिय—रात कीतने पर अपनी चमक सं सारे देवपुत्र को चमक बहौं भगवान् के बहौं लड़े और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर लड़े हुए गये ।

एक ओर लड़ा हो अन्तम देवपुत्र पूर्ण कस्तप के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोका—

यदि कोई पुरुष भारे वा ऊढ़े,
या किसी को धर्बाउ कर दे—
तो कल्प उन्में अपना कौट पाप,
या पुण्य नहीं देखते ॥
उनमें विभक्त यात प्रताई ह,
वे सुर सम्मान के भाजन है ॥

तब, सहस्रती देवपुत्र मन्मथलि-गोखाल के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—
रुदिन तपश्चरण और पाप तुगुप्पा में न्यत,
मान, फल-सागी,
गान्त, बुराह्यो से बिरत, मत्त्ववार्ता,
उन जैसे कभी पाप नहीं कर सकते ॥

तब, निरु देवपुत्र निगण्ट नातपुत्र के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—
पाप में घृणा करने वाले, चतुर, मिथु,
चारों धाम में सुनवृत्त रहने वाले,
देखे सुने को कहते हुये,
उनमें भला क्या पाप हो सकता है ?

तब, आकोटक देवपुत्र नाना तीर्थों के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—
पकुध कालियान, निगण्ट,
और भी जो वे हैं मन्मथलि, पूरण,
श्रामण्य पाने वाले ये गण के नायक हैं,
ये भला मत्पुसो ने दूर कैसे हो सकते हैं ?

तब, वेटम्बरी देवपुत्र ने आकोटक देवपुत्र को गाथा में कहा—
हुँआं हुँआं कर राने वाला अठना मिचर,
सिह के समान कभी नहीं हो सकता,
नगा, झडा, यह गण का गुरु,
जिसकी चलन में मन्देह किया जा सकता है,
सजानों के सरीखा एकदम नहीं है ॥

तब, पापी मार वेटम्बरी देवपुत्र में पैठ भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—
तप और दुष्कर किया करने में जो लगे हैं,
जो उनको विचार पूर्वक पालन करते हैं,
और जो सांसारिक रूप में आसक्त हैं,
देवलोक में मजे उठाने वाले,
वे ही लोग परलोक बनाने का,
अच्छा उपदेश देते हैं ॥

तब, भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान डले गाथा में उत्तर दिया—
राजगृह के पहाड़ों में,

विपुल धड़ फटा जसा ह
 द्येते^१ हिमाक्षय में श्रेष्ठ है,
 भास्मल में पड़ने पाकों में सूरज,
 बछावों में समुद्र श्रेष्ठ है
 मद्यकों में चन्द्रमा,
 बीसे ही द्युताभों फ साय सारे लोक में
 बुद्ध ही मनुष्य बड़े जाते हैं ॥

दशपुत्र सयुक्त समाप्त

तीसरा परिच्छेद

३. कोसल-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम दर्ग

§ १. दहर युक्त (३. १. १)

चार को छोटा न समझे

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेनवन आराम में विहार करते थे ।

तब, कोसल-राज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् के साथ सम्मोदन कर आपभगत के शब्द समाप्त कर धुन और गैठ गया ।

एक ओर बैठे, कोसल-राज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—आप गौतम क्या अनुत्तर पूर्ण-बुद्धत्व पा लेने का दावा नहीं करते ?

महाराज ! यदि कोई किसी को सचमुच सम्यक् दहे तो वह मुझ ही को कह सकता है ।

महाराज ! मैंने ही उस अनुत्तर पूर्ण-बुद्धत्व का साक्षात्कार किया है ।

हे गौतम ! जो दूसरे श्रमण और ब्राह्मण हैं—सधवाले, गणी, गणाचार्य, धिख्यात, पशस्वी, तीर्थङ्कर, बहुत लोगों से सम्मानित जैसे, पूरण-करसप, भङ्गलि-गोसाल, निगण्ठ नात्तपुत्र, संजय वेलेट्टि पुत्र, पकुध कचायन, अजित केसरुधवली—वे भी मुझ से पूछे जाने पर अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व पाने का दावा नहीं करते हैं ! आप गौतम तो आयु में भी छोटे हैं और नये नरे प्रमजित भी हुए हैं ।

महाराज ! चार ऐसे हैं जिनको 'छोटे हैं' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नहीं । कौन से चार ? (१) क्षत्रिय को 'छोटा है' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नहीं, (२) सौंप को , (३) आग को , और (४) भिक्षु को । महाराज इन चार को—'छोटे हैं' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नहीं ।

भगवान् ने यह कहा । यह कह कर भगवान् बुद्ध ने फिर भी कहा—

जैसे कुल में उत्पन्न, धड़े, पशस्वी क्षत्रिय को,
'छोटा है' जान कम न समझे, उसका कोई अपमान न करे,
राज्य पादर क्षत्रिय नरेन्द्र-पद पर आरूढ़ होता है,
वह कुद्व होकर राज-शक्ति से अपना चढला ले लेता है,
दूसरिये, अपनी जान की रक्षा करते हुए बेपना करने से राज भाये ॥
गाँव में, या जगल में, कहीं भी जो सौंप को देखे,
'छोटा है' जान उसे कम न समझे, उसका अनादर न करे,

रंग विरंग के बने तेज सौंप बिखरते हैं
 असाहबान रहने वाले को टैम लेते हैं कमी पुदुप या की की
 इसकिये अपनी जान बचाते हुये बीमा करने से बाज आये ॥
 कपड़े में सब कुछ जसा देने वाली काले मार्ग पर चलने वाली भाग को
 "छाया है" जान कम न समझे कोई उसका अनादर न करे
 जम्बदन पाकर वह बहुत यही हा जाती है
 बढ़कर असाहबान रहने वाले का काल्य होती है की या पुदुप की
 इसकिये अपनी जान बचाते हुये बीमा करने से बाज आये ॥
 काले मार्ग पर चलने वाली भाग जिस सब को अलग देती है
 वहाँ कुछ काल्य अपनी होने पर हरियाली फिर भी छा जाती है ॥
 किन्तु जिस घासगन्ध मिश्रु अपने तेज स बरू देता है
 वह पुत्र पशु दापाय या सब कुछ भी नहीं पाता
 निःसम्मान निर्धन शिर कर लाल-बुझ-ना हो जाता है ॥
 इसकिये परिश्रम पुत्र अपनी भलाई का साधक कर
 सौंप भाग और पराधी छत्रिय
 आर हरिभयम्ब मिश्रु क साथ ठीक से पैसा धार्ये ॥

बढ़ बढ़ने पर कोससगात्र प्रसेनजित् भगवान् न योग्य—मन्त ! यथा ठीक कहा ! मन्ते ! जैसे
 उकट का सीपा कर न हँके को उधार दे भउक का राह दिया है, औपचारिक में सेल-प्रवीण दिया है—
 धौल्य वाले रूप दर के—बम ही भगवान् न अवेक प्रकार से धम की प्रकाशित कर दिया है । मन्ते !
 यह मैं भगवान् की शरण आता हूँ, धर्म की धार मिश्रु-संप की । मन्ते ! आज ये जन्म भर के किये
 मुस शरणागत का भगवान् उपासक श्रीकार परें ।

३० पुरिस मुसा (३ १ ०)

तीन अद्वितीय धम

आपली में ।

तब कोससगात्र प्रसेनजित् वहाँ भगवान् के बड़ा भावा और भगवान् का अभिवादन कर एक
 और बंद थापा ।

एक और बंद, कापालान प्रसेनजित् ने भगवान् का बंद कहा—मन्त ! पुत्र के कितने धम
 अन्धधम धर्म उन्धक होल है या उसके अद्वितीय पुत्र और कब क बिच हाते है ?

महााराज ! पुत्र के तीन धम अपना म धर्म उन्धक होल है जो उन्धक अद्वितीय पुत्र और कब क
 किये है । कब तीन ? (१) महााराज ! पुत्र का मोद अन्धधम धर्म उन्धक होल है या उसके अद्वितीय ।
 (२) महााराज ! पुत्र का उन्ध अन्धधम धर्म । (३) महााराज ! पुत्र को मोद अन्धधम धर्म ...।
 महााराज ! पुत्र क बड़ी मान लेय अन्धधम धर्म उन्धक होल है या उसके अद्वितीय पुत्र और कब
 क किये है ।

धोय रूप और माद

आरिण्य का न पुत्र का

आने ही अन्ध उन्धक हाकर जल कर देल है

उन्धे अन्ध ही कब केर के देर को ॥

§ ३. गजरथ सुत्त (३. १. ३)

मन्त-धर्म पुगना नहीं होता

श्रावस्ती में ।

एक और ब्रैट राजा राज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! क्या ऐसा ब्रूट है जो जन्म लेकर न पुगना होता हो और न मरता हो ।

महाराज ! ऐसा ब्रूट नहीं है जो न पुगता होता हो और न मरता हो । महाराज ! जो बड़े-बड़े ऊँचे क्षत्रिय-परिवार के हैं—धनदाय, धर्म-साधक, महाभोगवाले, जिनके पास मोना-चौड़ी अफगत हैं, धित्त, उपकरण, लक्ष्मी धान्य से सम्पन्न—ये भी जन्म लेकर बिना बड़े हुए और मरे नहीं रहते ।

महाराज ! जो बड़े ऊँचे क्षात्रिय-परिवार के हैं वे भी जन्म लेकर बिना बड़े हुए और मरे नहीं रहते ।

महाराज ! जो अर्थात् भिक्षु हैं—क्षीणाश्रय, जिनका व्यवचर्य-वास पुरा हो गया है, जिनने जो कुछ करना था कर लिया है, जिनका भार उनका चुका है, जो परमार्थ को प्राप्त हो चुके हैं । जिनका भव-वन्धन कट गया है, परम ज्ञान प्राप्त कर जा विमुक्त हो गये हैं—उनका भी शरीर ब्रूट जाता है और मरता ही जाता है ।

बड़े ब्राह्मण के राजा के रथ भी पुराने हो जाते हैं,
जहाँ शरीर भी दुःखा को प्राप्त हो जाता है,
जन्मों का धर्म पुगना नहीं होता,
मन्त लोग मरपुगना से ऐसा कहा करते हैं ॥

§ ४. पिय सुत्त (३. १. ४)

अपना प्यारा नहीं ?

श्रावस्ती में ।

एक और ब्रैट, कौमाल-राज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! यह, अकेला ब्रूट ध्यान करने जैसे मन में ऐसा चित्त उठता—“किनको अपना प्यारा है और किनको अपना प्यारा नहीं है ?” भन्ते ! तब मेरे मन में यह हुआ—“जो शरीर से दुराचार करते हैं, वचन से दुराचार करते हैं, मन से दुराचार करते हैं उनको अपना प्यारा नहीं है ?” यदि वे ऐसा कहे भी—“मुझे अपना प्यारा है” तब भी, सबसुख में उनको अपना प्यारा नहीं है ।

तो क्यों ? जो शत्रु शत्रु के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते हैं । इसलिये, उनको अपना प्यारा नहीं है ।

और, जो शरीर से सदाचार करते हैं, वचन से सदाचार करते हैं, मन से सदाचार करते हैं, उनको अपना प्यारा है । यदि वे ऐसा कहे भी—“मुझे अपना प्यारा नहीं है” तब भी सबसुख उनको अपना प्यारा है ।

तो क्यों ? जो मित्र मित्र के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते हैं । इसलिये उनको अपना प्यारा प्यारा है ।

महाराज ! गार्थ में ऐसा ही बात है । जो शरीर से दुराचार करते हैं इसलिये, उनको अपना प्यारा नहीं है । और, जो शरीर से सदाचार करते हैं इसलिये, उनको अपना प्यारा प्यारा है ।

जिसे अपना प्यारा है वह अपने को पाप में मत लगावे,

दुष्कर्म करनेवालों को मुक्त मुक्त नहीं होता ।
 मनुष्य-शरीर को छोड़ श्वायु के पत्र में आ गये का
 भया, क्या अपना होगा ! मरना यह क्या लेकर जाता है ।
 क्या उसने पीछे पीछे जाता है साथ न छोड़ने वाली छाया ड्रम !
 पाप और पुण्य दोनों जो मनुष्य यहाँ करता है
 वही उसका अपना होता है और उसी को लेकर यह जाता है
 वही उसके पीछे-पीछे जाता है साथ न छोड़न वाली छाया ड्रम ।
 इसलिये कल्याण कर अपना परलोक घवाते हुये ।
 पुण्य ही परलोक में मारिषी का आधार होता है ॥

§ ५ अक्षरविस्तृत मुक्त (३ १ ५)

अपनी रखवाली

एक और बेट कोशरु-नाथ प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—मन्ते ! यह अनेका बेट भ्याम करते मरे मर में पत्ता बितर्क उठा “किसने अपनी रक्षवाली कर ली है और किसने अपनी रखवाली नहीं की है ?”

मन्ते ! तब मरे मर में यह हुआ—जो शरीर से दुराचार करते हैं वचन से दुराचार करते व मन से दुराचार करते हैं उनमें अपनी रखवाली नहीं कर ली है । मरने ही उनकी रक्षा क लिये हाथी रथ और पैदाउ ठंवाल हों किन्तु जो भी उनकी रखवाली नहीं हुई है ।

तो क्यों ? बाहर की ही उनकी रक्षा हुई है आध्यात्म की नहीं । इसलिये उनकी अपनी रक्षवाली नहीं हुई है ।

जो शरीर से सदाचार करते हैं वचन से अपनी रखवाली कर ली है । मरने ही पैदाउ ठंवाल न हों किन्तु जो भी उनकी अपनी रखवाली हो गई है ।

तो क्यों ? आध्यात्मिक रक्षा उनकी हो गई है बाहर की नहीं हुई है । इसलिये उनकी अपनी रखवाली हो गई है ।

सहाराज ! बपार्थ में ऐसी ही बात है । जो शरीर से दुराचार करते हैं इसलिये उनका अपनी रखवाली नहीं हुई है और जो शरीर से सदाचार करते हैं इसलिये उनकी अपनी रखवाली हो गई है ।

शरीर का संवम डीऊ है वचन का संवम डीऊ है

मन का संवम डीऊ है सभी का संवम डीऊ है

पूर्व संवमि अज्ञातान् रक्षा कर किया गया कहा जाता है ॥

§ ६ अप्यक्त मुक्त (३ १ ६)

मिथौमी थोड़ ही हैं

भावस्ती में ।

एक और बेट कोशरु-नाथ प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—मन्ते यह अनेक्य बेट प्याम करने मरे मरमें पैगा बितर्क उठा—“सुतार में बहुत बौड़े ही पिये हैं जो बड़े बड़े भोग या मत्तबाक नहीं हो जाते हों मरत नहीं हो जाते हों बड़े कोमी नहीं बन जाते हों लोगों में दुराचरण नहीं करने लग जाते हों बटिक संसार में पैश ही कोय बहुत ह जो बड़े-बड़े भोग या मत्तबाक हो खाने हैं मरत हो जाते हैं बड़े कोमी बन जाते हैं और लोगों में दुराचरण करते लग जाते हैं ।

महाराज ! यथार्थ में पुंसी ही यात है । समार में बहुत थोड़े ही ऐसे हैं । काम-भोग में आरक्त, कामों के लोभ में अन्धा बने, किसी हठ की परवाह नहीं करते, मृग जैसे फँसाये जाल की, नतीजा कड़ुआ होता है, उसका फल दुःखद होता है ॥

§ ७ अत्थकरण सुत्त (३. १. ७)

कचहरी में झूठ बोलने का फल दुःखद

एक ओर बैठ, कोणलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—“भन्ते ! कचहरी में इन्साफ करते, मैं ऊँचे कुल के क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति,—बड़े धनाढ्य, मालदार, महाभोग वाले, जिनके पास मोमा-चाँदी अफरात है, वित्त, उपकरण, 'ग्न और धान्य से सम्पन्न—सभी को सात्वारिक कामों के चलते जान-बूझ कर झूठ बोलने देखता हूँ। भन्ते ! तब, मेरे मन में यह विचार हुआ, “कचहरी करना मेरा क्या रहे । क्या मेरे अनात्य ही कचहरी लगावे ।”

महाराज ! जो ऊँचे कुल के क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति जान-बूझ कर झूठ बोलते हैं, उनका चिरकाल तक अहित और दुःख होगा ।

काम-भोग में आरक्त, कामों के लोभ में अन्धा बने,
किसी हठ की परवाह नहीं करते, मल्लिक्यों जैसे पड़ गये जाल की,
नतीजा कड़ुआ होता है, उसका फल दुःखद होता है ॥

§ ८ मल्लिका सुत्त (३. १. ८)

अपने से प्यारा कोई नहीं

श्रावस्ती में ।

उस समय कोशलराज प्रसेनजित् अपनी रानी मल्लिका देवी के साथ महल के ऊपर वाले तल्ले पर गया हुआ था । तब, कोशलराज प्रसेनजित् ने मल्लिका देवी को कहा—मल्लिके ! क्या तुम्हें अपने से भी बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा है ?

नहीं महाराज ! मुझे अपने से भी बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है । क्या आप को महाराज, अपने से भी बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा है ?

नहीं मल्लिके ! मुझे भी अपने से बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है ।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् महल से उतर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! मैं अपनी रानी मल्लिका देवी के साथ महल के ऊपर वाले तल्ले पर गया हुआ था । • एग पर मैंने मल्लिका देवी को कहा—नहीं मल्लिके ! मुझे भी अपने से बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है ।

इसे जान, भगवान् ने मुँह से उस समय यह गाथा निकल पड़ी—

मभी दिशाओं में अपने मन को दौड़ा,
कहाँ भी अपने से प्यारा दूसरा कोई नहीं मिला,
वैसे ही, दूसरों को भी अपना बढ़ा प्यारा है,
इसलिये, अपनी भलाई चाहने वाला दूसरे को मत सतावे ॥

§ ९ यज्ञ सुच (३ १ ९)

पौंथ प्रकार के यज्ञ पीढ़ा और किंसा-नटिन यज्ञ ही हितकर

भावनी म ।

उस समय कोसकराज प्रसेनजित् की और म एक महायज्ञ होने था। पौंथ मी वैद पौंथ सी यज्ञ पौंथ सी यज्ञ-विर्वा पौंथ मी यज्ञ-विर्वा और पौंथ मी भेद सभी यज्ञ के जित् धूम में पौंथ थे । जो पास नीकर और भक्तपुरे ध म भी छोटी और भव मे धमकाय काजर भौम् गिराते रीत रीया रिया कर रहे थे ।

एक कुट्ट मिश्र सुचह में पहल और पात्र-बीधर के भावस्ती में पिण्डपात क सिध पैठ । भावनी में पिण्डाकरय से छोट, मोहन कर सेम पर जहाँ भगवान् थे वहाँ जाये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर पैठ गये ।

एक ओर बैठ उन मिश्रुओं मे भगवान् का कह कहा—मन्ते ! कोसकराज प्रसेनजित् की और से एक महायज्ञ होने बाक्य है । जौंयु गिराते रोते रीयारिया कर रहे द ।

इसे जान भगवान् क मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ी—

ब्रह्म-मेव पुरुष-मेध सम्बक पाया काजपय
निरांक योर ऐसी ही बड़ी-बड़ी करामाते
समी कर अष्ट्या फल नहीं होता इ ॥

मेध बन्दे और गीयें तरह-तरह क जहाँ मारे जाते हैं
सुमार्ग पर आरुह महर्षि लोग ऐसे पशु नहीं बताते हैं ।
किस पशु में ऐसी गुणें नहीं हाती इ सब अतुस्त्य पशु करते इ
मेध बन्दे और गीयें तरह-तरह क जहाँ नहीं मारे जाते
सुमार्ग पर आरुह महर्षि लोग ऐसे ही पशु बताते हैं
इतिमान् पुरुष ऐसा ही पशु करे इस पशु का महाफल है
इस पशु करमेवाये का अर्थवान होता है अहित नहीं
वह पशु मछान् होता इ देवता प्रसन्न होते हैं ॥

§ १० यज्ञ सुच (३ १ १०)

यज्ञ यन्धन

उस समय कोसकराज प्रसेनजित् ने बहुत लोगों की गिरफ्तार करवा लिया था । कितने रस्ती से और कितने लौक्य से बर्ब दिये गये थे ।

एक कुट्ट मिश्र सुचह में पहल और पात्र-बीधर के भावस्ती में निष्कारण क सिध पैठे । भावस्ती में निष्कारण से कौट, मोहन कर सेमे पर जहाँ भगवान् थे वहाँ जाये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर पैठ गये ।

एक ओर बैठ उन मिश्रुओं मे भगवान् को कह कहा—मन्ते ! कोसकराज प्रसेनजित् ने बहुत लोगों की गिरफ्तार करवा किया है । कितने रस्ती से और कितने लौक्य से बर्ब दिये गये हैं ।

इसे जान भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ी—

ऊपर। रंग-रूप से मनुष्य जाना नहीं जाता,
 फेवल देर कर ही किसी में विश्वास मत करे,
 बड़े संयम का भड़क दिवा कर,
 झुट लीग भी विचरण किया करते हैं ॥
 नकली, मिठी का उना भड़कदार कुण्डल के समान,
 या लोहे का बना और सोने का पानी चढ़ाया जैसे हो,
 कितने वैप बना कर विचरण करते हैं,
 भीतर से मेल और बाहर में चमकने ॥

§ २. पञ्चराज सुत्त (३. २. २)

जो जिसे प्रिय है, वही उसे अच्छा है

श्रावस्ती में ।

उस समय, प्रसेनजित् प्रमुख पाँच राजाओं के बीच, पाँचों काम-गुणों का भोग करते हुये, यह बात चली—काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है ?

उनमें से एक ने कहा—रूप काम-भोगों में सबसे बढ़िया है । उनमें से एक ने कहा—शब्द काम-भोगों में सबसे बढ़िया है । गन्ध बढ़िया है । रस बढ़िया है । स्पर्श बढ़िया है । वे राजा एक दूसरे को सम्झा नहीं सके ।

तब, कोशल-राज प्रसेनजित् ने उन राजाओं को कहा—हमलोग चलें । जहाँ भगवान् है वहाँ जाकर भगवान् से इस बात को पूछें । जैसा भगवान् बतावे वैसा ही हमलोग समझें ।

“बहुत अच्छा” कह, उन राजाओं ने कोशलराज प्रसेनजित् को उत्तर दिया ।

तब प्रसेनजित्-प्रमुख वे राजा जहाँ भगवान् थे वहाँ भाये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते ! हम पाँच राजाओं के बीच, पाँचों काम-गुणों का भोग करते हुए, यह बात चली—काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है ? एक ने कहा—रूप शब्द गन्ध रस स्पर्श । भन्ते ! मैं आप बतावें कि काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है ।

महाराज ! मैं कहता हूँ कि पाँच काम-गुणों में जिसको जो अच्छा लगे उसके लिये वही बढ़िया है । महाराज ! जो रूप एक के लिये अत्यन्त प्रिय होता है, वही रूप दूसरे के लिये अत्यन्त अप्रिय होता है । जिन रूप से एक सन्तुष्ट हो जाता है और उसकी इच्छायें पूरी हो जाती हैं, उन रूप से कहीं थड़-थड़कर भी दूसरा रूप उसे नहीं भाता है । वही रूप उसके लिये सर्वोत्तम और अलौकिक होते हैं ।

महाराज ! जो शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श एक के लिये अत्यन्त प्रिय ।

उस समय, चन्दनकलिक उपासक उस परिषद् में बैठा था । तब, चन्दनकलिक उपासक आपने आसन से उठ, उपरनी को एक कन्धे पर रसमाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर बोला—भगवान् ! मुझे कुछ कहने की इच्छा हो रही है ।

भगवान् बोले—तो चन्दनकलिक ! कहो ।

तब चन्दनकलिक उपासक ने भगवान् के सम्मुख अनुरूप गाथाओं में उनकी स्तुति की ।

वैसे सुन्दर कोकनद पत्र,

प्रातः काळ खिळा और सुगन्ध से भरा रहता है,

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १ अटिल मुक्त (१ २ १)

ऊपरी रूप-रंग न ज्ञानता कठिन

एक समय भगवान् धावस्ती में सुगारमाता के पूर्वोराम प्रासाद में विहार करते थे ।

उस समय साँस को प्यान से उठ भगवान् बाहर निकल कर बैठे थे ।

तब कोसल-राज प्रमेतकित् वहाँ भगवान् से वहाँ व्याप्य और भगवान् का जमिवात्न कर एक ओर बैठ गया ।

उस समय सात जटिक सात त्रिगण्ड सात नागी, सात पृकप्रदिङ्ग और सात परित्राजक कर्क के रोमें और भावून बन्धने अपने विविध प्रकार के सामाज कित् भगवान् के पास से ही गुजर रहे थे ।

तब प्रसन्नकित् ने आसन से उठ पृक कन्धे पर ऊपरी को र्त्तमाक चाहिने हुटने को जमीन पर डेरु किरर वे सात जटिक के पचर हाथ जीवकर तीन बार अपना श्रम सुनाय—भन्ते ! मैं राका मसेवजिन् हूँ ।

तब राका उस सात जटिकों के निकल जाने के बाद ही वहाँ भगवान् से वहाँ व्याप्य और भगवान् का जमिवात्न कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ राका ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! लोक में जो अर्हत हैं या अर्हत-मार्ग पर जाकर अपने वे एक हैं ।

महाराज ! आपने—जो पुरुष काम भोगी पाक-बच्चों में रहनेवाके काकी के चन्द को लगावे चाहे माक-गन्ध और उबटन का इस्तेमाक करनेवाके, अपने-यैसे बटोरने वाले हैं—यह गकत समझ किवा कि वे अर्हन् या अर्हन्-मार्ग पर जाकर हैं ।

महाराज ! साथ रहने ही से किसी का भीच जाया जा सकता है, सो भी बहुत कम तक रह, प्ये नहीं । सो भी सदा प्यान में रहने से ऐम नहीं, सो भी प्रशावान् पुरुष से ही अपशावान् से नहीं ।

महाराज ! व्यवहार ही स किसी की ईमावतारी का पता लगता है, सो भी बहुत कम के बाद प्ये नहीं, सो भी सदा प्यान में रहने से ऐस नहीं, सो भी प्रशावान् पुरुष से ही अपशावान् से नहीं ।

महाराज ! विपदि पक्षे पर ही मनुष्य की खिरता का पता लगता है, अपशावान् से नहीं ।

महाराज ! बात भीत करने पर ही मनुष्य की प्रशा का पता लगता है— अपशावान् से नहीं ।

भन्ते ! अधर्ष ही अर्हन्त है । भगवान् ने हीक बताया कि— यह गकत समझ किवा कि वे अर्हन् या अर्हन् के मार्ग पर जाकर हैं । साथ रहने ही से— अपशावान् से नहीं ।

भन्ते ! वे पुरुष मेरे गुत्तर हैं भेषिवा है, किसी जगह का भेद लेकर ब्याते हैं । उनसे पहले मैं अर्ह केकर पीछ पैसा ही समझता-सुझता हूँ ।

भन्ते ! जब वे उस मम्म भजून को धो, स्नान कर उबटन लगा वाक बनना उठके बच रहन, पाँच काय-गुणों का भोग करेंगे ।

इसे जान भगवान् के मुँह से उस समय यह शावासे निकल पड़ी—

कोशलराज प्रसेनजित् ने सुना कि मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने धावा मार दिया है ।

तब कोशलराज प्रसेनजित् भी चतुरङ्गिणी सेना ले काशी में मगधराज अजातशत्रु के सामने आ डटा ।

तब दोनों में बड़ी भारी लड़ाई छिड़ गई । उस लड़ाई में मगधराज ने कोशलराज को हरा दिया । हार खा, कोशलराज प्रसेनजित् अपनी राजधानी श्रावस्ती को लौट गया ।

तब कुछ भिक्षु सुगम में पान और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पड़े । भिक्षाटन में लोट भोजन कर लेने के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—

भन्ते ! मगधराज ने काशी पर धावा मार दिया । हार खा, कोशलराज प्रसेनजित् अपनी राजधानी श्रावस्ती को लौट आया ।

भिक्षुओ ! मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र घुरे लोगों से मिलने-जुलने वाला और बुराइयों को ग्रहण करने वाला है । और कोशलराज प्रसेनजित् भले लोगों से मिलने-जुलने वाला और भलाईयों को ग्रहण करने वाला है । भिक्षुओ ! किन्तु, हार खाये कोशलराज प्रसेनजित् की यह रात भारी गम में बीतेगी ।

जीत होने से बँर बढ़ता है,
हारा हुआ गम से सोता है,
शान्त हो गया पुरुष सुख से रहता है,
हार-जीत की बातों को छोड़ ॥

§ ५ दुतिय सङ्ग्राम सुत्त (३ = ५)

अजातशत्रु की हार, लुटेरा लूटा जाता है

तब मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने चतुरङ्गिणी सेना को मात्र कोशलराज प्रसेनजित् के विरुद्ध काशी पर धावा मार दिया ।

कोशलराज प्रसेनजित् ने सुना कि मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने धावा मार दिया है ।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् भी चतुरङ्गिणी सेना ले काशी में मगधराज अजातशत्रु के सामने आ डटा ।

तब, दोनों में बड़ी भारी लड़ाई छिड़ गई । उस लड़ाई में कोशलराज प्रसेनजित् ने मगधराज को हरा दिया और जीता गिरफ्तार भी कर लिया ।

इस पर, कोशलराज प्रसेनजित् के मन में यह हुआ—भले ही मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने कुछ भी नहीं करने वाले मेरे विरुद्ध कुछ करना चाहा, तो भी तो मेरा भाङ्गा होता है । तो, क्यों न मैं उसकी चतुरङ्गिणी सेना को छीन उसे जीता ही छोड़ दूँ ।

तब, कोशलराज ने मगधराज को जीता ही छोड़ दिया ।

तब, कुछ भिक्षु भगवान् के पास आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—

भन्ते ! तब, कोशलराज प्रसेनजित् ने मगधराज अजातशत्रु को जीता ही छोड़ दिया ।

इसने जान, भगवान् के मुँह से उस समय यह गायार्थ निकल पड़ी—

अपनी मरजी भर कोई लड़ता है,
किन्तु, जब दूसरे लड़ने लगते हैं,
तो वह लड़ने वाला लूटा जाता है,

बस ही उन आंखों में कुछ अजीबता को देखो

आकाश में तपते हुए अद्वैत के पैरों ।

तब उन पाँच राजाओं ने खम्बू-संज्ञक उपनाम की पाँच बच्चों में किये ।

तब उन पाँच बच्चों की खम्बू-संज्ञक नै भगवान् की सेवा में अर्पण किया ।

§ ३ दोषपाक सुच (३ ० ३)

माया से मोक्षम करे

आवस्ती में ।

उस समय कोशकराज प्रसेनजित् जेल भर भोजन करता था । तब कोशकराज प्रसेनजित् भोजन कर खम्बी-खम्बी साँस लेते वहाँ भगवान् से वहाँ जाया और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया ।

तब कोशकराज प्रसेनजित् को भोजन कर खम्बी-खम्बी साँस लेते देखकर भगवान् के मुख से उस समय यह गाथा निकल पड़ी—

मया स्थितिमान् रहने वाले

प्राप्त भोजन में मात्रा जानने वाले

उस अनुभव की बचनार्थ कम होती है

(यह भोजन) ज्ञान को पाकना हुआ पीरे-पीरे इजम होता है ॥

उस समय सुवर्दान् मालवक राजा के पीछे खड़ा था ।

तब राजा से सुवर्दान् मालवक को आमन्त्रित किया—तात सुवर्दान् ! भगवान् से तुम यह गाथा सीख लो । मैंने भोजन करने के समय यह गाथा पढ़ना । इसक लिये बराबर प्रतिष्ठित तुम्हें सी बहापल (अर्थात्पक्ष) सिद्ध करेंगे ।

“सहारा ! बहुत अर्जुन” कह सुवर्दान् मालवक ने राजा को उत्तर द भगवान् से उस गाथा की सीख राजा के भोजन करने के समय कहा करता—

मया स्थितिमान् रहने वाले

प्राप्त भोजन में मात्रा जानने वाले

उस अनुभव की बचनार्थ कम होती है

(यह भोजन) ज्ञान को पाकना हुआ पीरे-पीरे इजम होता है ॥

तब राजा अमसः नासिक भर ही भोजन करने लगा ।

तब कुछ समय के बाद राजा का शरीर बड़ा सुडीका और गठीका हो गया । अपने गालों पर झप करने हुए राजा के मुख से उस समय उदात्त के यह शब्द निकल पड़े—

अरे ! भगवान् ने दोनों तरफ से मुझ पर अनुकम्पा की है—इस लंक की बाला में और परलोक की बालों में भी ।

§ ४ पत्रम सङ्ग्राम सुच (३ ० ४)

सङ्ग्राम की दो बातें प्रसेनजित् की हार

आवस्ती में ।

तब सगणपति अज्ञानराज परदेहिपुत्र ने अनुकम्पित गता का मात्र संशयपत्र प्रसेनजित् के बिन्दु कान्नी पर आका मार दिया ।

॥ शङ्कर-न्यायक लखन । फिरके अंगी में अर्धशत विचरती है—अहमदा ।

इसीलिए, हाथी का पैर दबा होने में सशक्त अगुआ माना जाता है । महाराज ! इन्हीं तरह, यह एक धर्म लोक और परलोक दोनों की यात में समान रूप से आवश्यक शरत है ।

आयु, आरोग्य, धर्म, स्वर्ग, उच्चकुलीनता, और अधिकाधिक सुख पाने की इच्छा रखने वालों के लिये, पुण्य कर्मों में पण्डित लोग अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं, अप्रमत्त पण्डित दान्त अर्थों को पा लेता है, जो अर्थ लौकिक हैं और जो अर्थ पारलौकिक हैं, अर्थ को जान लेने में वह धीरे धीरे पुण्य पण्डित बना जाता है ॥

§ ८. दुतिय अप्पमान् सुत्त (३. २. ८)

अप्रमाद के गुण

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ, कोशलाज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा । भन्ते ! एकान्त में ध्यान करते मेरे मन में ऐसा चिन्तन उठा—भगवान् ने धर्म को दया अच्छा समझाया है । किन्तु, वह भले लोगों के साथ रहने तथा मिलने जुलने वालों के लिए ही है । बुरे लोगों के साथ रहने तथा मिलने-जुलने वालों के लिए नहीं है ।

महाराज ! ठीक मैं ऐसी ही बात है । मैंने धर्म को दया अच्छा समझाया है । किन्तु वह भले...

महाराज ! एक समय मैं श्रावण-जनपद में श्रावणों के एक कस्ये में विहार करता था । तब, आनन्द भिक्षु जहाँ मैं था वहाँ आया और मेरा अभिवादन करके एक ओर बैठ गया । महाराज ! एक ओर बैठ, आनन्द भिक्षु ने मुझे कहा—

“भन्ते ! ब्रह्मचर्य का करीब आया तो भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में ही होता है ।”

महाराज ! इसपर मैंने आनन्द भिक्षु को कहा—ऐसा मत कहो आनन्द ! ऐसी बात नहीं है । ब्रह्मचर्य का बिल्कुल ही भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में टिका है । आनन्द ! भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहनेवाले भिक्षु ये ही अर्थात् अष्टादिक मार्ग के विचारपूर्ण अभ्यास करने की आशा की जा सकती है ।

आनन्द ! भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने वाला भिक्षु अर्थात् अष्टादिक मार्ग का कैसे अभ्यास करता है ?

आनन्द ! भिक्षु विवेक, वैराग्य, निरोध तथा त्याग लाने वाली सम्यक् दृष्टि की भावना करता है, सम्यक् संकल्प की भावना करता है, सम्यक् वाक् की भावना करता है, सम्यक् कर्मान्त की भावना करता है, सम्यक् आजीव की भावना करता है, सम्यक् ध्यायाम की भावना करता है, सम्यक् स्मृति की भावना करता है, सम्यक् समाधि की भावना करता है—विवेक-दायक, वैराग्य-दायक, निरोध-दायक तथा त्याग-दायक । आनन्द ! इसी तरह, भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने वाला भिक्षु अर्थात् अष्टादिक मार्ग का अभ्यास करता है ।

आनन्द ! इस प्रकार, यह समझ लेना चाहिये कि ब्रह्मचर्य का बिल्कुल ही भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में टिका है ।

आनन्द ! सुख ही भले मित्र (कल्याण-मित्र) के साथ रह, जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी जन्म से मुक्त हो जाते हैं, बड़े होने वाले प्राणी बुढ़ापा से मुक्त हो जाते हैं, क्षीण होने वाले प्राणी क्षय से मुक्त हो जाते हैं, मरने वाले प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं, षोक करने वाले, रोने पीटने वाले, दुःख और

सूख समझता है—हाथ मार किया !
 तभी तक जब तक उसका पाप बर्ही चलता है,
 किन्तु, जब पाप अपना गतीजा करता है,
 तब सूख हुआ ही मुक्त पाया है ॥
 मारने वाले को मारने वाला मिळता है
 बीतने वाले को जीतने वाला मिळता है
 गाडी चूने वाले को गाडी चूने वाला (भीर)
 बिगड़ने वाले को बिगड़ने वाला,
 इस तरह अपने किये कर्म के फेर में पक
 छड़ने वाला छड़ा जाता है ॥

§ ६ धीतु सुच (२ २ ६)

स्त्रियाँ भी पुरुषों से घेष्ट होती हैं

श्रावस्ती में ।

तब कोसकराज प्रसेनजित् बर्ही भगवान् से बर्ही ज्यथा भीर भगवान का अभिवादन कर एक
 ओर बैठ गया ।

तब, कोई आदमी बर्ही कोसकराज प्रसेनजित् या बर्ही गया भीर कान में पुनःपुनः कर बोका—
 महापाम ! मस्तिष्क वैचो को छपकी पचा हुई है ।

उसके ऐसा कहन पर कोसकराज का मन गिर गया ।

कोसकराज प्रसेनजित् के मनको गिरा देक भगवान् के मुँह से उम समन यह गावाने निकक पर्वी—

राज ! कोई-कोई स्त्रियाँ भी पुरुषों से बड़ी बड़ी
 बुद्धिमती कीकबती माम की सेवा करने वाली भीर पतिव्रता होती हैं,
 जता पाकन-पोषन कर ॥

स्त्रियाँ को जीतने वाला महा मूरभीर उससे पुत्र पैदा होता है,
 बेसी लच्छी की का पुत्र राज्य का अनुसामक करता है ॥

§ ७ अप्पमाद् सुच (३ २ ७)

अपमाम् के शुष्य

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ, कोसकराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—अन्ते ! क्या ऐसा कोई एक कर्म है
 जो लोक भीर परलोक दोनों की बात में समाज कर से आचरनक दहरता हो ?

हाँ महाराज ! ऐसा एक कर्म है जो लोक भीर परलोक दोनों की बात में समाज कर्म से आचरनक
 दहरता है ।

अन्ते ! वह कर्म-मा धर्म है जो लोक भीर परलोक दोनों की बात में समाज कर्म से आचरनक
 दहरता है ?

महाराज ! अपमाम् एक कर्म है जो लोक भीर परलोक दोनों की बात में समाज कर्म से आचरनक
 दहरता है । महाराज ! पृथ्वी पर रहनेवाले कितने लोग हैं सभी के पैर हाथी के पैर में चले जाते हैं ।

में आये बेकार ही नष्ट हो जायगा । महाराज ! ऐसी तरह, तुम्हें लोग बहुत भोग पाकर भी उतने सुख नहीं उठा सकते । बिना भोग किया गया धन बेकार में नष्ट हो जाता है ।

महाराज ! भले लोग बहुत भोग पाकर उतसे न्यय सुख उठाते हैं, माता-पिता को सुख देते हैं, धर्मण ब्राह्मणां को दान-वृक्षिणा देते हैं । इम प्रकार, उनके भली भोति भोग किये धन को न तो राजा ले जाने हैं, न चोर चुरा लेंते हैं, न भाग । महाराज ! ऐसा होने से, उनका भली भोति भोग किया गया धन सफल होता है, बेकार नहीं जाता ।

महाराज ! किसी गौय वा कश्ये से पाय ही एक प्रायजी हो रमणीय । उतके जल् को आदर्मा ले जाये धार प्रयोग में लायें । महाराज ! इम तरह उसका जल् काम में आते रहने में सफल होता है बेकार नहीं जाता है । महाराज ! इसी तरह भले लोग बहुत भोग पाकर उतमें स्वय सुख उठाते हैं । माता पिता को सुख देते हैं । महाराज ! ऐसा होने से उनका भली भोति भोग किया गया धन सफल होता है, बेकार नहीं जाता ।

अ-मनुष्य (= भूत-प्रेत) वाले स्थान में जैसे प्रांतल जल,

दिना पीया जाकर ही मूय जाता है,

ऐसे ही, तुम्हें लोग धन पाकर,

न तो अपने भोग करते हैं और न दान देने हे ॥

जो धीर और विज्ञ पुरुष भोगों को पा,

भोग करता और कामों में लगाता है,

वह उत्तम पुरुष अपने प्राति-समूह का पोषण करके,

निन्द्य रहित हो स्वर्ग-स्थान को जाता है ॥

§ १०. दुतिय अपुत्तक सुत्त (३२ १०)

कंजूसी त्याग कर पुण्य करे

श्रावस्ती में ।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् दुपहरिये में जहाँ भगवान् थे वहाँ जाया, ओर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये कोशलराज प्रसेनजित् की भगवान् ने कहा— महाराज ! इस दुपहरिये में भला, आप कहाँ में आ रहे हैं ?

भन्ते ! यह श्रावस्ती का मेढ साँ लाख अशकियाँ, रुपयों की तो बात क्या ? पत्तों की छावनी वाले जर्जर रथ पर निकला करता था ।

महाराज ! ठीक में ऐसी ही बात है । महाराज ! बहुत पहले, उस सेठ ने तगरसिखि नाम के प्रत्येक बुद्ध को भिक्षा दिलवाई थी । “श्रमण को भिक्षा दो” कह, वह उठ कर चला गया । बाद में, उसे पश्चात्ताप होने लगा—अच्छा होता कि नीकर-पाकर ही भिक्षा में दिये गये इस अन्न को खाते । इसके अलावे, उसने धन के लिये अपने भाई के इकलौते पुत्र की हत्या कर दाखी थी ।

महाराज ! उस सेठ ने तगरसिखि नाम के प्रत्येक बुद्ध को जो भिक्षा दिलवाई थी उस पुण्य के फलस्वरूप उसने सात धार स्वर्ग में जन्म लेकर सुगति पाई । उस पुण्य के क्षीण हो जाने पर उसने सात धार इसी श्रावस्ती में सेटाई की ।

महाराज ! भिक्षा देने के बाद, उसे जो पश्चात्ताप हुआ—अच्छा होता कि नीकर पाकर ही भिक्षा में दिये गये इस अन्न को खाते !—उसी के फल-स्वरूप उसका चित्त अच्छे-अच्छे भोजनों की ओर नहीं झुकता है, अच्छे-अच्छे वस्त्रों की ओर नहीं झुकता है, अच्छी-अच्छी सब-चियों की ओर नहीं झुकता है, अच्छे-अच्छे पाँच काम-गुणों की ओर नहीं झुकता है ।

बेचैनी में पड़ रहने बाक परशानी में पड़ रहने बाक प्राणी प्राक परशानी से मुक्त हो जाते हैं। आनन्द ! इस प्रकार से जान जना चाहिये कि ब्रह्मचर्य का विस्तृत ही अस श्लोकों के साथ मिलने-जुलने और रहन में दिखे है।

महाराज ! इसलिये आप भी यहाँ रहिये। भक्त लोग के साथ ही मिल-जुलना आपके लोगों के साथ ही रहेगा। महाराज ! इसलिये आप का ब्रह्मचर्य-धर्म से अभिमान रहने के लिये सीखना चाहिये।

महाराज ! आपके अभिमान-पूर्वक बिहार करने से आपकी रानिया के मन में बह डाला—राम अभिमान पूर्वक बिहार करते हैं; तां इस लोग का भी अभिमान-पूर्वक ही बिहार करना चाहिये।

महाराज ! आपके जयलाल शास्त्रियों के भी मन में बह डाला।

महाराज ! गौतम और शहर बाक के भी मन में बह डाला।

महाराज ! इस तरह आपके अभिमान पूर्वक बिहार करने से आप स्वयं मरण रहा शिवा भी संवत रहेगी तथा आप का लज्जा भी मरण भी संवत रहेगा।

अधिकारिक लोग की हृष्टता रखने बाक के लिये

पुनः क्रियाओं में परिष्कृत लोग अभिमान की प्रतीक्षा करते हैं

अभिमान परिष्कृत लोगों अर्थों का काम करता है

इस बाक में जो अर्थ है और जो पारलौकिक अर्थ है

धीरे धीरे अपने अर्थ का ही जन्म से परिष्कृत कहा जाता है ॥

५६ अष्टक सुग (३ ९)

कर्मस्ती न कर

आवस्ती में।

तब कोजलराज प्रसेनजित् बुधरिसे में जहाँ भगवान् न जहाँ आपा और भगवान् का जन्म बाध कर एक और बैठ गया।

एक और बैठे बुध काकराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! हम बुधरिसे में क्या मन्त्र कहेंगे से जा रहे हैं ?

मन्त्र ! वह आवस्ती का सेठ बुधरिसे मर गया है। उस मन्त्र के मत को राकमदक भेजना कर में जा रहा है। मन्त्र ! अस्ती काक जहाकिरी, बुधरिसे की तो क्या बात ! मन्त्र उस मन्त्र का वह मीकन होता था—बुध बर महा के साथ तुही का बात जाता था। वह ऐसा कपडा पहनता था—तीन जोड़ा कर यह पहनता था। इसकी ऐसी मन्त्रारी होती थी—पत्ता की काकनी बाके कर्मर एव पर निकला करता था।

हाँ महाराज ! शीक ऐसी ही बात है। महाराज ! इस लोग बहुत लोग पर कर भी जमसे सुख नहीं पा सकते हैं न सावा पिवा का सुख देते हैं न ली-बच्चों को सुख देते हैं न मीकन काकरी को सुख देते हैं न शोन्-मुहरी का सुख देते हैं न जमज-जाहजा को सुख देते हैं जिससे अच्छी गति हो और स्वर्ग तक सुख मिले। इस प्रकार उनके बिना लोग किये सब को वा ठा राजा के कपड़े हैं वा और लुटा लेते हैं वा जग जहा देते हैं वा पानी बहा के जाता है वा अग्नि लोगों का हा जाता है। महाराज ! ऐसा होने से बिना साग किया गया अब केकर में तब हो जाता है।

महाराज ! कोई बिना न्यान में एक बाकही हो लच्छक एक बाकी सौलक एक बाकी आनन्दक एकबाकी साक धारों बाकी समीक। उसक बाक को न ती कर्म अर्थात् के जाव न पिये; न उससे स्वान करे न जगकी और किन्ती प्रयोग में कोई लये। महाराज ! हम तब जगना जग बिना किन्ती काम

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

§ १. पुगल सुच (३. ३. १)

चार प्रकार के व्यक्ति

श्रावस्ती में ।

तब कोशलराज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुए कोशलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! सत्सार में चार प्रकार के लोग पाये जाते हैं । कौन से चार प्रकार के ? (१) तम-तम-परायण, (२) तम-ज्योति-परायण, (३) ज्योति-तम-परायण, (४) ज्योति-ज्योति-परायण । महाराज ! कोई पुरुष तम-तम-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष नीच कुल में पैदा होता है, चण्डाल-कुल में, वेन-कुल में, निपाद-कुल में, रथकार-कुल में, पुक्कुस-कुल में, दरिद्र और बड़ी तंगी से रहनेवाले निर्धन-कुल में । जहाँ खाना-पीना बड़ी तंगी से मिलता है । वह दुर्वर्ण, न देखने लायक, नाटा और मरीज होता है । वह काना, लल्ला, लँगड़ा या लुझ होता है । उसे अन्न, पान, वस्त्र, सवारी, भाला, गध, विलेपन, शय्या, घर, प्रदीप कुछ नहीं प्राप्त होता है ।

वह शरीर से दुराचरण करता है, वचन से दुराचरण करता है, मन से दुराचरण करता है । इन दुराचरण के कारण यहाँ से मर कर अपाय में पद बड़ी दुर्गति को पाता है । महाराज ! जैसे कोई पुरुष एक अन्धकार से निकल कर दूसरे अन्धकार में पड़ता है, एक तम से निकलकर दूसरे तम में पड़ता है, एक खून के मल से निकलकर दूसरे में पड़ता है, वैसी ही गति इस पुरुष की होती है । महाराज ! ऐसे ही कोई पुरुष तम-तम-परायण होता है ।

महाराज ! कोई पुरुष तम-ज्योति-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष नीच-कुल में पैदा होता है कुछ नहीं प्राप्त होता है ।

वह शरीर से सदाचार करता है, वचन से, सदाचार करता है, मन से सदाचार करता है । इन सदाचार के कारण, यहाँ से मर कर स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करता है । महाराज ! जैसे कोई पुरुष जमीन से खाट पर चढ़ जाय, खाट से धोड़े की पीठ पर, धोड़े की पीठ से हाथी के हौदे पर, हाथी के हौदे से महल पर, वैसी ही बात इस पुरुष की है । महाराज ! इसी तरह कोई पुरुष तम-ज्योति-परायण होता है ।

महाराज ! कोई पुरुष ज्योति-तम-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष ऊँचे कुल में उत्पन्न होता है, ऊँचे क्षत्रिय-कुल में, ब्राह्मण-कुल में, गृहपति-कुल में, धनाढ्य, महाधन, महामोग वाले कुल में । वह सुन्दर, दर्शनीय, साफ और बड़ा रूपवान् होता है । अन्न-पान यथेच्छ लाभ करता है ।

महाराज ! उस सेठ ने धन के किये जो अपने भाई के इकसोते पुत्र की हरपा कर डाक़ी पी उसके फलस्वरूप बहू हुआरां भार कसलों बर्य तक मरक में पचता रहा । उसी क फलस्वरूप मित्ता रहकर उसका धन सातवें बार राज कीप में चरुा गया । महाराज ! उस सेठ का पुण्य समाप्त हो गया है, धीर मया भी कुछ संभित नहीं है । महाराज ! क्या यह सेठ महा रीरक मरक में पक रहा है ।

मन्ते ! इस तरह बहू सेठ महा रीरक मरक में उत्पन्न हुआ है ?

हाँ महाराज ! इस तरह बहू सेठ महा रीरक मरक में उत्पन्न हुआ है ।

धन धान्य चाँदी सोना

धीर भी जो कुछ सामान है

धीकर धाकर, मङ्गलू तथा धीर भी दूसरे सहारे रहने वाले हैं

सब को साथ धेकर नहीं जाना होता है

समी को नहीं छोड़ जाना होता है ॥

जो कुछ क्षरित हो करता है बचप से पा बिच से

बही ठमका अपना होता है धीर उसी को धेकर जाता है

बही उसके पीछे-पीछे जाता है पीछे-पीछे जाने वाली क्रिया के समाप्त ॥

इसकिये पुण्य करे, परकोक बनाने,

परकीक में पुण्य ही माणियों का आधार होता है ॥

द्वितीय धर्म समाप्त

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

१. पुग्गल सुत्त (३. ३. १)

चार प्रकार के व्यक्ति

श्रावस्ती में ।

तब कोशलराज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुए कोशलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! संसार में चार प्रकार के लोग पाये जाते हैं । कौन से चार प्रकार के ? (१) तम-तम-परायण, (२) तम-ज्योति-परायण, (३) ज्योति-तम-परायण, (४) ज्योति-ज्योति-परायण । महाराज ! कोई पुरुष तम-तम-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष नीच कुल में पैदा होता है, घण्टाल-कुल में, वेन-कुल में, निपाद-कुल में, रथकार-कुल में, पुष्कल-कुल में, वरिद्र और चर्षी तगी से रहनेवाले निर्यत-कुल में । जहाँ खाना-पीना घड़ी तगी से मिलता है । वह दुर्वर्ण, न देखने लायक, नाटा ओर मरीज होता है । वह काना, छल्ला, लँगड़ा या लूँघा होता है । उसे अन्न, पान, पक्ष, मवारी, माला, गध, विलेपन, शय्या, घर, प्रदीप कुछ नहीं प्राप्त होता है ।

वह शरीर से दुराचरण करता है, वचन से दुराचरण करता है, मन से दुराचरण करता है । इन दुराचरण के कारण वहाँ से मर कर अपाय में पड़ बड़ी दुर्गति को पाता है । महाराज ! जैसे कोई पुरुष एक अन्धकार से निकल कर दूसरे अन्धकार में पड़ता है, एक तम से निकलकर दूसरे तम में पड़ता है, एक खून के मल से निकलकर दूसरे में पड़ता है, वैसी ही गति इस पुरुष की होती है । महाराज ! ऐसे ही कोई पुरुष तम-तम-परायण होता है ।

महाराज ! कोई पुरुष तम-ज्योति-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष नीच-कुल में पैदा होता है कुल नहीं प्राप्त होता है ।

वह शरीर से सदाचार करता है, वचन से सदाचार करता है, मन से सदाचार करता है । इन सदाचार के कारण, वहाँ से मर कर स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करता है । महाराज ! जैसे कोई पुरुष जमीन से खाट पर चढ़ जाय, खाट से घोड़े की पीठ पर, घोड़े की पीठ से हाथी के हौदे पर, हाथी के हौदे से महल पर, वैसी ही बात इस पुरुष की है । महाराज ! इती तरह कोई पुरुष तम-ज्योति-परायण होता है ।

महाराज ! कोई पुरुष ज्योति-तम-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष ऊँचे कुल में उत्पन्न होता है, ऊँचे क्षत्रिय-कुल में, ब्राह्मण-कुल में, गृहपति-कुल में, धनाढ्य, महाधन, महाभोग वाले कुल में । वह सुन्दर, दर्शनीय, साफ और बधा रूपवान् होता है । वध-पान बयेछ लाभ करता है ।

महाराज ! वह शरीर से दुराचार्य करता है । इन दुराचार के कारण यहाँ से मर कर अपना में पद कुर्वति को प्राप्त होता है ।

महाराज ! जैसे कोई पुरुष महक से हाथी के हीने पर उठर आये हाथी के हीने से बोने की पीठ पर बोने की पीठ से पाद पर लाट से जमीन पर, जमीन से अल्पकर में; पीसी ही बात इस पुरुष की है । महाराज ! इसी तरह कोई पुरुष ज्योति-तम-परायण होता है ।

महाराज ! कैसे कोई पुरुष ज्योति-ज्योति-परायण होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष उँचे कुक में उत्पन्न होता है । वह शरीर से महाचार करता है स्वर्ग में उ पक्ष हो सुगति को प्राप्त करता है । महाराज ! जैसे कोई पुरुष जमीन से लाट पर पक्ष ज्ञाय महक पर; वैसी ही बात इस पुरुष की है । महाराज ! इसी तरह कोई पुरुष ज्योति-ज्योति-परायण होता है ।

महाराज ! संसार में इतने प्रकार के पुरुष होते हैं—

हे राजन् ! (जो कोई) इन्द्रिय पुरुष अज्ञात कर्मज्ञ मन्कीचूस पाप-संकर्मोंवाला झूठे मत मानने वाला पुण्य कर्मों में लापर-रहित होता है अज्ञान आशय अथवा दूसरे भी पापकों को डाँटता और याचिकाँ देता है ओधी नास्तिक होता है मॉगने वालों को मोहन देते हुए रोकरता है ।

हे राजन् ! हे जलाधिप ! उस प्रकार का पुरुष तम-तम परायण है; वह यहाँ से मर के धोर नरक में पड़ता है ।

हे राजन् ! (जो कोई) इन्द्रिय पुरुष अज्ञात कर्मज्ञ-रहित होता है दान देता है अथ संकर्मों वाला अल्पमत मन वाला पुरुष अज्ञान आशय अथवा दूसरे पापकों को भी उठकर अभिवादन करता है संयम का अत्यास करता है मॉगने वालों को मोहन देते हुए मना नहीं करता ।

हे राजन् ! इस प्रकार का पुरुष तम-ज्योति-परायण है; वह यहाँ से मर कर स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है ।

हे राजन् ! (जो कोई) जलाध्य पुरुष अज्ञात कर्मज्ञ होता है मन्कीचूस पाप-संकर्मों वाला झूठे मत मानने वाला पुण्य कर्मों में लापर-रहित अज्ञान, आशय अथवा दूसरे भी पापकों को डाँटता और याचिकाँ देता है ओधी नास्तिक होता है मॉगने वालों को मोहन देते हुए मना कर देता है ।

हे राजन् ! उस प्रकार का पुरुष ज्योति-तम-परायण है वह यहाँ से मर कर धोर नरक में पड़ता है ।

हे राजन् ! (जो कोई) जलाध्य पुरुष अज्ञात, कर्मज्ञ-रहित होता है दान देता है अथ संकर्मों वाला अल्पमत मन वाला पुरुष अज्ञान आशय अथवा दूसरे पापकों को भी उठ कर अभिवादन करता है संयम का अत्यास करता है मॉगने वालों को मोहन देते हुए मना नहीं करता ।

हे राजन् ! उस प्रकार का पुरुष ज्योति-ज्योति-परायण है; वह यहाँ से मर कर स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है ।

३ २ अत्यक्ता सुत (३ २ २)

स्यु नियत है पुण्य कर

भाबन्ती में ।

एक और बंध हुए कोसकराज प्रतेनमित्त को मगवान् ने कहा—महाराज ! इस दुपरनिने में मका आप यहाँ से आ रहे हैं ?

भन्ते । मेरी दादी मर गई है । वह बड़ी बूढ़ी, पुरनिया, आयु पूरी हुई, एक सौ बीस साल की थी ।

भन्ते । मेरी दादी मुझे बड़ी प्यारी थी । भन्ते ! हस्ति-रत्न को भी पाना मैं स्वीकार नहीं करूँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते ! हस्ति-रत्न को भी मैं दे डालूँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते ! अश्व-रत्न को भी पाना मैं स्वीकार नहीं करूँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते ! अश्व-रत्न को भी मैं दे डालूँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते ! अच्छे-अच्छे गाँव । भन्ते ! जनपद ।

महाराज ! सभी जीव मरण-शील हैं, एक न एक समय उनका मरना अवश्य है, मरने से वे किसी तरह नहीं बच सकते ।

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है । भगवान् ने बड़ा ही ठीक कहा है—सभी जीव मरण-शील हैं, एक न एक समय उनका मरना अवश्य है, मरने से वे किसी तरह नहीं बच सकते हैं ।

हाँ, महाराज ! यथार्थ में ऐसी ही बात है । सभी जीव मरण-शील हैं ।

महाराज ! कुम्हार के जितने बड़े हैं—कच्चे भी और पके भी—सभी फूट जाने वाले हैं, एक न एक दिन उनका फूटना अवश्य है, फूटने से वे किसी तरह नहीं बच सकते । महाराज ! वस, ठीक वैसे ही सभी जीव मरण-शील हैं, एक न एक समय उनका मरना अवश्य है, मरने से वे किसी तरह नहीं बच सकते ।

सभी जीव मरेंगे, मृत्यु से ही जीवन का अन्त होता है, उनकी गति अपने कर्म के अनुसार होगी, पुण्य-पाप के फल से, पाप करने से नरक को, पुण्य करने से सुगति को, इसलिये सदा पुण्य कर्म करें, जिससे परलोक बनता है, अपना कमाया पुण्य ही प्राणियों के लिये परलोक में आधार होता है ॥

३ लोक सुत्त (३. ३. ३)

तीन अहितकर धर्म

श्रावस्ती में ।

एक और बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते ! लोक में कितने धर्म अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होते हैं ?

महाराज ! तीन धर्म लोक में अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होते हैं ।

कौन से तीन ? महाराज ! लोभ धर्म लोक में अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होता है ।

महाराज ! द्वेष धर्म । महाराज ! मोह धर्म ।

महाराज ! यह तीन धर्म लोक में अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होते हैं ।

लोभ, द्वेष और मोह, पाप चित्त वाले पुरुष को,

अपने भीतर ही उत्पन्न होकर नष्ट कर देते हैं,

जैसे अपना ही फल केले के पेड़ को ॥७॥

§ ४ इस्तथ सुत्त (३. ३. ४)

दान किसे दे ? किसे देने में महाफल ?

श्रावस्ती में ।

एक और बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते ! किसको दान देना चाहिये ?

७७ यही गाथा ३. ३. २ में भी ।

महाराज ! जिसके प्रति सब में भ्रम है ।

मन्ते ! किसको दान देने से महाफल होता है ?

महाराज ! यह दूसरी बात है कि किसको दान देना चाहिये और यह दूसरी कि किसको दान देने से महाफल होता है । महाराज ! श्रीकृष्ण को दिये गये दान का महाफल होता है । दुःखी को दिये गये दान का नहीं ।

महाराज ! तो मैं आप को ही पूछता हूँ जैसा आपको लगे वैसा उत्तर दें ।

महाराज ! मान लें आपको कहीं कड़ाई किए जाय, कुछ ठन जाय । तब कोई क्षत्रिय-कुमार आपके पास आवे—जिसने कुछ दिया नहीं सीपी है जिसका दान साफ नहीं है अनप्यक्त, उपोक्त कर्म करने वाला कर जाने काय भाग लया होने वाला । तो क्या आप उसे नियुक्त करेंगे ? जैसे पुरुष ने आपका कुछ प्रयोजन निकलेगा ?

नहीं मन्ते ! उस पुरुष को मैं नहीं नियुक्त करूँगा, बस से मेरा कोई प्रयोजन नहीं ।

तब कोई ब्राह्मण-कुमार आप के पास आवे । तब कोई वैश्य-कुमार शूद्र-कुमार ।

नहीं मन्ते !- बसे से मेरा कोई प्रयोजन नहीं ।

महाराज ! मान लें आपको कहीं कड़ाई किए जाय, कुछ ठन जाय । तब कोई क्षत्रिय-कुमार आपके पास आवे—जिसने कुछ बिना अच्छी तरह सीपी है जिसका दान साफ है पूरा जम्पासी को कमी न करे कर्म नहीं कमी पीठ न दिखावे । तो क्या आप उसे नियुक्त करेंगे ? जैसे पुरुष ने आपका प्रयोजन निकलेगा ?

हाँ मन्ते ! उस पुरुष का मैं नियुक्त कर लूँगा । जैसे ही पुरुष से तो काम निकलेगा ।

तब कोई ब्राह्मण-कुमार, वैश्य-कुमार शूद्र-कुमार । हाँ मन्ते ! बसे ही पुरुष से तो काम निकलेगा ।

महाराज ! ठीक उसी तरह चाहे जिस किसी कुम्भ से घर से पंजर हो कर प्रकृत हुआ हो वह पाँच अङ्गों से रहित और पाँच अङ्गों से युक्त होता है । उसको दान दिये गये का महाफल होता है ।

जिन पाँच अङ्गों से यह रहित होता है ? कामप्यम्भ से रहित होता है । हिमा-भाव से रहित होता है । आत्मरज से रहित होता है । श्रीकृष्ण-कीर्त्य से रहित होता है । यह इन पाँच अङ्गों से रहित होता है ।

जिन पाँच अङ्गों से यह युक्त होता है ? असीद्ध शील-रक्षण से युक्त होता है । असीद्ध समाधि रक्षण से युक्त होता है । असीद्ध प्रज्ञा-रक्षण से युक्त होता है । असीद्ध विमुक्ति-रक्षण से युक्त होता है ।

असीद्ध विमुक्ति शान-दर्शन से युक्त होता है । यह इन पाँच अङ्गों से युक्त होता है ।

इन पाँच अङ्गों से रहित और पाँच अङ्गों से युक्त (जमन) को दिये गये दान का महाफल होता है ।

भगवान् ने यह कहा । यह कह कर कुछ ने फिर भी कहा—

सर्वभूतार्थी बल और कार्य जिग युक्त मैं हूँ

उसी को राजा कुछ कर्म दिये नियुक्त करता है

जाति के कारण कारण को नहीं ॥

जैसे ही जिग में क्षमाशीलता गुरुत्व भाव आर जन्मे हूँ

उसी धीरे महति वाले पुरुष को बुद्धिमान् लोग

हीन जाति में भी देना हीन से पूजन हूँ ॥

एक आशय को अवधारण पण्डितों को बगल

निकल बच मैं दुर्ग सुदृशये बौद्ध जगह मैं राग्या धनवासे ॥

अब बल जीवन बच शान्तमान

सीधे लोकों की श्रद्धा-पूर्वक धान दे,
 जैसे, मेघ मद्गड़ते और चिकड़ां पिजलीं घमकाते,
 परम कर सभी नीचीं जगहों की भर देता है,
 वैसे ही, श्रद्धालु पण्डित पुरप भोजन के ढान से,
 सभी याचकों को खान-पान से भर देता है,
 वैसे धर्मज्ञ चित्त ने दौड़ता है, 'देओ, देओ' कात्ता है,
 यही ह्यका गरजता है, प्ररमते हुण् मेघ का,
 वह नदी पुण्य की वारा देने वाले पर ही बरसती है ॥

§ ५. पञ्चतूपम सुत्त (३ ३ ५)

मृत्यु घेरे आ रही है, धर्माचरण करे

ध्यावस्ती मे ।

एक ओर त्रैडे हुण् कोप्रालराज प्रसेनजित्तु की भगवान् ने कहा—महाराज ! कहाँ से जाना हो रहा है ?

भन्ते ! राज्य-सम्पत्तियों कामों में मैं अभी बेतरा दशा था । क्षत्रिय, अभिषेक किये गये, ऐश्वर्य के मद् से मत्त, मासारिक काम के लोभ में पड़े, देशों को कब्जा में रखने वाले, वड़े-वड़े राज्यों को जीत कर राज करने वाले राजाओं को बहुत काम रहते हैं ।

महाराज ! मान लें, पूरव दिशा से आप का कोई श्रद्धालु और विश्वस्त आदमी आवे और कहे—
 महाराज ! आप को मालूम हो—मैं पूरव दिशा से आ रहा हूँ, वहाँ मैंने देखा कि एक मेघ के समान महान् पर्वत सभी जीवों को पीसते हुण् आ रहा है । महाराज ! आप जैसा उचित समझे वैसा करें ।

तब, दूसरा आदमी पश्चिम दिशा से आवे, तीसरा आदमी उत्तर दिशा से आवे, चौथा आदमी दक्षिण दिशा से आवे और कहे —वहाँ मैंने देखा कि एक मेघ के समान महान् पर्वत सभी जीवों को पीसते हुण् आ रहा है । महाराज ! आप जैसा उचित समझें वैसा करें ।

महाराज ! मनुष्यों के इस प्रकार नष्ट होने के दारुण भय आ पड़ने पर क्या करना होगा ?

भन्ते ! ह्य प्रकार के भय आ पड़ने पर, धर्माचरण, सयम-अभ्यास और पुण्य कर्म के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

महाराज ! मैं आपको कहता हूँ, यताता हूँ । महाराज ! (वैसे ही) आप पर जरा और मृत्यु (का पहाड़) चढ़ा आ रहा है । महाराज ! जरा और मृत्यु के इस तरह चढ़ते जाने से क्या करना चाहिये ?

भन्ते ! जरा और मृत्यु के इस तरह चढ़ते जाने से धर्माचरण, सयम-अभ्यास और पुण्य कर्म के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

भन्ते ! क्षत्रिय वड़े-वड़े राजाओं को जीत कर राज करने वाले राजाओं को जो हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, रथ-युद्ध, पैदल-युद्ध का सामना करना पड़ता है, वह जरा और मृत्यु के चढ़ते जाने के सामने क्या पीज है ?

भन्ते ! इस राज-कुल में वड़े-वड़े ऐसे गुणी मन्त्री हैं, जो अपने मन्त्र के बल से आते शत्रुओं को भगा दे सकते हैं । उनका मन्त्र-युद्ध भी जरा और मृत्यु के चढ़ते जाने के सामने बेकार है ।

भन्ते ! इस राजकुल का खजाना ऊपर नीचे सोना से भरा है, जिस धन से हम आते शत्रुओं को फोव दे सकते हैं । यह धन-युद्ध भी जरा और मृत्यु के चढ़ते जाने के सामने बेकार है ।

भन्ते ! जरा और मृत्यु के इस तरह चढ़ते जाने से धर्माचरण के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

महाराज ! ठीक में ऐसी ही बात है । जरा और श्रुत्यु के इस तरह बड़ते आने स धर्माचरण के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

भगवान् ने यह कहा । यह कह कर पुत्र ने मार मी कहा—

कैसे बड़े-बड़े शीछ गगन-सुम्बी पर्यंत
सभी और से आते हैं चारों दिशाओं की परितो हुए,
वैसे ही जरा और श्रुत्यु का प्राणिनों पर बढ़ता आता है ॥
हाथिय जाहान बैस्य श्रुत्यु कबाल पुत्रकुस
कोई भी नहीं छूटता सभी समाज रूप से पीसे जा रहे हैं
न तो बहोँ हाथियों का इरकार है, न रथ और न पहलू का
और न तो उसे मन्त्र से वा धन से रोन्ना जा सकता है ॥
इसकिये पण्डित पुत्र्य भपनी मलाई बैचते हुये
पुत्र धर्म और संघ के प्रति अज्ञानु होने ॥
जो मन-बचन-काच से धर्माचरण करता है
संसार में उसकी प्रसंसा होती है मरकर स्वर्ग में भवनन्द करता है ॥

कोसल संयुक्त समाप्त

चौथा-परिच्छेद

४. मार-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. तपोकम्म सुत्त (४. १. १)

कठोर तपश्चरण वेकार

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् अभी तुरन्त ही बुद्धत्व लाभ कर उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तट पर अजपाळ निग्रोध के नीचे विहार करते थे ।

तत्र एकान्त में ध्यान करते हुये भगवान् के मन में यह वितर्क उठा—उस दुष्कर क्रिया से मैं छूट गया । क्या अच्छा हुआ कि मैं अनर्थ करनेवाली उस दुष्कर क्रिया से छूट गया । क्या अच्छा हुआ कि स्थिर और स्मृतिमान् रह कर मैंने बुद्धत्व पा लिया ।

तत्र, पापी मार भगवान् के चित्त के वितर्क को अपने चित्त से जान जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

तुम तप-कर्म से दूर हो,
जिससे मनुष्य शुद्ध होता है ।
अशुद्ध अपने को शुद्ध समझता है,
शुद्धि के मार्ग से गिरा हुआ ॥

तत्र भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान, गाथा में उत्तर दिया.—

शुक्ति-लाभ के लिए सभी कठोर तपश्चरण को वेकार जान,
उससे कुछ मतलब नहीं निकलता है,
जैसे जमीन पर पड़ी बिना ढाल पतवार के नाथ ॥
शूल, समाधि और प्रज्ञा वाले बुद्धत्व के मार्ग का अभ्यास करते,
परम शुद्धि को मैंने पा लिया है,
हे अस्तक ! तुम जीत लिये गये ॥

तत्र, पापी मार 'सुखे भगवान् ने पहचान लिया' समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ २ नाग सुच (४ १ २)

हाथी के रूप में मार का आना

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् बन्नी तुरत ही दुष्टत्व ध्यान कर बड़बोझ में मेरु-पर्वत नदी के तट पर अश्वपाल मिश्रों के नीचे बिहार करते थे ।

उस समय भगवान् रात की काफ़ी अधियारी में लुके अज्ञान में बड़े थे । रिमझिम हँस भी पढ़ रही थीं ।

तब पापी मार भगवान् की बरा कँपा और रोंगटे काढ़े कर देने की दृष्टि से एक बहुत बड़े हाथी का रूप धर कर वहाँ भगवान् पे वहाँ आया । उसका गिर जा मानो एक काफ़ी अज्ञान । उसके हँस से मानो झलकता खँदी । उसकी हँस थी मानो एक बिछाक हक ।

तब भगवान् ने 'बड़ पापी मार है' ज्ञान गाथा में कहा—

इस हीर्ष संसार में अच्छे तुरे रूप धर कर तुम फिरते हो

अरे पापी ! इसे जब रहने है, जन्तक ! तुम बह हो गये ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान किया समझ दुर्बल और शिब हो वहाँ जन्तकान हो गया ।

§ ३ सुम सुच (४ १ ३)

संयमी मार के यश में नहीं आते

कड़बोझ में ।

उस समय भगवान् रात की काफ़ी अधियारी में लुके अज्ञान में बड़े थे । रिमझिम हँस भी पढ़ रही थीं ।

तब पापी मार भगवान् को बरा कँपा रोंगटे काढ़े कर देने की दृष्टि से वहाँ भगवान् ने वहाँ आया और तरह-तरह के छेदे बड़े अच्छे तुरे रूप दिखाने लगा ।

तब भगवान् ने 'बड़ पापी मार है' ज्ञान गाथा में कहा—

इस हीर्ष संसार में अच्छे तुरे रूप धरकर तुम फिरते हो,

अरे पापी ! इसे जब रहने है, जन्तक ! तुम बह हो गये ॥

जो सरिर बचन और सब से संबल रहते हैं

वे मार के बरा में नहीं आते वे मार के बर में नहीं पड़ते ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान किया समझ दुर्बल और शिब हो वहाँ जन्तकान हो गया ।

§ ४ पास सुच (४ १ ४)

तुल्य मार के ज्ञान से मुक्त

ऐसे मैंने सुना ।

एक समय भगवान् बाराणसी के कल्पितल मृगशाल में बिहार करते थे । वहाँ भगवान् ने मिथुनों की आनन्वित किया—'मिथुनो !'

'अद्वय !' कह कर सब मिथुनों ने भगवान् की उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! मन को उचित मार्ग में लगा और उचित उद्वाह कर मैंने अलौकिक विमुक्ति पायी है, अलौकिक विमुक्ति का साक्षात्कार किया है ।

भिक्षुओ ! तुम भी मन को उचित मार्ग में लगा और उचित उद्वाह कर अलौकिक विमुक्ति का लाभ करो, अलौकिक विमुक्ति का साक्षात्कार करो ।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और यह गाथा बोला—

मार के जाल में बँध गये हो,
जो (जाल) दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,
मार के यन्त्र में बँधे हो,
धमण ! मुझमें तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

मार के जाल में मैं मुक्त हूँ,
जो दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,
मार के यन्त्र से मुक्त हूँ,
अन्तक ! तुम जीत लिये गये ॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ हुआ और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ५. पास सुत्त (४. १. ५)

बहुजन के हित-सुख के लिए विचरण

एक समय भगवान् वाराणसी के कृपिपतन झुगदाच में विहार करते थे । वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आश्चित किया—“भिक्षुओ !”

“भवन्त !” कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! दिव्य लोक और मनुष्य लोक के जितने जाल हैं सभी से मैं मुक्त हूँ । भिक्षुओ ! तुम भी जितने जाल हैं सभी से मुक्त हो । भिक्षुओ ! बहुजनों के हित के लिये, बहुजनों के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो । एक साथ दो मत जाओ । भिक्षुओ ! आदि ने कल्याण-(कारक), मध्य में कल्याण-(कारक), अन्त में कल्याण-(कारक) (इम) धर्म का उपदेश करो । अर्थ-सहित = व्यजन-सहित, पूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो । अल्प दोषवाले भी प्राणी हैं, धर्म के न श्रवण करने से उनकी हानि होगी । (सुनने से वह) धर्म के जानने वाले बनेंगे । भिक्षुओ ! मैं भी जहाँ उरुवेला है, जहाँ सेनानी ग्राम है, वहाँ धर्म-देशना के लिये जाऊँगा ।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और गाथा में बोला—

सभी जाल में बँधे हो,
जो (जाल) दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,
बड़े यन्त्र में बँधे हो,
धमण ! मुझसे तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

मैं सभी जाल से मुक्त हूँ,
जो दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,

बड़े भयान से मैं हूँ बुका
भयक ! तुम भीत डिये गये ॥

§ ६ सप्त्य सुच (४ १ ६)

पकाम्तयास से विचलित न हो

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेल्लुवन ककम्बकनिकाय में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् रात की काकी भँपियारी में लुके मैदान में बैठे थे । रिमझिम पानी भी पड़ रहा था ।

तब पापी मार भगवान् को डरा कौपा रोंगटे चढ़े कर देने की इच्छा से एक विजाफ सर्पराज का रूप धरकर वहाँ भगवान् के बहाँ आया । जैसे एक बड़े वृद्ध की बनी नाब हो बैसा उसका सरीर था । जैसे महीदार की चटाई हो बैसा उसका फल था । जैसे कोसक की बनी (चमकती) धाकी हो बैसी उसकी भौंके थी । जैसे गड़गड़ते मेघ से बिजली कड़कती है वैसे ही उसके मुँह से जीम कपकपाती थी । जैसे कोहार की भापी बहने से सप्त् होता है वैसे ही उसके नाँस खेने और छोड़ने से सप्त् होता था ।

तब भगवान् ने यह पापी मार है जान गाबा में कहा—

को पकाम्तयास का सेवन करछा है
बह आत्मसंयत मुनि ओह है
सब कुछ त्यागकर बह वहीं विचारन करे
बैस पुलन के किए बह विरुद्ध भगुच्छ है ॥
तरह-तरह के जीव विचरत हैं तरह-तरह के डर पैदा करनेवाके
बहुत बैस मप्पर धीर सौप विरु—
बह एक रीये को भी नहीं हिम्माये
पकाम्तयास करयेवाक्य महासुनि है ॥
आकाश कर जाव घुप्पी कौप जाव
समी प्राणी डर जायै,
सदि छाती में माका भी बुभायै,
तो भी बुद्ध साँसारिक पासुओंके में आसब नहीं करते ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान किया' समझ बुझित और किन्न हो वहाँ भयतर्पित हो गया ।

§ ७ सोपसि सुच (४ १ ७)

वितप्य बुद्ध

एक समय भगवान् राजगृह के वेल्लुवन ककम्बकनिकाय में विहार करते थे ।

तब भगवान् बहुत बहर तत्र लुके मैदान में चञ्चलन करते रहे । रात के मितसारे पैरों को पकार विहार के भीतर गये । वहाँ शशिनी कचरट सिंह जप्या कया कुछ बघ्यते हुए घेर पर घेर रख स्मृतिमान् धार मीमज हो, मन में उन्माद संशा (= उदमे का विचार) का ओह गये ।

* उपधि—पञ्चरुग्ध की उपधियों—अङ्कया ।

तत्र, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से यह गाथा बोला—
 क्या सोते हो ? क्यों सोते हो ?
 क्यों ऐसा बेखबर सो रहे हो ?
 सूना घर पाकर सो रहे हो ?
 सूरज उठ जाने पर क्यों यह सो रहे हो ?

[भगवान्—]

जिसे फँसा लेने वाली और विप से भरी
 तृष्णा कहीं भी यहकाने को नहीं है,
 जो सभी उपधियों के भिन्न जाने से बुद्ध हो गये हैं,
 लेटे हैं रे मार ! इससे तुम्हारा क्या ?

तत्र, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ८. आनन्द सुत्त (४. १. ८)

अनासक्त चिन्तित नहीं

ऐसा मैंने सुना ।'

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।
 तत्र, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् के पास यह गाथा बोला—

पुत्रों वाला पुत्रों से आनन्द करता है,
 जैसे ही गौवों वाला गौवों से आनन्द करता है,
 सासारिक चीजों से ही मनुष्य को आनन्द होता है,
 वह आनन्द नहीं करता जिसे कोई चीज नहीं ॥

[भगवान्—]

पुत्रों वाला पुत्रों की चिन्ता में रहता है,
 जैसे ही गौवों वाला गौवों की चिन्ता में रहता है,
 सासारिक चीजों से ही मनुष्य की चिन्ता होती है,
 वह चिन्ता नहीं करता जिसे कोई चीज नहीं ॥

तत्र, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ९. आयुसुत्त (४. १. ९)

आयु की अल्पता

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेल्लुवन कलन्धक निवाप में विहार करते थे ।
 वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

“भिक्षुओं” ।

“भदन्त !” कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—मित्रुधो ! मनुष्यों की भायु थोड़ी है। परकोक जाना (सीम) है। पुष्प कमाया चाहिये ब्रह्मचर्य पाकना चाहिये। जो जन्म लेता है वह मरने से कमी बच नहीं सकता। मित्रुधो ! जो बहुत बीता है वह सी बच बीता है, उससे कुछ कम या अधिक।

तब पापी मार बहो भगवान् ने वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

मनुष्यों की भायु छम्बी है सायुष्य इसकी परबाह न करे
कुक्षीने बरपे की तरह गदे सायु जमी नहीं आ रहे हैं ॥

[भगवान्—]

मनुष्यों की भायु थोड़ी है
सायुष्य इससे बूढ़ सपेत रहे
मिरपर भाग लग गई है ऐसा समझते रहे
ऐसा कोई समच नहीं जब सायु म च्च आये ।

तब पापी मार 'सुस भगवान् ने पहचान किया' समझ हुआ कि और शिब हो नहीं
अन्तर्धान हो गया ।

६ १० आयु सुच (४ १ १०)

आयु का लय

राजपुत्र में ।

वहाँ भगवान् बोले—मित्रुधो ! मनुष्यों की आयु थोड़ी है। परकोक जाना (सीम) है। पुष्प कमाया चाहिये ब्रह्मचर्य पाकना चाहिये। जो जन्म लेता है वह मरने से कमी बच नहीं सकता। मित्रुधो ! जो बहुत बीता है वह सी बच बीता है उससे कुछ कम या अधिक।

तब पापी मार बहो भगवान् ने वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

दिन और रात चले नहीं आ रहे हैं
बीच (का प्रबाह) कमी रुकता नहीं है
मनुष्यों के चारों ओर आयु है तो ही नूतनी रहती है;
ऐसे हाक गादी के चुरे के ॥

[भगवान्—]

दिन और रात बीते आ रहे हैं
बीच (का प्रबाह विनाश में) रुक जाता है
मनुष्यों की आयु क्षीय हो रही है
छोटी-छोटी बर्षियों का जैसे चढ़ा पायी ॥

तब पापी मार 'सुष्टे भगवान् ने पहचान किया' समझ हुआ कि और शिब हो नहीं
अन्तर्धान हो गया ।

प्रथम वर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. पासाण सुत्त (४. २. १)

बुद्धों में चञ्चलता नहीं

एक समय, भगवान् राजगृह में शृङ्गकूट पर्वत पर विहार करते थे ।

उस समय भगवान् रात की काली अँधियारी में सुले मैदान में बैठे थे । रिमन्निम पानी भी पड़ रहा था ।

तब, पापी मार भगवान् को डरा, कंषा और रोंगटे गढ़े कर देने की ह्ज्जा से जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् के पाम ही चढ़े-गड़े पशरो को लुढ़काने लगा ।

तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा—

चाहे सारे शृङ्गकूट पर्वत को ही क्यों न लुढ़का दे,

बिल्कुल विमुक्त बुद्धों में कोई चञ्चलता पैदा नहीं हो सकती ।

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ हुआ खित और खिन्न हो वहाँ अन्तर्धान हो गया ।

§ २. सीह सुत्त (४. २. २)

बुद्ध सभाओं में गरजते हैं

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् बड़ी भारी परिपद् के बीच धर्मोपदेश कर रहे थे ।

तब पापी मार के मन में यह हुआ—यह श्रमण गौतम बड़ी भारी परिपद् के बीच धर्मोपदेश कर रहा है । तो क्यों न मैं श्रमण गौतम के पास चलेकर लोगों के मत को फेर दूँ ।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

सिंह के ऐसा क्यों गरज रहा है, सभा में निडर हो कर,

तुम से जोड़ लेने वाला मौजूद है, अपने को बड़े विजयी समझे बैठे हो ॥

[भगवान्—]

जो महावीर हैं वे सभाओं में निडर हो कर गरजते हैं,

बलशाली बुद्ध, जो भवसागर को पार चुके हैं ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ हुआ खित और खिन्न हो वहाँ अन्तर्धान हो गया ।

§ ३. सकलिक सुत्त (४. २. ३)

पत्थर से पैर कटना, तीव्र वेदना

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के मद्दकुच्छि सृगदाव में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् के पैर एक पत्थर के टुकड़े से कट गये थे। भगवान् को बड़ी पीड़ा हो रही थी—भारीरिक्त दुःखार्द्र तीव्र कठोर कट्ट बड़ी बुरी। उसे भगवान् स्थिरता से स्मृतिमान् और संमग्न हो सह रह थे।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

इतना मन्द क्यों पड़े हो क्या किसी विचार में पड़े हो ?
क्या तुम्हारी आबरवकलायें पूरी नहीं हैं।
अकेला इस एकान्त स्थान में
मिद्वान्त-मा क्यों छटे हो ?

[भगवान्—]

मैं मन्द नहीं पड़ा हूँ व किसी विचार में मग्न हूँ,
मैंने परमार्थ या लिया है मेरे लोक इत गये हैं
अकेला इस एकान्त स्थान में
सभी जीवों पर अनुकम्पा करने वाला मैं तो रहा हूँ व
जिनकी छाती में बाण चुभ गया है
जो रह रह कर इक्षु को काट-सा देना है
वे बाल काय भी सी जाते हैं,
तो सारी बेदुवाओं से रहित मैं क्यों व मोड़ें !
जागने में मुझे राँका नहीं भीर व मैं सोने से बरता हूँ,
रात या दिन का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं
संसार में मैं कहीं भी अपनी हानि नहीं देखता
इसकिस मैं तो रहा हूँ,
सभी जीवों पर अनुकम्पा करने वाला ॥

तब पापः मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समस्त कुम्भित और निवृत्त हो बड़ी अन्तर्भाव हो गया।

३ ४ पतिरूप मुच (१ ० ४)

पुत्र अनुरोध विरोध सं मुक्त

एक समय भगवान् कोशल में एकशान्ता नामक आश्रमों के गाँव में विहार करते थे। उस समय भगवान् गृहस्थों की एक बड़ी परिषद् के बीच धर्मोपदेश कर रहे थे।

तब पापी मार व मन में यह आया—यह अमय गातम गृहस्थों की बड़ी परिषद् के बीच धर्मोपदेश कर रहा है। हा, क्यों व मैं जहाँ अमय गीतम है वहाँ जन्मकर उनसे मन को कर हूँ।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया व भगवान् ने गाथा में बोला—

तुम्हें पैदा करना मुझ नहीं जो तुम्हारे को मिला रहे हो
देना करते हुए अनुरोध और विरोध में मन क्यों ॥

[भगवान्—]

दिन और अनुकम्पा करने वाले पुत्र
तुम्हें को अनुकम्पा कर रहे हैं ॥
पुत्र अनुरोध और विरोध में मुझ हैं ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ५. मानस सुत्त (४. २. ५)

इच्छाओं का नाश

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् ने गाथा में बोला—

आकाश में उड़ने वाला जाल, जो वह मन की उड़ान है ।

उससे तुम्हें फँसा लूँगा, श्रमण ! सुखसे तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

रूप, वाग्द, रस, गन्ध और स्पर्श, मन को लुभा लेने वाले,

इनके प्रति मेरी सारी इच्छाएँ मिट गईं,

अन्तर्क ! तुम जीत लिये गये हो ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ६. पत्त सुत्त (४. २. ६)

मार का वैल बनकर आना

श्रावस्ती में ।

उस समय भगवान् ने पाँच उपादान स्कन्धों के विषय में धर्मोपदेश कर भिक्षुओं को दिखा दिया, धरा दिया, लगन लगा दिया, और उनके भावों को जना दिया । और, भिक्षु-लोग भी वदे ध्यान से मन लगाकर कान दिये धर्म श्रवण कर रहे थे ।

तब पापी मार के मन में यह हुआ—यह श्रमण गौतम पाँच उपादान स्कन्धों के विषय में धर्मोपदेश कर । तो क्यों न मैं जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ चलकर उनके मत को फेर दूँ ।

उस समय, कुल पात्र बुले मैदान में पड़े (सुए रहे) थे ।

तब, पापी मार एक वैल का रूप धरकर जहाँ वे पात्र पड़े थे वहाँ आया ।

तब, एक भिक्षु ने दूसरे भिक्षु से यह कहा—स्वामीजी, कहीं यह वैल पात्रों को तोड़ न दे ।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् ने उस भिक्षु को कहा—भिक्षु ! वह वैल नहीं है । यह पापी मार तुम लोगों के मत को फेरने आया है ।

तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा—

- रूप, वेदना, संज्ञा, विज्ञान और संस्कार को,
'न यह मैं हूँ, और न यह मेरा है' ऐसा जान,
उनके प्रति विरक्त रहता है,
ऐसे विरक्त, क्षान्ध, सभी बन्धनों से छूटे पुरुष को,
सभी जगह खोजते रहकर भी,
मार-सेना नहीं पा सकती ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् वे पहचान किया समझ बुझित और पिछ हो यहाँ अन्तर्धान हो गया ।

§ ७ आयतन मुच (४ २ ७)

आयतनों में ही भय

एक समय भगवान् वैशाखी में महाघन की फूटागार शाखा में बिहार करत थे ।

उस समय भगवान् ने छः स्वर्गायतनों के विषय में चर्चापदेश कर मिश्रुओं को दिखा दिया । और मिश्रु लोग भी जान दिने धर्म प्रवचन कर रहे थे ।

तब पापी मार के मन में बह जाया—यह, अमल शासन छः स्वर्गायतनों के विषय में । तो क्यों व मैं यहाँ अमल वीरम है यहाँ चककर हमने मठ को कर हैं ।

तब पापी मार यहाँ भगवान् से यहाँ श्रद्धा और भगवान् के पास ही महा सबोपायक शब्द करने लगा—साथी प्रुष्ठी फट गयी ।

तब एक मिश्रु ने दूसरे को कहा—मिश्रु मिश्रु ! मामो प्रुष्ठी फट गयी ।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् ने उस मिश्रु का कहा—मिश्रु ! प्रुष्ठी फट नहीं रही है । यह मार तुम लोगों के मठ को फेर देने के किम थावा है ।

तब, भगवान् ने 'यह पापी मार है' नाम गाथा में कहा—

रूप शब्द रस गन्ध स्पर्श और भी जितने धर्म हैं
संसार में वही मय हैं इनके पीछे संसार पागल है
इनसे ऊपर उठ पुत्र का भावक स्तुतिमान् हो
मार के राज्य को काँच सूर्य के ऐसा कमकटा है ।

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान किया समझ बुझित और पिछ हो यहाँ अन्तर्धान हो गया ।

§ ८ पिण्ड मुच (४ २ ८)

पुत्र को मिश्रा न मिश्री

एक समय भगवान् मगध में पञ्चशासक नामक ब्राह्मणों के ग्राम में बिहार करते थे ।

उस समय उस ग्राम में बुढ़कों का परस्पर घेंट देन का उत्सव मना हुआ था ।

तब भगवान् मुच में पहुँच और पात्र बीरर के गाँव में मिश्रादन के किये पड़े ।

उस समय पञ्चशासक ग्राम के ब्राह्मणों पर पापी मार सवार हो गया था—कि जिसमें अमल वीरम को मिश्रा व मिश्री पाने ।

तब भगवान् जैसे बुढ़े-बुढ़ाने पात्र को लेकर पञ्चशासक ग्राम में मिश्रादन के किये पड़े थे वैसे ही बुढ़े-बुढ़ाने पात्र को किये फेंक गये ।

तब पापी मार यहाँ भगवान् से यहाँ श्रद्धा और भगवान् से बोध—अमल ! क्या मिश्रा मिश्री ?

तब पापी ने बीसा किया जिसमें मुझे मिश्रा नहीं मिश्री ।

भलौ ! तो भगवान् बूसरी बार पञ्चशासक ग्राम में मिश्रादन के किये पड़े । इस बार में ऐसा कहूँगा जिसमें भगवान् को मिश्रा मिश्रीगी ।

मार ने कहा अजुष्य कमाया जो पुत्र से क्या किया

रे पापी ! क्या समझता है कि मेरे पाप का फल नहीं मिश्रीगा ?

तुम पूर्वज जीवा हैं, जिम, मुझे कुछ भगना नहीं है,
(ममाधि-जन्म) प्राणि मे मनुए रहैगा,
जोमे आभाइपर देव ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पचान लिया' समझ दुःखित और गिन हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ९. कस्तक सुक्त (४. २. ९)

मार का रूपक के रूप में आना

श्रावस्ती में ।

उस समय, भगवान् ने निर्वाण मन्त्रन्वी धर्मोपदेश कर भिक्षुओं को दिया । और, भिक्षु लोग भी कान दिये धर्म श्रवण कर रहे थे ।

तब, पापी मार के मन में यह आया—यह श्रमण गौतम निर्वाण-मन्त्रन्वी धर्मोपदेश कर । तो, क्यों न मैं जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ चलाकर उनके मत को पार दूँ ।

तब पापी मार रूपक का रूप धर—एक पदो एत की धर्ये पर लिये, एक लम्बी छत्रुनी लिये, पाल बिन्देरे, टाट के फणदे पडने, परों में कीचर लगाये, जहाँ भगवान् ने वहाँ आया, और भगवान् से बोला—'श्रमण ! मेरे पलों को देना है ?'

र पापी ! तुम्हें जेला से क्या काम ?

श्रमण ! मेरी ही धौत्य है, मेरे ही रूप है, मेरी ही धौत्य से जाने जाये वाले विज्ञानायतन हैं ।

श्रमण ! वहाँ जाकर मुझसे छूट सकते हो ?

श्रमण ! मेरे ही पद, गध, रस, रज्जु ।

श्रमण ! मेरा ही मन है, मेरे ही धर्म है, मेरे ही मन-स्पर्श-विज्ञानायतन है । श्रमण ! वहाँ जाकर मुझसे छूट सकते हो ?

पापी ! तेरी ही धौत्य है, तेरे ही रूप है, तेरी ही धौत्य से जाने जाये वाले विज्ञानायतन हैं । पापी ! वहाँ शौत्य नहीं है, रूप नहीं है, औत्त से जाने जाये वाले विज्ञानायतन नहीं हैं, वहाँ तेरी गति नहीं है ।

पापी ! जहाँ दान, गन्ध, रज, पक् नहीं है ।

पापी ! तेरा ही मन है, तेरे ही धर्म है, तेरे ही मन-स्पर्श-विज्ञानायतन हैं । पापी ! जहाँ मन नहीं है, धर्म नहीं है, मन-स्पर्श-विज्ञानायतन नहीं है, वहाँ तेरी गति नहीं है ।

जो लोग कहते हैं 'वह मेरा है', जिसे लोग कहते हैं 'मेरा है' ।

यदि तुम्हारा भी मन यहाँ है, तो छे श्रमण ! मुझसे नहीं छूट सकते ॥

[भगवान्—]

जिसे लोग कहते हैं वह मेरा नहीं है,

जो लोग कहते हैं वह मैं नहीं हूँ,

रे पापी ! इसे ऐसा जान,

मेरे मार्ग को भी तू नहीं देख सकेगा ॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

६ १० रत्न मुक्त (४ २ १०)

सांसारिक कामों की विषय

एक समय भगवान् कोशाळ में हिमालय के पास जंगल की एक कुटिया में विहार करते थे ।

तब एकदाह में प्थान करते समय भगवान् के मन में यह चिन्तकं उदा—क्या बिना मारे या मरवाये बिना बीते या बितवाये बिना दुःख दिये जा दुःख दिखवाये धर्म-पूर्वक राज्म बिना का सकता है ?

तब पापी मार भगवान् के चिन्तकं को अपने चित्त से ज्ञान बहर्ष भगवान् से बहर्ष भाषा बीर बोधा—भन्ते ! भगवान् राज्य करें—बिना मारे धर्म-पूर्वक ।

पापी ! तुमने क्या बोलकर मुझे ऐसा कहा :—भन्ते ! भगवान् राज्य करें—बिना मारे धर्म-पूर्वक ।

भन्ते ! भगवान् ने चारों अधिपाद् की भावना कर की है उनका जन्मास कर किया है अब पर पूरा अधिकार पा किया है उनकी सत्कक बना किया है उनका अनुष्ठान कर किया है, उनका परिषद बीर प्रयोग कर किया है भन्ते ! यदि भगवान् चाहें कि यह पर्वतराज हिमाकप सीमे का हो ज्ञान ही भगवान् के केवल अधिष्ठान करने मात्र से सारा सुवर्ण-पर्वत ही जाचगा ।

[भगवान् -]

बिष्णुक जसकी सीमे के पर्वत कर
 हुगाता भी एक पुरुष के किये काफ़ी नहीं है
 यह समझ कर (संसार में) रहे ॥
 क्लिमे करण बिसने दुःख बेश किया
 उन कामों की बीर वह कैसे छकेगा ?
 सांसारिक कामों की बन्दन जाव
 तब पर विजय पावा सीधे ॥

तब पापी मार मुझे भगवान् ने पदुच्यन किया समझ हुआचित बीर रिज हो बन्तर्चान हो गया ।

द्वितीय पर्ण समाप्त ।

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

(ऊपर के पांच)

§ १. सम्बद्दल मुक्त (५. ३ ?)

मार का चढ़काना

ऐसा मने सुना।

एक समय भगवान् शाक्य जनपद के जिलावती प्रदेश में विहार करते थे।

उम समय भगवान् के पास ही कुछ अप्रसन्न, आतापी (= पलेशों को तपाने वाले) और प्रहितात्म (= स्वर्गी) भिक्षु विहार करते थे।

तब, पापी मार ब्राह्मण का रूप धर,—लम्बी जटा चढ़ाये, मृगचर्म आँद्रे, चूड़ा, यदेरी जैसा लुका, धुर-धुर सौंभ लेते, गुल्फ का दण्ड लिये—जाएँ थे भिक्षु थे यहाँ आया। आकर भिक्षुओं में बोला—आप लोगों ने वहाँ छोटी अवस्था में प्रव्रज्या ले ली है, अभी तो आप कुमार ही हैं, आप के केश अभी फाले ही हैं, आप की हतनी अच्छी जयानी है, हम चढ़ती उम्र में आपने तो सत्कार के कामों का स्वाद भी नहीं लिया है। आप मनुष्य के भोगों को भोगें। सामने की यात को छोड़कर मुदत में होनेवाली के पीछे मत दीजें।

नहीं ब्राह्मण! हम सामने की यात को छोड़कर मुदत में होनेवाली के पीछे नहीं दौड़ रहे हैं। ब्राह्मण! हम तो उलट्टे मुदत में होनेवाली यात को छोड़कर सामनेवाली के फेर में हैं। ब्राह्मण! भगवान् ने मत्सर के कामों को मुदत में होनेवाला बतलाया है, दुःख से पूर्ण, परेशानी से भरा, इन कामों में केवल दोष ही दोष हैं। और, यह धर्म सांकेतिक (= अर्थों के सामने फल देनेवाला), शीघ्र ही सफल होनेवाला (= अकालिक), ढंके की चोट पर खचा घताया जा सकने वाला (= एहिपस्सिको = जिसके विषय में किसी को कटा जा सकता है—'जाओ, टेप लो'), मुक्ति के पास ले जानेवाला, विज्ञ पुरणों से अपने भीतर ही भीतर समझ लिया जानेवाला है।

उनके ऐसा कहने पर पापी मार फिर हिला, जीभ निकाल, ललाट पर तीन सिकोदन (भ्रूभंग) चढ़ा लाठी टेकता हुआ चला गया।

तब, वे भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को यह कहा—

मन्ते! हम लोग भगवान् के पास ही अप्रसन्न, आतापी, और प्रहितात्म हो विहार कर रहे हैं। तब कोई ब्राह्मण, लम्बी जटा चढ़ाये आकर बोला—आपने वहाँ छोटी अवस्था में। सामने की यात को छोड़ कर मुदत में होनेवाली के पीछे मत दीजें।

मन्ते! इस पर हमने उस ब्राह्मण को उत्तर दिया—नहीं ब्राह्मण! हम सामने की यात को छोड़ कर मुदत में होनेवाली के पीछे नहीं दौड़ रहे हैं। और यह धर्म सांकेतिक है।

मन्ते! हम लोगों के ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण लाठी टेकता हुआ चला गया।

भिक्षुओं! वह ब्राह्मण नहीं था। वह पापी मार हम लोगों के मत को फेर देने के लिये आया था।

हूँ तो जान, भगवान् क मुँह से उस समय यह गाथा निरुद्ध पड़ी—

जिसने जिसने कारण हुआ होमा जान लिया
 वह उन कामों की ओर किस मुँह सरता है ?
 सांसारिक कामों को सम्पन्न जान
 उन पर बिजय पाना सीखे ॥

४ २ समिद्धि मुच (४ १ २)

समुद्धि की डराना

एक समय भगवान् शापत्य जनपद में शीसापती प्रवेश में बिहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् समुद्धि भगवान् के पास ही अग्रमण आतापी, भीर प्रदिहात्म हो बिहार कर रहे थे ।

तब एकान्त में प्यान करते समय आयुष्मान् समुद्धि के मन में यह चिन्तक उठ्य—मेरा बड़ा काम हुआ ! मेरा बड़ा भाग्य हुआ कि मेरे गुरु माई सम्पद् सम्पुत्र हुए । मेरा बड़ा काम हुआ ! मेरा बड़ा भाग्य हुआ कि मैं इस स्वाप्यात धर्म-विनय में प्रमत्त हुआ । मेरा बड़ा काम हुआ ! मेरा बड़ा भाग्य हुआ कि मेरे गुरु-माई शीरुपान् भीर पुण्यात्मा हैं ।

तब पापी मार आयुष्मान् समुद्धि के चिन्तक को अपने चित्त से जान बूझी आयुष्मान् समुद्धि से बूझी आयुष्मान् समुद्धि के पास ही महामयोत्पादक सम्पद् कहने लगा, माओ पूष्ठी कर पकी ।

तब आयुष्मान् समुद्धि बूझी भगवान् से बूझी अपने भीर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ आयुष्मान् समुद्धि ने भगवान् को कहा—

भन्ते ! मैं भगवान् के पास ही अग्रमण आतापी भीर प्रदिहात्म हो बिहार कर रहा हूँ ।

भन्ते ! तब एकान्त में प्यान करते समय मेरे मन में यह चिन्तक उठ्य । भन्ते ! तब मेरे पास ही एक महामयोत्पादक सम्पद् होने लगा, माओ पूष्ठी कर पकी ।

समुद्धि ! यह पूष्ठी बूझी कटी का रही थी । यह पापी मार तुम्हारे मन को केर देने के लिए आया था । समुद्धि ! जानो बूझी अग्रमण आतापी भीर प्रदिहात्म होकर बिहार करो ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, आयुष्मान् समुद्धि भगवान् को उत्तर दे, आत्म से उठ भगवान् को अभिवादन भीर प्रदिहात्म कर लगे गये ।

दूसरी बार भी आयुष्मान् समुद्धि बूझी बिहार करने को । दूसरी बार भी एकान्त में प्यान करते समय आयुष्मान् समुद्धि के मन में चिन्तक उठ्य मेरा बड़ा काम हुआ ! मेरा बड़ा भाग्य हुआ ! कि मेरे गुरु-माई शीरुपान् भीर पुण्यात्मा हैं ।

दूसरी बार भी पापी मार गया । माओ पूष्ठी कर पकी ।

तब आयुष्मान् समुद्धि ‘यह पापी मार है’ जान गाथा में बोले—

प्रज्ञा से मैं प्रमत्त हुआ हूँ घर से वैधर हो,
 स्थिति और प्रज्ञा को मैंने जान किना मेरा चित्त समाधिस्थ हो गया
 बेसी इच्छा हो बीते क्य विद्याओ
 उसका मेरा मुँह बूझी बिगाड़ सकता ॥

तब पापी मार ‘समुद्धि मित्रु ने मुझे परवान किया समझ बुद्धि और चित्त हो बूझी अग्रमण हो गया ।

§ ३. गोधिक सुत्त (४. ३. ३)

गोधिक की आत्महत्या

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलु इन कलन्दक निपाप में विहार करते थे ।

उस समय, आयुष्मान् गोधिक-ऋषिगिरि के पास कालशिला पर विहार करते थे । तब अप्रमत्त, अतापी और प्रतिहात्म होकर विहार करते हुए आयुष्मान् गोधिक ने समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया । फिर, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट गई ।

दूसरी बार भी, अप्रमत्त, अतापी और प्रहितात्म होकर विहार करते हुए आयुष्मान् गोधिक ने समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया । दूसरी बार भी, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट गई ।

तीसरी बार भी, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि से होने वाली चित्त-विमुक्ति टूट गई ।

चौथी बार भी, पाँचवीं बार भी, छठीं बार भी, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट गई ।

सातवीं बार भी, अप्रमत्त, अतापी और प्रहितात्म होकर विहार करते हुए आयुष्मान् गोधिक ने समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया ।

तब, आयुष्मान् गोधिक के मन में यह हुआ—छठीं बार तक मेरी समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट चुकी है—तो क्यों न मैं आत्महत्या कर लूँ ।

तब, पापी मार आयुष्मान् गोधिक के धितकं को अपने चित्त से जान, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् से गाथा में बोला—

हे महावीर ! हे महाप्रज्ञ ! जो अपनी ऋद्धि से वीर हो रहे हैं ।

सभी वैर और मय से मुक्त ! सर्पज्ञ ! मैं पैरों पर प्रणाम करता हूँ ॥

हे महावीर ! आपका श्रावक, हे मृत्युक्षय !

मरने की इच्छा और विचार कर रहा है हे तेजस्वी ! उसे रोकें,

भगवन् ! आपके शासन में लगा कोई श्रावक,

हे लोक-विख्यात ! यिना निर्वाण पाये,

शैक्ष्य ही होते कैसे मृत्यु को प्राप्त हो जायगा ?

उस समय तक आयुष्मान् गोधिक ने आत्महत्या कर ली थी ।

तब भगवान् 'वह पापी मार है' जान गाथा में बोले—

धीर पुरुष ऐसे ही करते हैं, जीवन में उनकी आशा नहीं रहती है,

तृष्णा को जड़ से उखाड़, गोधिक ने निर्वाण पा लिया ॥

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुजो !! जहाँ ऋषिगिरि के पास कालशिला है वहाँ चल चलो, जहाँ गोधिक कुलपुत्र ने आत्महत्या कर ली है ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

तब, कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान् जहाँ ऋषिगिरि के पास कालशिला थी वहाँ गये । भगवान् ने वृर ही से आयुष्मान् गोधिक को खाट पर कथा झुकाने सोचे देखा ।

उस समय कुछ उ चाता सा, कुछ छाया सा, पूरब की ओर उठा जाता था, पश्चिम की ओर उड़ा

जाता था; उत्तर की ओर उड़ा जाता था; दक्षिण की ओर उड़ा जाता था; ऊपर, नीचे, समी और उड़ा जाता था ।

तब भगवान् ने मिथुओं को व्यामिश्रित किया—मिथुओं ! ऐसी कुछ बु बातें सा कुछ करना सा समी और उड़ा जाता है ।

सन्धे ! जी हों ।

मिथुओं ! यह पापी मार गोधिक कुङ्कुम के विशाल को समी और खोज रहा है—गोधिक कुङ्कुम का विशाल कहीं प्रतिष्ठित है । मिथुओं ! गोधिक का विशाल कहीं भी प्रतिष्ठित नहीं है, उसने विवाह या किया है ।

तब पापी मार चिस्व-पण्डु बीबा (=ओ बीबा पके बैच के समान पीकर जा) को छे बहों भगवान् ये बहों जाया और गाथा में बोका—

ऊपर बीचे और देते मने दिशाओं और अनुदिसाओं में
मिने खोज धान कर भी नहीं पाया वह गोधिक कहीं गया ।
वह धीर, पृथि-सम्पन्न ध्यावी सदा ध्यान-रत
दिल दात बना वह बीबा की इच्छा न करते हुए
सूखु की सेना को भीत पुनर्दम्भ न ग्रहण कर
गृह्य को बह से उखाड़ गोधिक ने परिमिर्बाण पा किया ।
भारी शोक में पब टसही काँच से बीबा चिसक गई
इससे वह मार खिन्न हो बहों अन्तर्बाण हो गया ।

४ ४ सचवस्तानि सुप (४ ३ ४)

मार द्वारा खात साक पीछा किया जाना

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् लक्ष्मणा में नेरुञ्जरा नदी के तीर पर अजपाक विप्रोप के नीचे विद्या करते थे ।

उस समय पापी मार सात साक से भगवान् का पीछा कर रहा था—जबमें कोई शोध निकालने की इच्छा न किन्तु बसे करी कोई शोध नहीं मिला ।

तब पापी मार बहों भगवान् ये बहों जाया और भगवान् से साक में बोका—

बड़ा चिन्तित सा हो वन में प्याण करते हो
क्या तुम्हारा बच बह हो गया है किसकी कि क कर रहे हो ?
क्या गाँव में तुमने कुछ उत्पात किया है
कि जिससे लोगों को अपनी जेठ भी नहीं देते ?
क्या तुम्हें किमी से भी बारी नहीं होती ?

[भगवान्—]

शोक के सारे मूक को बचाव

विना उत्पात किने चिन्ता-रहित हो प्याण करता हूँ

पीबन के समी खोम और काकच को काट,

है अमल कोयीं क मित्र ! अन्वीर-रहित हो प्याण करता हूँ ।

[मार—]

जिसे कहते हैं 'यह मेरा है', जो कहते हैं 'यह मेरा है',
यहाँ यदि तुम्हारा मन लगा है, तो श्रमण ! मुझमें तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

जिसे लोग कहते हैं वह मेरा नहीं है, जो कहते हैं वह मैं नहीं हूँ,
रे पापी ! ऐसा जान, मेरे मार्ग को भी तू नहीं देख सकेगा ॥

[मार—]

यदि तुम्हें मार्ग का पता लग गया है, क्षेम और भजर-पद्-गामी,
तो उस पर अकेला ही जाओ, दूसरों को क्यों सिखाते हो ॥

[भगवान्—]

लोग पूछते हैं कि मृत्यु के राज्य का पार कहाँ है,
जो उस पार जाने को उत्सुक हैं,
उनसे पूछा जाकर मैं बताता हूँ
कि उपाधियों का शिल्कुल अन्त कहाँ है ॥

[मार—]

भन्ते ! किसी गाँव या कस्बे के पास ही एक बावली हो, जिनमें एक केकड़ा रहता हो। तब, कुछ लड़के या लड़कियाँ उस गाँव या कस्बे से निकल कर उस बावली के पास जायँ। जाकर उस केकड़े को पानी से निकाल जमीन पर रख दें। वह केकड़ा जिधर पैर मोड़े उधर ही उसे वे लड़के या लड़कियाँ लकड़ी या पत्थर से पीटें और उसके अंग-प्रत्यंग को छोड़ दें। और, तब वह केकड़ा 'फिर भी पानी में बैठने से लाचार हो जाय।

भन्ते ! ठीक वैसे ही, जो मेरे अच्छे बड़े पुत्र अग धे सभी को भगवान् ने तोड़ दिया, मरौद दिया, नष्ट कर दिया। भन्ते ! अब मैं भगवान् में दोष निकालने के लिये आने में असमर्थ हो गया।

तब, पापी मार भगवान् के सम्मुख यह करुणा-पूर्ण गाथा बोला—

चर्बी जैसे उजले पत्थर को देख,
कौआ झपट्टा मारा,
यह कुछ कोमल चीज होगी,
बड़ी स्वादवाली होगी ॥
वहाँ कोई स्वाद नहीं पा,
कौआ उड़ गया,
पत्थर पर झपटने वाले कौएँ जैसा,
गौतम को छोड़ मैं भाग जाऊँ ॥

तब पापी मार भगवान् के सम्मुख यह करुणापूर्ण गाथा कह वहाँ से हट कर भगवान् के पास ही जमीन पर पालथी लगा बैठ गया। चुप हो, गुँगा रह, कंधा गिरा, वह जमीन को तिनके से खोदने लगा।

§ ५. मारदुहिता सुक्त (४. ३. ५)

मार कन्याओं की पिराजय

तब, तृष्णा, अरति और रगा मार की लड़कियाँ जहाँ पापी मार या वहाँ बोई। आकर पापी मार को गाथा में बोली—

सात । बिच क्यों हैं ? किस युद्ध के विषय में शोक कर रहे हैं ?
हम उसे राग के बाक में जैसे बंगाली हाथी को
बसा कर खे भावेंगी, वह आप के पक्ष में रहेगा ॥

[मार—]

संसार में अर्हत् बुद्ध राग से नहीं काये जा सकते हैं;

मार के राज्य से जो निकल गये इसकिये मैं इतना विन्मिद हूँ ॥

तब तुज्जा भरति और रगा मार की कड़कियों वहाँ भगवान् के वहाँ भाई । भाकर भगवान्
से बोली—अमम । आप के चरणों की सेवा करूँगी ।—किन्तु, भगवान् ने ध्यान नहीं दिया क्योंकि
वे उपार्थि के क्षय हो जाने से अनुत्तर विमुक्ति को पा लुके थे ।

तब तुज्जा भरति और रगा मार की कड़कियों ने एक और हठकर ऐसी मन्त्रणा की—युद्धों
की चाह तरह तरह की होती है । तो हम लोग एक एक सी कुमारियों के रूप धरें ।

तब मार की कड़कियों एक एक सी कुमारियों के रूप धर, वहाँ भगवान् के वहाँ भाई । भाकर
भगवान् से यह बोली—अमम । हम आप के चरणों की सेवा करूँगी ।

उसे भी भगवान् ने ध्यान नहीं दिया क्योंकि वे उपार्थियों के क्षय हो जाने से अनुत्तर विमुक्ति
को पा लुके थे ।

तब मार की कड़कियों ने एक और हठ कर ऐसी मन्त्रणा की—युद्धों की चाह तरह तरह की
होती है । तो हम लोग एक एक सी एक बार प्रसन्न कर लुके जाकी कियों के रूप दो बार प्रसन्न कर
लुके जाकी कियों के रूप बीच उन्न जाकी कियों के रूप नहीं उन्न जाकी कियों के रूप धरें ।

उसे भी भगवान् ने ध्यान नहीं दिया क्योंकि वे उपार्थियों के क्षय हो जाने से अनुत्तर विमुक्ति
को पा लुके थे ।

तब तुज्जा, भरति और रगा मार की कड़कियों ने एक और हठ कर कहा—हम लोगों के
पिता ने डीक ही कहा था—

संसार में अर्हत् बुद्ध राग से नहीं काये जा सकते हैं;

मार के राज्य से जो निकल गये इसकिये मैं इतना विन्मिद हूँ ॥

परि हम लोग किसी अमम वा ब्राह्मण के पास इस तरह व्यर्थों को नीतराग नहीं बुझा है त
उसकी छाती पर छाती वा मुँह से उज्ज खिच बमन हो जाता वा पतलक हो जाता वा मरतवाक हो
जाता । जैसे कही बातें सूख और मुझां जाती हैं जैसे ही वह सूख और मुझां जाता ।

तब तुज्जा भरति और रगा मार की कड़कियों वहाँ भगवान् के वहाँ भाई । भाकर एक
और कर्षा हो गई ।

एक और कर्षा हो तुज्जा मार की कड़की भगवान् से गाथा में बोली—

क्या विन्मिद-न्ता हो बन में ध्यान करते हो

क्या तुम्हारा बन गह हो गया है जिसकी किन्न कर रहे हो ?

क्या गर्ब में तुमने कुछ उल्लास किया है,

कि जिससे लोगों को अल्पी मेंड भी नहीं बैठे ?

क्या तुम्हें किन्धी से भी दोस्ती नहीं होती ?

[भगवान्—]

परमार्थ की प्राप्ति, कर्षण की द्वाग्नि

सुधामै और बहुकामे बन्ने पदानों पर विषय या

कर्मक ध्याव करते हुए सुख का अनुभव करता हूँ,

इसी से लोगों के साथ मिलता-जुलता नहीं हूँ,
मुझे किसी से भी दोस्ती नहीं लगती है ॥

तब, अरति, मार की लड़की भगवान् से गाथा में बोली—

' भिक्षु ससार में कैसे विहार करता है ?
पाँच बाढ़ों को पार कर छठे को कैसे पार करता है ?
कैसे ध्यान के अभ्यासी को काम सजायें,
पकड़ नहीं सकतीं, बाहर ही बाहर रहती हैं ?

[भगवान्—]

जिसकी काया शान्त हो गई है, चित्त विमुक्त हो गया है,
जिसे संस्कार नहीं, स्मृतिमान्, बिना घर का,
धर्म को जान अधितर्क ध्यान लगाने वाला,
न क्रोध करता है, न वैर बाँधता है, न मन मारता है ॥
भिक्षु ऐसे ही संसार में विहार करता है,
पाँच बाढ़ों को पार कर छठे को पार करता है,
कैसे ध्यान के अभ्यासी को काम सजायें,
पकड़ नहीं सकती, बाहर ही बाहर रहती हैं ॥

तब, मार की लड़की रगा भी भगवान् से गाथा में बोली—

तृष्णा को काट गण और सब वाला जाता है,
और भी बहुत प्राणी जायेंगे,
यह प्रव्रजित बहुत्र से लोगों को,
मृत्यु-राज से छुड़ा कर पार ले जायगा ॥
बुद्ध उन्हें ले जाते हैं,
तयागत (=बुद्ध) अपने सद्धर्म से,
धर्म से ले जाये जाने वाले,
ज्ञानियों को बाह्र कैसी ।

तब तृष्णा, अरति और रगा, मार की लड़कियाँ जहाँ पापी मार था वहाँ आ ।

पापी मार ने उन लोगों को आती देखा देखकर वह गाथा में बोला—

मूर्ख ! कमल की नाल से पर्वत को मथना चाहा,
पहाड़ को नख से खोदना, लोहे को दूँत से घसाना,
चटान को शिर से टकराना, पाताल का अन्त खोजना,
या वृक्ष के छूँट को छाती से भिड़ाना चाहा
हार मान, गीतम को छोड़ चले आओ ॥

घटक मटक से आई,
तृष्णा, अरति और रगा,
हवा जैसे रूई के फाड़े को (बिखेर दे)-
बुद्ध ने उन्हें जैसे, बिखेर दिया ॥

तृतीय वर्ग समाप्त ।

पाँचवाँ परिच्छेद

५. मिथुणी-संयुक्त

§ १ आलविका सुप्त (५ १)

काम भोग तीर जैसे हैं

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय मगधान् भावस्त्री में अनाद्यपिच्छक के जेतयन आराम में विहार करते थे ।

तब आलविका मिथुणी सुप्त में रहन और पाप भीर के भावस्त्री में मिश्रात्म के छिपे पैठी । मिश्रात्म से छीट भोजन करने के उपरान्त एकाम्त-सेवन के छिपे चर्हों अम्वक बन ही चर्हों जुड़ी गई ।

तब पापी मार आलविका मिथुणी को बरा कंया भीर रोंपे कड़े कर देनै, और शक्ति को तीव्र देने की ह्ज्ज से चर्हों आलविका मिथुणी भी चर्हों जाया । जाकर आलविका मिथुणी से गाथा में बोला—

संसार से छुटकारा नहीं है एकाम्त-सेवन से क्या कबवा !

सांसारिक कामों का भोग करो पीछे कहीं पछतावा न पड़े व

तब आलविका मिथुणी के मन में यह हुआ—क्रीव यह मनुष्य या जमनुष्य गाथा में बोक रहा है ?

तब आलविका मिथुणी के मन में यह हुआ—यह पापी मार मुझे बरा कंया भीर रोंपे खड़े कर देने कीर शक्ति मंग कर देने की ह्ज्ज से गाथा बोक रहा है ।

तब आलविका मिथुणी 'यह पापी मार है' जाव गाथा में बोली—

संसार से जो छुटकारा होता है प्रजा से मैंने उसे पा किया है,

प्रसन्न पुरुषों के मित्र पापी ! तुम उस पत्र को नहीं जानते व

सांसारिक काम तीर माके जैसे हैं जो एकाम्तों की कृत्यते रहते हैं

जिसे तुम काम भोग कहते हो उसमें मेरी रुचि नहीं रही व

तब पापी मार 'आलविका मिथुणी मैं मुझे पहचान लिया' समझ बुद्धिज और क्लिष्ट हो चर्हों अन्तर्भाव हो गया ।

§ २ सोमा सुप्त (५ २)

स्त्री-माय क्या करेगा ?

भावस्त्री में ।

तब सोमा मिथुणी सुप्त में रहन और पाप भीर के भावस्त्री में मिश्रात्म के छिप पैठी ।

मिश्रात्म से छीट, भोजन कर देने के बाद दिन के विहार के छिपे चर्हों अन्वयन है चर्हों चली गई । अन्वयन में वैर बूझ बूझ के नीचे दिन के विहार के छिपे छिड गयी ।

तब पापी मार सोमा मिथुणी को बरा कंया भीर रोंपे कर देने, तथा समाधि से गिरा देने के विचार से चर्हों सोमा मिथुणी भी चर्हों जाया । जाकर सोमा मिथुणी से गाथा में बोला—

ऋषि लोग जिम पद को पाते हैं उसका पाना बढ़ा कठिन है,
दो अंगुल भर प्रज्ञावाली छियाँ उसे नहीं पा सकती हैं ॥

तब, सोमा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—कोन यह मनुष्य या अमनुष्य गाथा में बोल रहा है ?

तब, सोमा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—यह पापी मार मुझे डरा, कँपा और रोंगटे खड़े कर देने, तथा समाधि से गिरा देने के विचार से गाथा बोल रहा है ।

तब, सोमा भिक्षुणी “यह पापी मार है” जान गाथा में बोली—

जब चित्त समाहित हो जाता है, ज्ञान उपस्थित रहता है,

और धर्म का पूर्णतः साक्षात्कार हो जाता है, तब स्त्री-भाव क्या करेगा !

जिस किसी को ऐसा विचार होता है—मैं स्त्री हूँ, अथवा पुरुष हूँ,

अथवा कुछ और ही, उसी से मार ऐसा कह सकता है ॥

तब, पापी मार “सोमा भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया” समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ३. किशा गौतमी सुत्त (५ ३)

अज्ञानान्धकार का नाश

श्रावस्ती में ।

तब, कृशा-गौतमी भिक्षुणी सुबह में पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठी ।

भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद दिन के विहार के लिए जहाँ अन्धवचन है वहाँ चली गई । अन्धवचन में पैठ, एक वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिये बैठ गई ।

तब, पापी मार समाधि से गिरा देने के विचार से गाथा में बोला—

पुत्र-मृत्यु के शोक में पढ़ी जैसे, अकेली, रोनी सूरत लिये ,

घन में अकेली पैठ कर क्या किसी पुरुष की खोज में है ?

तब कृशा-गौतमी भिक्षुणी के मन में यह हुआ— पापी मार गाथा बोल रहा है ।

तब कृशा-गौतमी ने “यह पापी मार है” जान गाथा में उत्तर दिया—

पुत्र-मृत्यु के शोक से मैं ऊपर उठ चुकी हूँ, पुरुष की खोज भी जाती रही,

न शोक करता हूँ, न रोती हूँ, आबुस ! तुमसे भी अब डर नहीं ॥

ससारा में स्वाद लेना छूट चुका, अज्ञानान्धकार हटा दिया गया,

मृत्यु की सेना की जीत, आश्रय-रहित हो विहार करती हूँ ॥

तब पापी मार “कृशा-गौतमी भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया” समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ४. विजया सुत्त (५. ४)

काम-तृष्णा का नाश

श्रावस्ती में ।

तब विजया भिक्षुणी [पूर्ववत्] दिन के विहार के लिये बैठ गई ।

तब पापी मार गाथा में बोला—

कम उम्र वाली तुम सुन्दरी हो, और मैं एक नया कुमार हूँ,

पञ्चाङ्गिक सात्र से धामो, हम मौत्र उषार्थे ॥

तब विजया मिश्रणी ने "पह पापी मार है आज गाथा में उतर दिया—

छुभाचने रूप शब्द रस गन्ध भीर स्वर्ण

तुम्हारे ही लिये छोड़ देती हूँ मार ! मुझे उसकी जानस्यकता नहीं

इस गंदगी से भरे शरीर से प्रमदुर आर बह हो जाने वाले से,

मेरा मन इतना है शुष्क आती है मेरी काम-गुण्य मित्र गई है ।

जो रूप-छोक या अरूप-छोक अ (देवत्व) है

और जो ज्ञान की शान्त अन्वयाहूँ है सभी में मेरा अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया है ॥

तब पापी मार "विजया मिश्रणी ने मुझे पहचान किया" समस्त हुतकित भीर टिज हो नहीं अन्तर्भाव हो गया ।

§ ५ उत्पलवर्णा सुत (५ ५)

उत्पलवर्णा की कद्रिमता

भावस्ती में ।

तब उत्पलवर्णा मिश्रणी अन्वयन में किन्ती सुपुष्टित सात्र हृष के नीचे खड़ी हो गई ।

तब पापी मार गाथा में बोला—

मिश्रणि ! सुपुष्टित सात्र हृष के नीचे तुम अकेली खड़ी हो

तुम्हारे बीसा सौन्दर्य दूसरा नहीं है जो नहीं आई हो

मादाव ! बदमासों से तुम्हें डर नहीं आता ?

तब उत्पलवर्णा मिश्रणी ने "पह पापी मार है" आज गाथा में उतर दिया—

बीसे यदि सी हवार भी बदमास चके जानें

तो मैं नहीं डर सकती मेरा एक रीत्य भी नहीं छिड़ सकता ।

अकेली रह कर भी मार ! तुझ से मुझे अब नहीं ॥

अभी मैं अन्तर्भाव हो जा सकती हूँ,

तुम्हारे देर में छुस जा सकती हूँ,

जाँचों के बीच खड़ी रहने पर भी

तुम मुझे नहीं देख सकते ॥

बिच के बशीभूत हो जाने पर कद्रिबों भी स्पर्ष प्राप्त हो जाती है

मैं सभी अन्तर्भावों से मुक्त हूँ, आहुस ! तुमसे मैं नहीं डरती ॥

तब पापी मार 'उत्पलवर्णा मिश्रणी ने मुझे पहचान किया' समस्त हुतकित भीर कित हो नहीं अन्तर्भाव हो गया ।

§ ६ आळा सुत (५ ६)

अग्म-अहण के दोष

भावस्ती में ।

तब आळा मिश्रणी दिव के विहार के किने बैठ गई ।

तब पापी मार चहों आळा मिश्रणी की चहों आया । आकर आळा मिश्रणी से कह बीजा—

मिश्रणि ! तुम्हें क्या नहीं खचता है ?

[मार]

आवुस ! मुझे जन्म ग्रहण करना नहीं रुचता है ।

तुम्हें जन्म ग्रहण करना क्यों नहीं रुचता ?

जन्म लेकर कामों का भोग करता है ।

तुम्हें यह किसने सिखा दिया कि — हे भिक्षुणि ! तुम्हें जन्म-ग्रहण करना मत रुचे ?

[चाला भिक्षुणी—]

जन्म लेकर मरना होता है, जन्म लेकर दुःख देखता है,

बौघा जाना, मारा जाना, कष्ट भुगतना, इमी मे जन्म नहीं रुचता है ॥

बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया, जन्म-ग्रहण से छूटने को,

सभी दुःख के ग्रहण के लिये, वन्हीं ने मुझे सच्चा मार्ग दिखाया ॥

जो जीव रूप के फेर में पड़े हैं, जो अरूप के अधिष्ठान में,

निरोध (=निर्वाण) को न जानते हुये, पुनर्जन्म लेने वाले ॥

तब, पापी मार "चाला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ७. उपचाला सुत्त (५. ७)

लोक सुलग-धधक रहा है

श्रावस्ती में ।

तब, उपचाला भिक्षुणी दिन के विहार के लिए बैठ गई ।

तब, पापी मार 'उपचाला भिक्षुणी से यह बोला — भिक्षुणि ! तुम कहाँ उत्पन्न होना चाहती है ?

आवुस ! मैं कहीं भी उत्पन्न होना नहीं चाहती ।

[मार—]

त्रयस्त्रिंश, और याम, और त्रुपित (नामक देव-लोक के) देवता,

निर्माणरत्ति लोक के देवता, वशवर्ती लोक के देवता हैं,

वहाँ चित्त लगाओ, उसका सुप्त अनुभव कर सकोगी ॥

[उपचाला भिक्षुणी—]

त्रयस्त्रिंश, और याम, और त्रुपित लोक के देवता,

निर्माणरत्ति लोक के देवता, वशवर्ती लोक के जो देवता

वे सभी काम के बन्धन से बँधे हैं, फिर भी मार के वश में आते हैं ॥

सारा लोक सुलग रहा है, सारा लोक धधक रहा है,

सारा लोक लहर रहा है, सारा लोक काँप रहा है ॥

जो कम्पित नहीं होता, जो चलायमान नहीं है,

ससारी लोगों की जहाँ पहुँच नहीं है,

जहाँ मार की भी गति नहीं होती,

वहाँ मेरा मन लगा है ॥

तब, पापी मार "उपचाला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ८ सीसुपचाला मुक्त (५ ८)

दुष्ट शासन में कवि

आपत्ती में ।

तब शीशुपचाळा मिथुणी दिन के बिहार के किए बैठ गई ।

तब पापी मार शीशुपचाळा मिथुणी से यह बोला—

मिथुनि ! तुम्हें कौन सम्प्रदाय रक्ता है ?

बाबुल ! मुझे किसी का भी सम्प्रदाय नहीं रक्ता है ।

[मार—]

किस किए गिर मुझा किया है ? मिथुणी-सा माखन हो रही ही

कोई सम्प्रदाय तुम्हें नहीं रक्ता; क्या मरकती फिरती है ?

[शीशुपचाळा मिथुणी—]

(धर्म से) पाहुर रहने वाले सम्प्रदाय के होते हैं,

आत्म-रक्षि में जिनकी श्रद्धा होती है,

उन्को मत मुझे स्वीकार नहीं है

मे धर्म के जानने वाले नहीं हैं ॥

शाक्य-कुल में भवतार किये हैं

दुष्ट जिनकी बराबरी का कोई पुरुष नहीं

सर्व-विजयी मार जिय,

जो कहीं भी पराजित नहीं होते

सर्वथा मुक्त, पूर्ण स्वतन्त्र

परम ज्ञानी सब कुछ जगत हैं

सभी कर्मों के ह्वय जो मास

उपाधियों के ह्वय ही जाने से विमुक्त;

वही भगवान् मेरे गुरु हैं

उन्हीं का शासन मुझे रक्ता है ॥

तब पापी मार "शीशुपचाळा मिथुनी मे मुझे पहचान किया" समस्त दुःखित और निराश हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ९ सेला मुक्त (५ ९)

द्वार से उत्पत्ति और निरोध

आपत्ती में ।

तब सेला मिथुणी— दिन के बिहार के किये बैठ गई ।

तब पापी मार सेला मिथुणी को बरा "तुम भी हृष्य से गाथा में बोला—

कियेने इस पुनके की क्या किया पुनके को सिरजने बाध्य कौन है ?

कहाँ से यह पुनका पैदा हुआ कहीं इस पुनके का निरीह हो जाता है ?

तब सेला मिथुणी ने "यह पापी मार है" काय गाथा में उत्तर दिया—

न तो यह पुनक स्वर्ण गया हो गया है

न तो इस अज्ञान को बुराये किसी ने बना दिया है

हैनु के होने से हो गया है

हेनु के एक जाने से एक जगत् (निरीह हो जाता) है ॥

जैसे किसी चीज को,
 खेत में रोप देने से पौधा उग आता है,
 पृथ्वी का रस, ओर तरी, दौनों को पाकर,
 वैसे ही, (७) स्कन्ध, धातु ओर छ. आयतनों के,
 हेतु के होने से हो गया है,
 उस हेतु के रूक जाने से निरोध हो जाता है ॥

तब पापी मार "शैला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ, दुःखित और रिन्न होकर वही
 अन्तर्धान हो गया ।

§ १०. वजिरा सुत्त (५. १०)

आत्मा का अभाव

श्रावस्ती में ।

तब वज्रा भिक्षुणी सुबह में पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठी ।

भिक्षाटन से लौट, भोजन कर चुकने के बाद जहाँ अन्धवन है, वहाँ दिन के बिहार के लिये
 चली गई । अन्धवन में पैठ, एक वृक्ष के नीचे दिन के बिहार के लिये बैठ गई ।

तब पापी मार वज्रा भिक्षुणी को डरा, कँपा ओर रोंगटे खदे कर देने, तथा समाधि से गिरा देने
 की इच्छा से जहाँ वज्रा भिक्षुणी थी वहाँ आया । आकर वज्रा भिक्षुणी से गाथा में बोला —

किसने इस प्राणी को बनाया है, प्राणी का बनाने वाला कहाँ है ?

कहाँ से प्राणी पैदा हो जाता है, कहाँ प्राणी का निरोध हो जाता है ?

तब वज्रा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—कौन यह मनुष्य या अमनुष्य गाथा में बोल रहा है ?

तब वज्रा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—यह पापी मार मुझे डरा, कँपा और रोंगटे खदे कर देने,
 तथा समाधि से गिरा देने की इच्छा से गाथा में बोल रहा है ।

तब वज्रा भिक्षुणी ने "यह पापी मार है" जान, गाथा में उत्तर दिया —

"प्राणी" क्या बोल रहे हो,

मार ! तुम मिथ्या आत्म-दृष्टि में पड़े हो,

यह तो केवल सस्कारों का पुञ्ज भर है,

"प्राणी" † यथार्थ में कोई नहीं है ॥

जैसे अवयवों को मिला देने से,

"रथ" ऐसा शब्द जाना जाता है,

वैसे ही, (पाँच) स्कन्धों के मिलने से,

कोई 'प्राणी' समझ लिया जाता है ॥

दुःख ही उत्पन्न होता है,

दुःख ही रहता है, और चला जाता है,

दुःख को छोड़ और कुछ नहीं पैदा होता है,

दुःख को छोड़ और किसी का निरोध भी नहीं होता है ॥

तब पापी मार "वज्रा भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ वही अन्तर्धान हो गया ।

भिक्षुणी-संयुक्त समाप्त

छठाँ परिच्छेद

६ ब्रह्म-सयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १ आयाचन मुद्य (६ १ १)

पेसा मीने मुता ।

एक समय भगवान् उदयेला में सभी तरत ही बुद्धत्व प्राप्त कर नेरखरा मदी के तीर पर अन्न पात्र-विशेष के नीचे बिहार करते थे ।

एक पञ्चांग में व्याप करते भगवान् के मन में यह चिन्त उठ्य— मीने गम्भीर दुर्बलता पुर शेष श्रांत उत्तम तर्क से अप्राप्य विपुल तथा परिश्रमों द्वारा बाबने योग्य हस धर्म को पा किया । यह जनता काम-तृष्णा में रमण करने वाली काम-रत काम में प्रसन्न है । काम में रमण करने वाली हस जनता के किये यह जो धर्म-अराज कपी प्रतीत्य समुत्पन्न है वह दुर्बलता ही है । और यह भी दुर्बलता ही है जो कि यह सभी संस्कारों का समान सभी उपाधियों संसृष्टि, शृण्व-अन विराग विरोध (अदुःख-विरोध) बाधा निर्माण । यदि मैं बर्मापदेश भी कहूँ और दूसरे उसको न समझ पावें तो मेरे किये यह अरबुद्ध और एककीक ही होगी ।”

उसी समय भगवान् को पहले कभी न सुनी यह बहुसुत गायार्थे सूत्र पढ़ी—

‘बह धर्म पाया कह सं हसका न पुत्र प्रकाशना ।

बहि राग-द्वेष-प्रकृति को है सुकर हसका आपना ॥

गंभीर उष्ण धारतुक्त दुर्बल्ये सूत्रम पबलिय का ।

तम-सुख-अद्वित रागरत द्वारा न संभव वेदना ॥”

भगवान् के पेसा समझने क कारण उक्त चिन्त धर्म प्रचार की और न सुककर अल्प-उत्सुकता की और सुक गया । तब स्वहृत्पति-ब्रह्मा ने भगवान् के चिन्त की बात को जानकर प्रकाश किया— ‘कोक भास हो आपगा रे ! अब तथागत अर्हत् सम्यक संजुक्त का चिन्त धर्म-प्रचार की और न सुक कर उरमुक्तता (अद्वैतता) की और सुक जाये ।”

(पेसा व्याप कर) सहृत्पति-ब्रह्मा उसे बहवात् पुरय (विना परिश्रम) कही बौह को समेट के और नरनेदी बौह को फेका दे ऐसे ही ब्रह्मकोक से अन्तर्धान हो भगवान् के सामने प्रगट हुआ । फिर सहृत्पति-ब्रह्मा न उपरना (अपहर) एक बन्धे पर करक चाहिने जानु को पृथ्वी पर रत किये भगवान् ये कथर हाथ जोड़ भगवान् स कहा—“भग्ने ! भगवान् धर्मोपदेश करें । मुगत ! धर्मोपदेश करें ।—अपन मल बाधे भी प्राणी हैं, धम न मुबने स बह नह दो जायेंगे । उपदेश करें धर्म की सुनने बाधे भी होंवेंग । सहृत्पति-ब्रह्मा ने बह नहा और बह कहकर यह भी कहा—

भगव में प्रकिय पित्तवाधों से चिन्तित

बहके नशुद्ध धर्म पत्ता हुआ ।

(अय) अमृत का द्वार खुला गया,
 विमल (पुरप) से जाने गये इस धर्म को सुनें ॥
 जैसे शैल पर्वत के शिखर पर खड़ा (पुरुप),
 चारों ओर जनता को देखे ।
 उसी तरह, हे सुमेध ! हे सर्वत्र नेत्र वाले !
 धर्म-रूपी महल पर चढ़ सब जनता को देखो ॥
 हे शोक रहित ! शोकाकुल जन्मजरा से पीडित जनता को देखो,
 उठो वीर ! हे संग्रामजित् ! हे सार्ववाह ! उत्पन्न-क्षण !
 जग में विचरो, धर्म-प्रचार करो,
 भगवन् ! जानने वाले भी मिलेंगे ॥

तब भगवान् ने ब्रह्मा के अभिप्राय को जानकर, और प्राणियों पर दया करके, बुद्ध-नेत्र से लोक का अवलोकन किया । बुद्ध-नेत्र से लोक को देखते हुये भगवान् ने जीवों को देखा, उनमें कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर स्वभाव, शीघ्र समझने योग्य प्राणियों को भी देखा । उनमें कोई कोई परलोक और पाप से भय करते, विहर रहे थे । जैसे उत्पलिनी, पशिनो या पुडरीविनी में से कितने ही उत्पल, पद्म या पुडरीक उदक में पैदा हुये, उदक में बड़े, उदक से जाहर न निकल (उदक के) भीतर ही दूबे पोषित होते हैं । कोई कोई उत्पल (=नीलकमल), पद्म (=रक्तकमल), या पुडरीक (=श्वेतकमल) उदक में उत्पन्न, उदक में बड़े (भी) उदक के बराबर ही खड़े होते हैं । कोई कोई उत्पल उदक से बहुत ऊपर निकल कर, उदक से अलिप्त (ही) पड़े होते हैं । इसी तरह भगवान् ने बुद्ध-चक्षु से लोक को देखा—अल्पमल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुस्वभाव, सुबोध्य प्राणियों को देखा जो परलोक तथा पाप से भय खाते विहार कर रहे थे । देख कर सहस्रपति ब्रह्मा से गाथा में कहा—

उनके लिये अमृत का द्वार खुल गया,
 जो कानवाले हैं, वे (उसे सुनने के लिए) श्रद्धा लोंगे,
 हे ब्रह्मा ! पीड़ा का ख्याल कर,
 मैंने मनुष्यों में निपुण, उत्तम, धर्म को नहीं कहा ॥

तब ब्रह्मा-सहस्रपति—“भगवान् ने धर्मोपदेश के लिये मेरी जात मान ली”—यह जान भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ २. गारव सुत्त (६ १. २)

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् धर्मी गुरत ही बुद्धत्व लाभ कर उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तीर पर अजपाल निम्बोष के नीचे विहार करते थे ।

तब एकान्त में ध्यान करते भगवान् के चित्त में ऐसा चितकें उठा—यिना किसी को ज्येष्ठ माने और उसके प्रति गौरव रखते विहार करना दुःख है । मैं किस श्रमण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान, उसका सत्कार और गौरव करते विहार करूँ ?

तब भगवान् के मन में यह हुआ—अपरिपूर्ण शील की पूर्ति के लिये ही किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान उसका सत्कार और गौरव करते विहार करना चाहिये । किन्तु, मैं—देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ, इय सम्पूर्ण लोक में, तथा श्रमण ब्राह्मण देव और मनुष्यवालों

{ श्रद्धा लोंगे = कान दे=श्रद्धापूर्वक सुने ।

इस प्रथा में—अपने अंसा किसी दूसरे अमन या माहण को शीकसम्पन्न नहीं देखाता है, जिसे अपना ज्येष्ठ मान उसे सत्कार और गौरव करे।

अपरिपूर्ण समाधि की पूर्ति के लिये ही किसी दूसरे अमन या माहण को ज्येष्ठ मान उसका सत्कार और गौरव करते विहार करना चाहिये । ।

अपरिपूर्ण प्रज्ञा की पूर्ति के लिये ही ।

अपरिपूर्ण विमुक्ति की पूर्ति के लिये ही ।

अपरिपूर्ण विमुक्ति ज्ञान-दर्शन के लिये ही किसी दूसरे अमन या माहण को ज्येष्ठ मानकर उसका सत्कार और गौरव करते विहार करना चाहिये । किन्तु मैं अपने जैसा किसी दूसरे अमन या माहण को विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन से सम्पन्न नहीं दृष्टता हूँ जिसे अपना ज्येष्ठ मान उसे सत्कार और गौरव करूँ ।

तो अष्टम हो कि मैं अपने समुद्र धर्म को ही ज्येष्ठ मान उसे सत्कार और गौरव करते विहार करूँ ।

तब सहस्रम्पत्ति महा भगवान् के बितर्क को अपने चित्त से ज्ञान जैसे—बछवान् पुत्र्य समेती बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले पैस ही—महा लोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सामने प्रगट हुआ ।

तब सहस्रम्पत्ति महा उपरमी को एक पन्थे पर सम्माज भगवान् की ओर हाव ओषकर यह बोधा—

भगवन् ! पैसी ही बात है । भगवन् ! पैसी ही बात है । मन्ते ! पूर्ण दुग के को अर्हत् सम्पन्न समुद्र हो गये हैं वे भगवान् भी धर्म को ही ज्येष्ठ मान उसे सत्कार और गौरव करते विहार किया करते थे । मन्ते ! मविष्य काळ में जो अर्हत् सम्पन्न समुद्र होंगे वे भगवान् भी धर्म को ही । इस समय, अर्हत् सम्पन्न समुद्र भगवान् भी धर्म को ही ज्येष्ठ मान उसे सत्कार और गौरव करते विहार करें ।

सहस्रम्पत्ति महा ने यह कहा । यह कहकर फिर वह भी कहा—

मृतकाक में समुद्र को हो गये अनागत में जो बुद्ध होंगे
और जो अभी समुद्र हैं बुद्धों के शोक बसायेवाले ।
सभी धर्म के प्रति गौरव-शील हो विहार करते थे धीर करते हैं
जैसे ही विहार करेंगे भी बुद्धों की पही थाक है ।
इसलिये परमार्थ की कम्मना करनेवाले
धीर महारथ की आकांक्षा रखवाले को
सद्धर्म का गौरव करना चाहिये
बुद्धों के उपदेश को स्मरण करते हुए ॥

§ ३ प्रसन्नदेव सुत्त (६ १ ३)

आशुति प्रज्ञा को नहीं मिस्रती

केसा मीने सुता ।

एक समय भगवान् ध्यायस्ती में अनाथपिण्डिक के जन्मबल धराम में विहार करत थे ।

उस समय किसी माहणी का द्रष्टव्य नामक एक पुत्र भगवान् के पास पर से बेबर हो प्रसन्न हो गया था ।

तब आशुप्पाय द्रष्टव्य ने अनेक पञ्चाल में अथमत आतापी (अनेकों की उपानैवाला) और प्रद्विताम दा विहार करत प्रसन्नदेव के उस अनुत्तर वराम धर्म को देखते ही देखते स्वयं काय और

साक्षात् कर लिया जिसके लिये कुलपुत्र सम्यक् घर से बेचर हो प्रव्रजित हो जाते हैं। “जाति क्षीण । गहं, ब्रह्मचर्य-वास सफल हो गया, जो फरना था सो कर लिया गया, अब चाद के लिये कुछ नहीं रहा जान लिया । आयुष्मान् ब्रह्मदेव अर्हंतो मे एक हुये ।

तब, आयुष्मान् ब्रह्मदेव सुबह में पहन और पात्रचीवर ले ध्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठे ध्रावस्ती में बिना कोई घर छोड़े भिक्षाटन करते जहाँ अपनी माता का घर था वहाँ पहुँचे ।

उस समय, आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी प्रतिदिन ब्रह्मा को आहुति दे रही थी ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा के मन में यह हुआ—यह आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी प्रतिदि ब्रह्मा को आहुति दे रही है । तो, मैं चलकर उसे सबेग उत्पन्न कर दूँ ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा—जैसे कोई यलवान् पुष्ट समेटी बाँह को पगार दे और पसारी बाँह व समेट ले वैसे ही—ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता के घर के सामने प्रगट हुआ

तब, सहस्रपति ब्रह्मा आकाश में खड़ा हो, आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी से गाथाओं में बोला—

हे ब्राह्मणि ! यहाँ से ब्रह्मलोक दूर है,
जिसके लिये प्रतिदिन आहुति दे रही हो,
हे ब्राह्मणि ! ब्रह्मा का तो यह भोजन भी नहीं है,
ब्रह्म-मार्ग को बिना जाने क्यों भटक रही है ॥
हे ब्राह्मणि ! यह तुम्हारा (पुत्र) ब्रह्मदेव,
उपाधियों से मुक्त, देवताओं से भी बड़ा-बड़ा,
अपनापन छूटा, भिक्षु, जो किसी दूरते को नहीं पोसता,
तुम्हारे घर भिक्षा के लिये आया है ॥
सत्कार के योग्य, दु ख-मुक्त, भावितात्मा,
ससुप्य और देवताओं का पूजा-पात्र,
पापों को हटा, ससार से जो लिस नहीं होता,
शान्त हो भिक्षाटन कर रहा है ॥
न उसके कुछ पीछे है, और न कुछ आते,
शान्त, दुःख हुआ, उपात-रहित, बृच्छा-रहित,
रागी और वीतराग सभी के प्रति जिसने दण्ड त्याग दिया है,
वही तुम्हारी आहुति अन्न-पिण्ड को भोग लगावे ॥
क्लेश-रहित, जिसका चित्त उठा हो गया है,
दान्त नाग जैसा स्थिरता से चलनेवाला,
भिक्षु, सुशील, सुयिमुक्त चित्त,
वही तुम्हारी आहुति अन्न-पिण्ड को भोग लगावे ॥
उसी के प्रति भटल श्रद्धा से,
दक्षिणा-पात्र के प्रति दक्षिणा का दान कर,
भविष्य में सुख देनेवाला पुण्य कर,
हे ब्राह्मणि ! धारा पार किये सुनि को देखकर ॥

×

×

×

उम्मी क प्रति बच्छ ब्रह्मा से
 ब्राह्मणी के शिक्षण पात्र के प्रति शिक्षा का दान किया।
 भविष्य में सुख देनेवाका पुत्र किया
 भवसागर पार किये मुक्ति को देखकर।

§ ४ एकब्रह्म सुत्र (६ १ ४)

एक ब्रह्मा का मान-मर्दन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् ब्राह्मस्ती में अनाद्यपिबिहक के उत्सवमें भाराम में बिहार करते थे।

उस समय एक ब्रह्मा को ऐसी पाप-दण्ड उत्पन्न हुई थी—यह निराल है यह भुज है यह साहस्य है यह अपण्ड है यह दूदनेवाका नहीं है यही (अज्ञानकोक में बना रहता) न पैदा होता है न पुराना होता है न समाप्त होता है न यहाँ से सरकर यहीं दूसरी जगह जन्म ग्रहण करता है और इससे बचकर दूसरी मुक्ति भी नहीं है।

तब भगवान् एक ब्रह्मा के मन की बात को अपने चित्त से जान—जैसे कोई बछवान् पुत्र समेटी बाँह को पमार दे और पसारी बाँह को समर के बीसे ही—उतबन में अन्तर्धान हो कर ब्रह्मलोक में प्रगट हुये।

एक ब्रह्मा ने भगवान् को पूर स ही आते देका। देखकर भगवान् को यह कहा—

मारिय ! पवारों ! मारिय ! आपका स्वागत हो। मारिय ! भिरकाक पर यहाँ पचारने की छपा की है। मारिय ! यह निराल है और इससे बचकर दूसरी मुक्ति भी नहीं है।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् ने एक ब्रह्मा को यह कहा—

साक है एक ब्रह्मा अविद्या में पड़ गये हैं। शोक है एक ब्रह्मा अविद्या में पड़ गये हैं। वे अनिल रहते हुये भी उस निराल का रहे हैं; अशुभ रहते हुये भी उसे भुज का रहे हैं; अज्ञानवत रहते हुये भी उसे साहस्य का रहे हैं; अण्डवाका होते हुये भी उसे अण्ड का रहे हैं; दूदनेवाका होते हुये भी उसे नहीं दूदनेवाका का रहे हैं; यहाँ पैदा होता है उसे का रहे हैं यहाँ पैदा नहीं होता। इससे बचकर भी शान्त मुक्ति (विवांन) के होते हुये का रहे हैं कि इससे बचकर दूसरी मुक्ति नहीं है।

हे शीतम ! इस बहतर (ब्रह्मा) अपने पुत्र-कर्म से

यही अविद्यारवाके जालजरा से छूटे हैं

ब्रह्मलोक में उत्पन्न होना ही तुम्हों से अन्तिम मुक्ति है;

हमें ही जोग (ईश्वर कटा विमाला आदि नामों सेक) पुकारते हैं।

[भगवान्—]

दे बक ! इसकी आयु भी मोड़ी ही है छप्पी नहीं

जिस आयु को तुम छप्पी समझ रहे हो।

सकड़ों हजारों और करोड़ों वर्ष की

दे ब्रह्मा ! तुम्हारी आयु को मैं जानता हूँ।

मैं अन्तर्दृष्टी भगवान् हूँ,

आति जरा और शोक रर मैं ऊपर उठ गया हूँ।

[धक ब्रह्मा—]

मेरा पहला शील और दत्त क्या था ?
आप कहें कि मैं जानूँ ॥

[भगवान्—]

जो तुमने बहुत मनुष्यों को पानी पिलाया था,
जो धाम में रोड़ाये प्यासे थे,
यही पहले का तुम्हारा शील-दत्त था,
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥
जो गंगा के किनारे धार में पड़कर,
वह जाते पुरुष को तुमने धचा दिया था,
यही पहले का तुम्हारा शील-दत्त था;
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥
गंगा की धार में ले जायी जाती नाव को,
मनुष्य की लालच से धड़ें सर्प-राज के द्वारा,
बड़ा बल लगाकर छुड़ा दिया था,
यहां पहले का तुम्हारा शील-दत्त था,
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥
मैं कण्ठ नाम का तुम्हारा शिष्य था,
उसे बड़ा बुद्धिमान् समझा,
यही पहले का तुम्हारा शील-दत्त था,
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥

[धक ब्रह्मा—]

अरे ! आप मेरी इस भाव्यु को जानते हैं,
वैसे ही बुद्ध अन्य बातों को भी जानते हैं,
सो यह आप का वैदीप्यमान तेज,
ब्रह्मलोक को प्रकाश से भर दे रहा है ॥

§ ५. अपरादिष्टि सुत्त (६ १ ५)

ब्रह्मा की बुरी दृष्टि का नाश

श्रावस्ती में ।

उस समय किसी ब्रह्मा को ऐसी पाप-दृष्टि उत्पन्न हो गई थी—कोई ऐसा श्रमण या ब्राह्मण नहीं है जो यहाँ आ सके ।

तब, भगवान् [पूर्ववत्] उस ब्रह्मलोक में प्रगट हुये ।

तब भगवान् उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में चलती आग जैसे पालथी लगाकर बैठ गये ।

तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के मन में यह हुआ—भगवान् इस समय कहाँ विहार करते हैं ?

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने अपने अलौकिक विशुद्ध विष्य-बलु से भगवान् को उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में चलती आग जैसे पालथी लगाकर बैठे देखा । देखकर, जेतवन में अन्तर्धान हो ब्रह्मलोक में प्रगट हुये ।

तत्र आयुष्मान् महामातृस्वायम् उक्तं यद्वा क उच्यते साक्षात् मे वक्ष्यती भाग जने पारुषी क्वा कर
पूरुष की ओर भगवान् स कुछ नीचे बैठ गये ।

तत्र आयुष्मान् महामातृस्वयम् क मत्र मे वह बुधा—भगवान् इस समय कहीं विहार करते हैं ?

[पूरुषम्] तत्र आयुष्मान् महामातृस्वयम् दक्षिणम् की ओर भगवान् स कुछ नीचे बैठ गये ।

[पूर्वम्] तत्र आयुष्मान् महामातृस्वयम् पश्चिम की ओर भगवान् से कुछ नीचे बैठ गये ।

तत्र आयुष्मान् अन्तरम् उत्तर की ओर भगवान् से कुछ नीचे बैठ गये ।

तत्र आयुष्मान् महामातृस्वयम् उक्तं यद्वा से गाथा में बोले:—

आयुम् । आज भी तुम्हारी पत्नी धास्मा है

जो प्रार्थना पढ़ते थी ?

हम हई हा मयम ये-बने

दिव्य लोक में हम महात्म्य का ?

[प्रश्न—]

मारिय ! आज भी वह पारणा वहीं है जो पढ़ते थी

हैय रहा हूँ मयम ये चः दिव्य लोक में हम महात्म्य को ।

महा आज भी वह कम कह मरणा हूँ

कि मैं मिल भर शापित हूँ ॥

तत्र भगवान् उक्तं यद्वा का संयोग दिक्ता यद्वात्मक में अन्तर्धान हो उत्तम में प्रगट हुये ।

तत्र उक्तं यद्वा ने अपने एक मार्गी को आमन्त्रित किया—सुनो मारिय ! जहाँ आयुष्मान्
महामातृस्वयम् है वहाँ आओ । जाकर आयुष्मान् महामातृस्वयम् से यह कहें—मारिय मीतृस्वयम् !
क्या भगवान् के दूसरे भी धाक्क येम ही कश्चिमात् और प्रतापी हैं जैसे आप मीतृस्वयम् कारण
कणिक अनुग्रह ?

“मारिय ! बहुत मरणा कह वह मार्गी उक्तं यद्वा को उत्तर दे जहाँ आयुष्मान् महामातृस्वयम्
वम ये वहाँ गया । जहाँ महामातृस्वयम् म बोला—मारिय मातृस्वयम् ! क्या भगवान् के दूसरे भी
धाक्क येम ही कश्चिमात् और प्रतापी हैं जैसे आप मातृस्वयम् कारण वरियम या अनुग्रह ?

तत्र आयुष्मान् महामातृस्वयम् से उक्तं यद्वा में उत्तर दिया —

मैंने विद्याओं को जाननेवाले मरु प्रगट

विल की जाने जाननेवाले

आज-काल और और

कुछ के बहुत आश्चर्य है ॥

तत्र वह आयुष्मान् महामातृस्वयम् से वह का अभिप्राय और अनुग्रह कर जहाँ वह
महा-प्रतापी का वहाँ गया जाकर उक्तं यद्वा से बोला —

आयुष्मान् महामातृस्वयम् से वहाँ दि—

मैंने विद्याओं को जाननेवाले कश्चि प्रगट

विल के जाने जाननेवाले

आज-काल और और

कुछ के बहुत आश्चर्य है ॥

इसने वह वहाँ । मरणा होकर वहाँ न उगरे करे का अभिप्राय दिया ।

§ ६. पमाद सुत्त (६. १. ६)

ब्रह्मा को संविग्न करना

ध्यात्रस्ती मे ।

उस समय भगवान् दिन के विहार के लिये ध्यान लगाये बैठे थे ।

तब, सुब्रह्मा और शुद्धावास नाम के दो प्रत्येक ब्रह्मा जहाँ भगवान् थे वहाँ आये । आकर एक-एक किबाड़ से लग गये हो गये ।

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा ने शुद्धावास प्रत्येक ब्रह्मा को यह कहा—मारिप ! भगवान् ने मत्स्य करने का यह समय नहीं है, भगवान् दिन के विहार के लिये ध्यानरूढ़ हैं । हाँ, फलाना ब्रह्मलोक बढ़ा उन्नतिशील और गुलजार है । किन्तु वहाँ का ब्रह्मा प्रमाद-पूर्ण हो विहार करता है । आओ मारिप ! जहाँ वह ब्रह्मलोक है वहाँ चले । चलकर उस ब्रह्मा को संबोधित करें ।

“मारिप ! पणुत्त भच्छा” कह, शुद्धावास प्रत्येक ब्रह्मा ने सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा को उत्तर दिया ।

तब, वे भगवान् के सामने अन्तर्धान हो उस लोक में प्रगट हुये ।

उस ब्रह्मा ने उन ब्रह्माओं को दूर ही से आते देखा । देख, उन ब्रह्माओं को यह कहा—हे मारिपो ! आप कहाँ से पधार रहे हैं ?

मारिप ! हम लोग उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् के पास से आ रहे हैं । मारिप ! आप भी उन भगवान् की सेवा को चलेँगे ?

ऐसा कहने पर, वह ब्रह्मा उन ब्रह्माओं का अनादर करते हुये, अपने को हजार गुना बड़ा रूप बना सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा से बोला—मारिप ! मेरी ऋद्धि के इस प्रताप को देखते हैं ?

हाँ मारिप ! आप की ऋद्धि के इस प्रताप को देखता हूँ ।

मारिप ! मैं ऐसा ऋद्धिमान् और प्रतापी होते हुये भी किन्हीं दूसरे श्रमण या ब्राह्मण की सेवा को क्यों चलेँ ?

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा अपने को दो हजार गुना बड़ा रूप बना उस ब्रह्मा से बोला—मारिप ! मेरी ऋद्धि के इस प्रताप को देखते हैं ?

हाँ मारिप ! आपकी ऋद्धि के इस प्रताप को देखता हूँ ।

मारिप ! हम और आप से भगवान् ऋद्धि तथा प्रताप में बहुत बड़े-बड़े हैं । मारिप ! आप उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् की सेवा को चलेँगे ?

तब, उस ब्रह्मा ने सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा को गाथा में कहा—

तीन (सौ) गरुड, चार (सौ) हंस,
और पाँच सौ वाधिन से युक्त मुझ ध्यानी का,
हे ब्रह्मा ! यह विमान जलते के समान,
उत्तर दिशा में चमक रहा है ॥

[सुब्रह्मा—]

आपका विमान कैसा भी क्यों न जले,
उत्तर दिशा में चमकते हुये ।
रूप के सर्वत्र विनिश्चय स्वभाव को देख,
उस कारण से पण्डित रूप में श्रमण नहीं करता ॥

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा और शुद्धावास प्रत्येक ब्रह्मा उस ब्रह्मा को संबोधित किया कहीं अन्तर्धान हो गये ।

वह ब्रह्मा दूसरे समय से उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् की सेवा को गया ।

§ ७ क्रोकाटिक मुक्त (६ १ ७)

क्रोकाटिक के सम्बन्ध में

भावस्ती में ।

उस समय भगवान् दिन के बिहार के किये ध्यानस्थ बैठे थे ।

तब सुप्रथा और शुद्धाधास नाम के दो प्रत्येक प्रश्न वहाँ भगवान् थे वहाँ किये । आकर, एक-एक किबाह से बना किये हो गये ।

तब सुप्रथा प्रत्येक प्रश्न क्रोकाटिक मिश्र की बरेक्ष्य करने भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोधा—

बिस्त्रा पाह वहाँ है उसका मया कौन पण्डितजन पाह जगामे की इच्छा करेगा ।

बिस्त्रा पार वहाँ है उसका पार जगामे की कोशिस करेबाके को

में मूह और पूरक बन समझता हूँ ॥

§ ८ विस्त्रक मुक्त (६ १ ८)

विस्त्रक के सम्बन्ध में

भावस्ती में ।

उस समय भगवान् दिन के बिहार के किये ध्यानस्थ बैठे थे ।

तब सुप्रथा और शुद्धाधास एक-एक किबाह से बना किये हो गये ।

तब सुप्रथा प्रत्येक प्रश्न कतमोरक विस्त्रक मिश्र के बिषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोधा—

विस्त्रक पाह वहाँ है मया कौन बुद्धिमान् उसका पाह जगामा पाहेगा ?

विस्त्रक पार वहाँ है उसका पार जगामे की कोशिस करेबाके को

में मूह और प्रका-विहीन समझता हूँ ॥

§ ९ तुमुमह मुक्त (६ १ ९)

क्रोकाटिक को समझाना

भावस्ती में ।

तब तुमु प्रत्येक प्रश्न रात पीतने पर अपनी चमक से भारे जेठवन के चमकते हुये वहाँ क्रोकाटिक मिश्र या वहाँ आया । आकर आकाश में पड़ा हो क्रोकाटिक मिश्र से बोधा—हे क्रोकाटिक ! सारियुज और मीरुगन्ध्यापन के प्रति बिच में पड़ा जानो । सारियुज और मीरुगन्ध्यापन वही जण्डे मिश्र है ।

आनुस ! तुम कीज हो ?

मैं तुमु प्रत्येक प्रश्न हूँ ।

आनुस ! क्या भगवान् ने तुमको बरागामी होना नहीं बताया था ! तब वहाँ कैसे किये ? देवो, तुम्हारा यह किताब अपराह है ?

तुम के कर्म के साथ ही साथ बसके मुँह में एक कुम्हार पैदा होता है ।

बसके अपन ही को कर्म करता है मूर्त हुरी बातें बोधते हुये ॥

मो निम्नरीच की प्रसंसा करता है

या उसकी निन्दा करता है जो प्रशखा-पात्र है,
 मुँह से वह पाप कमाता है,
 उस पाप के कारण उसे कभी सुख नहीं मिलता ॥
 यह दुर्भाग्य छोटा है,
 जो जूए में अपना धन खो बैठे,
 अपने और अपने सत्र कुछ के साथ .

सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है
 जो बुद्ध के प्रति कोई अपराध लगावे ॥
 सौ, हजार निरर्बुद,
 छत्तिस और पाँच अर्बुद तक,
 आर्य पुरुष की निन्दा करने वाला नरक में पकता है,
 वचन और मन को पाप में लगा ॥

§ १०. कौकालिक सुत्त (६ १. १०)

कौकालिक द्वारा अग्रश्रावकों की निन्दा

श्रावस्ती में ।

तब, कौकालिक भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ कौकालिक भिक्षु ने भगवान् को कहा—भन्ते ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन पापेच्छ हैं, पाप-पूर्ण इच्छाओं के वश में पड़े हैं ।

इस पर भगवान् ने कौकालिक भिक्षु को कहा—ऐसी बात मत कहना कौकालिक ! ऐसी बात मत कहना कौकालिक ! कौकालिक ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति मन में धंदा लाओ ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बड़े अच्छे हैं ।

दूसरी बार भी कौकालिक भिक्षु ने भगवान् को कहा—भन्ते ! भगवान् के प्रति मुझे बड़ी श्रद्धा और बड़ा विश्वास है, किन्तु, सारिपुत्र और मौद्गल्यायन पापेच्छ हैं, पाप-पूर्ण इच्छाओं के वश में पड़े हैं ।

दूसरी बार भी भगवान् ने कौकालिक भिक्षु को कहा— सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बड़े अच्छे हैं ।

तीसरी बार भी ।

तब, कौकालिक भिक्षु अलग से उठ, भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा करके चला गया ।

वहाँ से आने के बाद ही, कौकालिक भिक्षु के सारे शरीर में सरसों भर के फोड़े उठ गये ।

सरसों भर के हो मुँग भर के हो गये, मटर भर के हो गये, कोलट्टि भर के हो गये, चैर भर के हो गये, आँवला भर के हो गये, छोटे बेल भर के हो गये, बेल भर के हो गये, बेल भर के हो फूट गये—पीव और लहू की धार चलने लगी ।

उसी से कौकालिक भिक्षु की मृत्यु हो गई । मर कर कौकालिक भिक्षु पद्म नामक नरक में उलपक हुआ—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति घुरे भाव मन में लाने के कारण ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा रात पीतने पर अपनी चमका से सारे जेतवन को चमका जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो, सहस्रपति ब्रह्मा ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! कौकालिक भिक्षु की मृत्यु हो गई । भन्ते ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति मन में घुरे भाव लाने के कारण कौकालिक भिक्षु मर कर पद्म नरक में उलपक हुआ है ।

सहस्रमूर्ति प्रसा मे यह कहा। यह कह, भगवान् की अभिवादन और प्रशिक्षण कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

इस रात के बितने पर भगवान् ने मिथुनों का आमन्त्रित किया—मिथुभो! इस रात को सहस्रमूर्ति प्रसा। मुझे अभिवादन और प्रशिक्षण कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

तब किसी मिथु ने भगवान् को यह कहा—मन्ते। पद्म तरक में कितनी छम्बी आयु होती है?

मिथु! पद्म तरक की आयु बड़ी छम्बी होती है; यह कहा नहीं जा सकता है कि इतने साक या इतने सौ साक या इतने हजार साक या इतने लाख साक।

मन्ते! उसकी कोई अपमा की जा सकती है?

भगवान् बोले—जी जा सकती है।

मिथु! कोशाल के नाप से बीस लारी तिक का कोई मार हो। तब कोई पुरुष सौ साक हजार साक पर उसमें से एक-एक तिक का दाना विक्रय के। मिथु! तो कोशाल के नाप से बीस लारी तिक का यह मार इस कम सं जवरी यह कर कथम हो जायगा; उतने से भी एक अष्टमुद् तरक नहीं होता है। मिथु! बीस अष्टमुद् तरक का एक निरष्टमुद् तरक होता है। बीस निरष्टमुद् तरक का एक अवय तरक होता है। बीस अवय तरक का एक अष्टट तरक होता है। बीस अष्टट तरक का एक अष्टह तरक होता है। बीस अष्टह तरक का एक कुमुद् तरक होता है। बीस कुमुद् तरक का एक सौगन्धिक तरक होता है। बीस सौगन्धिक तरक का एक उत्पल तरक होता है। बीस उत्पल तरक का एक पुण्डरीक तरक होता है। बीस पुण्डरीक तरक का एक पद्म तरक होता है।—हे मिथु! इसी पद्म तरक में काकाक्षिक उदय हुआ है।

भगवान् ने यह कहा। इतना कहकर बुद्ध और भी बोले—

पुरुष के जन्म के साथ ही साथ

उत्पन्ने श्रुंभ में एक कुल्लर पैदा होता है।

उससे अपने ही को बना करता है

मूर्त्त तुरी बालें बोकने हुये।

जो गिन्दगीव की प्रसंसा करता है

या उसकी गिन्दा करता है जो प्रसंसा-पात्र है

श्रुंभ सं यह पाप करता है;

उस पाप से उसे कभी सुख नहीं मिलता ॥

यह बुर्मान् कम है

जो जू में अपना बल द्वार आन

अपने और अपने सब कुल के साथ।

सब से बधा बुर्मान् तो यह है

जो बुद्ध के प्रति कोई अपराध कराने ॥

सौ हजार गिरुंभ,

कथिस और पौन अरुंभ कक

जाने पुरुष की गिन्दा करने जाका

बचन और मन जो पाप में लगा ॥

अपन बरें समस्त।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग (पञ्चक)

१. सनकुमार सुत्त (६ २. १.)

बुद्ध सर्वश्रेष्ठ

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में सर्पिणी नदी के तीर पर विहार करते थे ।

तब, ब्रह्मा सनत्कुमार रात बीतने पर • । एक ओर खड़ा हो, ब्रह्मा सनत्कुमार ने भगवान् से गाथा में कहा—

मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है,
जात-पात के विचार करने वालों के लिये
विद्या और आचरण से सम्पन्न (बुद्ध),
देवता और मनुष्यों में श्रेष्ठ है ॥

ब्रह्मा सनत्कुमार ने यह कहा । बुद्ध भी इसमें सम्मत रहे ।

तब, ब्रह्मा सनत्कुमार 'बुद्ध इससे सहमत हैं' जान, भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ २. देवदत्त सुत्त (६. २. २)

सत्कार से छोटे पुरुष का विनाश

एक समय, भगवान् देवदत्त के तुरत ही जाने के बाद राजगृह के गुडकूट पर्वत पर विहार करते थे ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा रात बीतने पर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो, सहस्रपति ब्रह्मा देवदत्त के विषय में भगवान् के सामने यह गाथा बोला —
केला का अपना फल ही केले के वृक्ष को नष्ट कर देता है,
अपना ही फल वेणु को, और नरकट को भी ।
अपना सत्कार छोटे पुरुष को नष्ट कर देता है,
जैसे खच्चरी को अपना गर्भ ॥

§ ३. अन्धकविन्द सुत्त (६ २. ३)

संघ-वास का महात्म्य

एक समय भगवान् मगध में अन्धकविन्द में विहार करते थे ।

उस समय, भगवान् रात की काली अधिवारी में खुले मैदान में बैठे थे । रिमसिम पानी भी पड़ रहा था ।

तब, सद्गुण्यति महा रात धीतने पर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर गया हो गया । एक ओर गया हो, सद्गुण्यति महा भगवान् के सामने यह गाथा बोला—

दूर, पृथग्गत स्थान में जात करे ।
 पन्थमों से मुक्त जीवन बिताने,
 यदि यहाँ उलका मम न कने
 तो संघ में मिल संघत भीर सृष्टिमान् हाकर रद ।
 धर-धर मिहाटव करते दूजे
 संघतेग्रिप शानी सृष्टिमान्
 दूर पृथग्गत स्थान में जात करे
 मप से ह्य, निर्मय विमुक्त व
 यहाँ मवाचक सॉप बिप्यु हों
 बिजली कड़कती हो मेव गप गपता हो
 कस्की भी बिजारी पाकी रात ।
 धर्म स्थान में प्राप्तचित्त मिथु बेटता ई व
 इसे डीक में मने जॉरों देता ई
 ध्योगों की यह कवक कहावत नहीं है;
 एक ही जगत्पर्य में
 ह्यार मे मूल्य को भीत सिपा ॥
 पाँच सौ शीत्यों से अधिक
 भीर दस-दस बार सौ
 समी लोठ-भापघ
 तिरभीन बोधि में जो नहीं पव सकती ॥
 भीर जो दूसरे बाकी बने है
 किन्हें मैं बड़ा पुनकवाह आवता हूँ
 उककी गिबली मी नहीं कर सकता
 झूठ कहा जाने के डर से व

§ ४ अरुणवती मुच (६ २ ४)

अमिभू का ऋषि-अवर्तन

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् आबली में बिहार करते थे । तब भगवान् ने मिथुज को अधमनित किया—“हे मिथुजो ! “मदन्त !” कह कर उन मिथुजों ने भगवान् को उठार दिया ।

भगवान् बोले—मिथुजो ! पूर्ण काक में अरुणवती नाम का एक राक्ष था । अरुणवती राक्ष की राजधानी का नाम अरुणवती था । मिथुजो ! अरुणवती राजधानी से जो अर्धे सन्धे सन्धुज भगवान् शिखी बिहार करते थे ।

मिथुजो ! अर्धे सन्धे सन्धुज भगवान् शिखी को अमिभू भीर सन्धे नाम के दो ओठ आग्र-भाषक थे ।

मिथुजो ! तब भगवान् शिखी ने अमिभू मिथुज को अधमनित किया—आओ माहज ! यहाँ एक जग कोक है यहाँ कठे जब तक सोजव का घमस भी होगा ।

भिक्षुओ ! तव, "भन्ते ! बहुत अच्छा" का अभिभू भिक्षु ने भगवान् शिखी को उत्तर दिया । भिक्षुओ ! तव, भगवान् शिखी और अभिभू भिक्षु...अरुणवती राजधानी में अन्तर्धान हो प्रलोक में प्रगट हुये ।

भिक्षुओ ! तव, भगवान् शिखी ने अभिभू भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे ब्राह्मण ! इस ब्रह्मभा में ब्रह्मा और ब्रह्मभासदों को धर्मोपदेश करो ।

भिक्षुओ ! 'भन्ते, बहुत अच्छा' का, अभिभू भिक्षु ने भगवान् शिखी को उत्तर दे, ब्रह्मभा में बैठे ब्रह्मा और ब्रह्मभासदों को धर्मोपदेश कर दिया किया, प्रस्ताव दिया, उत्तेजित और उत्साहित कर दिया ।

भिक्षुओ ! किन्तु, ब्रह्मा और ब्रह्मभासद चिढ़ गये और तुरा मानने लगे—भला यह कमी बात है कि गुरु बुद्ध के उपस्थित रहते एक शिष्य धर्मोपदेश करे ।

भिक्षुओ ! तव, भगवान् शिखी ने अभिभू भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे ब्राह्मण ! ब्रह्मा और ब्रह्मभासद चिढ़ गये और तुरा मानने लगे हैं—भला यह कमी बात है कि गुरु बुद्ध के उपस्थित रहते एक शिष्य धर्मोपदेश करे । तो इन्टें जरा अच्छी तरह मजबूत दिख डो ।

भिक्षुओ ! 'भन्ते, बहुत अच्छा' कह, अभिभू भिक्षु भगवान् शिखी को उत्तर दे, दृश्यमान शरीर से भी धर्मोपदेश करने लगा, अदृश्यमान शरीर में भी , नीचे के आधे शरीर को दृश्यमान करने पर भी ऊपर के आधे शरीर को दृश्यमान करने पर भी ।

भिक्षुओ ! तव, ब्रह्मा और ब्रह्मभासद सभी आश्चर्य तथा अद्भुत में भर गये—आश्चर्य है, अद्भुत है ! धम्म के चङ्घि-बल और प्रताप !!

तव, अभिभू भिक्षु भगवान् शिखी ने बोला—भन्ते ! इस ब्रह्मलोक में रह, जैसे भिक्षु सच में कह रहा हूँ मैंने ही कहते हुये हजार लोकों को अपना म्वर सुना सकता हूँ ।

ब्राह्मण ! वस, यही मोका है । वस, यही मोका है कि तुम ब्रह्मलोक में रह हजार लोकों में अपनी यात सुनाओ ।

भिक्षुओ ! 'भन्ते, बहुत अच्छा' कह, अभिभू भिक्षु ने भगवान् शिखी को उत्तर दे ब्रह्मलोक में खड़े-खड़े इन गाथाओं को कहा—

उत्साह करो, घर छोड़ कर निकल जाओ,

बुद्ध के पासन में लग जाओ,

शुद्ध की सेना को तितर बितर कर दो,

जैसे हाथी फूस की झोपड़ी को ॥

जो इस धर्म विनय में प्रमाद-रहित हो विहार करेगा,

वह ससार में आवागमन को छोड़ दु खो का अन्त कर देगा ॥

भिक्षुओ ! तव भगवान् शिखी और अभिभू भिक्षु ब्रह्मा और ब्रह्मभासदों को सबेरा दिला । ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो अरुणवती में प्रगट हुये ।

भिक्षुओ ! तव, भगवान् शिखी ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! ब्रह्मलोक से बोलते अभिभू भिक्षु की गाथाओं को तुम ने सुना ?

हाँ भन्ते ! ब्रह्मलोक से बोलते अभिभू भिक्षु की गाथाओं को हमने सुना ।

भिक्षुओ ! ब्रह्मलोक से बोलते अभिभू भिक्षु की गाथाओं को जो सुना उन्हें कहो ।

भन्ते ! यह सुना —

उत्साह करो, घर छोड़ कर निकल जाओ,

बुद्ध के पासन में लग जाओ,

सूनु की सेना को तितर बितर कर दो ।

बंस हाथी घूम की शोपणी को ॥

मिथुभो ! ठीक कहा ठीक कहा ! तुमने ब्रह्मकोक से चौकते भमिधू मिथु की गाथाओं

को ठीक में सुना ।

भगवान् ने यह कहा । संतुष्ट होकर मिथुओं ने भगवान् के कहे का जमिनमूत्र किया ।

§ ५ परिनिष्वान्मुक्त (६ २ ५)

महापरिनिर्वाण

एक समय भगवान् अपने परिनिर्वाण के समय कुशीनारा में सब्जों के शाकबन उपवत्तन में दो शाक बूझों के बीच विहार करते थे ।

तब भगवान् ने मिथुओं को आमन्त्रित किया—मिथुभो ! मैं तुम्हें कह रहा हूँ “सभी संस्कार नश्वर हैं अग्रमन् के साथ जीवन के कर्म का सम्पादन करो । यही बुद्ध का अन्तिम उपदेश है ।

तब भगवान् प्रथम प्यास में डीन हो गये । प्रथम प्यास छोड़कर द्वितीय प्यास में डीन हो गये । तृतीय चतुर्थ प्यास में डीन हो गये । चतुर्थ प्यास छोड़कर, आकाशान्त्यापतन विज्ञानान्त्यापतन आकिञ्चन्यापतन गीबसंज्ञानासंज्ञापतन में डीन हो गये ।

गैबसंज्ञानासंज्ञापतन छोड़ आकिञ्चन्यापतन में डीन हो गये । [कमजोर] द्वितीय प्यास को छोड़ प्रथम प्यास में डीन हो गये ।

प्रथम प्यास छोड़ द्वितीय तृतीय चतुर्थ प्यास में डीन हो गये । चतुर्थ प्यास से उठते ही भगवान् परिनिर्वाण की प्राप्ति हो गये ।

भगवान् के परिनिर्वाण की प्राप्ति होते ही सहस्रम्पत्ति ब्रह्मा यह गाथा बोलीः—

संसार के सभी जीव पुरु न एक समय बिना होंगे ही

किन्तु लौक में जो ऐसे बेबोद्ध बुद्ध हैं

तबगत ब्रह्मप्राप्त, भीर सन्तुष्ट परिनिर्वाण की प्राप्ति हो गये ॥

भगवान् के परिनिर्वाण की प्राप्ति होते ही दैवैन्द्र द्यौः यह गाथा बोलीः—

सभी संस्कार भवित्य हैं

उत्पन्न होना भीर पुराणा हो जाया उबका स्वभाव है

उत्पन्न हांकर निरुद्ध हो जाते हैं

उबका विषकृत्य प्रान्त हो जाया ही सुान ह ॥

भगवान् के परिनिर्वाण की प्राप्ति होते ही आयुष्यान् भानमन् यह गाथा बोलीः—

यह समय बड़ा भीर था रोमाञ्जित कर दैवैवाक्य का

सभी प्रकार से ज्येष्ठ बुद्ध के परिनिर्वाण की प्राप्ति होते ॥

भगवान् के परिनिर्वाण की प्राप्ति होते ही आयुष्यान् अनुदन्त यह गाथा बोलीः—

उन स्थिर-चित्त के समान किसी का जीवन चरण नहीं था

अचक परम शांति पाने के किन्ने

परम बुद्ध परिनिर्वाण की प्राप्ति हो गये ॥

निर्बिकार चित्त से वेदुमाओं का जन्म कर दिया

ईश प्रतीक बुद्ध जाता है

बने ही उनके चित्त की विमुक्ति हो गई ॥

ब्रह्म-संयुक्त समाप्त ।

सातवाँ परिच्छेद

७. ब्राह्मण-संयुक्त

पहला भाग

अर्हत्-वर्ग

§ १. धनञ्जानि सुक्त (७. १. १)

क्रोध का नाश करे

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजशूद्र के वेदुवन कलन्दकनिघाप में विहार करते थे ।

उस समय, किसी भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण की धनञ्जानि नाम की ब्राह्मणी बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति बड़ी श्रद्धावती थी ।

तब, धनञ्जानि ब्राह्मणी ने भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण के लिये भोजन परोसती हुई आकर तीन बार उदान के शब्द कहे—उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् को नमस्कार हो ।

इस पर, ब्राह्मण ने ब्राह्मणी को कहा—तू ऐसी चण्डालिन औरत है कि जैसे-तेसे मयमुंठे श्रमण के गुण गाती रहती है । दे पापिन् ! तुम्हारे गुरु की मैं बातें थताऊँ ।

ब्राह्मण ! देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ इस सारे लोक में, किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, वैश या मनुष्य, को मैं ऐसा नहीं देखती हूँ जो उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् पर दोष लगा सके । ब्राह्मण ! तुम क्या ? चाहो तो उनके पास जाओ, जाकर देख लो ।

तब, भारद्वाज गोत्र का ब्राह्मण बुद्ध और चिदा हुआ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् का सम्मोदन किया । आवभगत और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला —

किस का नाश कर सुख से सोता है ?

किस का नाश कर शोक नहीं करता ?

किस एक धर्म का,

वध करना, है गौतम ! आप को रुचता है ?

[भगवान्—]

क्रोध का नाश कर सुख से सोता है,

क्रोध का नाश कर शोक नहीं करता,

विष के मूल स्वरूप क्रोध का,

है ब्राह्मण ! जो पहले थका अच्छा लगता है,

वध करना उत्तम पुरुषों से प्रशंसित है,

उसरी का नाश करके शोक नहीं करता ॥

भगवान् के ऐसा करने पर ब्राह्मण ने कहा—घम्य हो गीतम ! घम्य हो ! हे गीतम ! जैसे उसका ससुर से लड़े को उधार दे, सटके को राह बता दे अन्धकार में लेख-प्रदीप ब्रह्म दे कि शीघ्रतां स्वर्ग को दृष्ट करें। जैसे ही आप गीतम ने सनेह प्रकार से धर्म का उपदेश किया। यह मैं आप गीतम की कारण में जाता हूँ, धर्म की भार मिश्र-संघ की। मैं आप गीतम के पास प्रसन्नता पाठें उपसम्पन्न पाऊँ।

भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण ने भगवान् के पास प्रसन्नता पाईं भार उपसम्पन्न भी पाईं।

उपसम्पन्न होने के कुछ ही बाद आपुष्मान् भारद्वाज ने एकान्त में अप्रमत्त आठापी की प्रदिव्यात्म हो बिहार करते हुये शीघ्र ही उस अज्ञान-वास के अन्तिम एक (अनिर्वाण) को देखते ही परत जानकर प्राप्त कर लिया जिसके लिये कुसुम प्रह्ला-शुभ धर सं बेधर होकर ठीक से प्रसन्नित होते हैं। 'जाति शीघ्र हो गई, मन्त्रार्थ प्राप्त हो गया जो करना या सो कर किया गया अब कुं भार धारो क लिय जाती नहीं है —पूजा जान लिया।

ई २ अकफोस सुष (७ १ २)

गाळियों का दान

एक समय भगवान् राजगृह के येलु दान कसम्बद्विवाप में बिहार करते थे।

रोटा मुँह भारद्वाज ब्राह्मण ने सुना कि भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण समण गीतम के पास घर १. बेधर हो प्रसन्नित हो गया है। सुक और पित्र हो जहाँ भगवान् थे वहाँ आना। अन्धर खोटी-पौटी ना करने हुये भगवान् का पत्रकर बताने और गाळियों बने बना।

उसके ऐसा करने पर भगवान् उभ ग्योटा मुँह भारद्वाज ब्राह्मण से बोले। ब्राह्मण ! क्या तुम्हारे यहाँ कीर्ति शीघ्र सुदीप या यन्तु पाण्य पदुका जाते हैं या नहीं ?

हाँ गीतम ! कमी-कमी मरे शीघ्र सुदीप या यन्तु-पाण्य मरे यहाँ पदुका जाते हैं।

ब्राह्मण ! क्या तुम उनके लिये यान्ते-पीने की चीजें भी तैयार करवाते हो ?

हाँ गीतम ! कमी-कमी उनके लिये यान्ते-पीने की चीजें भी मैं तैयार करवाता हूँ।

ब्राह्मण ! यदि वे किसी कारण से उन चीजों का उपयोग नहीं कर सकते हैं तो चीजें किसको मिलती हैं ?

गान्तम ! यदि वे उन चीजों का उपयोग नहीं कर पाते हैं तो वह चीजें मुझ ही को मिलती हैं।

ब्राह्मण ! उगी तरह जो तुम कमी भी खोटी चीजें न करनेवाले मुझ को खोटी चीजें नह रहे हो, कमी भी नह नहीं होनेवाले मुझ पर नह रहे हो, कमी किसी की कुछ अच्छ-बीजा न करनेवाले मुझको अच्छ-बीजा नह रहे हो—उगे मैं खीचर नहीं करता। तो ब्राह्मण ! यह जाने तुम ही को मिल रही हैं, तुम ही का मिल रही हैं।

ब्राह्मण ! जो खोटी चीजें करनेवाले को खोटी चीजें करता है वह इनकापे पर कुछ शीघ्र है अच्छ-बीजा करनेवाले को अच्छ-बीजा करता है—यह अन्धकार का गिन्ना-विद्याना कहा जाता है। मैं तुम्हारे साथ अन्धकार का निवृत्त-विद्याना नहीं करता। तुम्हारे दिव का मैं उपयोग ही नहीं करता। तो ब्राह्मण ! वह कर्में तुम ही को मिल रही हैं तुम ही की मिल रही हैं।

अन्ध गीतम को तो राजा की गन्ना नह जाननी है—अन्धक की गन्ना भरव है। उह आप गीतम होते लोच कर पाठने हैं ?

[भगवान्—]

अन्ध रीति को लोच किया (करी) को अच्छ बीजा क आप से को है

एक बार अपनी विगुन और निवृत्त निवृत्त निवृत्त दान्य हो गया है।

उससे उसी की बुराई होती है, जो चक्के पर क्रोध करता है,
क्रुद्ध के प्रति क्रोध नहीं करनेवाला, अजेय संग्राम जीत लेता है ॥
दोनों को लाभ पहुँचाता है, अपने को भी और दूसरे को भी,
दूसरे को गुस्ताखा जान जो सावधान होकर शान्त रहता है ॥
दोनों की इलाज करनेवाले उसे, अपनी भी और दूसरे की भी,
लोग 'वेवकूफ' समझते हैं, जिन्हें धर्म का कुछ ज्ञान नहीं ॥

इतना कहने पर, रोटा मुँह भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य है आप गौतम !
धन्य है !

•• [पूर्ववत्] । आयुप्मान् भारद्वाज अर्हतां में एक हुये ।

§ ३. असुरिन्द सुत्त (७. १. ३)

सह लेना उत्तम है

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेल्लुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

असुरेन्द्रक-भारद्वाज ब्राह्मण ने सुना—भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम के पास घर से
बेघर हो प्रव्रजित हो गया है । क्रुद्ध और खिन्न होकर वह जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर, रोटी-रोटी
चातेँ कहते हुये भगवान् को फटकार घसाने और गालियाँ देने लगा ।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् चुप रहे ।

तब, असुरेन्द्रक भारद्वाज ब्राह्मण बोल उठा—श्रमण ! तुम्हारी जीत हो गई ॥ तुम्हारी जीत
हो गई ॥

[भगवान्—]

मूर्ख अपनी जीत समझ लेता है, मुँह से कठोर बातें कहते हुये,
जीत तो उसी की होती है जो ज्ञानी चुपचाप सह लेता है ॥

उससे उसी की बुराई होती है जो चक्के में क्रोध करता है,
क्रुद्ध के प्रति क्रोध नहीं करनेवाला अजेय संग्राम जीत लेता है ॥

दोनों को लाभ पहुँचाता है, अपने को भी और दूसरे को भी,
दूसरे को गुस्ताखा जान जो सावधान होकर शान्त रहता है ॥

दोनों की इलाज करने वाले उसे, अपनी भी और दूसरे की भी,
लोग 'वेवकूफ' समझते हैं, जिन्हें धर्म का कुछ ज्ञान नहीं ॥

भगवान् के ऐसा कहने पर असुरेन्द्रक-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य है आप
गौतम ! धन्य है ॥

[पूर्ववत्] । आयुप्मान् भारद्वाज अर्हतां में एक हुये ।

§ ४. विलङ्गिक सुत्त (७. १. ४)

निर्दोषी को दोष नहीं लगता

एक समय भगवान् राजगृह के वेल्लुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे ।

विलङ्गिक-भारद्वाज ब्राह्मण ने सुना—भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम के पास घर से
बेघर हो प्रव्रजित हो गया है ।

कुछ भीर सिद्ध होकर बहाँ भगवान् ये वहाँ आया । आकर पुण्यपाप एक ओर लया हो गया ।
तब भगवान् दिव्यद्विक-भारद्वाज के बितर्क को अपने दिव्य से जान उसे गया में छोड़े—

जिसमें कुछ दुराई नहीं है
जो झूठ और पाप से रहित है
बस पुण्य की जो दुराई करता है;
वह दुराई इसी सूर्य पर झीर पतली है
उबसी हुआ लेंकी गई जैसे पतली पूछ ॥

[पूर्ववत्] । आमुष्मान् मारदाब बर्हत्तों में एक हुये ।

§ ५ अहिंसक मुच (७ १ ५)

अहिंसक कौन ?

श्रावस्ती में ।

तब अहिंसक भारद्वाज माह्यन बहाँ भगवान् ये बहाँ आया । आकर भगवान् का सम्मोदन किया; आबभगत और कुसल धम के प्रथ पङ्क्तों के बाह एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ अहिंसक भारद्वाज माह्यन भगवान् से बोला—हे गौतम ! मैं अहिंसक हूँ ।
हे गौतम ! मैं अहिंसक हूँ ।

[भगवान्—]

जैसा नाम है वैसा ही होबो तुम सच में अहिंसक ही होबो
जो शरीर से बचन से धीर मन से हिंसा नहीं करता
वही सच में अहिंसक होता है जो पराये को कमी नहीं सताता ॥

भगवान् के ऐसा कहने पर अहिंसक भारद्वाज माह्यन भगवान् से बोला—कल्प है आप गौतम !
कल्प है ।

आमुष्मान् मारदाब बर्हत्तों में एक हुये ।

§ ६ अटा मुच (७ १ ६)

अटा को सुज्झाने वाला

श्रावस्ती में ।

तब अटा भारद्वाज माह्यन बहाँ भगवान् ये बहाँ आया । आकर भगवान् का सम्मोदन किया;
आबभगत और कुसल-धेम के प्रथ पङ्क्तों के बाह एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, अटा मारदाब माह्यन भगवान् से पाया में बोला—

भीतर में अटा है बाहर में भी अटा छगी है
अटा में सारे माली उबसे हुये हैं
तो मैं आप गौतम से पूछता हूँ,
कौन भया इस अटा को सुज्झा सक्ता है ?

[भगवान्—]

भगवान् बर तीव्र पर प्रतिष्ठित हो
बिच भीर मया की साबका करते हुये,

छेशों को तपानेवाला बुद्धिमान् भिक्षु,
 वही इस जटा को सुलझा सकता है ॥
 जिसने राग-द्वेष और अविद्या को हटा दिया है,
 जिनके आश्रय क्षीण हो गये हैं, अर्हत्;
 उनकी जटा सुलभ चुकी है ॥
 जहाँ नाम और रूप विलकुल निरुद्ध हो जाते हैं,
 प्रतिच और रूप-सन्ना भी,
 वहीं जटा कट जाती है ॥

भगवान् के ऐसा कहने पर जटा-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य हैं आप गौतम !
 धन्य है !!

• आयुष्मान् भारद्वाज अर्हत्तों में एक हुये ।

§ ७. सुद्धिक सुत्त (७. १. ७)

कौन शुद्ध होता ?

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ, शुद्धिक-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् के पास यह गाथा बोला—

सखार में कोई ब्राह्मण शुद्ध नहीं होता है,
 बड़ा शीलवान् हो तप करते हुये,
 जो विद्या और आचरण से युक्त है वही शुद्ध होता है,
 और कोई दूसरे लोग नहीं ॥

[भगवान्—]

बड़ा बोलनेवाला कोई जाति से ब्राह्मण नहीं होता है,
 (वह) जिसका मन विलकुल मैला है, डोंगी, चालबाज ॥
 क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल, पुक्कुस,
 उत्साही आत्म-सयमी तथा सदा उद्यम में तत्पर रह,
 परम शुद्धि को पा लेता है, हे ब्राह्मण । ऐसा जानो ॥

• [पूर्ववत्—] । आयुष्मान् भारद्वाज अर्हत्तों में एक हुये ।

§ ८. अग्नि-क सुत्त (७. १. ८)

ब्राह्मण कौन ?

एक समय भगवान् राजगृह के वेल्लुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

उस समय अग्नि-क-भारद्वाज ब्राह्मण के यहाँ जी के साथ खीर तैयार थी—अग्नि-दहन करने के निमित्त ।

तब, भगवान् सुबह में पहन और पात्र चीवर ले राजगृह में भिक्षाटन के लिये पैडे । राजगृह में घर-घर भिक्षाटन करते क्रमशः जहाँ अग्नि-क भारद्वाज ब्राह्मण का घर था वहाँ पहुँचे । पहुँचकर एक ओर खड़े हो गये ।

अग्नि-क-भारद्वाज ने भगवान् को भिक्षाटन करते देखा । देखकर भगवान् को गाथा में कहा —

(जो) तीन बेदों को माननेवाला कौड़ी काति का, यथा विश्वान्,
तथा विद्या भीर आचरण से सम्पन्न हो यही इस खीर को प्राप्त ॥

[मगधान्—]

यथा मोरुनेवाका कौड़ी काति से बाह्य नहीं होता है
वह जिसका मग विष्णुक मीका है होगी आरुवाक ॥
जो पूर्व जन्म की पातों को जानता है स्वर्ग कीर भयानक को देखता है
जो आवागमन से हूट गया है परम शान्ति मुनि
इतनी ही को जानने के अर्थ वह माहात्म्य मैत्रिण होता है
विद्या कीर आचरण से सम्पन्न यही इस खीर का भोग करे ॥
इ गौतम ! आप भोग छोड़ो । आप गौतम माहात्म्य हैं ।

[मगधान्—]

धर्मोपदेश करने पर मिस्र भोजन मुझे स्वीकार नहीं,
इ माहात्म्य ! शान्ति का वह धर्म नहीं
जुद्ध धर्मोपदेश के लिये दिये गये जो स्वीकार नहीं करते
माहात्म्य ! धर्म के रहने पर यही बात होती है ॥
हृदय का भीर पात से
कैवली महापि झीणाभव
परम सुख रूपे की सेवा करो।
पुष्पार्थी तुम्हारा पुष्प पौ ॥
भावुष्मान् भारद्वाज धर्मों में एक रूपे ।

§ ९ सुन्दरिफ सुत (७ १ ९)

दक्षिणा के योग्य पुरुष

एक समय मगधान् कोशल में सुन्दरिका नदी के तीर पर बिहार करते थे ।

उस समय सुन्दरिफ मारुत्तान् नामक सुन्दरिका नदी के तीर पर अग्नि-हवन कर हुताश्रय की परिचर्या कर रहा था ।

तब सुन्दरिफ-भारद्वाज उठ जातों कीर देखने लगा—जान इस हवनाश्रय को योग्य बनाये ?
सुन्दरिफ मारुत्तान् ने एक वृक्ष के नीचे मगधान् की किर उठे देखा देखा । देगनर पाये हाव से
हवनाश्रय की भीर दक्षिणे दाय से कमबलु को ले कर मगधान् थे वहीं आया ।

तब सुन्दरिफ मारुत्तान् के जाने की आह्व पर मगधान् ने किर पर से नीकर उठार किया ।

तब सुन्दरिफ मारुत्तान् “जरे ! यह मयमुंका है ॥ जरे ! यह मयमुंका है ॥” कहता उठते पूर्व
कार जाना चाहा ।

तब सुन्दरिफ मारुत्तान् क मय में वह हुआ—कितने माहात्म्य भी मात्र मुझका निवा करते हैं ।
तो मैं बचकर उमरी आत पृष्टे ।

तब सुन्दरिफ मारुत्तान् जहाँ मगधान् थे वहीं आया । आकर मगधान् से बोला—अप किर
जान क है ?

[मगधान्—]

जान मग हुआ कर्म पृष्टे
नदी में भी आग पैदा हो जाती है

नीच कुलवाले भी धीर मुनि होते हैं,
 श्रेष्ठ और राजाशाह पुरुष होते हैं,
 सत्य से दान्त, और सयमी होते हैं,
 दुःखों से अन्त को जाननेवाले, प्रह्लादचर्य के फल पाये,
 यज्ञोपवीत तुम उम्क बाधाहन करो ।
 वह समग्र पर एचन करता है, दक्षिणा पाने का पात्र ॥

[सुन्दरिक्त—]

तो ! मेरा यह यज्ञ किया हुआ हवन किया हुआ यफल हुआ,
 कि आप जैसे ज्ञानी मिल गये,
 आप जैसों के दर्शन नहीं होने के कारण ही
 दूसरे-तीसरे हव्यशेष को खालिया करने हैं ॥
 आप भोग लगायें । आप गौतम ब्राह्मण हैं ।

[भगवान्—]

धर्मोपदेश करने पर मिला भोजन मुझे स्वीकार नहीं,

[पूर्ववत्—]

तो, हे गौतम ! यह हव्यशेष मैं कैसे दूँ ?

हे ब्राह्मण ! देवता के साथ हम लोक में मैं किसी को नहीं देखता हूँ जो इस हव्यशेष को
 खाकर पचा ले—बुद्ध या बुद्ध के श्रावक को छोड़ । तो, हे ब्राह्मण ! या तो तुम इस हव्यशेष को किसी
 ऐसी जगह छोड़ दो जहाँ घास उगी न हो, या बिना प्राणीवाले किसी जल में बहा दो ।

तब, सुन्दरिक्त भारद्वाज ने उस हव्यशेष को बिना प्राणीवाले किसी जल में बहा दिया ।

तब, वह हव्यशेष पानी पर गिरते ही चटचटते हुये भभक उठा, लहर उठा । जैसे, दिन भर,
 आग में तपाया लोहे का फार पानी में पड़ते ही चटचटते हुये भभक उठता है, लहर उठता है, वैसे ही
 यह हव्यशेष पानी पर पड़ते ही चिड़चिड़ाते हुये भभक उठा, लहर उठा ।

तब, सुन्दरिक्त भारद्वाज ब्राह्मण कौतूहल से भर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर एक ओर
 खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़े हुये सुन्दरिक्त भारद्वाज ब्राह्मण को भगवान् ने गाथा में कहा—

हे ब्राह्मण ! लकड़ियाँ जला-जलाकर,
 अपनी शुद्धि होना मत समझो, यह बाहरी ढोंग भर है ।
 पण्डित लोग उससे शुद्धि नहीं बताते,
 जो बाहरी वनावट से शुद्धि पाना चाहता है ॥
 हे ब्राह्मण ! मैं लकड़ियाँ जलाना छोड़,
 आध्यात्म ज्योति जलाता हूँ,
 मेरी आग संदा जलती रहती है, नित्य समाहित रहता हूँ,
 मैं अर्हत् हूँ, ब्रह्मचारी हूँ ॥
 हे ब्राह्मण ! अभिमान तुम्हारे लिये अनाज है,
 क्रोध धूँआ, मिथ्या-भाषण राख,
 जीम सुषा, हृदय जलाने की जगह,
 अपना सुदान्त आत्मा ही ज्योति है ॥
 धर्म जलाशय है, शील घाट है,

निर्मल और सजनों से प्रदूषित
 जिसमें शायी पुदप स्नान करत है
 खच्छ गायवाले पार तर जाते है ॥
 साथ धर्म संभन तथा महाचर्यपाछा
 हे ब्राह्मण ! सध्यम मार्ग छोड़ है
 सुमार्ग पर आ गये लोगों को समझर करो
 कसी गर को में घमाया फहता हूँ ॥

[पूर्ववत्] । आयुष्मान् भारद्वाज अर्हंतों में एक हुये ।

§ १० बहुधीतु सुप्त (७ १ १०)

पैलों की जोड़ में

एक समय भगवान् कोशक जगद के एक बंगक में बिहार करतै थे ।
 उस समय किसी मारुत्ताखगोत्र ब्राह्मण के बीरह बँध गुम हो गये थे ।
 तब वह ब्राह्मण अपने बँधों की जोड़ता हुआ जहाँ वह बंगक या वहाँ आ निकल । आकर
 उस बंगक में भगवान् की आसन लगाये फिर की सीबा किये स्तुतिमात् हो बैठे रेका ।
 देखकर वहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् के पास वह गायामें बोला—

भवस्य ही इस समय को बीरह बँध नहीं है
 आज का दिन हुये इसे माछन नहीं
 इसी से यह समय सुखी है ॥
 भवस्य ही इस समय को तिक-कठ की बर्बादी नहीं होती होगी
 लीये एक पसेबाके या दो पसेबाके होकर
 इसी से वह समय सुखी है ॥
 भवस्य ही इस समय के काकी मन्डार में बूढ़े
 एक पैर नहीं रहे हैं
 इसी से यह समय सुखी है ॥
 भवस्य ही सात महीनों से इस समय की विप्रबन
 पची-पची कीकर और कबीस से मरी पची नहीं है
 इसी से यह समय सुखी है ॥
 भवस्य ही इस समय की सात बिघना कदकियाँ
 एक बैटैबाकी और दो बैटैबाकी नहीं हैं
 इसी से यह समय सुखी है ॥
 भवस्य ही इस समय को पीछी और तिरों से मरे शरीरबाकी की
 नहीं होगी जो कस मारकर जग्यती होगी
 इसी से वह समय सुखी है ॥
 भवस्य ही इस समय को सुबह ही सुबह कमेंवार
 "सुखयो कर्त्ता सुखयो" कह, नहीं रंग करते होंगे
 इसी से वह समय सुखी है ॥

[भगवान्—]

नहीं माझण ! मुझे चौदह घंटा नहीं हैं,
 आज छ दिन हुये यह भी पता नहीं,
 माझण ! इसी से मैं सुखी हूँ ॥

['दुःखी' तरह]

नहीं माझण ! मुझे सुबह ही सुबह बजें वार,
 "सुकाओ, कर्जा सुकाओ" कहकर नहीं तग करते हैं,
 माझण ! इसी से मैं सुखी हूँ ॥

... [पूर्ववत्] । असुखान् भारद्वाज महंतां में एक टुये ।

अर्हत्-चर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

उपासक-वर्ग

§ १ कसि सुच (७ २ १)

बुद्ध की खेती

एसा मीने सुचा ।

एक समय भगवान् भगवत् में क्षिण्णारिण्डि पर एकनासा नामक ब्राह्मण-ग्राम में बिहार करते थे ।

उस समय बोनी के कक पर कृषि मारदाज ब्राह्मण के पाँच सी हक बना रहे थे ।

तब भगवान् बुद्ध में पहल और पाबन्धीवर के वहाँ कृषि-मारदाज ब्राह्मण का काम बना रहा था वहाँ गये ।

उस समय कृषि मारदाज ब्राह्मण की ज़ोर से खाना बँया था रहा था । तब भगवान् वहाँ जाकर एक और पड़े हो गये ।

कृषि मारदाज ब्राह्मण ने भगवान् को भिखा के किये पका देया । देखकर भगवान् से यह बोला—अमम । मैं जोतता भीर बोता हूँ । मैं जोत-बोकर खाता हूँ । अमम । तुम भी जोतो और बोनी । तुम भी जोत भोकर खाओ ।

ब्राह्मण । मैं भी जोतता भीर बोता हूँ । मैं भी जोत-बोकर खाता हूँ ।

किन्तु, मैं तो जप गीतम के पुर हक कर छुनी या बैल कुछ नहीं देखता हूँ । इस पर भी जप गीतम कहते हैं—ब्राह्मण । मैं भी जोतता भीर बोता हूँ । मैं भी जोत-बोकर खाता हूँ ।

तब कृषि-मारदाज ब्राह्मण भगवान् से गाथायें कहा—

कृषक इने का दावा करते हैं किन्तु जप की खेती में नहीं देखता

दृष्टक पृथ्वा है कहे—उस खेती की मैं कैसे जानूँ ॥

[भगवान्—]

भद्रा बीज तप कृषि मशा ही मेरा सुभाद भीर इस है

सज्ज । हरिस है मय की जोत है क्युति फाक-छट्टी है

शरीर आर बचन से संवत भीज्य का अंशान जानैवाला

सत्य की निराई करता हूँ, सीरत्न मरा बिभाम है

बाँव मेरा कर्नी बैल है जो निर्बान तक ले जाता है

बिना कँडे बुझे बपता जाता है वहाँ जकर-पोक नहीं करता ॥

पेनी क्पनी करनैवाला अयुन की उपज पाता है

हम खेती को कर, समी सुखों से हृद जाता है ॥

जप गीतम मात बगायें । जप गीतम सचमुच में हकक हैं । जो जप की खेती में क्युत की उपज होगी है ।

[भगवान्—]

धर्मोपदेश करने पर मिला भोजन मुझे स्वीकार नहीं,
 हे ब्राह्मण ! ज्ञानियों का यह धर्म नहीं,
 बुद्ध धर्मोपदेश के लिये दिये गये की स्वीकार नहीं करते,
 ब्राह्मण ! धर्म के रहने पर यही पात होती है ॥
 दूसरे भक्त और पान से,
 केवली, महर्षि, क्षीणाश्रय,
 परम शुद्ध हुये की सेवा करो,
 पुण्यार्थी तुम्हारा पुण्य बढ़े ॥

ऐसा कहने पर ऋषि-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य है आप गौतम ! धन्य है ॥
 हे गौतम, जैसे उलटे को पलट दे, ढँके की उधार दे, भटके को राह बता दे, या अन्धकार में तेल-प्रदीप
 जला दे जिसमें अँधेरेवाले रूपों को देख लें, वैसे ही भगवान् गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाश।
 यह मैं भगवान् गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की, और सब की। आज से जन्म भर के लिये आप
 गौतम मुझे अपना शरणगत उपासक स्वीकार करें !

§ २. उदय सुत्त (७. २. २)

चार-चार भिक्षाटन

श्रावस्ती में ।

तब, भगवान् सुवह में पहन और पात्र चीवर ले जहाँ उदय ब्राह्मण का घर था वहाँ पधारे ।

तब, उदय ब्राह्मण ने भगवान् के पात्र को भात से भर दिया ।

दूसरी चार भी ।

तीसरी चार भी उदय ब्राह्मण ने भगवान् के पात्र को भात से भर कर कहा—भ्रमण गौतम बड़े
 परके हैं, चार-चार आते हैं ।

[भगवान्—]

चार-चार लोग थीज बोले हैं,
 चार-चार मेघ-राज बरसते हैं,
 चार-चार खेतिहर खेत जोतते हैं,
 चार-चार देशवालों को उपज होती है ॥
 चार-चार यात्रक याचना करते हैं,
 चार चार दानपति दान देते हैं,
 चार-चार दानपति दान देकर,
 चार-चार स्वर्ग में स्थान पाते हैं ॥
 चार-चार ग्वाले दूध बूहते हैं,
 चार-चार चर्बा भौं के पास जाता है,
 चार-चार मेहनत-परिश्रम करते हैं,
 चार-चार मूर्ख गर्भ में पचता है ॥
 चार-चार जन्म लेता है और भरता है,
 चार-चार लोग इमशान ले जाते हैं,

पुनर्जन्म से पुराने के मार्ग को पा
महा ज्ञानी बार-बार वहीं जन्म ग्रहण करता है ॥
[पूर्ववत्]। जन्म से जन्म भर के किन्तु आप गौतम मुझे अपना घरजागत उपासक
एकीकर करें।

§ ३ देवद्विष्ट सुप्त (७ ० ३)

सुप्त की दुःखता, दान का पाप

भावस्ती में ।

उस समय भगवान् को बाढ की धीमारी हो गई थी । आयुष्मान् उपवास भगवान् की सेवा
में लगा थे ।

तब भगवान् ने आयुष्मान् उपवास को आमन्त्रित किया—उपवास । तुमने कुछ गरम पानी
के भायो ।

“मझे बहुत अच्छा” कह, आयुष्मान् उपवास भगवान् को उत्तर दे पहल भीर पात्र खीबर के
वहाँ देवद्विष्ट माह्वय का घर था वहाँ गये । जाकर सुपचाप एक ओर सहे हो गये ।

देवद्विष्ट माह्वय ने आयुष्मान् उपवास को सुपचाप एक ओर सहे देया । देखकर आयुष्मान्
उपवास को गाथा में कहा—

सुपचाप आप सहे सिर मुझसे संपाटी थीं

क्या चाहते क्या प्रोजते क्या मर्गने के लिये आने हैं ?

[उपवास—]

संसार के भईग, सुख मुनि बात-रोग से पीड़ित हैं

यदि गरम पानी है तो माह्वय ! मुनि के लिये हो;

पूजनीयों में जो दुःख सत्कर-पानों में जो सत्कर के पात्र

तथा मातृशीर्षों में जो आरुणीय हैं इन्हीं के लिये मैं आहता हूँ ॥

तब देवद्विष्ट माह्वय ने गरम पानी का एक भात और सुप्त की एक पोखरी नीकर से मँगवा
आयुष्मान् उपवास को दे दिया ।

तब आयुष्मान् उपवास वहाँ भगवान् ने वहाँ गये । जाकर, इन्हीं भगवान् को गरम पानी से
बहका गरम पानी में कुछ सुप्त बोधकर भगवान् को दिया ।

तब भगवान् की लक्ष्मीक कुछ घट गई ।

तब देवद्विष्ट माह्वय वहाँ भगवान् ने वहाँ आया । जाकर भगवान् का सम्मोदक किया । आब
भगत भीर कुम्भक-शैम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ देवद्विष्ट माह्वय ने भगवान् को गाथा में कहा—

आब कैनेवाक्य किते पात्र है ? किसको देने का महारकक होता है ?

किस बह्य करनेवाके की कैसी इच्छिय सचक होती है ?

[भगवान्—]

पूर्व जन्म की बातों को लिये जान किया है

स्वर्ग भीर अयाव की बातों को भी समझता है

किसकी आदि धीन हो गई है,

परम ज्ञान का कर्मो मुनि ।

दान देनेवाला इन्हीं को दान दे,
इन्हीं को देने का महाफल होता है,
ऐसे यज्ञ करनेवाले की,
ऐसी ही दक्षिणा सफल होती है ॥

...। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

४. महासाल सुत्त (७. २. ४)

त्रिं द्वारा निष्कासित पिता

श्रावस्ती में ।

तब, एक ब्राह्मण बड़ा आठमी गुदड़ी पहन जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् का सम्मोदन किया । आवभगत और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे उस ब्राह्मण बड़े आठमी को भगवान् ने कहा—ब्राह्मण ! इतनी गुदड़ी क्यों पहने हो ?

हे गौतम ! मेरे चार बेटे हैं । अपनी स्त्रियों की सलाह से उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया है ।

तो, हे ब्राह्मण ! इन गाथाओं को तुम याद कर सभा खूब लग जाने पर अपने पुत्रों के वहाँ होते उठकर पढ़ना—

जिनके पैदा होने से मुझे बड़ा आनन्द हुआ था,
जिनका बना रहना मेरा बड़ा अभीष्ट था,
वे अपनी स्त्रियों की सलाह से,
हटा देते हैं, कुत्ता जैसे सूअर को ॥
ये नीच और खोटे हैं,
जो मुझे 'बाबू जी, बाबू जी,' कहकर पुकारते हैं,
बेटे नहीं, राकस हैं,
जो मुझे बुढ़ाई में छोड़ रहे हैं ॥
जैसे बेकार छूटे घोड़े को,
दाना मिलना बन्द हो जाता है,
वैसे ही बेटों का यह बड़ा आप,
दूसरों के दरवाजे भीख माँग रहा है ॥
मेरा ढण्डा ही यह कहीं अच्छा है,
मगर ये नालायक बेटे नहीं,
जो भदके बैल को भगा देता है,
और घण्ट कुर्छों को भी,
भँधरे में पहले पहल यही चलता है,
गहने का भी थाह लगा देता है,
इसी ढण्डे के सहारे,
देम लगाने पर भी गिरने से बच जाता हूँ ॥

तब वह ब्राह्मण बड़ा आठमी भगवान् के पास इन गाथाओं को सखि सभा खूब जम जाने पर अपने पुत्रों के वहाँ होते उठकर पढ़ने लगा—

झिन्के पीवा होने से मुझे पक्ष भ्रामन्व हुआ था

[पूर्ववत्]

इसी डण्डे के सहारे

उस क्षण पर भी गिरने से बच जाता हूँ ।

तब उस ब्राह्मण को उसके पुर्वों ने धर ले जा नदक कर प्रत्येक ने जान का जोषा में डक़ाया ।

तब वह ब्राह्मण एक जोषा धान लेकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ उस ब्राह्मण ने भगवान् को कहा—हे गौतम ! हम ब्राह्मण आचार्य को आचार्य-
वृक्षिणा दिया करते हैं । आप गौतम इस आचार्य वृक्षिणा को स्वीकार करें ।

भगवान् ने अनुकम्पा कर स्वीकार किया ।

[पूर्ववत्] । आज से जन्म भर के किये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक
स्वीकार करें ।

§ ५ मानस्यद् मुच (७ २ ५)

अभिमान न करे

भावस्ती में ।

उस समय अभिमान अकडू नाम का एक ब्राह्मण भावस्ती में जास करता था । वह न तो
माता को प्रणाम करता था न पिता को न आचार्य को और न झेडे माई को ।

उस समय भगवान् बड़ी भारी समा के बीच घमोपदेश कर रहे थे ।

तब अभिमान-अकडू ब्राह्मण के मन में यह हुआ—यह अमन गौतम बड़ी भारी समा के
बीच घमोपदेश कर रहे हैं । तो जहाँ अमन गौतम हैं वहाँ मैं भी चली । यदि अमन गौतम मुझसे कुछ
पुछवाक करोगे तो मैं भी उनसे कुछ बातें करूँगा । यदि अमन गौतम मुझसे कुछ पुछवाक नहीं करेगे तो
मैं भी उनसे कुछ न बोलूँगा ।

तब अभिमान अकडू ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर उपवास एक ओर कहा
हो गया ।

तब भगवान् ने उससे कुछ पुछवाक नहीं की ।

तब अभिमान अकडू ब्राह्मण "यह अमन गौतम कुछ नहीं जानते हैं" सोच खीड़ जाने के किये
तेपार हुआ ।

तब भगवान् ने अभिमान-अकडू ब्राह्मण के बियर्क को अपने चित्त से जानकर कहा—

ब्राह्मण ! अभिमान करना उचित नहीं

ब्राह्मण ! किस उद्देश्य से वहाँ जाये थे

उसे बीमा कद डायो ॥

तब अभिमान-अकडू ब्राह्मण "अमन गौतम मेरे चित्त की बातों को जानते हैं आप भगवान्
क ईशों पर छोड़े गिर गया उनके चरणों की मुँह से जूमने लगा हाव से पीछेने लगा और अपना नाम
मुझसे लगा—हे गौतम ! मैं अभिमान अकडू हूँ । हे गौतम ! मैं अभिमान-अकडू हूँ ।

तब समा में जाने शर्मा लोग आश्चर्य से चकित हो गये । आश्चर्य हीरे ! कर्ममुठ हीरे ! वह
अभिमान-अकडू ब्राह्मण न तो माता को प्रणाम करता है न पिता को न आचार्य की और न झेडे
माई को । तो अमन गौतम के चरणों पर दृष्टना गिर पड़ रहा है ।

तब, भगवान् ने अभिमान-अकट्ट ब्राह्मण को यह कहा—ब्राह्मण ! बस करो, उठो, यदि मेरे प्रति तुम्हें श्रद्धा है तो अपने आसन पर बैठो ।

तब अभिमान अकट्ट ब्राह्मण अपने आसन पर बैठकर भगवान् से यह बोला —

किनके साथ अभिमान न करे ?
किनके प्रति गौरव-भाव रखे ?
किनका सम्मान किया करे ?
किनकी पूजा करना अच्छा है ?

[भगवान्—]

माँ, चाप, और बड़े भाई,
और चौथा आचार्य, इनके प्रति अभिमान न करे,
उन्हीं के प्रति गौरव-भाव रखे,
उन्हीं का सम्मान किया करे,
उन्हीं की पूजा करना अच्छा है ।
अभिमान हटा, अकट्ट छोड़ उन अनुत्तर,
अर्हव, दान्त हुण्ड, कृतकृत्य और अनाश्रव को प्रणाम करे ।

। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ६. पञ्चनिक सुत्त (७ २ ६)

झगड़ा न करे

श्रावस्ती में ।

उस समय झगड़ाट्ट नाम का एक ब्राह्मण श्रावस्ती में वास करता था ।

तब झगड़ाट्ट ब्राह्मण के मन में यह हुआ—जहाँ अश्रम गौतम हैं वहाँ मैं चल चलाँ । अश्रम गौतम-जो कुछ कहेंगे मैं ठीक उसका उलटा ही कहूँगा ।

उस समय भगवान् खुली जगह में टहल रहे थे ।

तब झगड़ाट्ट ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् के पीछे-पीछे चलते हुये कहने लगा—अश्रम ! धर्म उपदेशें ।

[भगवान्—]

जिसका चित्त मैला है, झगड़ा के लिये जो तना है,
ऐसे झगड़ाट्ट के साथ बात करना ठीक नहीं ।
जिसने विरोध-भाव और चित्त की उच्छ्वस्त्रता को दबा,
द्वेष को थिक्कुक छोड़ दिया है, उसी को कहना उचित है ॥

। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ७. नवकम्म सुत्त (७ २ ७)

जंगल कट चुका है

एक समय भगवान् कोशल के किली जंगल में विहार करते थे ।

उस समय नवकार्मिक-भारद्वाज ब्राह्मण उस जंगल में लकड़ी खिरवा रहा था ।

नवकार्मिक-भारद्वाज आह्वान ने भगवान् को किसी बाध हुए के बिना जासन लगाये, शरीर सीधा किये स्थितिमात् हो बैठे देखा ।

दृष्टकर उसके मन में यह हुआ—मैं तो इस जंगल में अपना काम करवाने में लगा हूँ । यह भ्रमण गीतम क्या कराने में लगे है ?

तब नवकार्मिक-भारद्वाज आह्वान जहाँ भगवान् से बहो आया । आकर भगवान् से गाथा में बोस—

अपने किस काम में लगे हो इ मिश्रु इस साक-वन में ?

तो इस जंगल में लड़ेके ही मुझ से विहार करते हो ?

[भगवान्—]

जंगल से मेरा कुछ काम नहीं बसा है

मेरा जंगल कट-छँदकर साफ हो गया

मैं इस वन में भुक्त से छूट परम पद पा,

अमन्वोप को छोड़कर बड़ेका रमता हूँ ॥

आज से जन्म भर के किये आप गीतम मुझे अरना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ८ फट्टहार सुत्त (७ २ ८)

निर्जन वन में वास

एक समय भगवान् कोशल के किसी जंगल में विहार करते थे ।

उस समय किसी भारद्वाजगोत्र आह्वान के कुछ कटजुबने लेके उसी जंगल में गये ।

आकर उन्होंने भगवान् को उस जंगल में स्थितिमात्, हो बैठ देखा । देखकर जहाँ भारद्वाज-गात्र आह्वान था वहाँ गये । आकर भारद्वाज से बोके 'अरे ! आप जानते हैं । कलामे जंगल में एक साधु स्थितिमात् हो बैठा है ।

तब भारद्वाजगोत्र आह्वान उन लड़कों के साथ जहाँ वह जंगल था वहाँ गया । उसने भी भगवान् को उस जंगल में स्थितिमात् हो बैठे देखा । देखकर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् से गाथा में बोस—

पीर, भवाचक दृग्य निर्जन शरण्य में पैर

भरष अक्षय अमन्य लगाय

मिश्रु ! क्या सुन्दर ध्यान लगाये बैठे हो ॥

न जहाँ गीत है न जहाँ पात्रा

एगै जंगल में अइला बवपासी मुनि को देख

मुझे बड़ी ईराबी हो रही है

कि वह अक्षय जंगल में किये प्रमदटा से रहता है ॥

मैं समझना हूँ कि कोस्यधिपति के साथ

अनुकर रचर्न की कामना से

आप निर्जन वन में क्यों बस रहे हैं

प्रह्वान्य पालि के किन् बहो तप कर रहे हैं ॥

[भगवान्—]

जो कोई आकांक्षा या आनन्द उठाना है,
 नाना पदार्थों में सदा आसक्त,
 इच्छायें, जिनका मूल अज्ञान में है,
 सभी का मैंने प्रिकुल त्याग कर दिया है,
 तृष्णा और इच्छानों से रहित मैं अकेला,
 सभी धर्मों के तदन को जाननेवाला,
 अनुत्तर और शिव तुडरव को पा,
 हे ब्राह्मण ! एकान्त में मैं निर्भीक ध्यान करता हूँ ।

। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ९. मातृपोषक सुत्त (७. २. ९)

माता-पिता को पोषण में पुण्य

श्रावस्ती में ।

तत्र, मातृपोषक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ मातृपोषक ब्राह्मण ने भगवान् को यह कहा—हे गौतम ! मैं धर्म-पूर्वक भिक्षाटन करता हूँ । धर्म-पूर्वक भिक्षाटन कर माता-पिता का पोषण करता हूँ । हे गौतम ! ऐसा करनेवाला मैं अच्छा करता हूँ या नहीं ?

ब्राह्मण ! अवश्य, ऐसा करनेवाले शुभ अच्छा कर रहे हो । ब्राह्मण ! जो धर्म-पूर्वक भिक्षाटन करता है, धर्म-पूर्वक भिक्षाटन कर माता-पिता का पोषण करता है वह बहुत पुण्य कमाता है ।

जो मनुष्य माता या पिता को बर्ष से पोसता है उससे पण्डित लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, मरकर वह स्वर्ग में जावन्द करता है ।

। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ १०. भिक्षुक सुत्त (७. २. १०)

भिक्षुक भिक्षु नहीं

श्रावस्ती में ।

तत्र भिक्षुक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ भिक्षुक ब्राह्मण ने भगवान् को कहा—हे गौतम ! मैं भी भिक्षुक हूँ और आप भी भिक्षुक हैं । हम दोनों में फरक क्या है ?

[भगवान्—]

इसलिये कोई भिक्षु नहीं होता क्योंकि वह भीख माँगता है,

जब तक दोषयुक्त है तब तक वह भिक्षु नहीं हो सकता ।

जो ससार के पुण्य और पाप बहाकर,

ज्ञानपूर्वक सच्चे ब्रह्मचर्य का पालन करता है,

वही यथार्थ में भिक्षु कहा जाता है ॥

। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ ११ संगारव सुच (७ २ ११)

स्वाम से शुद्धि नहीं

ध्यावस्ती में ।

उस समय संगारव नाम का एक माझल उदक-सुद्धिक उदक से शुद्धि होना माननेवाला ध्यावस्ती में रहता था । सौंझ-सुबह उदक में ही पैठ रहता था ।

तब आनुष्मान् भालम्ब सुबह में पहल भीर पात्रचीबर के भाबली में मिशारम के छिने पड़े । मिशारम से छोट भोजन कर खेन के बाद जहाँ भगवान् ने यहाँ आये भीर भगवान् का भमिवाहन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ आनुष्मान् भालम्ब ने भगवान् को यह कहा—मन्ते ! संगारव माझम सौंझ-सुबह उदक ही में पैठ रहता है । मन्ते ! जमुङ्ग्या करके भगवान् जहाँ संगारव का घर है यहाँ कछे ।

भगवान् ने सुन रहकर स्वीकार कर लिया ।

तब भगवान् सुबह में पहल भीर पात्र चीबर के जहाँ संगारव का घर था यहाँ गये । जाकर बिछे आसन पर बैठ गये ।

तब संगारव ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे यहाँ आया । आकर कुसक-मस पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे संगारव ब्राह्मण को भगवान् ने कहा—ब्राह्मण ! क्या सच में तुम उदक-सुद्धिक हो उदक से शुद्धि होना जानते हो ? सौंझ-सुबह उदक में ही पड़े रहते हो ?

हाँ गीतम ! ऐसी ही बात है ।

ब्राह्मण ! तुम किस उद्देश्य से उदक-सुद्धिक हो उदक से शुद्धि होना मानते हो, भीर सौंझ-सुबह उदक में ही पड़े रहते हो ?

हे गीतम ! दिन भर में सुसते जो कुछ पाप हो जाता है उसे सौंझ में बहाकर बहा देता हूँ । और रात भर में जो कुछ पाप हो जाता है उसे सुबह में बहाकर बहा देता हूँ । हे गीतम ! मैं इसी बड़े बड़ेस से उदक-सुद्धिक हो उदक से शुद्धि होना मानता हूँ और सौंझ-सुबह उदक में पैठ रहता हूँ ।

[भगवान्—]

हे माझल ! धर्म जम्भजय है दीक उसमें उतरने का बाद है

बिपकुल स्वप्न सज्जनों स प्रदास,

जिसमें परम शांती स्वान कर

पबित्र गार्होवाप्य हो पार तर जाता है ॥

। आत्म से कर्म भर के छिने आप गीतम सुझे भवना धरणागत उपासक स्वीकार करें ।

§ १२ खोमबुस्सक सुच (७ २ १२)

सन्त की पहचान

एक समय भगवान् ब्राह्मण अवपद में खोमबुस्स नामक शहरों के कस्बे में विहार करते थे ।

तब भगवान् सुबह में पहल भीर पात्रचीबर के खोमबुस्स कस्बे में मिशारम के छिने पड़े ।

उस समय खोमबुस्स कस्बे के रहनेवाले ब्राह्मण पूरल्ल किरी काम से समापुद में बन्दे थे । रिमकिम पानी भी पारम रहा था ।

तत्र, भगवान् जहाँ वह सभा लगी थी वहाँ गये ।

खोमदुस्सक कस्से के रहनेवाले ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान् को वृत्त ही से आते देखा । देखकर वह कहा—ये मयमुण्डे श्रमण सभा के नियमों को क्या जानेंगे ?

तत्र, भगवान् ने खोमदुस्सक कस्से में रहनेवाले ब्राह्मण गृहस्थों को गाथा में कहा—

वह सभा सभा नहीं जहाँ सन्त नहीं,
वे सन्त सन्त नहीं जो धर्म की गाथा नहीं पढ़ावे,
राग, द्वेष और मोह को छोड़,
धर्म को बखाननेवाले ही सन्त होते हैं ॥

• • । आज से जन्म भर के लिये आप गौतम हम लोगों को अपना पारमार्थिक उपासक स्वीकार करें ।

उपासक वर्ग समाप्त

ब्राह्मण-संयुक्त समाप्त ।

आठवाँ-परिच्छेद

८ वङ्गीश-सयुक्त

§ १ निखन्त मुघ (८ १)

घनीश का, हङ्-संकल्प

येमा मीने सुना ।

एक समय आमुप्मान् वङ्गीश अपने उपाध्याय आमुप्मान् निम्रोघ-कश्य के साथ आछवी में अगालय नीर पर विहार करते थे । उस समय आमुप्मान् वङ्गीश जमी तुल ही गये अमजित बुधे ने विहार की देण-रैख करने के लिये ओढ़ दिय गये थे ।

तब कुछ क्षियाँ अर्लकृत हो उस आराम में देणने के किये आईं । उन क्षियाँ को देणकर आमुप्मान् वङ्गीश लुभा गये, बिच राग से पागळ हो उठ ।

तब आमुप्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ—मेरा बड़ा अफाम हुआ काम मही, मेरा बड़ा दुर्मान् हुआ घुमान् मही—कि मैं लुभा गया और मेरा बिच राग से पागळ हो उठ है । मुझे कौन ऐसा मिछेगा जो मेरे हस मोह की तूर कर बिच में क्षामित था वे ! जो मैं स्वर्ण ही अपने हस मोह को तूर कर बिच में क्षामित ले लाऊँ ।

तब आमुप्मान् वङ्गीश अपने स्वर्ण उस मोह की तूर कर कित में क्षामित के लिये, और उस समय उनसे मुँह से यह शाबायें निकळ पड़ी—

धर से बेबर हो निकळ गये मेरे मन में
वे तुरे और काये बितरुँ अब रह हैं
मेहनतों के पुत्र महाबतुर्चर शिखित हङ्-वराबमी
बारों और से हजारों काम बरसायें
बहि इससे भी अधिक क्षियाँ जायें
तो मेरे मन की नहीं क्षिया सखेंगी,
जब मैं जर्म में प्रतिष्ठित हो गया ॥
मीने अपने कामा पूर्वकुलेवक लुङ् को कहते सुना है
कि मिर्दान के पावे का मार्ग क्या है,
मेरा मन अब नहीं बँध गया है ॥
हस प्रकर विहार करते बहि पापी मार मेरे पास ध्येगा
तो मैं ऐसा करूँगे कि वह मेरे मार्ग को भी नहीं देख सकेगा ॥

§ २ अरति मुघ (८ २)

राग छाने

येमा मीने सुना ।

एक समय आमुप्मान् वङ्गीश अपने उपाध्याय आमुप्मान् निम्रोघ-कश्य के साथ आछवी में अगालय नीर पर विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् वज्रीश कल्प भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद विहार में पैठ जाया करते थे, और साँझ को या दूसरे दिन उसी समय निकला करते थे ।

उस समय आयुष्मान् वज्रीश को मोह चला आया था—राग से चित्त चञ्चल हो उठा था ।

तब आयुष्मान् वज्रीश के मन में यह हुआ— [पूर्ववत्] । तो मैं स्वयं ही अपने इम मोह को दूर कर चित्त में शान्ति ले आऊँ ।

तब आयुष्मान् वज्रीश अपने स्वयं उस मोह को दूर कर चित्त में शान्ति ले आये, और उस समय उनके मुँह से ये गायार्थें निकल पड़ी—

(धर्माचरण में) अततोप, (कामोपभोग में) संतोप,

और सारे पाप वितर्कों को छोड़,

कहीं भी जगल उगने न दे,

जगल को साफ कर खुले में रहनेवाला भिक्षु ॥

जो पृथ्वी के ऊपर वा आकाश में,

ससार के जितने रूप हैं,

सभी पुराने होते जाते हैं, अनित्य हैं,

ज्ञानी पुरुष इन्से जानकर विचरते हैं ॥

साक्षारिक भोगों में लोग लुभाये हैं,

देखे, सुने, हृये और अनुभव किये धर्मों के प्रति,

स्थिर-चित्त जो इनके प्रति दृच्छाओं को बना,

उनमें लिस नहीं होता है—उसी को मुनि कहते हैं ॥

जो साठ मिथ्या धारणार्थें,

पृथक् जनों में लगी हैं,

उनमें जो कहीं नहीं पबता है,

जो दृष्ट वार्ते नहीं बोलता है, वही भिक्षु है ॥

पण्डित, बहुत काल से समाहित,

ढोंग न प्रदानेवाला, ज्ञानी, लोभ-रहित,

जिस मुनि ने शान्त-पद् जान,

निर्वाण को प्राप्त कर लिया है, अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा है ॥

§ ३. अतिमञ्जना सुक्त (८. ३)

अभिमान का त्याग

एक समय आयुष्मान् वज्रीश अपने उपाध्याय आयुष्मान् निम्रोध-कल्प के साथ शालवी में अगमालय चैत्य पर विहार करते थे ।

उस समय आह,ष्मान् वज्रीश अपनी प्रतिभा के अभिमान से दूसरे अच्छे भिक्षुओं की निन्दा करते थे ।

तब आयुष्मान् वज्रीश के मन में यह हुआ, “मेरा क्या अलम्ब हुआ, लाभ नहीं, मेरा क्या दुर्भाग्य हुआ, सुभाग्य नहीं, कि मैं अपनी प्रतिभा के अभिमान से दूसरे अच्छे भिक्षुओं की निन्दा करता हूँ ।”

तब स्वयं अपने चित्त में पश्चात्ताप उत्पन्न कर आयुष्मान् वज्रीश के मुँह से ये गायार्थें निकल पड़ी—

हे गौतम के भावक ! अभिमान छोड़ो
 अभिमान के मार्ग संतूर रहो,
 अभिमान के रास्ते में भटककर
 बहुत दिनों तक पड़नाचाप करता रहा ॥
 सारी जमता भ्रमण्ड से बूर है
 अभिमान करनेवाले तरक में गिरते हैं
 बहुत काक तक शोक किया करते हैं
 अभिमानी लोग तरक में उत्पन्न हो ॥
 मिथु कमी भी शोक नहीं करता है
 मार्ग को बिलसे जीत लिया है सम्बन्ध प्रतिपन्न
 कीर्ति और सुख कम अनुभव करता है
 पथार्थ में ही लोग उसे भ्रमणमा कहते हैं ॥
 इसलिये मन के मीक को दूर कर उत्साही मन
 बन्धनों को हटाकर विमुक्त,
 और अभिमान को बिल्कुल हटा
 शान्त हो ज्ञान-पूर्वक शान्त करता है ॥

§ ४ आनन्द सुच (८४)

कामराग से मुक्ति का उपाय

एक समय आयुष्मान् आनन्द व्याहस्ती में मनाथ पिण्डिक के जेतवम ब्यराम में बिहार
 करत थे ।

तब आयुष्मान् आनन्द सुच में पहन और पात्रबीबर के आयुष्मान् यज्ञीश को पीठे किये
 मिहाराग के किये व्याहस्ती में पीठे ।

उस समय आयुष्मान् यज्ञीश के चित्त में मोह हो गया था राग से बहक हो रहे थे ।

तब आयुष्मान् यज्ञीश आयुष्मान् आनन्द से गाथा में बोले—

कामराग से बहक रहा हूँ चित्त मेरा बहक जा रहा है

हे गौतममुज्जोत्यन्न मिथु ! कृपा कर इसे शान्त करने का उपाय बताओ ।

[आयुष्मान् आनन्द—]

मन बहक जाने से तुम्हारा चित्त बहक रहा है

राग उत्पन्न करनेवाले हून अकार्यय को छोड़ दो

अपने संस्कारों को पराधा के ऐसा देखो दुःख और अनात्म के ऐसा

हून बड़े राग को छोड़ दो इससे बार-बार मत बहो ॥

चित्त में अहुम भावना करने पुरुष और समाचित्त्य हो

तुम्हें कायगता स्थिति का भ्रमण होवे विराग्य बहामो ॥

हुन अचित्त और अनात्म की भावना करो

अभिमान और भ्रमण छोड़ दो

तब मान के प्रहाप से शान्त हो बिचरोगे ॥

§ ५. सुभाषित सुत्त (८. ५)

सुभाषित के लक्षण

श्रावस्ती जेतवन में ।

पार्श्व भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

“भगन्ता !” कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! चार अङ्गों से युक्त होने पर वचन सुभाषित होता है, दुर्भाषित नहीं, विशेषों से अनिन्द्य, सिन्धु नहीं । किन चार से ?

भिक्षुओ ! भिक्षु सुभाषित ही बोलता है, दुर्भाषित नहीं, धर्म ही बोलता है, अधर्म नहीं, प्रिय ही बोलता है, अप्रिय नहीं, सत्य ही बोलता है, असत्य नहीं । भिक्षुओ ! इन्हीं चार अङ्गों से युक्त वचन सुभाषित होता है, दुर्भाषित नहीं, विज्ञेय से अनिन्द्य होता है, सिन्धु नहीं ।

भगवान् यह बोले । इतना कहकर उक्त फिर भी बोले—

मन्तां ने सुभाषित को ही उत्तम कहा है,

दूयरे—धर्म कहे, अधर्म नहीं,

तीसरे—प्रिय कहे, अप्रिय नहीं,

चौथे—सत्य कहे, असत्य नहीं ॥

तब, आयुष्मान् चण्डीश आसन से उठ, उपमनी को एक कन्धे पर खेंवाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले—भगवान् ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ । कुछ ! मुझे कुछ कहने का अवकाश मिले ।

भगवान् बोले—चण्डीश ! कहे, अवकाश है ।

तब, आयुष्मान् चण्डीश ने भगवान् के सम्मुख अत्यन्त उपयुक्त वाथाओं में स्तुति की—

उसी वचन को बोले, जिससे अपने को अनुत्तम न हो,

और, दूसरों को भी कष्ट न हो, वही वचन सुभाषित है ॥

प्रिय वचन ही बोले, जो सभी को सुहाये,

जो दूसरों के श्रेय नहीं निकालता, वही प्रिय बोलता है ॥

सत्य ही सर्वोत्तम वचन है, यह सनातन धर्म है,

सत्य, अर्थ और धर्म में प्रतिष्ठित मज्जनों ने कहा है ॥

उद्ध जो वचन कहते हैं, क्षेम और निर्वाण की प्राप्ति के लिये,

दुःखों को अन्त करने के लिये, वही उत्तम वचन है ॥

§ ६. सारिपुत्र सुत्त (८. ६)

सारिपुत्र की स्तुति

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती में अनाथ-पिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर दिखा दिया । उनके वचन सभ्य, सफ, निर्दोष और सार्थक थे । और भिक्षु लोग भी वड़े आदर से, मन लगाकर, ध्यानपूर्वक कान दिवें सुन रहे थे ।

तब, आयुष्मान् चण्डीश के मन में यह हुआ—यह आयुष्मान् सारिपुत्र धर्मोपदेश । और, भिक्षु लोग भी सुन रहे हैं । तो क्यों न मैं आयुष्मान् सारिपुत्र के सम्मुख उपयुक्त वाथाओं में उनकी स्तुति करूँ ।

तब आयुष्मान् यक्षीश आसन से उठ उपरती को एक कंधे पर सम्माक आयुष्मान् सारिपुत्र की ओर हाथ जोड़कर बोले—अबुस सारिपुत्र ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ। अबुस सारिपुत्र ! तुमने कुछ कहने का अवकाश मिला।

अबुस यक्षीश ! अवकाश है क्यों।

तब आयुष्मान् यक्षीश ने आयुष्मान् सारिपुत्र के सम्मुख उपयुक्त शायलों में उनकी स्तुति की—

शम्मीर प्रथम मेधावी, अच्छे और बुरे मार्ग के पहचाननेवाले
सारिपुत्र महाप्रज्ञ मिथुनों में भर्त्सोपदेश कर रहे हैं।
संक्षेप से भी उपदेशते हैं उसका बिकार भी कहते हैं
सारिफ की घोड़ी घिसा मधुर ऊँची बातें बता रहे हैं।
जस वेनावा की मधुर बाली
आमन्दशायक अचणीय और सुन्दर है;
उद्ग्रथित और प्रमुहित हो मिथु लोग झगामे उसे सुन रहे हैं।

§ ७ प्रवारणा सूच (८७)

प्रवारणा-कर्म

एक समय भगवान् पॉष सी केन्द्र धरैव मिथुनों के एक पक्ष संघ के साथ श्रावस्ती में सुगार माठा के पूर्वोत्तरम प्रासाद में विहार करते थे।

उस समय पञ्चश्री के उपोत्सव पर प्रवारणा के किये सम्मिलित हुए मिथु-सभ के बीच कुछ मैदान में भगवान् बैठे थे।

तब भगवान् ने मिथु-संघ को सान्त्व दैव मिथुनों को आमन्त्रित किया—मिथुनों ! मैं प्रवारण करता हूँ—तुमने शरीर या बचन के कोई दोष तो सुगाम नहीं देखे हैं ?

भगवान् के पूरा कहने पर आयुष्मान् सारिपुत्र आसन से उठ उपरती को एक कंधे पर सम्माक भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले—भन्ते ! हम लोग ने शरीर या बचन से कुछ तुराई कर भगवान् पर दोष नहीं बताया है। भन्ते ! भगवान् अनुत्पन्न मार्ग के उत्पन्न करवाके हैं 'क' कहे गये मार्ग के पतनितवाके हैं मार्ग की पहचाननेवाक है मार्ग पर चक हुए हैं। भन्ते ! इस समय आपने आवक भी आपके अनुगामन करनेवाके हैं। भन्ते ! मैं भगवान् को प्रवचन करता हूँ—भगवान् ने हममें कोई शारीरिक वा वाचसिक दोष तो नहीं देखा है ?

सारिपुत्र ! मैंने शरीर या बचन के दोष करते तुम्हें कभी नहीं पाया है। सारिपुत्र ! तुम पश्चिम हो पुच्छवाक् हो महाप्रज्ञावाक् हो तुम्हारी प्रज्ञा प्रसन्न सर्वगामी तीक्ष्ण और अपराजेय है। सारिपुत्र ! ऊँते चक्रवर्ती राजा का श्रेष्ठ पुत्र पिता के प्रवर्तित चक्र का सम्पू्क प्रवर्तन करता है वैसे ही तुम मेरे प्रवर्तित अनुत्तर परमचक्र का सम्पू्क प्रवर्तन करते हो।

भन्त ! यदि भगवान् हममें कोई शारीरिक वा वाचसिक दोष नहीं पाते हैं तो भगवान् हम पॉष से मिथुनों में भी कोई दोष नहीं पावेंगे।

सारिपुत्र ! हम इस पॉष भी मिथुनों में भी कोई दोष नहीं पाते हैं। सारिपुत्र ! इन पॉष से मिथुनों में भी एक मिथु अंधिये रात मिथु पश्चिम रात मिथु शीर्षी भाग से मिथुक्, और बुरे प्रज्ञा-विभुक् हैं।

तब आयुष्मान् यक्षीश आसन से उठ, उपरती को एक कंधे पर सम्माक भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोल—भगवान् ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ। तब ! तुमने कुछ कहने का अवकाश मिला।

भगवान् बोले—ब्रह्मीश ! भवकाश है, कहो ।

तब आधुष्मान् ब्रह्मीश ने भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति की—

आज पञ्चदशी को विशुद्धि के निमित्त,
पाँच सौ भिक्षु एकत्रित हुये हैं,
(वस) मानसिक बन्धनों के काटनेवाले,
निष्पाप, पुनर्जन्म से मुक्त ॥
जैसे चक्रवर्ती राजा अमात्यों के साथ,
चारों ओर घूम आता है,
समुद्र तक पृथ्वी के चारों ओर,
वैसे ही, विजित-सग्राम, अनुत्तर नायक की,
उपासना उनके श्रावक-गण करते हैं,
त्रैयिच, सृष्टु को जीतनेवाले ॥
सभी भगवान् के पुत्र हैं, इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं है,
तृष्णारूपी दात्य को काटनेवाले,
उन सूर्यवशोत्पन्न बुद्ध को नमस्कार हो ॥

§ ८. परोसहस्र सुत्त (८. ८)

बुद्ध-स्तुति

एक समय भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के बड़े सच के साथ श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् ने निर्वाण-सम्पन्धी धर्मोपदेश कर भिक्षुओं को दिखा दिया । भिक्षु लोग भी बड़े आदर से मन लगाकर ध्यानपूर्वक कान दिये सुन रहे थे ।

तब आधुष्मान् ब्रह्मीश के मन में यह हुआ—यह भिक्षु लोग भी कान दिये सुन रहे हैं । तो क्यों न मैं भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति करूँ ।

तब आधुष्मान् ब्रह्मीश आसन से उठ [पूर्ववत्] ।

तब आधुष्मान् ब्रह्मीश ने भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति की—

हजार से भी ज्यादा भिक्षु बुद्ध को घेरे हैं,
जो विरज धर्म-उपदेश रहे हैं,
भय से शून्य निर्वाण के विषय में ॥
उस विमल धर्म को सुन रहे हैं,
जिसे सम्यक् सम्बुद्ध धरता रहे हैं,
मि०सच के बीच बुद्ध बड़े शोभ रहे हैं ॥
भगवान् का नाम नाग है, ऋषियों में सातवाँ ऋषि है,
महामेघ-सा हो, श्रावको पर वर्षा कर रहे हैं ॥
दिन के विहार से निकल बुद्ध के दर्शन की इच्छा से,
हे महावीर ! मैं ब्रह्मीश आपका श्रावक चरणों पर, प्रणाम करता हूँ ॥

ब्रह्मीश ! तुमने क्या इन गाथाओं को पहले ही बना लिया था अथवा हृत्की क्षण सुझी हैं ?

० विपक्षी बुद्ध से लेकर सातवें ऋषि (= बुद्ध)—अटकथा ।

मन्ते ! मैंने हज़ गायकों को पढ़क ही नहीं बना किया या इसी क्षण सूखी हैं ।
तो बहूँता । और भी कुछ कई गायकों कहीं जिन्हें तुमने पढ़क कमी नहीं रखा है ।

मन्ते ! बहुत अग्र्य' कह, आयुष्मान् कभीस भगवान् को उत्तर दे पढ़के कमी नहीं रची गई
गई गायकों में भगवान् की स्तुति करने को।—

भार के कुमार्ग को भीत
मन की गाँठों को काटकर बिचरते हैं
बन्धन से मुक्त करनेवाक उन्हें देखो
स्वच्छन्द कोमों को (स्तुति प्रत्यान आदि जन्मास) बाँटते-बूटते ॥
बाह के गिस्तार के छिपे
अनेक प्रकार से मार्ग को बटापा
आपके उस अमृत-पद बटाने पर
भरी क झाली अनेक हो गये ॥
पिंडर प्रकास देनबाके
उस से उच उहेस्य को पार कर आपने देस्य किया
बायकर और साझाकार कर
सबसे पढ़के ज्ञान की बातें बटाई ॥
इस प्रकार के धर्मोपदेश करने पर
भरी आपनेबाकों को प्रसाद कैसा !
इसछिपे उभ भगवान् के सासन में
सदा अममथ हो नजरा से जन्मास करे ॥

§ ९ कौण्डिन्य मुच (८ ९)

अग्र्य-कौण्डिन्य के गुण

एक समय भगवान् राजगृह में वेत्तुषम कण्ठक विषमय में पिहार करते थे ।

तब आयुष्मान् अग्र्य-कौण्डिन्य बहुत काल के बाद कहीं भगवान् से कहीं गये । और
भगवान् के पैरों पर तिर डैक भगवान् के बरनों को मुक्त से जमाने को जोर हाथ से पीछने को । और
अपना नाम सुनाने को—भगवान् ! मैं कौण्डिन्य हूँ । तुक ! मैं कौण्डिन्य हूँ ।

तब आयुष्मान् चहूँश के सब में यह हुआ—बह आयुष्मान् अग्र्य-कौण्डिन्य अपना
नाम सुना रहे हैं । तो मैं भगवान् के समुत्त अग्र्य-कौण्डिन्य की उपयुक्त गायकों में प्रसादा करूँ ।
[पूर्वकर]

तब आयुष्मान् चहूँश भगवान् के समुत्त उपयुक्त गायकों में आयुष्मान् अग्र्य-कौण्डिन्य
की प्रसादा करने को—

तुह के बटाये शाक को आपनेबाके स्वधिर पड़े उताही कौण्डिन्य
मुत्तपूर्वक विहार करनैबाके परम ज्ञान को पहुँचे हुये
तुह के सासन में रह, किसी आबठ से को तुज प्राप्त किया या सकता है
बह सभी आपकी प्राप्त है आपकी को अममथ हो जन्मास करते हैं
बड़े प्रतापी प्रपिच दूरियों क बिच को भी ज्ञान जानी बाके
तुह-आबक कौण्डिन्य भगवान् के आर्यों पर बन्दा कर रहे हैं ॥

§ १०. मीमंशुलान सुक्त (८. १०)

महामौद्गल्यायन के गुण

एक समय भगवान् पाँच सौ केवल अर्हत् भिक्षुओं के एक बड़े सच के साथ राजगृह में ऋषि-गिरि के पास कालशिला पर विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने अपने चित्त से उनके चित्त को विमुक्त और उपाधिरहित हो गया जान लिया।

तब, आयुष्मान् वज्रीश के मन में यह हुआ—यह भगवान् पाँच सौ केवल अर्हत् भिक्षुओं के एक बड़े सच के साथ राजगृह में ऋषिगिरि के पास कालशिला पर विहार कर रहे हैं। और, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने अपने चित्त से उनके चित्त को विमुक्त और उपाधिरहित हो गया जान लिया। तो, मैं भगवान् के सम्मुख आयुष्मान् महामौद्गल्यायन की उपयुक्त गायत्रियों में प्रशंसा करूँ।

तब, आयुष्मान् वज्रीश भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गायत्रियों में आयुष्मान् महामौद्गल्यायन की प्रशंसा करने लगे—

पहाड़ के किनारे बैठे हुये, दु ख के पार चले गये मुनि को,
श्रावक लोग घेरे हैं, जो त्रैविद्य और मृत्युञ्जय हैं ॥
महा वृद्धि-शाली मौद्गल्यायन अपने चित्त से जान लेते हैं,
इन सभी के विमुक्त और उपाधिरहित हो गये चित्त को ॥
इस तरह सभी अंगों से अनेक प्रकार से सम्पन्न,
दु खों के पार जानेवाले गौतम मुनि की सेवा करते हैं ॥

§ ११. गग्गरा सुक्त (८. ११)

बुद्ध-स्तुति

एक समय भगवान् सम्पा में गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर—पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े सच के, सात सौ उपासकों के, सात सौ उपासिकाओं के, और कई हजार देवताओं के साथ—विहार करते थे। उनमें भगवान् अपनी काम्ति और यश से बहुत शोभ रहे थे।

तब, आयुष्मान् वज्रीश के मन में यह हुआ— उनमें भगवान् अपनी काम्ति और यश से बहुत शोभ रहे हैं। तो, मैं भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गायत्रियों में उनकी स्तुति करूँ—

। तब, आयुष्मान् वज्रीश भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गायत्रियों में उनकी स्तुति करने लगे—
नेच-रहित आकाश में जैसे चाँद,
अपने निर्मल प्रकाश से शोभता है,
हे बुद्ध ! आप महामुनि भी वैसे ही,
अपने यश से सारे लोक में शोभ रहे हैं ॥

§ १२. वज्रीस सुक्त (८. १२)

वज्रीश के उदान

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आगार में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् वज्रीश अभी सुरत ही अर्हण-पद या विमुक्ति-सुरा की प्राप्ति का अनुभव कर रहे थे। उस समय उनके मुख से ये गायत्रियाँ निकल पड़ी—

पटले केवल कविता करते विचरता रहा, गॉय से गॉय और शहर से शहर,

तब, सम्बुद्ध भगवान् का दर्शन हुआ, भग में बड़ी अज्ञा उत्पन्न हुई
 उनसे मुझे प्रमोदवस किया स्वप्न भावतम और पापुओं के विषय में
 उनके घर्म को मुन में धर से बंधर हो प्रदक्षित हो गया ।
 बहुरों की अर्धसिद्धि के लिए, मुनि में शुद्धता का धाम किया
 मित्र और मित्रियों के लिए, जो निषाम को प्राप्त कर देना किये हैं ॥
 आपको मरा बरागत हो, धुद के पास मुसे
 तीन विषयों प्राप्त हुई हैं, शुद्ध का शासन सफल हुआ ॥
 पूर्वजन्मों की बात आनता हैं, दिव्य यज्ञ विद्युद हो गया है
 वैश्व और अस्मिन्नाह, दूसरों के विषय को आनता हैं ॥

वहीश संयुक्त समाप्त ॥

नवाँ परिच्छेद

९. वन-संयुक्त

§ १. विवेक सुत्त (९.१)

विवेक में लगना

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय कोई भिक्षु कोशल के एक जगल में विहार करता था ।

उस समय वह भिक्षु दिन के विहार के लिये गया बुरे ससारी बितकों को मन में ला रहा था ।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता उस भिक्षु पर अनुकम्पा कर, उसकी शुभ कामना से उसे होश में ले आने के लिये, जहाँ वह भिक्षु या वहाँ आया । आकर, भिक्षु से गायार्थों में बोला—

विवेक की कामना से वन में पड़े हो,
किन्तु तुम्हारा मन बाहर भाग रहा है,
दूसरों के प्रति अपनी इच्छा को बयाओ,
और, तब वीतराग होकर सुखी होओ ॥
स्मृतिमान् हो मन के मोह को छोड़ो,
सत्पुरुष बनो, जिसकी सभी बड़ाई करते हैं,
नीचे और बुढ़े,
काम-राग से तुम बहक मत जाओ ॥
पक्षी जैसे भूल पड़ जाने पर,
पाँखें फटफटाकर उसे उड़ा देता है,
वैसे ही, उत्साही और स्मृतिमान् भिक्षु,
मन के राग को फटफटाकर श्राव देता है ॥

तब, देवता के ऐसा कहने पर वह भिक्षु सम्भल कर होश में आ गया ।

§ २. उपडान सुत्त (९.२)

उठो, सोना छोड़ो

एक समय कोई भिक्षु कोशल के एक जगल में विहार करता था ।

उस समय वह भिक्षु दिन के विहार के लिये गया सो रहा था ।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता उस भिक्षु पर अनुकम्पा कर, उसकी शुभ कामना से उसे होश में ले आने के लिये, जहाँ वह भिक्षु या वहाँ आया । आकर, भिक्षु से गायार्थों में बोला—

उठो भिक्षु ! क्या सोते हो ! तुम्हें सोने से क्या काम ?
तीर लगे छटपटाते हुये बैचैन आदमी को भला नींद कैसी ?

जिस भद्रा से घर स वेपर होकर प्रमत्तित हुये हो
उस भद्रा को बगामो नीव के बरा में मत पको ॥

[मिश्र—]

सांसारिक क्रम भविष्य और अज्ञान है जिसमें मूर्ख सुभाये रहते
को स्वच्छन्द और बन्धन से मुक्त है उस प्रमत्तित को वे क्यों सतावें ?
छन्द-राग क वृत्त जाने से अविद्या के सर्वथा हर जाने से
जिसका ज्ञान झुक् हो गया है उस प्रमत्तित को वे क्यों सतावें ?
विद्या से अविद्या को हटा आधर्मों के छीण हो जाने से
को शौक और परेसाधी स छूटा है उस प्रमत्तित को वे क्यों सतावें ?
को वीर्यवान् और प्रविष्टात्म है विरह हृद पराक्रम करनेवाला है
निदान की चाह रखनेवाले उस प्रमत्तित को वे क्यों सतावें ?

§ ३ फस्सपगोत्र सुच (९ ३)

बहेछिया को उपदेश

एक समय आयुष्मान् काश्यपगोत्र कोछा के किसी वन-पण्ड में बिहार करते थे ।
उस समय आयुष्मान् काश्यपगोत्र दिन के बिहार के छिये गये हुये एक बहेछिये को उपदेश
दे रहे थे ।

उस उस वन में काम करनेवाला वैश्या आयुष्मान् काश्यपगोत्र से गाथाओं में बोला—

प्रशाहीन सूर्ज गुर्गम शग पहाड में रहनेवाले बहेछिये की
मिश्र ! बेचपन उपदेश करते हुये आप मुझे मन्व माधम होते हैं ॥
सुवता है किन्तु समगता नहीं बर्षों चौकता है किन्तु वैपता नहीं
धर्मोपदेश किये जाने पर सूर्ज मर्ष को नहीं वृत्ता ॥
काश्यप ! यदि आप इस मसाक भी विद्यामें
तो वह श्रुतों को यहाँ देन सकता है,
इस तो ज्ञान हा नहीं है ॥

वैश्या क गया कहने पर आयुष्मान् काश्यपगोत्र होश में आकर सँभक गये ।

§ ४ सुम्बहुल सुच (९ ४)

मिश्रुमीं का स्वच्छन्द पिहार

एक समय कुछ मिश्रु काण्ड क किसी वन-पण्ड में बिहार करत थे ।
तब तीन सहीना बर्षावाय बीत जाने पर व मिश्रु इमत (स्वच्छिवा) के लिये वन पड़े ।
तब उस वन में काम करनेवाला वैश्या उस मिश्रुमीं का न देन विप्लव करता हुआ उस समय
से गाथाये बोला—

आज मुझे बर वराम-या मादम हा रहा है
इस ललक आत्मों की गाली देकर
ये ऊँची ईँची बाते करेवाला बणिज
मानस के भावक नहीं चल गये ?

उमके ऐसा कहने पर, एक दूसरे देवता ने उसे गाथा में उत्तर दिया—
मगध को गये, कौशल को गये,
और कितने यज्ञियों के देश को गये,
छूटे मृग जैसे स्वच्छन्द विचरनेवाले,
बिना घरवाले भिक्षु लोग विहार करते हैं ॥

§ ५. आनन्द सुक्त (९. ५)

प्रमाद न करना

एक समय आयुष्मान् आनन्द कौशल के किसी वन-खण्ड में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् आनन्द को गृहस्थ लोग बड़े घेरे रहते थे ।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता आयुष्मान् आनन्द पर अनुकम्पा कर, उनकी शुभ कामना से उन्हें होश में ले आने के लिये, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आया । आकर, आयुष्मान् आनन्द से गाथाओं में बोला —

इस जगल झाड़ में आकर,
हृदय में निर्वाण की आकांक्षा से,
हे गौतम श्रावक ! ध्यान करें, प्रमाद मत करें,
इस चहल-पहल से आपका का क्या होना है ?

देवता के ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द होश में आकर सँभल गये ।

§ ६. अनुरुद्ध सुक्त (९. ६)

सस्कारों की अनित्यता

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध कौशल के किसी वन-खण्ड में विहार करते थे ।

तब, त्र्यम्बिश लोक की जालिनी नामक एक देवता, जो आयुष्मान् अनुरुद्ध की पहले जन्म में भार्या थी, जहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध थे वहाँ आई । आकर आयुष्मान् अनुरुद्ध से गाथा में बोली —

उसका ज़रा स्थल करें जहाँ आपने पहले वास किया था,
त्र्यम्बिश देव-लोक में, जहाँ सभी प्रकार के देश-आराम थे,
जहाँ आप सदा देवकन्याओं से घिरे रहकर शोभते थे ॥

[अनुरुद्ध—]

अपने देश-आराम में लगीं, उन देवकन्याओं को धिक्कार है,
उन जीवों को भी धिक्कार है, जो देवकन्याओं को पाने में लगे हैं ॥

[जालिनी—]

वे सुख को भला, क्या जानें, जिनने नन्दन-वन नहीं देखा ।
त्र्यम्बिश लोक के यशस्वी, भर और देवों का जो वास है ॥

[अनुरुद्ध—]

मूर्खों, क्या नहीं जानती है, कि अहंता ने क्या कहा है ?
सभी सस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और क्षीण होनेवाले,

उत्पन्न होकर विरह हाँ बाते हैं उमङ्ग शान्त हाँ जगना ही सुप्त है ॥
फिर भी वेह धरना नहीं है

हे आश्रिणि ! किसी भी वैषम्योक्त में
भाषागमन का सिद्धसिद्धा बन्द हो गया
पुनर्जन्म भय होने का नहीं ॥

§ ७ नागदत्त सुच (९ ७)

वेर तक गाँवों में खूना भण्डा नहीं

एक समय नागदत्त कोशाल के किसी बग-वण्ड में विहार करते थे ।

उस समय आशुप्मान् नागदत्त तकके ही गाँव में पैठ जाते थे भार बढ़ा दिन बिताकर खीटते थे ।
तब उस बग में बास करवेबाका देवता आशुप्मान् नागदत्त पर अनुकम्पा कर, उनकी क्षुम-
कामया से उन्हें होश में के जाने के किये जहाँ आशुप्मान् नागदत्त थे वहाँ भाषा । भाकर, आशुप्मान्
नागदत्त से गाथाओं में बोका—

नागदत्त ! तबक ही गाँव में पैठ
बहुत दिन बह जाने पर सीटते हो
गृहस्थों से बहुत दिखे-मिखे विचरते हो
कनके सुप्त-कुल में सुखी कुली हाते हो ॥
बड़े प्रगल्भ नागदत्त को उराता हूँ
कुलों में बँधे हुए को
मल बकवान्, मृत्युराज,
जन्तक के बध में पढ़ जाता ॥

तब देवता के पैसा कहने पर आशुप्मान् नागदत्त सँभकर होख में जा गये ।

§ ८ कुलधरणी सुच (९ ८)

सह सेना लक्ष्म है

एक समय कोई मिथु कोशाल में किसी बग-वण्ड में विहार करता था ।

उस समय वह मिथु किसी गृहस्थ-कुल में बहुत वेर तक बसा रहता था ।

तब उस बग में बास करवेबाका देवता उस मिथु पर अनुकम्पा कर उसकी क्षुम-कामया से
वसे होश में के जाने किये उस कुल की को कुल-गृहणी थी कसक कप बर जहाँ वह मिथु था वहाँ
भाषा । जाकर मिथु से गाथा में बोका—

नदी के तीर पर, सराय में समा में सबको पर
जोग व्यपस में बाते करते हैं—हमारे-गुम्हारे में क्या भेद है ?

[मिथु—]

बाते बहुत कैक गाँ हैं तपस्वी को सहजी चाहिये
उससे कबना नहीं पड़ेगा उससे बहनामी नहीं होगी ॥
को सच्य सुनकर भीक जाता है जगक के मृग जैसे
बसे जोग कस्तु-चित्त कहते हैं उसकर मत नहीं पूरा होता ॥

§ ९. वज्जिपुत्त सुत्त (९ ९)

भिक्षु जीवन के सुख की स्मृति

एक समय कोई वज्जिपुत्र भिक्षु वैशाली के किसी वन खण्ड में विहार करता था ।

उस समय, वैशाली में सारी रात की जगोनी (एक पर्व) हो रही थी ।

तब, वह भिक्षु वैशाली में बाजे गाने के शब्द को सुनकर पछताते हुये उस समय यह गाथा बोला—

हम लोग अपने भङ्ग एकान्त जगल में पड़े हैं,

वन में कटे हुये लकड़ी के कुन्दे की तरह,

आज जैसी रात को भला,

हम लोगों को छोड़ दूसरा कौन जभागा होगा ॥

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता भिक्षु से गाथा में बोला—

आप लोग अपने भङ्ग एकान्त जगल में पड़े हैं,

वन में कटे हुये लकड़ी के कुन्दे की तरह,

आप को देख बहुतों को ईर्ष्या होती है,

स्वर्ग में जानेवालों को देख जैसे नरक में पड़े हुओं को ॥

तब, देवता के ऐसा कहने पर वह भिक्षु सँभलकर होश में आ गया ।

§ १०. सज्झाय सुत्त (९ १०)

स्वाध्याय

एक समय कोई भिक्षु कोशल के एक वन-खण्ड में विहार करता था ।

उस समय वह भिक्षु—जो पहले स्वाध्याय करने में वढ़ा धसा रहता था—उत्सुकता-रहित हो चुपचाप अलग रहा करता था ।

तब, उस वन में रहनेवाला देवता उस भिक्षु के धर्म-पठन को न सुन जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया, और गाथा में बोला—

भिक्षु ! क्यों आप उन धर्मपदों को,

भिक्षुओं से मिलकर नहीं पढ़ा करते हैं ?

धर्म को पढ़कर मन में सन्तोष होता है,

बाहरी सत्कार में भी उसकी बर्षी बढ़ाई होती है ॥

[भिक्षु—]

पहले धर्मपदों को पढ़ने की ओर मन बढ़ता था,

जब तक वैराग्य नहीं हुआ,

जब पूरा वैराग्य चला आया,

तो सन्त लोग देखे सुने आदि पदार्थों को,

जानकर त्याग कर देना कहते हैं ॥

§ ११. अयोनिस् सुत्त (९ ११)

उचित-विचार करना

एक समय कोई भिक्षु कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करता था ।

उस समय, दिन के विहार के लिये गये उस भिक्षु के मन में पाप-विचार उठने लगे, जैसे—
काम-विचार, व्यापाद-विचार, विहिंसा-विचार ।

तब उस वन-गण्ड में रहनेवाला देवता उस मिथु पर अनुकम्पा कर उसकी छुमेष्ण से, उस को होश में ले आने के लिये वहाँ वह मिथु वा वहाँ गया। आकर मिथु से गाथाओं में बोला—

बड़ीक मनम करने से बाप बुरे बिचारों में पड़े हैं
 इन बुरे बिचारों की छाव उचित बिचार मन में कावें।
 बुद्ध धर्म संघ में अज्ञा रहा श्रीक का पावन करते हुए
 बड़े धानम् और प्रीतिमुक्त का अक्षय प्राप्त करोगे
 उस भावन् को या बुद्धों का अम्त कर दोगे ॥

देवता के ऐसा करने पर वह मिथु होश में आकर सँभल गया।

§ १२ मज्झिमिक सुत्त (९ १०)

अंगल में मंगल

एक समय कोई मिथु कोशल के किसी वन-गण्ड में बिहार करता था।

तब उस वन में बाघ करनेवाला देवता वहाँ वह मिथु वा वहाँ आया। आकर मिथु से यह गाथा बोला—

इस बीच बुधहरिसे मैं जब पक्षी घोंसके में छिप गये हैं
 सारा अंगल झोंब-झोंब कर रहा है। सो मुझे डर सा लगता है ॥

[मिथु—]

इस बाघ बुधहरिसे मैं जब पक्षियाँ घोंसके में छिप गये हैं
 सारा अंगल झोंब झोंब कर रहा है। सो मुझे पक्षी प्रीति होती है ॥

§ १३ पाकविन्द्रिय सुत्त (९ ११)

दुराचार के दुःख

एक समय कुछ मिथु कोशल के किसी वन-गण्ड में बिहार करते थे। वे बड़े उद्धत उदग्ध परण बड़बाड़ी पुरी बातें करनेवाले मन्व असम्बन्ध अममाहित विभ्रान्तचित्त धीर दुराचारी थे।

तब उन्म वन में काम करनेवाला देवता उन मिथुओं पर अनुकम्पा कर उनकी छुमेष्ण से उन्म होश में ले आने के लिये वहाँ वे मिथु से वहाँ आया। आकर उन मिथुओं से गाथा में बोला—

[देवी १. ३. § १.]

§ १४ पटुमपुष्प सुत्त (९ १४)

दिना त्रिच पुण्य मूषना भी खारी है

एक समय कोई मिथु कोशल के किसी वन-गण्ड में बिहार करता था।

उस समय वह मिथु मिथारण से नार भोजन कर लेने के बाद पुरस्त्रिणी में पैदल एक वन का मूँष रहा था।

तब उन्म वन में रहनेवाला देवता [दूरवत्] मिथु से गाथा में बोला—

ओ इत खरिब पुण की खारी मे मूँष रहे हो

मे एक अचार की खोरी ही है। मारिब ! अन्व गन्ध कर है ॥

दसवाँ परिच्छेद

१० यक्ष-सयुक्त

§ १ इन्द्रक सूच (१० १)

वैवाइया

एक समय भगवान् राजसूह में इन्द्रकूट पर्वत पर इन्द्रक बस के मन्त्र में विहार करते थे ।
तब इन्द्रक पक्ष बहाँ भगवान् से बहाँ आया । आकर, भगवान् से गाथा में बोला—

रूप शीघ्र नहीं है ऐसा हुए कहते हैं
तो यह शरीर कैसे पाया है ?
यह अल्पिपिच बहाँ से आता है ?
यह शर्मांगि में कैसे पक्ष आता है ?

[भगवान्—]

पहले कफल होता है कफल स भगवुर होता है
भगवुर से वेसी पैदा होता है वेसी फिर बस हो जाता है
मन से कृन्दर केस कोम शीर तब पैदा हो धाते हैं
को कुछ बस पाल या मोहन को माता जाती है
इसी से उच्छका पोष्य होता है—माता की शीप में पक्ष हुए मनुष्य का प

§ २ सक सूच (१० २)

उपदेश वैसा दग्धम नहीं

एक समय भगवान् राजसूह में राजसूह पर्वत पर विहार करते थे ।

तब दाम्ब नाम का पक्ष बहाँ भगवान् से बहाँ आया । आकर भगवान् से गाथा में बोला—
जिहवी शमी गोंडें कर गई हैं स्पृशिताह् शीर विमुक्त हुए,
आप अमल को यह अण्ड नहीं कि इतरी को उपदेश देते फिरें प

[भगवान्—]

सक ! किसी तरह भी किसी का संवास हो जाता है
तो ज्ञानी पुरुष के मन में उसके प्रति अनुकम्पा हो जाती है
मन्त्र मन से जो दूसरे को उपदेश देता है
उपमन वह अण्डन में बहीं पक्षता अपनी अनुकम्पा अपने में जो पैदा होती है ॥

§ ३ सुचिलोम सूच (१० ३)

सुचिलोम यक्ष के मन्त्र

पक्ष समय भगवान् गाथा में सुचिलोम यक्ष के मन्त्र में विहार करते थे ।
उप समय दर शीर सुचिलोम नाम के दो बस भगवान् के पास ही से गुजर रहे थे ।

तब, खर यक्ष सूचिलोम यक्ष से बोला—भरे ! यह भ्रमण है !

भ्रमण नहीं, नकली भ्रमण है । तो, जानना चाहिये कि यह सचमुच में भ्रमण है या ढोंगी है ।

तब, सूचिलोम यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर, भगवान् से अपने शरीर को ठकरा देना चाहा ।

भगवान् ने अपने शरीर को खींच लिया ।

तब, सूचिलोम यक्ष भगवान् से बोला—भ्रमण ! मुझसे डर गये क्या ?

आबुस ! तुमसे मैं डरता नहीं, किन्तु तुम्हारा स्पर्श अच्छा नहीं ।

भ्रमण ! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा । यदि उनका उत्तर तुम नहीं दे सके तो तुम्हें बदहवाश कर दूँगा, तुम्हारी छाती को चीर दूँगा, या पैर पकड़कर गङ्गा के पार फेंक दूँगा ।

आबुस ! मैं सारे लोक में किसी को ऐसा नहीं देखता हूँ जो मुझे बत्रहवाश कर दे, मेरी छाती को चीर दे, या पैर पकड़कर मुझे गङ्गा के पार फेंक दे । किन्तु तौ भी, जो चाहे प्रश्न पूछ सकते हो ।

[यक्ष—]

रग और द्वेष कैसे पैदा होते हैं ?

उदासी, मन का लगना और भय से रोंगटे खड़ा हो जाना ।

इसका क्या कारण है ?

मन के वितर्क वहाँ से उठकर खींच ले जाते,

जैसे कौये को पकड़कर लड़के लोग ?

[भगवान्—]

रग और द्वेष यहाँ से पैदा होते हैं,

उदासी, मन का लगना का कारण यही है,

मन के वितर्क यहीं से उठकर खींच ले जाते हैं,

जैसे कौये को पकड़कर लड़के लोग ॥

स्नेह में पड़कर अपने में पैदा होनेवाले,

जैसे वरगड की शाखायें,

कामों में पसरकर फैली,

जगल में मालुवा लता के समान ॥

जो उसके उत्पत्ति-स्थान को जान लेते हैं,

वे उसका दमन करते हैं, है यक्ष ! सुनो,

वे इस दुस्तर धारा को पार कर जाते हैं,

जिमें पहले नहीं तरा था उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥

§ ४. मणिभद्र सुत्त (१०. ४)

स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है

एक समय भगवान् भगध में मणिमालक जैल्य पर मणिभद्र यक्ष के भवन में विहार करते थे ।

तब, मणिभद्र यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर, भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है, स्मृतिमान् को सुख होता है,

वही श्रेष्ठ है जो स्मृतिमान् है, और, वही वैर से दृष्ट जाता है ॥

[मगधान्—]

स्वतिमान् का सदा कम्पाण होता है स्वतिमान् को मुक होता है
 वही भेद है जो स्वतिमान् है वह बैर स विष्णुछ छूट नहीं जाता ॥
 जिसका मन दिन-रात अहिमा में रूपा रहता है
 सभी जीवों के प्रति जो सदा मीठी-भावना करता रहता है
 उस किसी के साथ बैर नहीं रह जाता ॥

§ ५ सानु सुष (१० ५)

उपोसथ करनेवाले को यज्ञ नहीं पीड़ित करते

एक समय मगधान् ध्यायस्ती में अनाद्यपिण्डक के अंतर्गत कारण में विहार करत थे ।
 उस समय किसी उपासिका का स्नानु नामक पुत्र यज्ञ से एकदू किरा गया था ।
 तब वह उपासिका रोती हुई उस समक्ष यह गाथा बोली—

मैंने अर्हों की पूजा की मैंने अर्हों की बात सुनी
 वह मैं आज देखती हूँ—यज्ञ छोड़ स्नानु पर सवार है ॥
 षण्मुखी पञ्चदशी पक्ष की अष्टमी
 और प्रातिहार्य पक्ष को अर्थात् मत पाक्यी हुई
 उपोसथ मत रलती हुई अर्हों की बात सुननेवाली
 वह मैं आज देखती हूँ स्नानु पर यज्ञ सवार है ॥

[यज्ञ—]

षण्मुखी पञ्चदशी पक्ष की अष्टमी
 और प्रातिहार्य पक्ष को अर्थात् मत पाक्ये
 उपोसथ मत रलती, तथा महाचर्य पाक्येवाक्ये क साथ
 यज्ञ छोड़-छूट नहीं करते
 अर्हन् लोभा यही कहते हैं ॥
 प्रयुक्त स्नानु को यज्ञों की हन बात का वह हो
 पाप-कर्म मत करना प्रगट या छिपकर
 यदि पाप कर्म करोगे या करते हो
 तो तुम्हें दुःख स बनी मुक्ति नहीं हो सक्ती
 चाहे किना भी क्षत्रो का पुत्रो-करीरो ॥

[स्नानु—]

मैं ! पुत्र क मर जाने स मातायें रोती हैं
 अथवा यदि जागे पुत्र का नहीं देख सकती हों
 मैं ! मुझे जीने देखनी हुई थी
 यथाऽह मरे त्रियै री वही हा ?

[माता—]

पुत्र क मर जाने में मातायें रोती हैं
 अथवा यदि जीने पुत्र का नहीं देख सकती हों
 और उगडे त्रिय भी हैं जीव कर और आता है

पुत्र, उमके लिये भी रोती है,
जो मरकर फिर भी जी उठता है,
हे तान ! तुम एक विपत्ति ये निकलकर दूसरी में पड़ना चाहते हो,
एक नरक में निकल कर दूसरे में गिरना चाहते हो,
भागो पड़ो, मुझारा कृपाण हो,
किये हम कष्ट हैं ?
जलते हुए से कुशलपूर्वक निकले हुये को,
यदा तुम फिर भी जला देना चाहते हो ?

§ ६. प्रियङ्कर सुक्त (१० ६)

पिशाच-योनि से मुक्ति के उपाय

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् अनुरुद्ध रात के भिनसारे उठकर धर्मपत्रों को पढ़ रहे थे ।
तब, प्रियङ्कर माता यक्षिणी अपने पुत्र को यों ठोक रही थी—

मत शोर मचावो, हे प्रियङ्कर !
भिक्षु धर्मपत्रों को पढ़ रहा है,
यदि हम धर्मपत्रों को जानें
ओर आचरण करें तो हमारा हित होगा,
जीवों के प्रति भयम रखें,
जान-वृद्धकर शूद्र मत धोएँ,
और इस पिशाच-योनि से मुक्त हो जावें ॥

§ ७. पुनर्वसु सुक्त (१० ७)

धर्म सबसे प्रिय

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।
उस समय भगवान् भिक्षुओं को निर्वाण सम्झना धर्मोपदेश कर रहे थे । भिक्षु भी कान
दिये सुन रहे थे ।

तब, पुनर्वसु-माता यक्षिणी अपने पुत्र को यों ठोक रही थी—

उत्तरिके ! चुप रहो, पुनर्वसु ! चुप रहो,
कि मैं श्रेष्ठ गुरु भगवान् बुद्ध के धर्म को सुन सकूँ ॥
भगवान् सभी रातों से झूठनेवाले निर्वाण को कह रहे हैं,
इस धर्म में मेरी श्रद्धा बड़ी बढ़ रही है ॥
सगार में अपना पुत्र प्यारा होता है, अपना पति प्यारा होता है,
मुझे इस धर्म की खोज उसमे भी बढ़कर प्यारी है ॥
कोई पुत्र, पति या प्रिय दुःखों से मुक्त नहीं कर सकता,
जैसे धर्म-श्रवण जीवों को दुःखों से मुक्त कर देता है ॥
दुःख से भरे सगर में, जरा और मरण से लगे,

बरा बार मरण से मुक्ति के छिपे किस धर्म का उदय हुआ है
उस धर्म को सुनना चाहता हूँ : पुनर्वसु ! चुप रहो ॥

[पुनर्वसु—]

मैं ! मैं कुछ न बोखूँगा इतरा भी चुप है
तुम धर्म भव्य करो धर्म का सुवन्द्य मुक्त है
सहस्रों को जान है मैं ! हम दुःख को हटा देंगे ॥
अन्धकार में पड़े वैश्या और मनुष्यों में सुरक्ष क समान,
परमेश्वर भगवान् बुद्ध खानी धर्मोपदेश करते हैं ॥

[माता—]

मेरी काँध सँ पैदा हुये तुम पण्डित पुत्र बन्ध्य हो
मेरा पुत्र बुद्ध के सुख धर्म पर भद्रा रखता है ॥
पुनर्वसु ! सुधी रहो, आज मैं ऊपर उठ गई,
आर्य-सत्ता का दर्शन हो गया
उत्तरे ! तुम भी मेरी बात सुनो ॥

§ ८ सुदृष्ट सुष्ठ (१० ८)

अनाथपिण्डिक द्वारा बुद्ध का प्रथम दर्शन

एक समय भगवान् राजगृह के शीतवन में विहार करते थे ।

उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति किसी काम से राजगृह में जाया हुआ था ।

अनाथपिण्डिक गृहपति ने सुना कि संसार में बुद्ध उत्पन्न हुये हैं । उसी समय वह भगवान् के दर्शन के किये कल्पान्वित हो गया ।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति के मन में पैदा हुआ—आज बचकर भगवान् को देखने का अल्पमय्य नहीं है । कष्ट उचित समय पर उनके दर्शन को खर्चूँगा । बुद्ध को बाद करते-करते सो गया । सुबह हो गया समस्त रात्र में हीन बार उठ गया ।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ शिष्यविक्र-हार (स्मरान का फाटक) था वहाँ गया । भ्रमणियों के द्वार छोड़ दिया ।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति के बगल में निकलने पर प्रकाश हुए गया और अँधेरा छूट गया । भय से वह स्तब्धित हो गया उसके गोंदो लड़े हो गये । वहाँ से फिर लौट जाने की इच्छा होने लगी ।

तब इतिवक्त बस अल्पमय्य रूप से ही शब्द सुनाने लगा ।

सी बोझे श्री हाथी सी बाणोंकाका रथ

मोती-साजिरव के बुद्धरूप पहले लाल कल्पार्थे,

ये सभी तुम्हारे हृदय एक वेग के साकड़वें हिस्से के भी बराबर नहीं हैं ॥

गृहपति ! जागे बढ़ो गृहपति ! जागे बढ़ो

तुम्हारा भागो बढ़ना ही अल्पम है पीछे हटना नहीं ॥

तब अनाथपिण्डिक गृहपति के सामने से अल्पमय्य हुए गया और प्रकाश फैल गया । तारा मय्य शास्त्र हो गया ।

दूसरी बार भी

तीसरी शर भी अनाथपिण्डिक वे. सामने से प्रकाश हट गया और अन्धकार छा गया। भय में यह स्तम्भित हो गया, उसके रंगगटे गूडे, हो गये। वहाँ से फिर लौट जाने की इच्छा होने लगी। तीसरी शर भी शीघ्रक थक्ष अधःपक्ष रूप में ही शब्द सुनाने लगा।

[पूर्ववत्]

सुहारा आगे बढ़ना ही अच्छा है, पीछे हटना नहीं ॥

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति के सामने स्व अन्धकार हट गया और प्रकाश फैल गया। सारा भय शान्त हो गया।

तब, अनाथपिण्डिक क्षत्रियन में जहाँ भगवान् थे वहाँ गया।

उस समय भगवान् शत के भिनसारें उठकर खुली जगह में टहल रहे थे।

भगवान् ने अनाथपिण्डिक गृहपति को दूर ही से आते देखा। देखकर, टहलने से रुक गये और थिठे सामन पर बैठ गये। बैठकर, भगवान् ने अनाथपिण्डिक गृहपति को यह कहा—सुदत्त ! यहाँ आओ।

अनाथपिण्डिक ने यह देखा कि भगवान् सुके नाम लेकर पुकार रहे हैं, खड़े उनके चरणों पर गिर यह कहा—भन्ते ! भगवान् ने तो सुग्यपूर्वक साया ?

[भगवान्—]

मत्रा ही सुख में मोता है, जो निपाप और विमुक्त है,
जो कामों में लिप्त नहीं होता, उपाधिरहित हो जो शान्त हो गया है,
सभी आव्यक्तियों को काट, हृदय के फलेश को ध्या,
शान्त हो गया सुख में मोता है, चित्त की शान्ति पाकर ॥

§ ९. सुक्का सुक्त (१० ९)

शुक्रा के उपदेश की प्रशंसा

एक समय भगवान् राजगृह के वेल्दुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते थे।

उस समय शुक्रा भिक्षुणी यहाँ भारी खभा के बीच धर्मापदेश कर रही थीं।

तब, एक थक्ष शुक्रा भिक्षुणी के धर्मोपदेश में अत्यन्त स्तुष्ट हो मद्रक से मद्रक और चौराहा में चौराहा घूम-घूमकर यह गाथा बोल रहा था।

राजगृह के लोगो ! क्या कर रहे हो,

दारु पीकर मस्त बने जैसे ?

शुक्रा भिक्षुणी के उपदेश नहीं सुनते,

जो अमृत-पद को बरपान रही है,

उस अप्रतिबन्धीय, विना सेचे ओज में भरे,

(अमृत को) शानी लोग पीते हैं,

राही जैसे मेघ के जल को ॥

§ १०. सुक्का सुक्त (१० १०)

शुक्रा की भोजन-दान की प्रशंसा

एक समय भगवान् राजगृह के वेल्दुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते थे।

उस समय कोई उपासक शुक्रा भिक्षुणी की भोजन दे रहा था।

तब झुका मिथुणी पर अल्पमत भद्रा रगनेवाला एक वर सड़क से रड़क भार चीराहा से
चीराहा धूम धूम कर यह गाथा वाक रहा था ।

बहुत भारी पुण्य कमाया
इस प्रशावान् उपासक मे,
ओ सुख को मोखन दिया
उस का सारी मन्थियों से विमुक्त हो गई है ॥

§ ११ चीरा सुत्त (१० ११)

चीरा को चीयन-दान की प्रशंसा

बेसुख कर्मन्त्रनिवाय में विहार करत थे ।

उस समय कोई उपासक कारा मिथुणी का चीर दे रहा था । तब चीरा मिथुणी पर अल्पमत
भद्रा रगनेवाला एक वर सड़क से सड़क भार चीराहा से चाराहा धूम-धूम कर यह गाथा वाक रहा था ।

बहुत भारी पुण्य कमाया
इस प्रशावान् उपासक न
ओ चीरा को चीर दिया
उस का सारी मन्थियां से विमुक्त हो गई है ॥

§ १२ आलोक सुत्त (१० १२)

आलोक-धर्म

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् आलोक्यी में आलोक्यक वरस क भजन में विहार करते थे ।

तब आलोक्यक वरस भगवान् से बोका—धर्मण ! निकक था ।

“आहुस ! बहुत अच्छा” कह भगवान् तिरस गये ।

धर्मण ! भीतर चले जाओ !

“आहुस ! बहुत अच्छा” कह भगवान् भीतर चल जाये ।

दूसरी बार भी ।

तीसरी बार भी ।

“आहुस ! बहुत अच्छा” कह भगवान् भीतर चले जाये ।

बीथी बार भी आलोक्यक वरस बोका—धर्मण ! निकक था ।

आहुस ! मैं नहीं निककता । तुम्हें जो करवा दे करी ।

धर्मण ! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा । यदि उत्तर नहीं दे सके तो तुम्हें बर्हवास कर दूँगा करती चीर
दूँगा वा पैर पकड़ कर शङ्का के पार फेंक दूँगा ।

आहुस ! सारे कोक मैं मैं किसी को नहीं देखता जो तुझे बर्हवास कर दे, मेरी करती चीर है,
या पैर पकड़कर मुझे शङ्का के पार फेंक दे । किन्तु, तुम्हें जो पूछना है सब मैं पूछ सकते हो ।

[पद्य—]

पुण्य का सर्वजोड सब क्या है ?

क्या चटोरा हुआ सुख देता है ?

तमों में सबसे स्वादिष्ट क्या है ?

कैसा भीता मोह कहा जाता है ?

[भगवान्—]

श्रद्धा पुरूप का सर्वश्रेष्ठ धन है,
 यद्योग हुआ धर्म सुगुं देता है,
 सत्य रसों में मगने म्यादिष्ट है,
 प्रजा-पूर्वक जीना श्रेष्ठ कहा जाता है ॥

[यक्ष—]

घाड़ को कैसे पार कर जाता है ?
 समुद्र को कैसे तर जाता है ?
 कैसे दुःखों का अन्त कर देता है ?
 कैसे परिशुद्ध हो जाता है ?

[भगवान्—]

श्रद्धा से घाड़ को पार कर जाता है,
 अप्रमाद से समुद्र को तर जाता है,
 वीर्य से दुःख का अन्त कर देता है,
 प्रजा से परिशुद्ध हो जाता है ॥

[यक्ष—]

कैसे प्रजा का लाभ करता है ?
 धन को कैसे कमा लेता है ?
 कैसे कीर्ति प्राप्त करता है ?
 मित्रों को कैसे अपना लेता है ?
 इम लोक से परलोक जाकर,
 कैसे शोक नहीं करता ?

[भगवान्—]

निर्वाण की प्राप्ति के लिये अहंत् और धर्म पर श्रद्धा रख,
 अप्रमत्त ओर विचक्षण पुरूप उनकी शुश्रूषा कर प्रजा लाभ करता है ।
 अनुकूल काम करनेवाला, परिश्रमी, उत्साही अब कमाता है,
 सत्य से कीर्ति प्राप्त करता है, ठेकर मित्रों को अपना लेता है,
 ऐसे ही इम लोक से परलोक जाकर शोक नहीं करता ॥
 जिन श्रद्धालु गृहस्थ ने ये चारों धर्म होते हैं,
 सत्य, दम, श्रुति और त्याग वही परलोक जाकर शोक नहीं करता ॥
 हाँ, तुम जाकर दूसरे श्रमण और ब्राह्मणों को भी पूछो,
 कि क्या सत्य, दम, त्याग और क्षान्ति से बढ़कर कुछ और भी है ?

[यक्ष—]

अब भला, दूसरे श्रमण ब्राह्मणों को क्यों पूछें !
 आज हमने जान लिया, कि पारलौकिक परमार्थ क्या है,
 मेरे कल्याण के लिये ही बुद्ध आलसी में पधारें,
 आज हमने जान लिया कि किसको देने का महाफल होता है ॥
 सो मैं गाँव से गाँव, और शहर से शहर विचरूंगा,
 बुद्ध और उनके धर्म के महत्त्व को नमस्कार करते ॥

इन्द्रक वर्ग समाप्त
 यक्ष सयुक्त समाप्त

ग्यारहवाँ परिच्छेद

११ शक्र-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम सर्ग

देवासुर-संग्राम परिभ्रम की प्रशंसा

§ १ सुवीर सुत (११ १ १)

मया मिते सुता ।

एक समय भगवाद् ब्राह्मणी में असाधपिबिहक के जेतवम आराम में विहार करते थे ।

वहाँ भगवाद् ने मिथुओं को आमन्त्रित किया—हे मिथुओ !

‘सदस्त ! कइकर मिथुओं ने भगवान को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—मिथुओ ! पूर्वकाल में असुरों ने तुम्हें पर बड़ाई की । तब वैभेन्द्र शाक ने सुवीर देवपुत्र को आमन्त्रित किया—हात ! वे असुर तुम्हें पर बड़ाई कर रहे हैं । तात सुवीर ! जाओ जलवा सामना करा । मिथुओ ! तब “सदस्त ! बहुत जयका” कह सुवीर देवपुत्र ने शाक को उत्तर दे गलकत किये रहा ।

मिथुओ ! तुमरी बार भी

मिथुओ ! हीमरी बार भी वैभेन्द्र शाक ने सुवीर देवपुत्र को । सुवीर देवपुत्र गलकत किय रहा ।

मिथुओ ! वैभेन्द्र शाक सुवीर देवपुत्र का गाथा में बोला—

जिना अनुष्ठान भर परिभ्रम किये जहाँ सुग की प्राप्ति हो जाती है
सुवीर ! तुम वहीं कहे जाओ सुम भी वहीं से बनो ॥

[सुवीर—]

आत्मनी कादिक जियन बुढ भी बही किया जाता
बैत सुमी द शाक ! मनी कामों में सफल हाव वा कर रहे ॥

[गम—]

जहाँ आत्मनी कादिक जियन सुग पाता है
सुवीर ! तुम वहीं कहे जाओ सुमे भी वहीं से बनो ॥

[सुवीर—]

हे वैभेन्द्र शाक ! कर्म उग किय सुग का वा
शोड भी परेशानी न एर उठेँ मया कर रहे ॥

[शक]—

यदि कर्म को छोड़कर कोउ कभी नहीं जीता है,
तो निर्वाण ही का मार्ग है, सुखी । तुम वहाँ जाओ,
मुझे भी वहाँ ले चलो ॥

भिक्षुओ ! यह देवेन्द्र शक आपन पुण्य के प्रताप में त्रयस्त्रिंशत् देवों पर ऐश्वर्य पा राज्य करते हुये उन्माह और वीर्य का प्रदर्शक है । भिक्षुओ ! तुम भी, ऐसे न्यायवात्त धर्म-विनय में प्रवृत्त हो उन्माह-पूर्वक बड़े न्याय में परिश्रम करो अज्ञान की प्राप्ति के लिये, नहीं पहुँचे स्थान पर पहुँचने के लिये, नहीं साक्षात्कार किये का साक्षात्कार करने के लिये, इसी में तुम्हारी प्रीति है ।

२. सुसीम सुत्त (११ १ २)

परिश्रम की प्रशंसा

श्रावस्ती जेतवन में ।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हैं भिक्षुओ !

“नन्द !” कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में अनुरा ने देवों पर चढ़ाई की । तब, देवेन्द्र शक ने सुसीम देवपुत्र को आमन्त्रित किया [शेष पूर्ववत्]

§ ३ ध्वजग सुत्त (११ १ ३)

देवासुर-संग्राम, त्रिरत्न का महात्म्य

श्रावस्ती जेतवन में ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में एक बार देवासुर-संग्राम छिड़ गया था ।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक ने त्रयस्त्रिंशत् लोक के देवों को आमन्त्रित किया—हे मारिपो ! यदि रण-क्षेत्र में आप लोगों को डर लगने लगे, आप म्भिमत हो जायें, आपके रोंगटे खड़े हों जायें, तो उस समय में ध्वजाग्र का अवलोकन करें । मेरे ध्वजाग्र का अवलोकन करते ही आपका मारा भय जाता रहेगा । यदि मेरे ध्वजाग्र को नहीं देख सकें तो देवराज प्रजापति के ध्वजाग्र का अवलोकन करें ।

यदि देवराज प्रजापति के ध्वजाग्र को नहीं देख सकें तो देवराज वरुण के ध्वजाग्र को ।

देवराज ईशान के ध्वजाग्र का अवलोकन करें । इनके ध्वजाग्र का अवलोकन करते ही आपका मारा भय जाता रहेगा ।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक के, देवराज प्रजापति, वरुण, या ईशान के ध्वजाग्र का अवलोकन करने से कितनों का भय जा भी सकता था और कितनों का नहीं भी जा सकता था ।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि देवेन्द्र शक अवीतराग, अवीतद्वेष, अवीतमोह, भीह, म्भिमत हो जानेवाला, घबड़ाकर भाग जानेवाला था ।

भिक्षुओ ! किन्तु, मैं तुम से कहता हूँ । भिक्षुओ ! यदि वन में गये, झुन्वागार में पड़े, या वृक्ष-मूल के नीचे दँडे तुम्हें भय लगे, तो उस समय मेरा स्मरण करो—इसै भगवान् अर्हत्, सम्मक्, सम्मुद्ध, विद्या और धरण से सम्पन्न, सुगति को प्राप्त, लोहविट्, अनुत्तर, पुराणों को उमन करने में सारथी के तुल्य, देवताओं और मनुष्यों में बुद्ध, भगवान् हैं ।

भिक्षुओ ! मेरा स्मरण करते ही तुम्हारा मारा भय चला जायगा ।

यदि मरा नहीं तो धर्म का स्मरण करो—मगवान् का धर्म स्वास्थात (=अच्छी तरह बर्णित) मोक्षिक (= देवत ही दपते फल देनेवाला) अक्रान्ति (=विना देरी के मरक होनेवाला) किसी की भी बाँध में पारा उतरनेवाला निर्बाण तक से जानेवाला भीर बिजों के द्वारा अपने भीतर ही भीतर जाया जाने पाय है ।

मिथुभो ! धर्म का स्मरण करने ही तुम्हारा मारा भय क्या जायगा ।

यदि धर्म का नहीं तो संघ का स्मरण करो—मगवान् का आबक-संघ सुमतिपन्न (=अच्छे मार्ग पर आकर) इ अत्रुप्रतिपन्न (=सीधे मार्ग पर आकर) है ज्ञान के मार्ग पर आकर ही उचित दश से मार्ग पर आकर इ जो यह पुण्या का चार जोड़ा भाड पुण्य है— । यही मगवान् का आबक-संघ विमन्त्रण करके के पाण्य है सम्भार करने के योग्य है शान सेन के योग्य है प्रणाम करने के योग्य है संसार का अनुत्तर पुण्य-क्षेत्र है ।

मिथुभो ! संघ का स्मरण करते ही तुम्हारा मारा भय क्या जायगा ।

मा क्या ? मिथुभो ! क्याकि तयागत अहंत् सम्पक् सम्बुद्ध बीतराग बीतद्वेष बीतमोह समय भीर रह है ।

मगवान् न यह कहा । यह क्यकर बुद्ध ने फिर भी कहा—

अरुण्य में या बुद्ध क नीचे हे मिथुभो ! वा भूम्यागार में सम्बुद्ध का स्मरण करो तुम्हारा भय नहीं रहन पायगा ॥

मोक्षोद्देश तरोत्तम बुद्ध का यदि स्मरण न करो

ता मोक्षदानक सुदेशित धर्म का स्मरण करो ॥

साक्षादावक सुदेशित धर्म का यदि स्मरण न करो

ता अनुत्तर पुण्य-क्षेत्र संघ का स्मरण करो ॥

मिथुभो ! इस प्रकार बुद्ध धर्म का संघ के स्मरण न

भय अभिमत हा जाता या रोमांच सभी क्या जायगा ॥

३४ वेपथिसि मुत्त (११ ? ५)

क्षमा भीर मीजम्भ की महिमा

धायम्भा जतपत्त में ।

मगवाण जाने—मिथुभो ! पूवकाण में देवामुर मंगम पिण गया था ।

तब भग्नेन्द्र योगविशि मे असुरों का आमन्त्रित किया—मारियो ! यदि इस देवामुर-मंगम में असुरों का जीत आर देवों की हार हा जाय तो देवन्द्र दास की हार देर भीर सौव बन्धनों से बाँधकर अगुरपुर में मेर बाण न आजा ।

मिथुभो ! देवन्द्र दास ने भी अत्यन्त मोह के देवों को आमन्त्रित किया—मारियो ! यदि इस देवामुर-मंगम में देवा भी जीत और असुरों की हार हा जाय तो भग्नेन्द्र योगविशि को सौव बन्धनों से बाँधकर गुपको लमा में मेर बाण न आजा ।

मिथुभो ! उग मंगम से देवों की जीत और असुरों की हार हुई ।

मिथुभो ! तब देवों ने भग्नेन्द्र योगविशि का नाम में पावर्षी बन्धन शक सुधमा लमा में देवन्द्र दास क पाण्य मे आजा ।

मिथुभो ! योगविशि भग्नेन्द्र दास में पावर्षी बन्धन से बंध रह देवन्द्र दास की सुधमा-लमा में देव ल र्षी करी न निवर्षने भग्नेन्द्र दास बन्धनों से पावर्षी देवा था ।

तब मिथुभो ! ज्ञानिय मंगदक मे देवन्द्र दास का पाण्य मे कहा—

१ देवन्द्र दास इन्द्रास्य भगवन्तः भवः अर्हो मा मे तथा कस्य को प्रक ही कस्य प्रोहा दने ११ पुण्य ८ ।

हे शक्र ! क्या आपको डर लगता है ?
 क्या अपने को कमजोर देखकर सह रहे है ?
 अपने सामने ही वेपचित्ति के,
 इन कड़े-कड़े शत्रुओं को सुनकर भी ?

[शक्र—]

न भय से और न कमजोरी से, मैं वेपचित्ति की बातें सह रहा हूँ,
 मेरे जैसा कोई विज्ञ ऐसे मूर्ख से क्या मुँह लगाते जाय !

[मातलि—]

मूर्ख और भी धड़ जाते हैं, यदि उन्हें क्या देनेवाला कोई नहीं होता है,
 इसलिये, अच्छी तरह दण्ड दे, धीरे मूर्ख को रोक दे ॥

[शक्र—]

मूर्ख को रोकने का मैं यही सबसे अच्छा उपाय समझता हूँ,
 जो दूसरे को गुस्ताया जान, स्मृतिमान् रह शान्त रहे ॥

[मातलि—]

हे ध्यासव ! आपका यह सह लेना मैं बुरा समझता हूँ,
 क्योंकि, मूर्ख इसमें समझने लगा जायगा,
 कि मेरे भय ही से यह सह रहे हैं,
 मूर्ख और भी चढ़ता जाता है,
 जैसे बैल भाग जानेवाले पर ॥

[शक्र—]

उसकी इच्छा, यदि वह यह समझे या नहीं,
 कि मैं उससे डरकर उसकी बातें सह रहा हूँ,
 अपने को उचित मार्ग पर रखना ही परमार्थ है,
 क्षमा कर देने से बढ़कर कोई दूसरा गुण नहीं ॥
 जो अपने बली होकर दुर्बल की बातें सहता है,
 उसी को सर्वोच्च शान्ति कहने है,
 दुर्बल तो सदा ही सहता रहता है ॥
 वह बली निर्बल कहा जाता है,
 जिसका बल मूर्खों का बल है,
 धर्मात्मा के बल की निन्दा करनेवाला कोई नहीं है ॥
 जो क्रुद्ध के प्रति क्रुद्ध होता है, वह उसकी बुराई है,
 क्रुद्ध के प्रति क्रोध न करनेवाला, दुर्जेय स्वप्नम जीत लेता है ॥
 दोषों का हित करता है, अपना भी धीरे पराये का भी,
 दूसरे को जो क्रुद्ध जान, साथवान हो शान्त रहता है ॥
 अपने और पराये दोषों का उल्लास करनेवाले उसे,
 धर्म न जाननेवाले पुरुष 'मूर्ख' समझते हैं ॥

भिक्षुभो ! वह वेवेन्द्र शक्र अपने पुण्य के प्रलाप से त्रयस्त्रिंशत् पर पेश्वर्य पा, राज्य करते हुये शान्ति और सौजन्य का प्रशंसक है । भिक्षुभो ! तुम भी ऐसे स्वस्थाल धर्म-विनय में प्रवृजित ही क्षमा वार सौजन्य का अभ्यास करते शोभो ।

६५ सुमासित जय मुक्त (११ १ ५)

सुभाषित

भायस्ता में ।

मिथुभो ! पूर्ण काक में एक बार द्वापुर-संग्राम छिड़ गया था ।

तब असुरेन्द्र धेपक्षिति ने देवेन्द्र शक्र को यह कहा—हे देवेन्द्र ! छुम बचन बोफनेबाके की ही जीत हो ।

हाँ धेपक्षिति ! छुम बचन बोफनेबाके की ही जीत हो ।

मिथुभो ! तब देवों और असुरों ने सम्पत्त्य चुने—यही सुभाषित या तुभाषित का फैसला करेंगे ।

मिथुभो ! तब असुरेन्द्र धेपक्षिति ने देवेन्द्र शक्र का यह कहा—हे देवेन्द्र ! कोई गाथा कहें ।

मिथुभो ! उसका ऐसा कहने पर देवेन्द्र शक्र ने असुरेन्द्र धेपक्षिति को यह कहा—हे धेपक्षिति !

आप ही बड़ देव हैं आप ही पहाड़ कोई गाथा कह ।

मिथुभो ! इस पर असुरेन्द्र धेपक्षिति यह गाथा बाल्य—

मूर्ख और भी बड़ जात है यदि उन्हें द्वा वेनेबास काई नहीं होता व
इमसिधे अच्छी तरह दृष्ट व धीर मूर्ख को रोक व ॥

मिथुभो ! असुरेन्द्र-धेपक्षिति के यह गाथा कहने पर असुरों ने उसका अनुमादन किया; किन्तु देव सब चुपचाप रहे ।

मिथुभो ! तब असुरेन्द्र धेपक्षिति ने देवेन्द्र शक्र का यह कहा—हे देवेन्द्र ! जब आप कोई गाथा कहें ।

मिथुभो ! उसका ऐसा कहने पर देवेन्द्र शक्र यह गाथा बोका—

मूर्ख को रोकने का मैं यही सबसे अच्छा उपाय समझता हूँ,
जो मूर्ख को गुस्साया जान सावधानी से साव्य रहे ॥

मिथुभो ! देवेन्द्र शक्र के यह गाथा कहने पर देवों ने उसका अनुमादन किया; किन्तु देव असुर चुपचाप रहे ।

मिथुभो ! तब देवेन्द्र शक्र ने असुरेन्द्र धेपक्षिति को यह कहा—धेपक्षिति ! आप कोई गाथा कहें ।

[धेपक्षिति—]

हे कामध ! आपका यह कला मैं पुरा समझता हूँ,
क्योंकि मूर्ख इमस समझन भ्या आपका
कि मरे भय ही व यह यह रहे हैं,
मूर्ख और भी बचता जाता है
ईम ईक भाग जानेबास पर ॥

मिथुभो ! असुरेन्द्र धेपक्षिति के यह गाथा कहने पर असुरों ने उसका अनुमादन किया; किन्तु देव चुप रहे ।

मिथुभो ! तब असुरेन्द्र धेपक्षिति ने देवेन्द्र शक्र का यह कहा—हे देवेन्द्र ! जब आप कोई गाथा कहें ।

मिथुभो ! उसका ऐसा कहने पर देवेन्द्र शक्र ने इन गाथाओं को कहा—

उसकी इच्छा, यदि वह यह समझे या नहीं,

[देखो पूर्व सूत्र]

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र के गाथायें कहने पर देवों ने उनका अनुमोदन किया, किन्तु, सब असुर चुपचाप रहे ।

भिक्षुओ ! तब, देवों और असुरों के मध्यस्थ ने यह फँगला दिया—

वैपचित्ति असुरेन्द्र ने जो गाथायें कही हैं, सो धर-पकड़ और मार की बातें हैं, झगड़ा और तकरार बढ़ानेवाली हैं ।

और, देवेन्द्र शक्र ने जो गाथायें कही हैं, सो धर-पकड़ और मार की बातें नहीं हैं, झगड़ा और तकरार बढ़ानेवाली नहीं हैं ।

देवेन्द्र शक्र की सुभाषित से जीत हुई ।

भिक्षुओ ! इस तरह, देवेन्द्र शक्र की सुभाषित से जीत हुई थी ।

§ ६. कुलाचक सुत्त (११ १. ६)

धर्म से शक्र की विजय

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! पूर्वकाल में एक बार देवासुर-संग्राम छिड़ गया था ।

भिक्षुओ ! उस संग्राम में असुरों की जीत और देवों की हार हुई थी ।

भिक्षुओ ! हार खाकर, देव उत्तर की ओर भाग चले और असुरों ने उनका पीछा किया ।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र मातलि-संग्रहक से गाथा में बोला—

हे मातलि ! सेमर वृक्ष में लगे बोंसले,

रथ के धुरे से कहीं चुच न जायें,

असुरों के हाथ पड़कर भले ही प्राण चले जायें,

किन्तु, इन पक्षियों के धोंसले चुच जाने न पावें ॥

भिक्षुओ ! “जैसी आज्ञा” कह मातलि ने शक्र को उत्तर दे हजार सींगे हुये घोड़ोंवाले रथ को लौटाया ।

भिक्षुओ ! तब, असुरों के मन में यह हुआ—अरे ! देवेन्द्र शक्र का रथ लौट रहा है । मालूम होता है कि देव असुरों से फिर भी युद्ध करना चाहते हैं । अतः दरकर वे असुरपुर में पैठ गये ।

भिक्षुओ ! इस तरह, देवेन्द्र शक्र की धर्म से जीत हुई थी ।

§ ७. न दुर्बिम सुत्त (११ १ ७)

धोखा देना महापाप है

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! पूर्वकाल, एकान्त में ध्यान करते समय देवेन्द्र शक्र के मन में यह चिन्तक उठा—जो मेरे शत्रु हैं उन्हें भी मुझे धोखा देना नहीं चाहिये ।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वैपचित्ति देवेन्द्र शक्र के चिन्तक को अपने चित्त से जान, जहाँ देवेन्द्र शक्र था वहाँ आया ।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र ने असुरेन्द्र वैपचित्ति को दूर ही से भाते देखा । देखकर, असुरेन्द्र वैपचित्ति से कहा—वैपचित्ति ! दहरो, तुम गिरफ्तार हो गये ।

मारिप ! मापके चित्त में जो भ्रमी था उसे मृत छोड़ें ।
 वेपथिचि ! प्राणा कमी देने का सौभाग्य था था ।

[विपथिचि—]

जो झूठ बोलने से पाप भगता है
 जो सन्तों की मित्रा करने से पाप भगता है,
 मित्र से ब्राह्म करने का जो पाप है
 अहृतज्ञता से जो पाप भगता है
 उससे बड़ी पाप कर्मो
 है सुजा के पति ! जो तुम्हें धोला है ॥

४ ८ विरोधन असुरिन्द सुच (११ १ ८)

सफ़ल होने तक परिभ्रम करता

भाबस्ती में ।

बस समय भगवान् विज के बिहार के लिए बड़े ध्यान कर रहे थे ।

तब देवेन्द्र शक भीर असुरेन्द्र विरोधन बहाँ भगवान् थे बहाँ जावे । बाकर एक-एक किबाइ
 से कमी लखे हो गये ।

तब असुरेन्द्र विरोधन भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

पुरुष तब तक परिभ्रम करता जाव
 जब तक उद्देश्य सफ़ल न हो जाय
 सफ़ल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है
 विरोधन ऐसा कहता है ॥

[शक्र—]

पुरुष तब तक परिभ्रम करता जाव
 जब तक उद्देश्य सफ़ल न हो जाय
 सफ़ल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है
 शक्ति से बड़कर हमारी कोई भीज नहीं है ॥

[विरोधन—]

समी भीष के कुछ न कुछ अर्थ हैं
 बहाँ-बहाँ जपनी शक्ति-मर,
 धरवावश्यक भोजन तो समी प्राप्ति का है
 सफ़ल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है
 विरोधन ऐसा कहता है ॥

[शक्र—]

समी भीष के कुछ न कुछ अर्थ हैं
 बहाँ-बहाँ जपनी शक्ति मर
 अत्यावश्यक भोजन तो समी प्राप्ति का है
 सफ़ल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है
 शक्ति से बड़कर हमारी कोई भीज नहीं है ॥

§ ९. आरञ्जकइसि सुत्त (११.१.९)

शील की सुगन्ध

श्रावस्ती में

भिक्षुओ ! पूर्वकाल में कुछ शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषि वन-प्रदेश में पर्ण-कुटी बनाकर रहते थे ।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र और असुरेन्द्र वेपचित्ति दोनों जहाँ वे शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषि थे वहाँ गये ।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति बड़े लम्बे जूते पहने, तलवार लटकाये, ऊपर छत्र डुलवाते, अग्र-द्वार से आश्रम में पैठ उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों का अनादर करते हुये पार हो गया ।

भिक्षुओ ! और, देवेन्द्र शक्र जूते उतार, तलवार दूसरों को दे, छत्र रखवा, द्वार से आश्रम में पैठ उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों के सम्मुख सम्मान-पूर्वक हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ।

भिक्षुओ ! तब, उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों ने देवेन्द्र शक्र को गाथा में कहा—

चिरकाल से व्रत पालने वाले ऋषियों की गन्ध,

शरीर से निकलकर हवा के साथ जाती है,

हे सदृस्त्रनेत्र ! यहाँ से हट जा,

हे देवराज ! ऋषियों की गन्ध बुरी होती है ॥

[शक्र—]

चिरकाल से व्रत पालनेवाले ऋषियों की गन्ध,

शरीर से निकलकर हवा के साथ भले ही जाय,

शिर पर धारण किये सुगन्धित फूलों की माला की तरह,

भन्ते ! इस गन्ध की हृमको चाह बनी रहती है,

देवों को यह गन्ध कभी अलख नहीं सकती है ॥

§ १०. समुद्रकइसि सुत्त (११ १ १०)

जैसी करनी वैसी भरनी

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! पूर्वकाल में कुछ शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषि समुद्र-तट पर पर्ण-कुटी बनाकर रहते थे ।

भिक्षुओ ! उस समय देवासुर-संग्राम उड़ा हुआ था ।

भिक्षुओ ! तब, उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों के मन में शक हुआ—देव धार्मिक हैं, असुर अधार्मिक हैं । असुरों से हम लोगों को भी भय हो सकता है । तो, हम लोग असुरेन्द्र सम्भर के पास चलकर अभयपर माँग ले ।

भिक्षुओ ! तब, वे ऋषि—जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को प्यार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे—समुद्र के तट उन पर्ण-कुटी में अन्तर्धान हो असुरेन्द्र सम्भर के सामने प्रकट हुये ।

भिक्षुओ ! तब, उन ऋषियों ने असुरेन्द्र सम्भर को गाथा में कहा—

ऋषि लोग सम्भर के पास आये हैं, अभय उक्षिणा का याचन करते हैं,

जैसी इच्छा वैसा दो, अभय या भय ॥

[सङ्घर—

ऋषियों को भ्रमण नहीं है त्रिम दुष्टों की सेवा शक किया करता है
अभव वर मूर्खोंके शपथ लोगों को मैं भय ही देता हूँ ॥

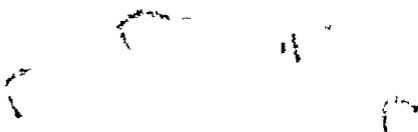
[ऋषि—

भ्रमण वर मूर्खोंके इसको भय ही दे रहे हो
तुम्हारे हम शिष्य को हम स्वीकार करते हैं तुम्हारा भय कभी न मिट ॥
जैसा बीज रोपता है वैसा ही फल पाता है
पुण्य करनेवालों का कल्याण भीर पाप करनेवालों का अकल्याण होता है
जैसा बीज बो रहे हा फल भी वैसा ही पाओगे ॥

मिथुनी ! तब वे शीकण्ठ भीर सुषोमिक ऋषि असुरेन्द्र सङ्घर को शाप दे—जैसे कीड़े
बकवास पुरुष —असुरेन्द्र सङ्घर के सम्मुख भक्तर्षाज हो समुद्र के तट पर पर्ण-कुटियों में प्रकट हुए ।
मिथुनी ! इन ऋषियों के शाप से असुरेन्द्र सङ्घर शठ में तीन बार शोक-शोककर उड़ता है ।

प्रथम वर्ग समाप्त

—



दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. प्रथम व्रत सूक्त (११ २ १)

शक्र के सात व्रत, सत्पुरुष

श्रावस्ती में ।

भिष्णुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने मनुष्य-जन्म में सात व्रतों का पालन किया करता था, जिनके पालन करने के कारण शक्र इस इन्द्र-पद पर आरूढ़ हुआ है ।

कौन से सात व्रत ?

(१) जीवन-पर्यन्त माता-पिता का पोषण करूँगा, (२) जीवन-पर्यन्त कुल के जेठों का सम्मान करूँगा, (३) जीवन-पर्यन्त मधुर भाषण करूँगा, (४) जीवन-पर्यन्त कभी किसी की चुगली नहीं करूँगा, (५) जीवन-पर्यन्त सकीर्णता और कजूसी से रहित हो गृहस्थ-वर्माका पालन करूँगा, त्याग-शील, खुले हाथोंवाला, वान-रत, दूमरों की माँों पूरी करनेवाला, और दाँट-चूटकर भोग करने वाला होऊँगा । (६) जीवन-पर्यन्त सत्यवादी रहूँगा, और (७) जीवन-पर्यन्त क्रोध नहीं करूँगा । यदि कभी क्रोध उत्पन्न हो गया तो उसे शीघ्र ही दबा दूँगा ।

भिष्णुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने मनुष्य-जन्म में इन्हीं सात व्रतों का पालन किया करता था, जिनके पालन करने के कारण वह इस इन्द्र-पद पर आरूढ़ हुआ है ।

माता-पिता का जो पोषण करता है, कुल के जेठों का जो आदर करता है, जो मधुर और नम्र भाषण करता है, जो चुगली नहीं खाता, जो कजूसी से रहित होता है, सत्यवक्ता, क्रोध को दबाता है, प्रयत्निश लोक के देव, वसी को सत्पुरुष कहते हैं ॥

§ २. दुतिय व्रत सूक्त (११ २.२)

इन्द्र के सात नाम और उसके व्रत

श्रावस्ती जेतवन में ।

वहाँ, भगवान् भिष्णुओं से बोले — भिष्णुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने पहले मनुष्य-जन्म में मघ नामक एक भ्राणवक था । इसी से उसका नाम मघवा पड़ा ।

भिष्णुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने पहले मनुष्य जन्म में पुर (म्शहर)-पुर में दान देता था । इसी से उसका नाम पुरिन्दद पड़ा ।

भिष्णुओ ! मत्कार-पूर्वक दान दिया करता था । इसी से उसका नाम शक्र पड़ा ।

भिष्णुओ ! आवास का दान दिया था । इसी से उसका नाम वासव पड़ा ।

भिष्णुओ ! देवेन्द्र शक्र महद्य वार्ता के मुहूर्त को एक बार ही मोच लेता है । इसी से उसका नाम सहस्राक्ष पड़ा ।

[सम्बर—]

ऋषियों को जन्म नहीं है बिन तुहों की सेवा शक किया करता है
भगवत्तर माँगनेवाले माय लोगों को मैं मय ही देता हूँ ॥

[ऋषि—]

भभङ्ग-वर माँगनेवाले हमको मय ही दे रहे हो
तुम्हारे हम दिये को हम स्वीकार करते हैं तुम्हारा मय कमी न मिटे ॥
जसा बीज रापता है बीसा ही फल पाता है
पुत्र्य करनेवाकों का कर्मबाण और पाप करनेवालों का अकर्मबाण होता है
जैसा बीज को रई हा फल भी जैसा ही पाभागे ॥

मिथुनो ! तब से शीतलवन्त और शुभोर्मिक ऋषि असुरेन्द्र सम्बर की श्राप दे—जसे कोई
बलवात् पुरुष —असुरेन्द्र सम्बर के सम्मुख अन्तर्धान हो समुद्र के तट पर पर्ण-कुटियों में प्रकट हुये ।

मिथुनो ! उन ऋषियों के श्राप से असुरेन्द्र सम्बर राग में तीन बार शोक शीतकर उठता है ।

प्रथम वर्ग समाप्त

भिक्षुओ ! त्रयस्त्रिंश लोक के देवों को समझाते हुए देवेन्द्र शक यह गाथाये बोला—
 बुद्ध में जिसकी श्रद्धा अचल और सुप्रतिष्ठित है,
 जिमके शील अच्छे हैं, पण्डित लोगों से प्रदांसित ॥
 सब में जिसे श्रद्धा है, जिमकी ममज्ञ सीधी है,
 वह दरिद्र नहीं कहा जा सकता, उमी का जीवन सार्थक है ॥
 इसलिए श्रद्धा-शील, प्रसाद और धर्मदर्शन में,
 पण्डित लग जावे, बुद्धों के उपदेश का स्मरण करते ॥

§ ५. रामणेत्यक सुत्त (११. २ ५)

रमणीय स्थान

श्रावस्ती जेतवन में ।

तथ, देवेन्द्र शक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो, देवेन्द्र शक भगवान् से बोला—भन्ते ! कौन जगह रमणीय है ?

[भगवान्—]

आराम-चैत्य वन-चैत्य सुनिमित्त पुष्करिणी,
 मनुष्य की रमणीयता के सोहर्षों भाग भी नहीं हैं ॥
 गाँव में या जगल में, थटि नीची जगह में या समतल पर,
 जहाँ अर्हत् विहार करते हैं वही रमणीय जगह है ॥

§ ६. यजमान सुत्त (११ २ ६)

सांघिक दान का महात्म्य

एक समय भगवान् राजगृह में शृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे ।

तथ, देवेन्द्र शक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो देवेन्द्र शक भगवान् से गाथा में बोला—

जो मनुष्य यज्ञ करते हैं,
 पुण्य की अपेक्षा रखने वाले,
 औपाधिक पुण्य करने वालों का,
 दिया हुआ कैसे महाफलप्रद होता है ?

[भगवान्—]

चार मार्ग-प्राप्त और चार फल-प्राप्त
 यही ऋतुनूत सब है, प्रज्ञा, शील और समाधि से युक्त ॥
 जो मनुष्य यज्ञ करते हैं,
 जो पुण्य की अपेक्षा रखने वाले हैं,

ॐ सोतापत्ति-मार्ग, सङ्खदागामी मार्ग, अनागामी-मार्ग, अर्हत्-मार्ग ।

। सोतापत्ति-फल, सङ्खदागामी फल, अनागामी फल, अर्हत्-फल ।

मिथुनो ! देवेश्वर शक को पहले हुआ नाम की मनुकम्पा गाथा थी । इसी से उसका नाम सुजम्पति पड़ा ।

मिथुनो ! देवेश्वर सऊ प्रयत्नित देवकोक का पेश्वर्य पा राग्य करता रहा । इसी से उसका नाम देवेश्वर पड़ा ।

[शीघ्र सात ब्रतों का वर्णन पूर्व-सूत्र के समान]

४ ३ त्रिविध व्रत सूत्र (११ २ ३)

इन्द्र के नाम भीम व्रत

देवा मीमे सुता ।

एक समय भगवान् यैत्राहरी में महाधन की कूटागारप्रशाका में विहार करते थे ।

तब महालि छिच्छमी बहाँ भगवान् से बहाँ जाया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ महालि छिच्छमी भगवान् से बोला—भन्ते ! भगवान् से देवेश्वर शक को देखा है ?

हाँ महालि ! मीमे देवेश्वर शक को देखा है ।

भन्ते ! जबतब वह कोई दूसरा शक का बैरा बनाकर जाया होगा । भन्ते ! देवेश्वर शक को कोई नहीं देख सकता है ।

महालि ! मैं शक को जानता हूँ, और उन धर्मों को भी जानता हूँ जिनके पावन करने से वह इन्द्र-पत्न्यवर भाकर हुआ है ।

[शक के भिन्न नामों का वर्णन ४ २ के समान, और सात ब्रतों का वर्णन ४ १ समान]

४ ४ दलित् सूत्र (११ २ ४)

पुत्र मरुत् परित्र सर्षी

एक समय भगवान् राजगृह के वेस्तुबल कथम्पनिवाप में विहार करते थे ।

बहाँ भगवान् से मिथुनों को आमन्त्रित किया "हे मिथुनो !

"मन्द ! कबकर मिथुनो न भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—मिथुनो ! पूर्वकाक में इसी राजगृह में एक नीच कुक का पुत्रिवा परित्र पुत्रन पास करता था । उसने पुत्र के अपवित्र धर्म-वितन में बड़ी बड़ा हो गई । उसने सीक विद्या त्याग और प्रशा का अम्पास किया । इसके ककम्प करीर छोड़ कर मर जाने के बाद वह अवसिन्वा देवकोक में उत्पन्न हो मुगति को प्राप्त हुआ । वह दूसरे देवा से बर्ष और धना में बड़ा रहता था ।

मिथुनो ! उस से प्रयत्नित के देव कृतते से विरादते से और उसकी छिह्नी उजाते थे । क्या आवर्ष है ! क्या अवस्तु है ! वह देवपुत्र अपने मनुष्य-जन्म में एक नीच कुक का पुत्रिवा परित्र पुत्रन था । वह करीर छोड़कर मर जाने के बाद अवसिन्वा देवकोक में उत्पन्न हो मुगति को प्राप्त हुआ । वह दूसरे देवों से बर्ष और धन में बड़ा बना रहता है ।

मिथुनो ! तब देवेश्वर सऊ से अवसिन्वा कोक के देवों को आमन्त्रित किया—मारियो ! जब इन देवपुत्र से मत कृतें । अपने मनुष्य जन्म में इस देवपुत्र को पुत्र के अपवित्र धर्म-वितन में बड़ी बड़ा हो गई थी । उसने सीक विद्या त्याग और प्रशा का अम्पास किया । इसी के ककम्प कर करीर छोड़कर मर जाने के बाद वह अवसिन्वा देवकोक में उत्पन्न हो मुगति को प्राप्त हुआ । वह दूसरे देवों से बर्ष और धन में बड़ा बना रहता है ।

[शक्र—]

मुझे प्रेषिय लोग नमस्कार करने है, और मसार के सभी राजे,
 भार, उतने बड़े प्रतापी, चारों महाराज भी ॥
 मैं उन दालमन्तों को जो चिरकाल में समहित है,
 जो ठीक में प्रवर्जित हो चुके हैं, नमस्कार करता हूँ,
 जो ब्रह्मचर्य-धन का पालन कर रहे हैं ॥
 जो पुण्यात्मा गृहस्थ हैं, दालवन्त उपासक लोग,
 धर्म से अपनी श्री का पोसने हैं, हे मातलि ! मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ ॥

[मातलि—]

लोक में वे बड़े महान् हैं, शक्र ! जिन्हें आप नमस्कार करते हैं,
 मैं भी उन्हें नमस्कार करूँगा, वासव ! आप जिन्हें नमस्कार करते हैं ।

मधवा पैया कह कर,
 देवराज सुजम्पति,
 सभी और नमस्कार कर,
 वह प्रमुख रथ पर सवार हुआ ॥

§ ९. दुतिय सकनमस्तना सुत्त (११ २. ९)

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को नमस्कार

श्रावस्ती जेतवन में ।

• [पूर्ववत्]

हे भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र वैजयन्त प्रायाद में उतरते हुए हाथ जोड़कर भगवान् को
 नमस्कार कर रहा था ।

भिक्षुओ ! तब, मातलि-संप्राहक देवेन्द्र शक्र में गथा में बोला—

जिय आपको हे वासव ! देव और मनुष्य नमस्कार करते हैं,
 भला, ऐसा वह कौन जीव है, हे शक्र ! जिसे आप नमस्कार करते हैं ?

[शक्र—]

वे अभी सम्यक् मन्त्रुद्ध, देवताओं के साथ हस्त लोक में,
 अमोम नामक जो बुद्ध है, मातलि ! उन्हीं को नमस्कार करता हूँ ॥
 जिनका राग, द्वेष, और अविद्या मिट चुकी है,
 जो क्षीणाश्रय अर्हत् हैं, हे मातलि ! उन्हीं को नमस्कार करता हूँ ॥
 जिनने रागद्वेष को दबा, अविद्या को हटा दिया है,
 जो अप्रमत्त शैक्ष्य हैं, सावधानी से अभ्यास कर रहे हैं,
 हे मातलि ! मैं उन्हीं को नमस्कार कर रहा हूँ ॥

[मातलि—]

लोक में वे बड़े महान् हैं, शक्र ! जिन्हें आप नमस्कार करते हैं,
 मैं भी उन्हें नमस्कार करूँगा, वासव ! आप जिन्हें नमस्कार करते हैं ॥

उन अध्याधिक पुण्य करने वालों की
संघ क क्षिप्त दिव गये क्षण का महाफल होता है ॥

§ ७ वन्दना सुच (११ २ ७)

सुद वन्दना का छंद

भावस्त्री जंतवन में

उस समय भगवान् दिन क बिहार क क्षिप्त समाधि लगावे बंदे ने ।

तब दैव्य शक्त और सृष्ट्यति महा बहो भगवान् पे बहो भाव । आकर, एक-एक किवाड़ से
ज्या लये हो गये ।

तब दैव्य शक्त भगवान् के सम्मुख यह गाथा बाला—

हे श्री विदितमंगल ! उठे

आपका भार उतर चुका है भाव पर काहे जल नहीं

हम काल में विचरण करें

आपका चित्त विस्तृत निर्मल है

जैसे पूर्णिमा की रात की चाँद ॥

दैव्य ! तुम्हें की वन्दना हम प्रकर नहीं की जाती है । दैव्य ! सुद की वन्दना प्य करनी
चाहिये ।

हे श्री विदितमंगल ! उठे

परम-सुद, जल-सुद ! कोर में विचरें

भगवान् धर्म का उपदेश करें

समझनेवाले ही मिलेंगे ॥

§ ८ पठम सन्कल्पनस्तना सुच (११ २ ८)

दीलयान् मिथु और गृहस्थों को समस्कार

भावस्त्री जवन में ।

भगवान् यह बात—मिथुओं ! एष्वक में दैव्य शक्त न मानसि-संग्राहक का धामनिष्ठ
किया । मत्र मानसि ! इतर मित्वाच ह्य पादों स ज्ञात मीर रथ को तैवार करो । बर्गिण की रीर करने
क जिने मित्रता काहना है ।

'महारथ ! र्मि आत्मा' यह मानसि संग्राहक ने दैव्य शक्त को बतार दे रथ को तैवार
कर गृहणा री—मारिण ! रथ तैवार है अथ भाव जो चाहें ।

मिथुओं ! तब दैव्य शक्त धैजयन्त प्रामात् स जतरत हूये हाथ जाकर सभी रिवाओं को
प्रताम् करने लगा ।

मिथुओं ! तब मानसि-संग्राहक दैव्य शक्त से गाथा में बाला—

आपका त्रैविच लोग समस्कार करत है श्रीर संगार के सभी शक्त

उतने बड़ प्रतापी चाँदें महाराज की

प्रता जना बड़ र्गिण शक्ति है

हे शक्त ! जिसे भाव समस्कार कर रह है ॥

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

शक्र-पञ्चक

§ १. इत्वा सुत्त (११. ३. १)

क्रोध को नष्ट करने में सुख

श्रावस्ती जेतवन में ।

तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ भगवान् ने रागों आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा ही गया ।

एक ओर खड़ा ही, देवेन्द्र शक्र भगवान् से गाथा में बोला—

क्या नष्ट कर सुख में मोता है, क्या नष्ट कर शोक नहीं करता ?

किस एक धर्म का बंध करना गौतम की म्चता है ?

[भगवान्—]

क्रोध को नष्ट कर सुख में म्चता है, क्रोध को नष्ट कर शोक नहीं करता,

हे वामन ! पहले मीठा लगने वाले विष के मूल क्रोध का,

बंध करना पण्डितों से प्रशंसित है, उन्मी को नष्ट कर शोक नहीं करता ॥

§ २. दुब्बणिय सुत्त (११. ३. २)

क्रोध न करने का गुण

श्रावस्ती जेतवन में ।

• भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में कोई यौना बद्रूप यक्ष देवेन्द्र शक्र के आसन पर बैठा । भिक्षुओ ! उसमें त्रयस्त्रिंश लोक के देव कूढ़ते थे, जिमकते थे, और उसकी खिल्ली उड़ाते थे—आश्चर्य है ! अद्भुत है ॥ कि यह याना बद्रूप यक्ष देवेन्द्र शक्र के आसन पर बैठा है ।

भिक्षुओ ! जैसे जैसे त्रयस्त्रिंश लोक के देव कूढ़ते गये, वैसे वैसे वह यक्ष अभिरूप=दर्शनीय=सुन्दर होता गया ।

भिक्षुओ ! तब, त्रयस्त्रिंश लोक के देव जहाँ देवेन्द्र शक्र था वहाँ आये, और यह बोले—

मारिप ! यह कोई दूसरा यौना बद्रूप यक्ष आप के आसन पर बैठा है । मारिप ! तो उससे त्रयस्त्रिंश लोक के देव कूढ़ते, जिमकते हैं, और उसकी खिल्ली उड़ाते हैं—आश्चर्य है ! अद्भुत है ॥ कि यह यौना बद्रूप यक्ष देवेन्द्र शक्र के आसन पर बैठा है । मारिप ! जैसे-जैसे त्रयस्त्रिंश लोक के देव कूढ़ते हैं, वैसे-वैसे वह यक्ष अभिरूप=दर्शनीय=सुन्दर होता जाता है ।

मारिप ! तो क्या यह कोई क्रोध-भक्ष यक्ष है ?

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ वह क्रोध भक्ष यक्ष था वहाँ गया । जाकर, उसने उपरनी को

मज्जा देसा कह कर
 देवराज सुअप्यति
 भगवान् को भयस्कर कर
 वह प्रमुख रथ पर सवार हुआ ॥

§ १० तृतीय सूक्तमम्मना सुक्त (११ २ १०)

मिथु-संघ की नगरकार

भायस्ती अंतवत्त में ।

भगवान् बोले— ।

मिथुको ! तब देवराज सत्क वीजयन्त प्रासाद में उतरते हुये हाथ जोड़कर मिथु-संघ को नमस्कार करता था ।

मिथुको ! तब गान्धि संग्राहक वृषभ सत्क से गाथा में बाका—

अहम् आपको यही लोग नमस्कार करत

गन्धे शरीर धारण करने वाले व युद्ध

कुल में जो हुये रहते हैं ।

मृत्यु कीर प्यास से जो परमान रहते हैं ॥

हं वासव ! उन बेघर बाकों में क्या गुण देखत है ?

नपिपों के व्यापार कहें नपकी बात में सुनूँगा ॥

[शक्त—]

हे मातङ्गि ! हस्तीकिये में इन बेघर बाकों की ईर्ष्या करता हूँ ।

बिना गाँव को वे छोड़त हैं बिना किसी अप्रत्या के कल देते हैं

कोठी में वे छुट बना नहीं करते न हॉपी में नीर न लौका में

दूसरों से सँवार किये घने को पाते हैं वे सुगन्ध इसी स गुबार करत हैं

अपकी बातों की सम्भना करने वाले वे नीर युव सम्त रहन वाले ॥

दुबों को अमुरों से विरोध है मातङ्गि ! मनुष्यों (जो भी विरोध है)

किन्तु, व विरोध करने बाकों में भी विरोध नहीं करतै

बिना छोड़ शान्त रहतै हैं कने बाक संसार में बिना कुज किये

हे मातङ्गि ! मैं उन्हीं को नमस्कार करता हूँ ॥

[लेख पूर्णम्]

द्वितीय वर्ग समाप्त

१ माता की काम्य में जो बल महीने पने रहते हैं—अङ्किका ।

२ पिह्यपति—क्या गुण देण कर देणा करते हैं ।

लिपा । तब, वह भिक्षु दूसरे भिक्षु के पास अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा माँगने गया । किन्तु, वह भिक्षु क्षमा नहीं करता था ।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् धं चहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—

भन्ते ! दो भिक्षुओं में कुछ अनशन* ।

भिक्षुओं । दो प्रकार के सुग्न होते हैं । (१) जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर नहीं देखता है, और (२) जो दूसरे को अपराध स्वीकार कर लेने पर क्षमा नहीं कर देता है । भिक्षुओं । यही दो प्रकार के सुग्न होते हैं । *

भिक्षुओं । दो प्रकार के पण्डित होते हैं । (१) जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर देख लेता है, (२) जो दूसरे को अपराध स्वीकार कर लेने पर क्षमा कर देता है । भिक्षुओं । यही दो प्रकार के पण्डित होते हैं ।

भिक्षुओं । पूर्वकाल में देवेन्द्र राज ने प्रयत्निक लोक के दो देवों का निपटारा करते हुए यह गाथा कहा था—

क्रोध तुम्हारे अपने वश में होवे,
नुमागरी मितार्थ में कोई बट्टा लगाने न पावे,
जो निन्दा करने के योग्य नहीं उसकी निन्दा मत करो,
आपम की चुगली मत खाओ,
क्रोध नीच पुरुष को,
परत के ऐसा चूर-चूर कर देता है ॥

§ ५. अक्रोधन सुत्त (११. ३ ५)

क्रोध का त्याग

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आश्रम में विहार करते थे ।

भगवान् बोले—भिक्षुओं । पूर्वकाल में देवेन्द्र राज ने सुघर्मा समा में दो प्रयत्निक देवों के झलक का निपटारा करते हुए यह गाथा कहा था—

तुम्हें क्रोध उबाने मत दे,
क्रोध करनेवाले पर क्रोध मत करो,
अक्रोध और अधिहिंसा,
पण्डित पुरुषों में सदा बसती है,
क्रोध नीच पुरुष को,
परत के ऐसा चूर-चूर कर देता है ॥

शक्र-पञ्चक समाप्त
सगाथा धर्म समाप्त ।

एक कण्ठे पर सौभाग्य इन्द्रिय आशु को दुःखी पर देक क्रोध मर्द पक्ष की ओर हाथ जोड़कर तीन बार अपना नाम सुनाया —

मारिष ! मैं देवेन्द्र शास्त्र हूँ ।

मिथुभो ! देवेन्द्र शास्त्र जैसे-जैसे अपना नाम सुनाता गया जैसे-जैसे वह पक्ष अधिकधिक बरूप भार बना जाता गया । बीना और बढ़कर ही वहाँ अन्तर्गत हो गया ।

मिथुभो ! तब देवेन्द्र शास्त्र अपने अपने पर बैठ वपदिग के देवों की शान्त करते हुए यह गाथा बोला—

मरा कित्त अक्षरी बचवा नहीं जाता है
 भँवर में पड़कर मैं बहक नहीं जाता हूँ ।
 मर आध किये बहुत असाया पीठ गया
 मुझमें भय आध रह नहीं गया ॥
 न श्राप करना भार न फ़ोर बचन कहना हूँ
 मार न अपने गुण को गाता फिरता हूँ
 मैं अपने का संयम मैं रखता हूँ
 अपना परमाध देखते हुए ॥

१३ माया सुप्त (११ ३ ३)

सम्बन्धी माया

धायली म ।

भगवान् बाल—मिथुभा ! तुमराक मैं एक बार असुरन्द्र यपदिगि शोग-अन्त बदा बीमा हो गया था ।

मिथुभा ! तब देवेन्द्र शास्त्र महीं असुरन्द्र यपदिगि या वहाँ उसकी ओर एकर लेख गया ।

मिथुभो ! असुरन्द्र यपदिगि में देवेन्द्र शास्त्र का दूर ही ने अगे देखा । देखकर देवेन्द्र शास्त्र न बाला—दे देवेन्द्र ! मरी इलाक करे ।

यपदिगि ! मुझे सम्बन्धी माया (=जाप) कहो ।

म रिष ! ता मैं असुरों न ममाद कर हूँ ।

मिथुभा ! तब असुरन्द्र यपदिगि असुरों न ममाद करने लगा—मारिषो ! क्या मैं देवेन्द्र शास्त्र की सम्बन्धी माया बना हूँ ?

महीं मारिष ! तब देवेन्द्र शास्त्र का सम्बन्धी माया मत बतावें ।

मिथुभा ! तब असुरन्द्र यपदिगि देवेन्द्र शास्त्र न गाथा मैं बोला—

हैं अपना पक्ष देवेन्द्र, मुझमति ।
 माया (=जाप) बरमे मे ओर तरक मिलता है
 गिहरी बने एक मरुधर क पया ॥

१४ अशय सुप्त (११ ३ ४)

अपराध की शमा

धायली म ।

हम बचक ही मिथुभो मैं कुछ अनवन हो गया था । उसमें एक मिथु ने अपना अपना मरुधर

दूसरा खण्ड

निदान वर्ग

दुसरा खण्ड

निदान वर्ग

पहला परिच्छेद

१२. अभिसमय-संयुक्त

पहला भाग

बुद्ध वर्ग

§ १. देसना सुत्त (१२. १ १)

प्रतीत्य समुत्पाद

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् धावस्ती में अनाथपिण्डक के जंतवत्त आराम में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

“भदन्त !” कह कर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य समुत्पाद का उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ, मैं कहता हूँ ।

“मन्ते ! ब्रह्म अच्चा” कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्यसमुत्पाद क्या है ? भिक्षुओ ! अधिष्ठा के होने से सस्कार होते हैं। संस्कारों के होने में विज्ञान होता है। विज्ञान के होने से नामरूप होते हैं। नामरूप के होने से पञ्चायतन होता है। पञ्चायतन के होने से स्पर्श होता है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। वेदना के होने से तृष्णा होती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है। उपादान के होने से भव होता है। भव के होने से जाति होती है। जाति के होने से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, धैचैनी और परेशानी होती है। इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है। भिक्षुओ ! इसी को प्रतीत्य समुत्पाद कहते हैं।

उस अधिष्ठा के बिल्कुल हट और रुक जाने से सस्कार होने नहीं पाते। सस्कारों के रुक जाने से विज्ञान होने नहीं पाता। विज्ञान के रुक जाने से नामरूप होने नहीं पाते। नामरूप के रुक जाने से पञ्चायतन होने नहीं पाता। पञ्चायतन के रुक जाने से स्पर्श होने नहीं पाता। स्पर्श के रुक जाने से वेदना नहीं होती। वेदना के रुक जाने से तृष्णा होने नहीं पाती। तृष्णा के रुक जाने से उपादान होने नहीं पाता। उपादान के रुक जाने से भव होने नहीं पाता। भव के रुक जाने से जाति होने नहीं पाती। जाति के रुक जाने से न जरा, न मरण, न शोक, न रोना-पीटना, न दुःख, न धैचैनी और न ती परेशानी होती है। इस तरह, यह सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

भगवान् यह बोले । सुष्ट होकर भिक्षुओं ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया ।

§ २. विभङ्ग सुत्त (१२ १. २)

प्रतीत्य-समुत्पाद की व्याख्या

धावस्ती में ।

• भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य-समुत्पाद का विभाग करके उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ, मैं कहता हूँ ।

“ममते ! बहुत अक्षर” यह मिश्रुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् पौष्ट—मिश्रुओं ! प्रतीत्य समुत्पाद क्या है ? मिश्रुओं ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं । [पृथक्] इस तरह सारे दुःख समूह का समुदय होता है ।

मिश्रुओं ! और जरा मरण क्या है ? जो उम-उम जीवों के उम-उम यात्रियों में बुरा हो जाना पुरानिया हो जाना पूर्वों का टूट जाना बाढ़ संकट हो जाना क्षुत्तियों पक्ष जानी उमर का कात्मा और इन्द्रियों का सिपिक हो जाना है; इसी को कहते हैं ‘जरा’ ।

जो उम-उम जीवों के उम-उम योनियों से विसक पक्ष्या इयक पक्ष्या कट क्षया अन्तर्धान हो जाना सुखु मरण कक्षा कर जाना रुम्हों का छिन्न-भिन्न हो जाना शोका को छेद देना है; इसी को कहते हैं ‘मरण’ । ऐसी यह है जरा और ऐसा यह है मरण । मिश्रुओं ! इसी को जरामरण कहते हैं ।

मिश्रुओं ! ज्ञाति क्या है ? जो उम-उम जीवों के उम उम योनियों में जन्म खेवा पैदा हो क्षया पक्षा क्षया भाकर मगद हो जाना रुम्हों का प्रादुर्भाव क्षयतनों का प्रतिक्षाम करना है; मिश्रुओं ! इसी को कहते हैं ज्ञाति ।

मिश्रुओं ! मय क्या है ? मिश्रुओं ! मय तीन प्रकार के होते हैं । (१) काम मय (काम-शोक में बना रहना) (२) रूप मय (रूप-शोक में बना रहना) और (३) अरूप-मय (अरूप-शोक में बना रहना) । मिश्रुओं ! इसी को कहते हैं ‘मय’ ।

मिश्रुओं ! उपादान क्या है ? उपादान चार प्रकार के हैं । (१) काम-उपादान, (२) (मिथ्या) दृष्टि-उपादान (३) शीकवत-उपादान और (४) आत्मवाद उपादान । मिश्रुओं ! इसी को कहते हैं ‘उपादान’ ।

मिश्रुओं ! तृप्या क्या है ? मिश्रुओं ! तृप्या छः प्रकार की है । (१) रूप-तृप्या (२) शब्द-तृप्या (३) गन्ध-तृप्या (४) रस-तृप्या (५) स्पर्श-तृप्या और (६) भर्म-तृप्या । मिश्रुओं ! इसी को कहते हैं ‘तृप्या’ ।

मिश्रुओं ! वेदना क्या है ? मिश्रुओं ! वेदना छः प्रकार की है । (१) बहु के संस्पर्श से होनेवाली वेदना (२) शोक के संस्पर्श से होनेवाली वेदना (३) ज्ञान के संस्पर्श से होनेवाली वेदना (४) विद्या के संस्पर्श से होनेवाली वेदना (५) क्षया के संस्पर्श से होनेवाली वेदना और (६) मन के संस्पर्श से होनेवाली वेदना । मिश्रुओं ! इसी को कहते हैं ‘वेदना’ ।

मिश्रुओं ! स्पर्श क्या है ? मिश्रुओं ! स्पर्श छः प्रकार के हैं । (१) बहु-संस्पर्श (२) शोक-संस्पर्श (३) ज्ञान-संस्पर्श (४) विद्या-संस्पर्श (५) क्षया-संस्पर्श और (६) मन-संस्पर्श । मिश्रुओं ! इसी को कहते हैं ‘स्पर्श’ ।

मिश्रुओं ! पदायतन क्या है ? () बहु-अयतन (२) शोक-अयतन (३) ज्ञान-अयतन (४) विद्या-अयतन (५) क्षया-अयतन और (६) मन-अयतन । मिश्रुओं ! इसी को कहते हैं ‘पदायतन’ ।

मिश्रुओं ! नामरूप क्या है ? वेदना संगी अथवा स्पर्श और मन में कुछ क्षया । इसे ‘नाम’ कहते हैं । चार महातनों की छेकर को रूप होते हैं इसे ‘रूप’ कहते हैं । इस तरह यह नाम रूपा और यह रूप रूपा । मिश्रुओं ! इसी को कहते हैं नामरूप ।

मिश्रुओं ! विज्ञान क्या है ? मिश्रुओं ! विज्ञान छः प्रकार के होते हैं । (१) बहु-विज्ञान (२) शोक-विज्ञान (३) ज्ञान-विज्ञान (४) विद्या-विज्ञान (५) क्षया-विज्ञान और (६) मनोविज्ञान । मिश्रुओं ! इसी को कहते हैं विज्ञान ।

मिश्रुओं ! संस्कार क्या है ? मिश्रुओं ! संस्कार तीन प्रकार के हैं । (१) काच-संस्कार (२) बाह्य-संस्कार (३) चित्त-संस्कार । मिश्रुओं ! इसी को कहते हैं ‘संस्कार’ ।

मिश्रुओं ! अपिद्या क्या है ? मिश्रुओं ! जो दुःख को नहीं जानता है जो दुःख-मग्नरप को नहीं

जानता है, जो दुःख-निरोध को नहीं जानता है, और जो दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा को नहीं जानता है। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं "अविद्या" ।

भिक्षुओ ! इसी अविद्या के होने से संस्कार होते हैं ।

[पूर्ववत्] । इस तरह सारे दुःख समूह का समुदय होता है ।

उम अविद्या के विच्छेद हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते । [पूर्ववत्] इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

§ ३. पटिपदा सुत्त (१२. १. ३)

मिथ्या-मार्ग और सत्य-मार्ग

श्रावस्ती में ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! मिथ्या-मार्ग क्या है और सत्य-मार्ग क्या है इसका मैं उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लोओ, मैं कहता हूँ ।

"मन्ते । यहुत्त भच्छा" का, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—

भिक्षुओ ! मिथ्या-मार्ग क्या है ? भिक्षुओं ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं । इस प्रकार, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'मिथ्या-मार्ग' ।

भिक्षुओ ! सत्य-मार्ग क्या है ? उम अविद्या के विच्छेद हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते । इस प्रकार, सारा दुःख-समूह रुक जाता है । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'सत्य-मार्ग' ।

§ ४. विपस्ती सुत्त (१२. १. ४)

विपश्यी बुद्ध को प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान

क

श्रावस्ती में ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! अर्हत् सम्यक्-समुत्तम भगवान् विपस्ती को बुद्धत्व लाभ करने के पहले, बोधिसत्त्व रहते हुये मन में यह हुआ—हाय ! यह लोक कैसे घोर दुःख से पड़ा है ! पैदा होता है, बड़ा होता है, मर जाता है, मर कर फिर जन्म ले लेता है । और, जराभरण के इस दुःख का छुटकारा नहीं जानता है । अहो ! कब मैं जराभरण के इस दुःख का छुटकारा जान लूँगा ?

भिक्षुओ ! तब बोधिसत्त्व विपस्ती के मन में यह हुआ—किसके होने से जराभरण होता है, जराभरण का हेतु क्या है ?

भिक्षुओ ! तब, बोधिसत्त्व विपस्ती को अच्छी तरह चिन्तन करने पर प्रज्ञा का उदय हो गया । जाति के होने से जराभरण होता है, जाति ही जराभरण का हेतु है ।

भिक्षुओ ! तब, बोधिसत्त्व विपस्ती के मन में यह हुआ—किसके होने से जाति होती है, जाति का हेतु क्या है ? भिक्षुओ ! तब, बोधिसत्त्व विपस्ती को अच्छी तरह चिन्तन करने पर प्रज्ञा का उदय हो गया । भव के होने से जाति होती है, भव ही जाति का हेतु है ।

किसके होने से भव होता है, भव का हेतु क्या है ? उपादान के होने से भव होता है, उपादान भव का हेतु है ।

किमक होमेसे उपादान जाता है उपादान का हेतु क्या है ? गृह्या के होनेसे उपादान जाता है गृह्या ही उपादानका हेतु है ।

.. किमके हानमे गृह्या होती है गृह्या का हेतु क्या है ? वेदनाके हानेसे गृह्या होती है वेदना ही गृह्या का हेतु है ।

किमक होमेसे वेदना होती है वेदनाका हेतु क्या है ? स्वर्गके होनेसे वेदना होती है स्वर्ग ही वेदनाका हेतु है ।

.. किमक हानमे स्वर्ग होता है स्वर्गका हेतु क्या है ? पद्मापनके होनेसे स्वर्ग होता है पद्मापन ही स्वर्गका हेतु है ।

किमक हानेमे पद्मापन होता है पद्मापनका हेतु क्या है ? नामरूपके होनेसे पद्मापन होता है, नामरूप ही पद्मापन का हेतु है ।

किमक हाने मे नामरूप होता है नामरूप का हेतु क्या है ? विज्ञानके हानेसे नामरूप होता है विज्ञान ही नामरूपका हेतु है ।

किमक हानेसे विज्ञान जाता है विज्ञान का हेतु क्या है ? संस्कारों के हानेसे विज्ञान होता है संस्कार ही विज्ञान का हेतु है ।

किमके हाने से संस्कार हाने हैं संस्कारों का हेतु क्या है ? अविद्या के होने से संस्कार होते हैं अविद्या ही संस्कार का हेतु है ।

हम तरह अविद्याके हानेमे संस्कार हाने हैं । संस्कारोंके हाने मे विज्ञान है । हम प्रकार गारे सुप्त-समृद्ध का समुद्र जाता है ।

मिथुना । 'समुद्र समुद्र — यथा बोधिसत्त्व विपस्नी का पहल कभी नहीं सुने गये यमों में बहुत उन्मत्त हो गया ज्ञान उन्मत्त हो गया प्रज्ञा उन्मत्त हो गई विद्या उन्मत्त हो गई, आजीक उन्मत्त हो गया ।

सु

मिथुना । तब बोधिसत्त्व विपस्नी के मन में यह हुआ—किमक नहीं हाने से अज्ञानन नहीं जाता है किमके एक जाने मे अज्ञानन एक जाता है ?

मिथुना । तब बोधिसत्त्व विपस्नी का सप्टी तरह विस्मय करन पर प्रज्ञा का उन्मत्त हो गया । ज्ञान के नहीं हाने से अज्ञानन नहीं होता है ज्ञान के एक जाने से अज्ञानन एक जाता है ।

[प्रणिजाम बना से पुरवत्]

मिथुना । तब बोधिसत्त्व विपस्नी का सप्टी तरह विस्मय करन पर प्रज्ञा का उन्मत्त हो गया । अविद्या के नहीं हाने मे संस्कार नहीं हाने हैं अविद्या के एक जाने से संस्कार एक जाने हैं ।

या अविद्या के एक जाने से संस्कार एक जाने हैं । संस्कारों के एक जाने से विज्ञान एक जाता है । हम प्रकार गारे सुप्त-समृद्ध एक जाता है ।

मिथुना । "एक ज्ञान एक ज्ञान — यथा बोधिसत्त्व विपस्नी का पहल कभी नहीं सुने गये यमों में बहुत उन्मत्त हो गया ज्ञान उन्मत्त हो गया प्रज्ञा उन्मत्त हो गई विद्या उन्मत्त हो गई, आजीक उन्मत्त हो गया ।

जानी मुझे व गन्ध केगा ही मन्त्रज मेना पादिम् ।

> ५ गिगी गुण (१३ १ ५)

गिगी गुण का प्रयोग समुद्रात् का ज्ञान

मिथुना । सर्व वन्मत्त समुद्र समुद्र गिगी ही पुरवत् ज्ञान करते हैं परने [पुरवत्]

§ ६. वेस्तभू सुत्त (१२. १. ६)

वेस्तभू बुद्ध को प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान

भिक्षुओं ! भगवान् वेस्तभू ही ।

§ ७-९. सुत्त-सय्य (१२. १. ७-९)

तीन बुद्धों को प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान

भिक्षुओं ! भगवान् क्रयुमन्ध, फौणागमन, काश्यप को बुद्धत्व लाभ करने के पहले .. ।

§ १०. गीतम सुत्त (१२. १. १०)

प्रतीत्य समुत्पाद-ज्ञान

क

भिक्षुओं ! मेरे बुद्धत्व-लाभ करने के पहले, पाँचिमश्व राते हुए, मन में यह हुआ [पूर्ववत्]

भिक्षुओं ! 'समुदय, समुत्थ'—ऐसा मुझे पहले कभी नहीं सुनें गये धर्मों में ब्रह्म उत्पन्न हो गया, ज्ञान उत्पन्न हो गया प्रज्ञा उत्पन्न हो गई, प्रिया उत्पन्न हो गई, आलोक उत्पन्न हो गया ।

ख

[..प्रतिलोम-पक्ष]

भिक्षुओं ! 'एक जाना, एक जाना'—ऐसा मुझे पहले कभी नहीं सुनें गये धर्मों में आलोक उत्पन्न हो गया ।

बुद्ध-वर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

आहार वर्ग

§ १ आहार सुप्त (१० ० १)

प्राणियों के आहार और उनकी उत्पत्ति

ऐसा मीने सुना ।

एक समय भगवान् भावसी में अनाथपिण्डिक के जेतवन भारम में विहार करते थे ।

भगवान् बोले—मिष्ठुओ ! जन्म प्राणियों की स्थिति के लिये या जन्म केने बाकों के अनुभव के लिये चार आहार हैं ।

कील से चार ? (१) कीर बाका—स्पृक वा सुकम (२) स्पर्स (३) मन की चेतना (= Volition) और (४) विज्ञान । मिष्ठुओ ! जन्म प्राणियों की स्थिति के लिये, या जन्म केने बाकों के अनुभव के लिये चार आहार हैं ।

मिष्ठुओ ! इन चार आहारों का विद्याम क्या है = समुदय क्या है = वे कैसे पैदा होते हैं = उदय का प्रमथ क्या है ?

इन चार आहारों का विद्याम मृज्जा है समुदय मृज्ज है । वे मृज्जा से पैदा होते हैं । जन्म प्रमथ मृज्जा है ।

मिष्ठुओ ! मृज्जा का विद्याम क्या है ? समुदय क्या है ? वह कैसे पैदा होती है ? उसका प्रमथ क्या है ? मृज्जा का विद्याम वेदना है समुदय वेदना है । वह वेदना सं पैदा होती है । उसका प्रमथ वेदना है ।

वेदना का विद्याम स्पर्स है ।

स्पर्स का विद्याम पक्कायतन है ।

पक्कायतन का विद्याम नामरूप है ।

नामरूप का विद्याम विज्ञान है ।

विज्ञान का विद्याम संस्कार है ।

संस्कारों का विद्याम अविद्या है ।

मिष्ठुओ ! इस तरह अविद्या के होने से संस्कार होते हैं । संस्कारों के होने से विज्ञान होता है । इस तरह भारे दुःख-समूह का समुदय होता है ।

उस अविद्या के विच्छेदक इह और एक काम से संस्कार एक जाते हैं । इस तरह सारा दुःख समूह एक जाता है ।

§ २ फग्गुन सुप्त (१२ ० ०)

चार आहार और उनकी उत्पत्तियाँ

धान्यवती में ।

..भगवान् बोले—मिष्ठुओ ! जन्म प्राणियों की स्थिति के लिये या जन्म केने बाकों के लिये चार आहार हैं ।

● उनके देह से अपना जन्म आहार करते हैं इहलिये वे आहार कहे जाते हैं—अनुदयना ।

[पूर्ववत्]

भिक्षुभां ! यहाँ चार आहार हैं ।

ऐसा कहने पर आयुमान् मोलिय-फग्गुन भगवान् सं बोले—भन्ते ! विज्ञान-आहार का कौन आहार करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है । मैं यह नहीं कहता कि कोई आहार करता है । यदि मैं ऐसा कहता कि कोई आहार करता है तो अलवत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन आहार करता है ? किन्तु, मैं तो ऐसा नहीं कहता । मेरे ऐसा नहीं कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! इस विज्ञान-आहार से क्या होता है ?—तो हँ, ठीक प्रश्न होता ।

और, तत्र उसका उपयुक्त उत्तर होता—

विज्ञान-आहार अग्रे पुनर्जन्म होने का हेतु है । उसके होने से पड़ावतन होता है । पड़ावतन के होने से स्पर्श होता है ।

भन्ते ! कौन स्पर्श करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है । मैं यह नहीं कहता कि कोई स्पर्श करता है । यदि मैं ऐसा कहता कि कोई स्पर्श करता है तो अलवत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन स्पर्श करता है ? किन्तु, मैं तो ऐसा नहीं कहता । मेरे ऐसा कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! क्या होने से स्पर्श होता है ?—तो हँ, ठीक प्रश्न होता ।

और, तत्र उसका उपयुक्त उत्तर होता—पड़ावतन के होने से स्पर्श होता है । स्पर्श के होने से वेदना होती है ।

भन्ते ! कौन वेदना का अनुभव करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है । मैं यह नहीं कहता कि कोई वेदना का अनुभव करता है । यदि मैं ऐसा कहता कि कोई वेदना का अनुभव करता है तो अलवत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन वेदना का अनुभव करता है ? किन्तु, मैं तो ऐसा कहता ही नहीं । मेरे ऐसा नहीं कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! किसके होने से वेदना होती है ?—तो हँ, ठीक प्रश्न होता ।

और, तत्र उसका उपयुक्त उत्तर होता—स्पर्श के होने से वेदना होती है । वेदना के होने से तृष्णा होती है ।

भन्ते ! कौन तृष्णा करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है । मैं यह नहीं कहता कि कोई तृष्णा करता है । यदि मैं ऐसा कहता कि कोई तृष्णा करता है तो अलवत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन तृष्णा करता है ? किन्तु मैं तो ऐसा नहीं कहता । मेरे ऐसा नहीं कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! किसके होने से तृष्णा होती है ?—तो हँ, ठीक प्रश्न होता ।

और, तत्र उसका उपयुक्त उत्तर होता—वेदना के होने से तृष्णा होती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है ।

भन्ते ! कौन उपादान (= किमी वस्तु को पाने का छोड़ने के लिये उत्साह) करता है ?

भगवान् बोले—यह पूछना ही गलत है । तृष्णा के होने से उपादान होता है । उपादान के होने से भव होता है ।

इस तरह, सारे दु ख-समुह का समुदय होता है ।

हे फग्गुन ! इन छ स्पर्शयत्नों के बिटकुल रुक जाने से स्पर्श होने नहीं पाता । स्पर्श के रुक जाने से वेदना नहीं होती । वेदना के रुक जाने से तृष्णा नहीं होती । तृष्णा के रुक जाने से उपादान

नहीं होता । उपादान के दृक जाने से भव नहीं होता । भव के दृक जाने से जन्म नहीं होता । जन्म के दृक जाने से अरामरण शोक रोमा-पीडना, दुःख वेदना परेशानी सभी गूक जाने हैं ।

इस तरह सारा दुःख-समूह दूक जाता है ।

§ ३ पठम समणब्राह्मण सुच (१० ० ३)

पथार्थ नाम के अधिकारी अमण-ब्राह्मण

भाषस्ती में ।

मगवान् पाँके—मिथुनो ! जो अमण वा ब्राह्मण अरामरण को नहीं जानते अरामरण के हेतु का नहीं जानते अरामरण का दृक जाना नहीं जानते अरामरण के रोकने का मार्ग नहीं जानते; जाति ; भव ; उपादान ; तुप्या ; वेदना ; स्वर्ग ; पद्दापतन ; नामक्य ; बिज्ञान ; संस्कार के रोकने का मार्ग नहीं जानते हैं—बह अमण वा ब्राह्मण पथार्थ में अपने नाम के अधिकारी नहीं हैं । न तो वे आयुप्पमात् अमण वा ब्राह्मण के परमार्थ को अपने सामने जाकर साक्षात् कर वा प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

मिथुनो ! धार जो अमण वा ब्राह्मण अरामरण को जानते हैं संस्कार के रोकने का मार्ग जानते हैं—बह अमण वा ब्राह्मण पथार्थ में अपने नाम के अधिकारी हैं । वे आयुप्पमात् अमण-भाव वा ब्राह्मण-भाव को प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

§ ४ दुतिय समणब्राह्मण सुच (१२ ० ४)

परमार्थ के जानकार अमण-ब्राह्मण

भाषस्ती में ।

मिथुनो ! जो अमण वा ब्राह्मण इन चर्मों को नहीं जानते हैं इन चर्मों के हेतु को नहीं जानते हैं इन चर्मों का दृक जाना नहीं जानते हैं इन चर्मों के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं वे किन चर्मों के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं ?

अरामरण को नहीं जानते हैं अरामरण के हेतु को नहीं जानते हैं अरामरण का दृक जाना नहीं जानते हैं अरामरण के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं । जाति—; भव ; उपादान ; तुप्य ; वेदना ; स्वर्ग ; पद्दापतन ; नामक्य ; बिज्ञान ; संस्कार को नहीं जानते हैं संस्कार के हेतु को नहीं जानते हैं संस्कार का दृक जाना नहीं जानते हैं संस्कार के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं ।

मिथुनो ! न तो वह अमणों में अमणत्व है और न ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व, न तो वे आयुप्पमात् अमण वा ब्राह्मण के परमार्थ को अपने सामने जाकर साक्षात् कर वा प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

मिथुनो ! जो अमण वा ब्राह्मण इन चर्मों के रोकने के मार्ग को जानते हैं वे किन चर्मों के रोकने के मार्ग को जानते हैं ?

अरामरण ; जाति ; भव ; उपादान ; तुप्या ; वेदना ; स्वर्ग ; पद्दापतन ; नामक्य ; बिज्ञान ; संस्कार के रोकने के मार्ग को जानते हैं ।

मिथुनो ! पथार्थतः इन अमणों में अमणत्व है, और ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व, वे आयुप्पमात् अमण वा ब्राह्मण के परमार्थ को अपने सामने जाकर साक्षात् कर और प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

§ ५ कथानगोच सुच (१० २ ५)

सम्पक् दृष्टि की व्याख्या

भाषस्ती में ।

तत्र आयुप्पमात् कास्यापमगोच चर्हो अमण व् वे चर्हो जाने और मगवान् वा अमिवादन कर दूक और दृक गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् कात्यायनगोत्र भगवान् से बोले—भन्ते ! जो लोग 'सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-दृष्टि' कहा करते हैं वह 'सम्यक्-दृष्टि' ही क्या ?

कात्यायन ! संसार के लोग दो अविद्याओं में पड़े हैं—(१) अस्तित्व की अविद्या में, और (२) नास्तित्व की अविद्या में ।

कात्यायन ! लोक के समुदय का यथार्थ-ज्ञान प्राप्त करने से लोक में जो नास्तित्व-बुद्धि है वह मिट जाती है । कात्यायन ! लोक में जो अस्तित्व-बुद्धि है वह मिट जाती है ।

कात्यायन ! यह संसार तृष्णा, आसक्ति और ममत्व के मोह में बेतरह जकड़ा है । सो, (आर्थ-श्रावक) उस तृष्णा, आसक्ति, मन के लगाने, ममत्व और मोह में नहीं पड़ता है, आत्म-भाव में नहीं बँधता है । जो उत्पन्न होता है दुःख ही उत्पन्न होता है, जो रुक जाता है वह दुःख ही रुक जाता है । न मन में कोई कांक्षा रहता है, और न कोई संशय । उसे अपने भीतर ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । कात्यायन ! इसी को सम्यक्-दृष्टि कहते हैं ।

कात्यायन ! 'सभी कुछ विद्यमान है' यह एक अन्त है, 'सभी कुछ शून्य है' यह दूसरा अन्त है । कात्यायन ! बुद्ध इन दो अन्तों को छोड़ सत्य को मध्यम प्रकार से बताते हैं ।

अविद्या के होने से संस्कार होते हैं । इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है ।

उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

§ ६. धम्मकथिक सुत्त (१२. २. ६)

धर्मापदेशक के गुण

श्रावस्ती में ।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते ! लोग 'धर्मकथिक, धर्मकथिक' कहा करते हैं । सो 'धर्मकथिक' के क्या गुण हैं ?

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद=विराग=निरोध का उपदेश करता है वही अलबत्ता धर्मकथिक कहा जा सकता है ।

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद=विराग=निरोध के लिये प्रतिपन्न है वही अलबत्ता 'धर्मानुधर्म-प्रतिपन्न' कहा जा सकता है ।

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद=विराग=निरोध हो जाने से विमुक्त हो गया है, वह अलबत्ता देखते ही देखते निर्वाण या लेनेवाला भिक्षु कहा जा सकता है ।

भिक्षु ! जो जाति , भय , उपादान , तृष्णा , वेदना , स्पर्श पदायतन , नाम-रूप , विज्ञान , संस्कार ; अविद्या के निर्वेद=विराग=निरोध का उपदेश करता है वही अलबत्ता धर्मकथिक कहा जा सकता है ।

भिक्षु ! जो अविद्या के निर्वेद=विराग=निरोध के लिये प्रतिपन्न है वही अलबत्ता 'धर्मानुधर्म प्रति-पन्न' कहा जा सकता है ।

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद=विराग=निरोध हो जाने से विमुक्त हो गया है, वही अलबत्ता देखते ही देखते निर्वाण या लेने वाला भिक्षु कहा जा सकता है ।

ई ७ अचेल मुक्त (१२ २ ७)

प्रतीत्य समुत्पाद, अचेल काश्यप की प्रमन्या

ऐसा मीने मुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के घेसुयन कलम्बक विद्या में विहार करते थे ।

क

तब भगवान् सुबह में पहन और पापपीबर के राजगृह में सिद्धारन के किये पड़े ।

बंगा साधु काश्यप ने भगवान् को दूर ही से भाते देखा । देखकर बहो भगवान् के बहो गया और भगवान् का सम्मोदन किया; तथा भावमगत और कुसकथेम के प्रान वृत्त कर एक ओर लड़ा हो गया ।

एक ओर लड़ा हो बंगा साधु काश्यप भगवान् ने बोला—आप गीतम से मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ; क्या आप इसे सुन कर उत्तर देने को तैयार हैं ?

काश्यप ! यह प्रश्न पूछने का उचित अवसर नहीं है; अभी नगर में सिद्धारन के किये पड़ा हूँ ।

पूछरी बार भी ।

तीसरी बार भी ।

काश्यप ! अभी नगर में सिद्धारन के किये पड़ा हूँ ।

इस पर बंगा साधु काश्यप भगवान् ने बोला—आप गीतम से मैं कौद् बनी बात नहीं पूछना चाहता हूँ ।

काश्यप ! वो पूछो का पूछना चाहते हो ।

ख

हे गीतम ! क्या बुद्ध अपना स्वर्ग किनास होता है ?

काश्यप ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गीतम ! तो क्या दुःख पराये का किना होता है ?

काश्यप ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गीतम ! तो क्या बुद्ध अपने स्वर्ग और पराये के भी करने स होता है ?

काश्यप ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गीतम ! यदि बुद्ध अपने स्वर्ग और पराये के भी करने स नहीं होता है तो क्या अन्नरथ ही अन्नरथात् अन्न अथवा है ?

काश्यप ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गीतम ! तो क्या बुद्ध ही ही नहीं ?

नहीं काश्यप ! बुद्ध है ।

तो क्या बकता है कि आप गीतम बुद्ध को जानते समझते नहीं हैं ।

काश्यप ! ऐसी बात नहीं है कि मैं बुद्ध को जानता समझता नहीं हूँ । काश्यप ! मैं बुद्ध को सम्बता जानता और समझता हूँ ।

क सर्वकथ = शोध का अपना रूप किया बुध्द ।

“हे मोतम ! क्या तुम अपना स्वयं किया होता है ?” घूटे जाने पर आप कहते हैं, “काश्यप ! प्रेमी धात नहीं है !”

आप कहते हैं, काश्यप ! मैं दुःख को मन्वत् जानता और ममता हूँ ।

भगवान् मुझे बतायें कि दुःख क्या है, भगवान् मुझे उपदेश करें कि दुःख क्या है ?

काश्यप ! जो करता है खरी भोगना है त्याग कर, यदि खरा जाय कि दुःख अपना स्वयं किया होता है तो शायद-याद हो जाता है ।

काश्यप ! दूसरा करना है और दूसरा भोगता है त्याग कर, यदि मरार के फेर में पड़ा हुआ मनुष्य कहे कि दुःख पराये का किया होता है तो उच्छेद-याद हो जाता है ।

काव्यायन ! मुझे इन दो भन्तों को छोड़ स्वयं को मध्यम प्रकार से बताते हैं । अविद्या के होने से मस्कार होते हैं...। इस तरह, मारे दुःख-समूह का समुदय होता है ।

उसी अविद्या के विलुप्त इष्ट और रुक जाने से मस्कार होने नहीं पाते । इस तरह, मारा हुआ-समूह रुक जाता है ।

ग

भगवान् के प्रेमा कहने पर नंगा साधु काश्यप भगवान् से बोला—धन्य है । भन्ते, आप धन्य हैं ! जैसे उलटे को सलट डे, जैसे भगवान् ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश किया । मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म की और भिक्षुत्व की । भन्ते ! मैं भगवान् के पास प्रव्रज्या पाऊँ, और उपसम्पदा पाऊँ ।

काश्यप ! जो दूसरे मत के साधु इस धर्मविनय में प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं उन्हें चार मास का परिवास लेना पड़ता है । इस चार मास के परिवास घातने पर यदि भिक्षुओं को रुचता है तो उसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देकर भिक्षु बना देते हैं । किन्तु, हमें व्यक्ति की विभिन्नता मालूम है ।

भन्ते ! यदि, जो दूसरे मत के साधु इस धर्मविनय में प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं उन्हें चार मास का परिवास लेना पड़ता है, इस चार मास के परिवास घातने पर यदि भिक्षुओं को रुचता है तो उसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देकर भिक्षु बनाते हैं,—तो मैं चार साल का परिवास लेता हूँ, चार साल के परिवास घातने पर यदि भिक्षुओं को रुचें तो मुझे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देकर भिक्षु बना लें ।

नंगा साधु काश्यप ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पायी, और उपसम्पदा पायी ।

घ

उपसम्पदा पाने के कुछ ही समय बाद आयुष्मान् काश्यप अकेला, एकान्त में अप्रमत्त, आतापी (=कलेहों को तपाने वाला) और प्रशिक्षात्म हो विहार करते हुये शीघ्र ही उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य के परम फल की इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करने लगे जिसके लिये कुलपुत्र श्रद्धा-पूर्वक घर से वेधर ही प्रव्रजित हो जाते हैं । जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ करना बाकी नहीं है—येसा जान लिया ।

आयुष्मान् काश्यप अर्द्धशतक में एक हुये ।

* परिवास—इस अवधि में प्रव्रज्या-प्रार्थी को सेवा-टहल करते हुये भिक्षुओं के साथ रहना होता है । जब भिक्षु उसकी दृढ़ता, आचरण, व्यवहार आदि से सन्तुष्ट हो जाते हैं तो उसे प्रव्रजित करते हैं ।

§ ८ तिम्वरुक्त सुप्त (१२. २. ८)

सुप्त हुआ के कारण

ध्यावस्ती में ।

तब तिम्वरुक्त परित्राजक वहाँ भगवान् से वहाँ थाया । आकर भगवान् का सम्मोहन किया और आननगत तथा कुसुम्भ्येय के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ कर तिम्वरुक्त परित्राजक भगवान् से बोला—

हे गौतम ! क्या सुप्त-शुल्ल अपने आप ही होता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुक्त ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुप्त-शुल्ल किसी दूसरे के करने से होता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुक्त ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुप्त-शुल्ल अपने आप ही होता है और दूसरे के करने से भी होता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुक्त ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुप्त-शुल्ल न अपने आप और न दूसरे के करने से किन्तु अकारण ही उत्पन्न हो जाता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुक्त ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुप्त-शुल्ल ही ही नहीं ?

तिम्वरुक्त ! ऐसी बात नहीं है कि सुप्त-शुल्ल नहीं है, सुप्त-शुल्ल तो ही ही ।

तो क्या कहता है कि आप गौतम सुप्त-शुल्ल को जानते वृक्षों नहीं हैं ।

तिम्वरुक्त ! ऐसी बात नहीं है कि मैं सुप्त-शुल्ल को नहीं जानता वृक्षों । तिम्वरुक्त ! मैं सुप्त-शुल्ल को सत्पता जानता वृक्षों हूँ ।

तो हे गौतम ! मुझे बतायें कि सुप्त-शुल्ल क्या है । हे गौतम ! मुझे सुप्त-शुल्ल का उपदेश करें ।

तिम्वरुक्त ! 'को वेदना है वही (सुप्त-शुल्ल की) अनुभूति कराने वाला है' समझ कर तुमने कहा कि सुप्त-शुल्ल अपने आप ही जाता है । मैं ऐसा नहीं बताता ।

तिम्वरुक्त ! 'वेदना दूसरी ही है और (सुप्त-शुल्ल की) अनुभूति कराने वाला दूसरा ही' समझ कर तुमने कहा कि सुप्त-शुल्ल दूसरे का किया होता है । मैं ऐसा भी नहीं बताता ।

तिम्वरुक्त ! कुछ इन ही अर्थों को छोड़ सम्मम रीति से शल्य का उपदेश करते हैं ।

अभिधा के होने से संस्कार होते । इस तरह सारे शुल्ल-समूह का समुत्पन्न होता है ।

जसी अभिधा के विच्छेदक इत और कष्ट जाने से धारा शुल्ल-समूह एक जाता है ।

हे गौतम ! आज से जन्म भर मुझे अपना धरणागत उपसक्त स्वीकार करें ।

§ ९ पारुपण्डित सुप्त (१२. २. ९)

मूर्ख और पण्डित में अन्तर

ध्यावस्ती में ।

मिथुको ! अभिधा में एक शृङ्गा बढाते रहने से ही मूर्ख अर्थों का बोध नहीं करता है । और वह बोधा बाहर और भीतर से वास-कर्म (अर्थ-कर्म) ही है । तो दो-दो (अभिधा और उपसक्त विषय)

● सर्वकर्त = स्वयं वेदना ही सुप्त-शुल्ल की अनुभूति का कारण होता ।

के होने से स्पर्श होता है। यह छ आयतन हैं जिनसे स्पर्श कर मूर्ख सुख-दुःख का अनुभव करता है। अथवा, इन (छ आयतनों) में किसी एक से।

भिक्षुओ ! अविद्या में पद, तृष्णा बढ़ाते रहने से ही पण्डित जनों का भी चोला खड़ा रहता है। और, यह चोला बाहर और भीतर से नाम-रूप (=पञ्च स्कन्ध) ही है। सो, दो दो के होने से स्पर्श होता है। यह छः आयतन हैं जिनसे स्पर्श कर मूर्ख सुख-दुःख का अनुभव करता है। अथवा, इनमें किसी एक से।

भिक्षुओ ! तब, मूर्ख और पण्डित में क्या अन्तर=भेद होता है ?

भन्ते ! भगवान् ही धर्म के गुरु, नायक और उपदेष्टा हैं। भन्ते ! अच्छा होता कि भगवान् ही इस प्रश्न को खुलासा करते। भगवान् से सुन कर भिक्षु धारण करेंगे।

तो, भिक्षुओ ! सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! जिस अविद्या और तृष्णा के हेतु मूर्ख जनों का चोला खड़ा रहता है, वह अविद्या और तृष्णा उनकी क्षीण हुई नहीं होती है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि दुःख का विश्कल क्षय कर देने के लिये मूर्ख ने ब्रह्मचर्य नहीं पाला। इसलिये मूर्ख एक चोला छोड़कर दूसरा धरता है। इस तरह चोला धरते रह, यह जाति, जराभरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वैचैनी, परेशानी से नहीं छूटता है। दुःख से नहीं छूटता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! जिस अविद्या और तृष्णा के हेतु पण्डित जनों का चोला खड़ा रहता है, वह अविद्या और तृष्णा उनकी क्षीण हो गई होती है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि दुःख का विश्कल क्षय कर देने के लिये पण्डित ने ब्रह्मचर्य का पालन किया है। इसलिये, पण्डित एक चोला छोड़ कर दूसरा नहीं धरता इस तरह फिर चोला न धर, वह जाति, जराभरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वैचैनी, परेशानी से छूट जाता है। दुःख से छूट जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! यही ब्रह्मचर्य पालन न करने और करने का अन्तर=भेद मूर्ख और पण्डित में होता है।

§ १०. पञ्चय सुत्त (१२ २. १०)

प्रतीत्य समुत्पाद की व्याख्या

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! मैं प्रतीत्य समुत्पाद और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्मों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य समुत्पाद क्या है ? भिक्षुओ ! बुद्ध अवतार लें या नहीं, (यह तो सर्वदा सत्य रहता है कि) जनमने पर वृद्ध होता है और मर जाता है (=जाति के प्रत्यय से जराभरण होता है)। प्रकृति का यह नियम है कि एक धर्म के होने से दूसरा होता है, उसे बुद्ध भली भाँति ब्रह्मते और जानते हैं। उसे भली भाँति वृक्ष और जानकर पताते हैं = उपदेश करते हैं = जताते हैं = सिद्ध करते हैं = खोल देते हैं = विभाग कर देते हैं = साफ करते हैं, और कहते हैं—

देखो ! भिक्षुओ ! जाति के होने से जराभरण होता है। भव के होने से जाति होती है। उपादान के होने से भव होता है। तृष्णा के होने से उपादान होता है। वेदना के होने से तृष्णा होती है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। पदावयतन के होने से स्पर्श होता है। नामरूप के होने से पदावयतन होता है। विज्ञान के होने से नामरूप होता है। संस्कारों के होने से विज्ञान होता है। अविद्या के होने से संस्कार होते हैं।—बुद्ध का अवतार हो या नहीं यह नियम सदा यथा रहता है।

§ ८ तिम्वरुक सुच (१२ २ ८)

सुख दुःख के कारण

भावस्ती में ।

एक तिम्वरुक परिवारक बहौ भगवान ने बहौ जावा । आकर, भगवान का सम्मोहन किया और भावमगत तथा कुसुक्छेम के मग्न पृष्ठे के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ कर तिम्वरुक परिवारक भगवान से बोला—

हे गौतम ! क्या सुख-दुःख अपने आपक हो जाता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुक ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख किसी दूसरे के करने से होता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुक ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख अपने आप भी हो जाता है आर दूसरे के करने से भी होता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुक ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख न अपने आप भीर न दूसरे के करने से किन्तु अकारण ही इतर हो जाता है ?

भगवान् बोले—तिम्वरुक ! ऐसी बात नहीं है ।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख है ही नहीं ?

तिम्वरुक ! ऐसी बात नहीं है कि सुख-दुःख नहीं है सुख-दुःख तो है ही ।

तो क्या कहता है कि आप गौतम सुख-दुःख को आपसे दूसरे नहीं हैं ।

तिम्वरुक ! ऐसी बात नहीं है कि मैं सुख-दुःख को नहीं जानता दूसरा । तिम्वरुक ! मैं सुख-दुःख को सत्यतः जानता दूसरा हूँ ।

तो हे गौतम ! मुझे बताये कि सुख-दुःख क्या है । हे गौतम ! मुझे सुख-दुःख का उपदेश करें ।

तिम्वरुक ! 'जो वेदना है वही (सुख-दुःख की) अनुभूति कराने वाला है' समझ कर तुमने कहा कि सुख-दुःख अपने आप हो जाता है । मैं ऐसा नहीं बताता ।

तिम्वरुक ! 'वेदना दूसरी ही है और (सुख-दुःख की) अनुभूति कराने वाला दूसरा ही' समझ कर तुमने कहा कि सुख-दुःख दूसरे का किया होता है । मैं ऐसा भी नहीं बताता ।

तिम्वरुक ! तुम इन ही जगती को छोड़ मग्नम रीति से सत्य का उपदेश करते हैं ।

अभिधा के होमे से संस्कार होते । इन तरह सारे दुःख-समूह का समुदय होता है ।

वसी अभिधा के विकृक इत और एक जाने से सारा दुःख-समूह एक जाता है ।

हे गौतम ! आज से जग्न घर सुख अपना सारमगत उपासक स्वीकार करें ।

§ ९ पारुपण्डित सुच (१० २ ९)

मूर्ख और पण्डित में अन्तर

भावस्ती में ।

अभिधा ! अभिधा में एक दुःखी बनते रहने से ही मूर्ख जगती का बोका बना रहता है । और, वह बोका बाहर और भीतर से नाम-कय (अर्थक लक्षण) ही है । तो दो-दो (अभिधाय और वसका विषय)

● सर्पकृत = स्वयं वेदना ही सुख-दुःख की अनुभूति का कारण होना ।

के होने से स्पर्श होता है। यह छ आयतन हैं जिनमें स्पर्श कर मूर्ख सुख-दुःख का अनुभव करता है। अथवा, इन (छ आयतनों) में किसी एक से।

भिक्षुओ ! अविद्या में पद, तृष्णा यदाते रहने से ही पण्डित जनों का भी चोला खटा रहता है। और, यह चोला बाहर और भीतर से नाम-रूप (=पञ्च स्कन्ध) ही है। सो, दो दो के होने से स्पर्श होता है। यह छः आयतन हैं जिनसे स्पर्श कर मूर्ख सुख-दुःख का अनुभव करता है। अथवा, इनमें किसी एक से।

भिक्षुओ ! तब, मूर्ख और पण्डित में क्या अन्तर=भेद होता है ?

भन्ते ! भगवान् ही धर्म के शुद्ध, नायक और उपदेष्टा हैं। भन्ते ! अच्छा होता कि भगवान् ही इस प्रश्न को खुलासा करते। भगवान् से सुन कर भिक्षु धारण करेंगे।

तो, भिक्षुओ ! सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह भिक्षुओ ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! जिस अविद्या और तृष्णा के हेतु मूर्ख जनों का चोला खटा रहता है, वह अविद्या और तृष्णा उनकी क्षीण हुई नहीं होती है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि दुःख का विच्छेद क्षय कर देने के लिये मूर्ख ने ब्रह्मचर्य नहीं पाला। इसलिये मूर्ख एक चोला छोड़कर दूसरा धरता है। इस तरह चोला धरते रह, यह जाति, जराभरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वैचैनी, परेशानी से नहीं छूटता है। दुःख से नहीं छूटता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! जिस अविद्या और तृष्णा के हेतु पण्डित जनों का चोला खटा रहता है, वह अविद्या और तृष्णा उनकी क्षीण हो गई होती है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि दुःख का विच्छेद क्षय कर देने के लिये पण्डित ने ब्रह्मचर्य का पालन किया है। इसलिये, पण्डित एक चोला छोड़ कर दूसरा नहीं धरता इस तरह फिर चोला न धर, वह जाति, जराभरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वैचैनी, परेशानी से छूट जाता है। दुःख से छूट जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! यही ब्रह्मचर्य पालन न करने और करने का अन्तर=भेद मूर्ख और पण्डित में होता है।

§ १०. पञ्चय सुत्त (१२ २. १०)

प्रतीत्य समुत्पाद फी व्याख्या

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! मैं प्रतीत्य समुत्पाद और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्मों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य समुत्पाद क्या है ? भिक्षुओ !, बुद्ध अवतार लें या नहीं, (यह तो सर्वत्र सत्य रहता है कि) जनमने पर वृद्धा होता है और मर जाता है (=जाति के प्रत्यय से जराभरण होता है)। प्रकृति का यह नियम है कि एक धर्म के होने से दूसरा होता है, उसे बुद्ध मळी भाँति वृद्धते और जानते हैं। उसे मळी भाँति वृद्ध और जानकर वसाते हैं = उपदेश करते हैं = ज्ञाते हैं = सिद्ध करते हैं = खोल देते हैं = विभाग कर देते हैं = साफ करते हैं, और कहते हैं—

देखो ! भिक्षुओ ! जाति के होने से जराभरण होता है। भव के होने से जाति होती है। उपादान के होने से भव होता है। तृष्णा के होने से उपादान होता है। वेदना के होने से तृष्णा होती है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। पदायतन के होने से स्पर्श होता है। नामरूप के होने से पदायतन होता है। विज्ञान के होने से नामरूप होता है। सस्कारों के होने से विज्ञान होता है। अविद्या के होने से सस्कार होते हैं।—बुद्ध का अवतार हो या नहीं यह नियम सदा बना रहता है।

प्रकृति का यह नियम है कि धर्म के होने से दूसरा होता है। जैसे बुद्ध भकी मौति बृद्धते और जानते हैं। अन्धी मौति बृद्ध और आपकर बताते हैं = उपदेश करते हैं और कहते हैं—

देखो ! मिथुनो ! कविद्या के होने से संस्कार होते हैं। मिथुनो ! इसकी सारी साधना इसी हेतु—नियम पर निर्भर है।

मिथुनो ! प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म क्या हैं ? मिथुनो ! अरामरप्य भगिण्य है संस्कृत है प्रतीत्य समुत्पन्न है क्षय होनेवाला है व्यय होनेवाला है छोड़ दिया जा सकता है रोक दिया जा सकता है।

मिथुनो ! जाति ! मज ! उपादान ! तुष्या ! वेदना ! रपर्त्त ! पदायतन ! धाम-कप ! विज्ञान ! संस्कार ! कविद्या कर्मिण्य है संस्कृत है प्रतीत्य समुत्पन्न है क्षय होने वाली है व्यय होने वाली है छोड़ दी जा सकती है रोक दी जा सकती है। मिथुनो ! इन्हीं को प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म कहते हैं।

मिथुनो ! आर्यशास्त्र को यह प्रतीत्य समुत्पन्न का नियम और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म अच्छी तरह समझ कर स्पष्टतः साक्षात् कर किये गये होते हैं।

यह पूर्वान्त की मिथ्यादृष्टिमें नहीं रहता है कि—मैं भूतकाक में था मैं भूतकाक में नहीं था भूतकाक में क्या था भूतकाक में मैं कैसा था भूतकाक में मैं क्या होकर क्या हो गया था ?

यह अपरास्त की मिथ्यादृष्टि में भी नहीं रहता है कि—मैं भविष्य में होऊँगा मैं भविष्य में नहीं होऊँगा भविष्य में क्या होऊँगा भविष्य में कैसा होऊँगा भविष्य में क्या होकर क्या हो जाऊँगा।

यह प्रत्युत्पन्न (अर्थात्मात्र काक) भी लेकर भी अपने भीतर संसद नहीं करता—मैं हूँ, मैं नहीं हूँ, मैं क्या हूँ, मैं कैसा हूँ, मेरा जीवन कहींसे थावा है धार कहीं जायगा।

तो क्यों ? मिथुनो ! क्योंकि आर्यशास्त्र को यह प्रतीत्य समुत्पन्न और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म अच्छी तरह समझ कर स्पष्टतः साक्षात् कर किये गये होते हैं।

आहार-कर्म समाप्त ।

तीसरा भाग

दशबल-वर्ग

§ १. पठम दसबल सुत्त (१२. ३. १)

बुद्ध सर्वोत्तम कहलाने के अधिकारी

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! बुद्ध दशबल और चार वैशारद्य से युक्त हो सर्वोत्तम कहलाने के अधिकारी हैं । सभा में सिंह-नाद करते हैं, मण्डपको प्रवर्तित करते हैं ।

यह रूप है, यह रूप का उगना है, यह रूप का लय हो जाना है । यह वेदना है । यह सज्ञा है । यह संस्कार है । यह विज्ञान है, यह विज्ञान का उगना है, यह विज्ञान का लय हो जाना है ।

सो, एक के होने से दूसरा होता है, एक के उगने से दूसरा उग खड़ा होता है । एक के नहीं होने से दूसरा नहीं होता है, एक के रुक जाने से दूसरा रुक जाता है ।

जो अविद्या के होने से संस्कार होते हैं । इस तरह सारे दुःख-समूह का समुत्पन्न हो जाता है ।

उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से ' ' इस तरह, सारा दुःख समूह रुक जाता है ।

§ २. दुतिय दसबल सुत्त (१२. ३. २)

प्रव्रज्या की सफलता के लिए उद्योग

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! बुद्ध दशबल और चार वैशारद्य से युक्त हो [ऊपर वाले सूत्र की पुनरावृत्ति] इस तरह, सारा दुःख समूह रुक जाता है ।

भिक्षुओ ! मैंने धर्म को साफ साफ कह दिया है—समझा दिया है—खोल दिया है—प्रकाशित कर दिया है—लपेटन काट दिया है ।

भिक्षुओ ! ऐसे धर्म में श्रद्धा से प्रव्रजित हुये कुलपुत्र का वीर्य करना सफल होता है ।—जाम, नाबो, और हड्डियाँ ही भले शरीर में रह जायँ, मांस और लोहित भले ही सूख जायँ—किन्तु, जो पुरुष के उत्साह, पुरुष के वीर्य और पुरुष के पराक्रम से पाया जा सकता है उसे बिना प्राप्त किये उद्योग से मुँह नहीं मोड़ेंगा ।

भिक्षुओ ! काहिल पुरुष पाप-धर्मों में पढ़कर दुःख पूर्ण जीता है, महान् परमार्थ से हाथ धो बैठता है । भिक्षुओ ! और, वीर्यवान् पुरुष पाप-धर्मों से बचा रह, आनन्द-पूर्वक विहार करता है, महान् परमार्थ को पूरा कर लेता है ।

भिक्षुओ ! हीन से अन्न की प्राप्ति नहीं होती, अन्न से ही अन्न की प्राप्ति होती है । भिक्षुओ ! मण्डपचर्य पालन करने की श्रद्धा लाओ, सामने बुद्ध मौजूद हैं । इसलिये, हे भिक्षुओ ! वीर्य करो, अप्राप्त की प्राप्ति के लिये, नहीं पहुँचे हुये स्थान पर पहुँचने के लिये, कभी देखी नहीं गई चीज को साक्षात् करने के लिये ।

इस तरह तुम्हारी प्रयत्ना खाकी नहीं जायगी, बल्कि सफल भीर सिद्ध होगी। जिनका हान किया बीबर पिच्छपात सववासन गकाप्रत्यय भोग क्तोगे उन्हें बड़ा पुण्य प्राप्त होगा।

मिथुनो! तुम्हें इसी तरह सीखना चाहिये। मिथुनो! अपने हित को ध्यान में रखते हुये साधना हो बचाव करो। दूसरों के हित को भी ध्यान में रखते हुये साधना हो उद्योग करो।

३ ३ उपनिषा सुच (१२ ३ ३)

आश्रय क्षय, प्रतीत्य समुत्पाद

श्रापस्त्री में।

मिथुनो! मैं जानते भीर देखते हुये ही आश्रयों के क्षय करन का उपदेश करता हूँ, बिना जाने भार देते नहीं।

मिथुनो! क्या ज्ञान और देखकर आश्रयों का क्षय होता है? यह क्षय है यह क्षय का उपाय है यह क्षय का क्षय हो जाना है। यह बेचना संज्ञा संस्कार। यह विज्ञान है यह विज्ञान का जगता है यह विज्ञान का क्षय हो जाना है। मिथुनो! इसे ही ज्ञान और देखकर आश्रयों का क्षय होता है।

मिथुनो! क्षय होने पर जो क्षय होने का ज्ञान होता है उस भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! क्षय होने के ज्ञान का हेतु क्या है? बिगुक्ति ही हेतु है—ऐसा कहना चाहिये।

मिथुनो! बिगुक्ति को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! बिगुक्ति का हेतु क्या है? बैराग्य ही हेतु है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो! बैराग्य को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! बैराग्य का हेतु क्या है? संसार की भुलाहटों को देख उससे भय करना (बिभ्रित) हेतु है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो! मैं इस भय करने को भी सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! इस भय करने का हेतु क्या है? उच्चका हेतु पारार्थशामदर्शन है—ऐसा कहना चाहिये।

मिथुनो! पारार्थशामदर्शन को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! पारार्थशामदर्शन का हेतु क्या है? उसका हेतु समाधि है—ऐसा कहना चाहिये।

मिथुनो! समाधि का भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! समाधि का हेतु क्या है? उसका हेतु सुप्त है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो! सुप्त को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! सुप्त का हेतु क्या है? उसका हेतु शान्ति (अवधमिष) है—ऐसा कहना चाहिये।

मिथुनो! शान्ति का भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! शान्ति का हेतु क्या है? उसका हेतु प्रीति है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो! प्रीति का भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! प्रीति का हेतु क्या है? उसका हेतु प्रमोद है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो! प्रमोद को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! प्रमोद का हेतु क्या है? उसका हेतु यज्ञ है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो! यज्ञ का भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो! यज्ञ का हेतु क्या है? उसका हेतु कुल है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो! कुल को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ ! दुःख का हेतु क्या है ? उसका हेतु जाति है—ऐसा कहना चाहिये । भिक्षुओ ! जाति को भी मैं सहेतुक बताता हूँ अहेतुक नहीं ।

भिक्षुओ ! जाति का हेतु भव है ।

भिक्षुओ ! भव का हेतु उपादान है ।

भिक्षुओ ! उपादान का हेतु तृष्णा है ।

भिक्षुओ ! तृष्णा का हेतु वेदना है ।

भिक्षुओ ! वेदना का हेतु स्पर्श है ।

भिक्षुओ ! स्पर्श का हेतु पञ्चायतन है ।

भिक्षुओ ! पञ्चायतन का हेतु नामरूप है ।

भिक्षुओ ! नामरूप का हेतु विज्ञान है ।

भिक्षुओ ! विज्ञान का हेतु सस्कार है ।

भिक्षुओ ! सस्कार का हेतु अविद्या है ।

भिक्षुओ ! इस तरह अविद्या के होने से सस्कार, सस्कार के होने से विज्ञान, नामरूप, पञ्चायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, दुःख, दुःख के होने से श्रद्धा, प्रमोद, प्रीति, प्रश्रद्धि, सुख, समाधि, यथार्थ ज्ञान-दर्शन, सत्सार-भक्ति, वैराग्य, वैराग्य से विमुक्ति होती है, विमुक्ति से आश्रवों के क्षय होने का ज्ञान हो जाता है ।

भिक्षुओ ! जैसे पहाड़ के ऊपर मूसलधार वृष्टि होने से, जल नीचे की ओर बह कर गर्बत, कन्दरा प्रदर, शाखा सभी को भर देता है । इन्हे भर जाने से नाले बह निकलते हैं । नालों के भर जाने से ढोड़ियाँ भर जाती हैं । ढोड़ियों के भर जाने से, छोटी-छोटी नदियाँ भर जाती हैं । छोटी-छोटी नदियों के भर जाने से बड़ी-बड़ी नदियाँ भर जाती हैं । बड़ी-बड़ी नदियों के भर जाने से समुद्र सागर भी भर जाते हैं ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, अविद्या के होने से सस्कार, सस्कार के होने से विज्ञान, नामरूप, पञ्चायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, दुःख, श्रद्धा, प्रमोद, प्रीति, प्रश्रद्धि, सुख, समाधि, यथार्थ ज्ञान-दर्शन, सत्सार-भक्ति, वैराग्य, वैराग्य के होने से विमुक्ति और विमुक्ति के होने से क्षय होने का ज्ञान ।

§ ४. अञ्जतिथिय सुत्त (१२ ३ ४)

दुःख प्रतीत्य समुत्पन्न है

राजगृह के वेलुवन में ।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र सुबह में पहन और पात्रचीवर ले भिक्षाटन के लिये राजगृह में पड़े ।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र के मन में ऐसा हुआ—अभी राजगृह में भिक्षाटन करने के लिये कुछ सबेरा है, तो मैं चलेँ जहाँ अन्य तैथिक परिव्राजकों का आराम है ।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ अन्य तैथिक परिव्राजकों का आराम था वहाँ गये, जाकर उनका सम्मोदन किया और कुशल क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् सारिपुत्र को वे अन्य तैथिक परिव्राजक बोले—आजुस सारिपुत्र ! कुछ भ्रमण और ब्राह्मण कर्मचार्दी हैं जो दुःख को अपना स्वयं किया हुआ बताते हैं । आजुस सारिपुत्र ! ऐसे भी कुछ भ्रमण और ब्राह्मण कर्मचार्दी हैं जो दुःख को दूसरे का किया हुआ बताते हैं । आजुस सारिपुत्र ! ऐसे भी कुछ भ्रमण और ब्राह्मण कर्मचार्दी हैं जो दुःख को अपना मय्यं किया हुआ और दूसरे का भी किया हुआ बताते हैं ।

इस तरह तुम्हारी प्रकृति साक्षी नहीं जायगी यदि लक्ष्म और सिद्ध होगी। विपत्त काण
क्रिया बीज, विष्णुपाठ शपथसाधन ध्यानप्रत्येक भोग करोगे उन्हें बड़ा पुण्य प्राप्त होगा।

मिथुनो तुम्हें इसी तरह सीखना चाहिये। मिथुनो ! अपने हित को ध्यान में रखते हुये साध-
नान हो उद्योग करो। दूसरों के हित को भी ध्यान में रखते हुये साधनान हो उद्योग करो।

३ ३ उपनिषा मुच (१२ ३ ३)

आध्वय क्षय प्रतीत्य समुत्पाद

आध्वयसी में।

मिथुनो ! मैं जानते भीर दक्षते हुये ही आध्वयों के क्षय करने का उपदेश करता हूँ, बिना धामे
धर देखे नहीं।

मिथुनो ! क्या धाम और देखकर आध्वयों का क्षय होता है ? यह क्षय है, यह क्षय का उगम है
यह क्षय का क्षय हो जाता है। यह वेदना संज्ञा संस्कार । यह विज्ञान है यह विज्ञान का क्षय
है यह विज्ञान का क्षय हो जाता है। मिथुनो ! इसे ही जान और देखकर आध्वयों का क्षय होता है।

मिथुनो ! धम होने पर जो क्षय होने का ज्ञान होता है उसे भी मैं सहेतुक बताता हूँ,
अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! क्षय होने के ज्ञान का हेतु क्या है ? विमुक्ति ही हेतु है—ऐसा कहना चाहिये।
मिथुनो ! विमुक्ति को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! विमुक्ति का हेतु क्या है ? अराग्य हेतु है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो ! अराग्य को
भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! वैराग्य का हेतु क्या है ? संसार की बुराइयों को देख उससे मग्न करना (अविम्वित्)
हेतु है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो ! मैं इस मग्न करने को भी सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! इस मग्न करने का हेतु क्या है ? उसका हेतु पारमार्थशास्त्रज्ञान है—ऐसा कहना चाहिये।
मिथुनो ! पारमार्थशास्त्रज्ञान को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! पारमार्थशास्त्रज्ञान का हेतु क्या है ? उसका हेतु समाधि है—ऐसा कहना चाहिये।
मिथुनो ! समाधि को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! समाधि का हेतु क्या है ? उसका हेतु मुग्न है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो ! मुग्न
को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! मुग्न का हेतु क्या है ? उमग्य हेतु शान्ति (अप्रसन्निय) है—ऐसा कहना चाहिये।
मिथुनो ! शान्ति का भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! शान्ति का हेतु क्या है ? उमग्य हेतु मोति है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो ! प्रीति
का भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! प्रीति का हेतु क्या है ? उसका हेतु प्रमीद है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो ! प्रमीद
को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! प्रमीद का हेतु क्या है ? उमग्य हेतु अज्ञ है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो ! अज्ञ
को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

मिथुनो ! अज्ञ का हेतु क्या है ? उमग्य हेतु दुग्ण है—ऐसा कहना चाहिये। मिथुनो ! दुग्ण
को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

आनन्द ! एक ओर बैठने पर अन्य तंत्रिक परिव्राजकों ने सुषमं पृष्ठा . . . ।

...[चही प्रशोत्तर जो आयुष्मान् सारिपुत्र के साथ कहा गया है ।]

भन्ते, आश्रयं ते । अमुत्तु है ॥ कि एक ही पद से सारा अर्थ कह दिया गया । भन्ते ! यदि यही अर्थ विन्दार में कहा जाना तो यही सम्भार होता, वेदने में भव्यन्त गहरा साह्य पड़ता ।

तो, आनन्द ! तुम हमें कानो ।

ग

भन्ते ! यदि सुश्रमे कोई पृष्ठे—आयुष आनन्द ! जरामरण का निदान क्या है, ममुदय क्या है, उत्पत्ति क्या है, उद्गम क्या है ?—तो मैं ऐसा उत्तर दूँ—आयुष । जरामरण का निदान जाति है, ममुदय जाति है, उत्पत्ति जाति है, उद्गम जाति है । भन्ते ! ऐसे पृष्ठे जाने से मैं ऐसा ही उत्तर दूँ ।

..जाति का निदान भव है ।

• तव का निदान उपादान है ।

उपादान का निदान तृणा है ।

तृणा का निदान वेदना है ।

..वेदना का निदान स्पर्श है ।

भन्ते ! यदि सुज मे कोई पृष्ठे—आयुष आनन्द ! स्पर्श का निदान क्या है ?—तो मैं ऐसा उत्तर दूँ—आयुष । स्पर्श का निदान पदायतन है । आयुष । इन्हीं छ स्पर्शायतनों के दिखल रक जाने से स्पर्श का होना रक जाता है । स्पर्श के रक जाने से वेदना नहीं होती । वेदना के रक जाने से तृणा नहीं होती । तृणा के रक जाने से उपादान नहीं होता । उपादान के रक जाने से भव नहीं होता । भव के रक जाने से जाति नहीं होती । जाति के रक जाने से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी, परेशानी सभी रक जाने हैं । इस तरह, सारा दुःख-समूह रक जाता है । भन्ते ! ऐसे पृष्ठे जाने से मैं ऐसा ही उत्तर दूँ ।

§ ५. भूमिज सुत्त (१२ ३ ५)

सुख-दुःख सहेतुक है

श्रावस्ती मे ।

क

तव, आयुष्मान् भूमिज सध्या ममथ ध्यान मे उठ, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये, और 'कुशलधेम के गठन पूटकर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् भूमिज आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले—आयुष सारिपुत्र ! कुल ध्रमण और प्राहण कर्मवादी हैं जो सुख-दुःख को अपना म्वय किया हुआ मानते हैं । जो सुख-दुःख को दूसरे का किया हुआ मानते हैं । जो सुख-दुःख को अपना म्वय किया हुआ और दूसरे का किया हुआ मानते हैं । जो सुख-दुःख को अकारण हठात् उपपन्न हो गया मानते हैं ।

आयुष सारिपुत्र ! इस विषय मे भगवान् का क्या कहना है ? क्या कह कर हम भगवान् के सिद्धान्त को यथार्थत यथा सकते हैं, जिससे हम भगवान् के सिद्धान्त में कुछ उलटा-पुलटा न कर दें, उनके धर्म के अनुकूल कहें, और, जिसके कहने से कोई सहधार्मिक वातचीत में निन्धा-स्थान को न प्राप्त हो जाय ।

भाबुस सारिपुत्र ! जीर एस भी कितने भ्रमण और प्राज्ञण कर्मबाही है जो दुःख को न भपना स्वयं किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ किन्तु अकारण इत्यादि हो गया बताते हैं ।

भाबुस सारिपुत्र ! हम विषय में भ्रमण गीतम का क्या कहना है ? क्या कह कर हम भ्रमण गीतम के सिद्धान्त को यथार्थतः बता सकते हैं ? किमसे भ्रमण-गीतम क सिद्धान्त म हम उच्छ्रय-पुच्छय म कर दें, उनक धर्म के अनुकूल कहें, और किसक कहने म काई सहधार्मिक मित्य-स्वात को न प्राप्त हो जाव ।

भाबुस ! भगवान् ने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बतलाया ह । किसके प्रत्यय स (=होने से) ? स्वयं के प्रत्यय स । ऐसा ही कह कर आप भगवान् के सिद्धान्त को यथार्थतः बता सकते हैं किमसे भगवान् के सिद्धान्त म आप उच्छ्रय-पुच्छय म कर दें, उनक धर्म के अनुकूल कहें ।

भाबुस ! जो कर्मबाही भ्रमण या प्राज्ञण दुःख को भपना स्वयं किया हुआ बताते हैं वह भी स्वयं के प्रत्यय ही स होता है । जो कर्मबाही भ्रमण या प्राज्ञण दुःख को भपना स्वयं किया हुआ और दूसरे का भी किया हुआ बताते हैं वह भी स्वयं के प्रत्यय ही न होता ह । जो कर्मबाही भ्रमण या प्राज्ञण दुःख को न भपना स्वयं किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ किन्तु अकारण इत्यादि हो गया बतलाते हैं वह भी स्वयं के प्रत्यय ही से होता है ।

भाबुस ! जो कर्मबाही भ्रमण या प्राज्ञण दुःख को भपना स्वयं किया हुआ बताते हैं वे बिना स्वयं के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं । जो भ्रमण या प्राज्ञण दुःख को अकारण इत्यादि हो गया बताते हैं वे भी बिना स्वयं के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं ।

स्व

भाबुप्मान् भानम् ने अन्य तैत्तिक परित्राजकों के साथ भाबुप्मान् सारिपुत्र को कथा-संज्ञाप करते सुना ।

तब भाबुप्मान् भानम् मिश्रातब स करद मोजव कर लने पर चढ़ीं भगवान् से चढ़ीं गये और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ भाबुप्मान् भानम् ने भगवान् को अन्य तैत्तिक परित्राजकों के साथ भाबुप्मान् सारिपुत्र का जो कुछ कथा-संज्ञाप हुआ था उसे ओं का ल्यों कह सुनाया ।

ठीक ही भानम् ! सारिपुत्र ने ठीक ही समझाया है । मैंने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न (हेतु के होने से उत्पन्न होनेवाला) बताया है । किसके प्रतीत्य स (=होने से) ? स्वयं के प्रत्यय से । ऐसा ही कहकर कोई भी मरे उपदेश को यथार्थतः बता सकता है । ऐसा कहनेवाला मरे सिद्धान्त में कुछ बक्य पुच्छा नहीं करता है । ऐसा कहनेवाला कोई सहधार्मिक बलधीत में मित्य-स्वात को नहीं प्राप्त करता है । भानम् ! जो कर्मबाही भ्रमण या प्राज्ञण दुःख को बताते हैं वह भी स्वयं के प्रत्यय ही से होता है ।

भानम् ! जो कर्मबाही भ्रमण या प्राज्ञण दुःख का बताते हैं वे बिना स्वयं के ही कुछ अनुभव कर लें ऐसा सम्भव नहीं ।

भानम् ! एक समय में इसी राजगृह के धनुषवन कक्षम्कनिवाप में विहार कर रहा था । भानम् ! तब मैं सुपह में पहन और पात्रधीर के मिश्रातब क मित्य राजगृह में पैदा । भानम् ! तब मेरे मन में वह हुआ—जमी राजगृह में मिश्रातब करत क मित्य बचा सवेरा है, ता मैं चढ़ीं अन्य तैत्तिक परित्राजकों का आराम है चढ़ीं चले ।

भानम् ! तब मैं चढ़ीं अन्य तैत्तिक परित्राजकों का आराम था चढ़ीं गया और बक्य सम्मोदन किया; तथा कुशल धेम के प्रथ वृत्ते के बाद एक ओर बैठ गया ।

आनन्द ! एक ओर बैठने पर अन्य तैथिक परिव्राजकों ने मुझसे पूछा ।

• [वही प्रश्नोत्तर जो आयुष्मान् सारिपुत्र के साथ कहा गया है ।]

भन्ते, आश्चर्य है ! अद्भुत है ! कि एक ही पद से सारा अर्थ कह दिया गया । भन्ते ! यदि यही अर्थ विस्तार से कहा जाता तो बड़ा गम्भीर होता, देखने में अत्यन्त गहरा भास्त्रम पड़ता । तो, आनन्द ! तुम इसे कहो ।

ग

भन्ते ! यदि मुझसे कोई पूछे—आयुस आनन्द ! जराभरण का निदान क्या है, समुदय क्या है, उत्पत्ति क्या है, उद्गम क्या है ?—तो मैं ऐसा उत्तर दूँ—आयुस ! जराभरण का निदान जाति है, समुदय जाति है, उत्पत्ति जाति है, उद्गम जाति है । भन्ते ! ऐसे पूछे जाने से मैं ऐसा ही उत्तर दूँ ।

•••जाति का निदान भव है•• ।

• भव का निदान उपादान है ।

• उपादान का निदान तृष्णा है •• ।

तृष्णा का निदान वेदना है ।

• वेदना का निदान स्पर्श है • ।

भन्ते ! यदि मुझ से कोई पूछे—आयुस आनन्द ! स्पर्श का निदान क्या है ••?—तो मैं ऐसा उत्तर दूँ—आयुस ! स्पर्श का निदान पड़ायतन है । आयुस ! इन्हीं छः स्पर्शायतनों के दिक्कल रुक जाने से स्पर्श का होना रुक जाता है । स्पर्श के रुक जाने से वेदना नहीं होती । वेदना के रुक जाने से तृष्णा नहीं होती । तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता । उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता । भव के रुक जाने से जाति नहीं होती । जाति के रुक जाने से जरा, भरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वैचैनी, परेदानी सभी रुक जाते हैं । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है । भन्ते ! ऐसे पूछे जाने से मैं ऐसा ही उत्तर दूँ ।

§ ५. भूमिज सुत्त (१२ ३ ५)

सुख-दुःख सहेतुक है

थावस्ती में ।

क

तब, आयुष्मान् भूमिज सप्था समग्र ध्यान में उठ, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये, और कुशलक्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् भूमिज आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले—आयुस सारिपुत्र ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मयात्री हैं जो सुख-दुःख को अपना म्वय किया हुआ मानते हैं । • जो सुख-दुःख को दूसरे का किया हुआ मानते हैं । • जो सुख-दुःख को अपना म्वय किया हुआ और दूसरे का किया हुआ मानते हैं । • जो सुख-दुःख को अकारण हठान् उत्पन्न हो गया मानते हैं ।

आयुस सारिपुत्र ! इस विषय में भगवान् का क्या कहना है ? क्या कह कर हम भगवान् के निन्दान्त को यथार्थत बसा सकते हैं, जिससे हम भगवान् के सिद्धान्त में कुछ उलटा-पुलटा न कर दें, उनके बर्ण के अनुकूल कहें, और, जिसके कहने से कोई सहधार्मिक धातचीत में निन्दन-रवान को न प्राप्त हो जाय ।

आहुत ! भगवान् ने सुख-दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बताया है । किन्तु प्रतीत्य से ? स्वर्ग के प्रतीत्य से । ऐसा ही कहने वाला भगवान् के सिद्धान्त को पथार्थता बताया है ।

आहुत ! जो कर्मबारी भ्रमण या माहात्म्य सुग-दुःख को 'अकारण इत्यादि उत्पन्न हो गया मानते हैं वह भी स्वर्ग के होने ही से होता है ।

वे बिना स्वर्ग के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं ।

ख

आहुत ! आनन्द ने आहुत ! ने आहुत ! मूर्खिज के साथ आहुत ! सारिपुत्र के कथासंस्कार को सुना । तब आहुत ! आनन्द वहाँ भगवान् से बहोँ गये और भगवान् का अभिवादन करके एक और बैठ गये । एक और बैठ आहुत ! आनन्द ने भगवान् का आहुत ! मूर्खिज के साथ आहुत ! सारिपुत्र का आहुत ! कथासंस्कार हुआ था सभी ज्यों का र्यों कह सुनाया ।

ठीक है आनन्द ! सारिपुत्र ने कहा ठीक समझाया । आनन्द ! मैंने सुख-दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बताया है । किन्तु प्रतीत्य से ? स्वर्ग के प्रतीत्य से । ऐसा कहने वाला मेरे सिद्धान्त को पथार्थता बताया है ।

आनन्द ! जो कर्मबारी भ्रमण या माहात्म्य सुख-दुःख का अकारण इत्यादि उत्पन्न हो गया मानते हैं वह भी स्वर्ग के होने ही से होता है ।

वे बिना स्वर्ग के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं ।

आनन्द ! सारी स कहीं कर्म बरत पर कर्म की चेतना (will) के हनु स अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है । आनन्द ! कोई बचन बोधन पर चार-चेतना के हेतु स अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है । आनन्द ! मन स कुछ वितर्क करन पर मन-चेतना के हेतु स अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है ।

आनन्द ! चाहे अधिष्ठा के कारण जो स्वर्ग काव-स्कार इच्छा करता है उसके प्रायस से उसे अपने में सुग-दुःख उत्पन्न होता है । आनन्द ! चाहे जो स्वर्ग ही काव-स्कार इच्छा करते हैं उसके प्रायस से भी उस अपने में सुग-दुःख उत्पन्न होता है । आनन्द ! चाहे आन-वृत्तर आ काव-स्कार इच्छा करता है उसके प्रायस से उस अपने में सुग-दुःख उत्पन्न होता है । आनन्द ! चाहे बिना स्वर्ग के आ काव-स्कार इच्छा करता है उसके प्रायस से उसे अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है ।

आनन्द ! चाहे स्वर्ग जो काव-स्कार इच्छा करता है उसके प्रायस से उस अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है ।

आनन्द ! चाहे स्वर्ग जो काव-स्कार ।

आनन्द ! इन उः धर्मों में अधिष्ठा स्वर्ग हुई है । अधिष्ठा के विद्वान् हर और एक धर्म से वह कर्म नहीं होता है जिसमें उस सुग-दुःख उत्पन्न हो । वह बचन वह सब के वितर्क नहीं होते हैं जिसमें उसे सुग-दुःख उत्पन्न हो ।

उसे वह सब ही नहीं रहता है आकार ही नहीं रहता है आचरण नहीं रहता हेतु नहीं रहता । जिसके अन्तर्गत उसे अपने में सुख-दुःख उत्पन्न हो ।

६६ उपनिषत्सु (१० ३ ६)

दुःख समुत्पन्न है

धापामी मे ।

तब आहुत ! उपनिषत्सु वहाँ भगवान् से बहोँ गये और भगवान् का अभिवादन करके एक और बैठ गये । एक और बैठ आहुत ! सारिपुत्र के कथासंस्कार हुआ था सभी ज्यों का र्यों कह सुनाया ।

भन्ते ! कितने ध्रमण या ब्राह्मण हैं जो दुःख को स्वयं अपना किया हुआ प्रताते हैं । “ दूसरे का किया । स्वयं अपना किया हुआ भी और दूसरे का किया भी...!...न स्वयं अपना किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ, किंतु अकारण हठात् उत्पन्न ” ।

भन्ते ! इस विषय में भगवान् का क्या कहना है ?

उपवान ! मैंने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बताया है । किसके प्रत्ययसे ? स्पर्शके प्रत्ययसे ।... ”

उपवान ! जो दुःख को...अकारण हठात् उत्पन्न हुआ मानते हैं, वह भी स्पर्श के होने से ही होता है ।

उपवान !...वे चिन्ता स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं ।

§ ७. पञ्च सुत्त (१२. ३ ७)

कार्य-कारणका सिद्धान्त

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! अविद्याके होनेसे सस्कार होते हैं ।... । इस तरह, मारु दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! जराभरण क्या है ? जो उन उन जीवोंके उन उन योनियोंमें बड़ा हो जाना, पुरनिया हो जाना, दौलेंका हट जाना, बाल सफेद हो जाना, झुर्रियों पड़ जानी, उमरका खतमा और हृन्दिग्र्योंका क्षिणिक हो जाना, इसीको कहते हैं जरा । जो उन उन जीवोंके उन उन योनियोंमें तिसक पड़ना, टपक पड़ना, कट जाना, अन्तर्धान हो जाना, सृ-यु, मरण, कला कर जाना, स्वर्ण्यंका छिन्न भिन्न हो जाना, चोलाकी छोड़ देना है । इसी को कहते हैं मरण । ऐसी यह जरा और ऐसी यह मरण । भिक्षुओ ! इसीको कहते हैं जराभरण ।

जाति के समुदयसे जराभरणका समुदय होता है । जातिके निरोधसे जराभरणका निरोध होता है । यही आर्य-अष्टाङ्गिक-मार्ग जराभरणके निरोधका उपाय है । आर्य-अष्टाङ्गिक मार्ग है—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् सङ्कल्प, (३) सम्यक् वाक्, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि ।

भिक्षुओ ! जाति, भय, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, पञ्चायतन, नामरूप, विज्ञान, सस्कार क्या है ?

[देखो—पहला भाग § २ (२)]

अविद्या के समुदय से सस्कार का समुदय होता है । अविद्या के निरोध से सस्कार का निरोध होता है । यही आर्य-अष्टाङ्गिक-मार्ग सस्कार के निरोध करने का उपाय है ।

भिक्षुओ ! जो आर्य-श्रावक इस प्रत्यय को जानता है, प्रत्यय के समुदय को जानता है, प्रत्यय के निरोध को जानता है, प्रत्यय की निरोधगामिनी प्रतिपदा को जानता है—यही आर्य-श्रावक दृष्टिसम्पन्न कहा जाता है, उर्ध्वसम्पन्न भी, सङ्घर्म की प्राप्त भी, सङ्घर्म को देखने वाला भी, शैश्व-ज्ञान से युक्त भी, शैश्व-विद्या से युक्त भी, धर्म के ज्ञोत में आ गया भी, निर्बन्धिकप्रज्ञ भी, अमृत के द्वार पर पहुँच कर खड़ा हुआ भी ।

§ ८. भिक्षु सुत्त (१२. ३. ८)

कार्य-कारणका सिद्धान्त

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! यहाँ, भिक्षु जराभरण को जानता है । जराभरण के समुदय को जानता है, जराभरण के निरोध को जानता है । जराभरण की निरोध-गामिनी-प्रतिपदा को जानता है ।

जाति को जानता है । मरु को जानता है । उपादान को जानता है...। मृषा को जानता है । वेदमा को जानता है । स्वर्ग को जानता है । पद्मावतन को जानता है । नामरूप को जानता है । विशाल को जानता है । संस्कार को जानता है... ।

मिथुनी ! जरा मरण क्या है ? [ऊपर के सूत्र पढ़ा]

§ ९. षष्ठम समणब्राह्मण सूत्र (१० ३ ९)

परमार्थज्ञाता भ्रमण-ब्राह्मण

भाषस्ती मे ।

क

मिथुनी ! जो भ्रमण वा ब्राह्मण जरा मरण जाति मरु उपादान मृषा वेदमा स्वर्ग पद्मावतन नामरूप विशाल संस्कार को नहीं जानते हैं संस्कार के समुच्च को नहीं जानते हैं संस्कार के निरोध को नहीं जानते हैं संस्कार की निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं—उन भ्रमणों की न तो भ्रमणों में गिनती होती है और न ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में । वे आयुष्मान् इसी जन्म में भ्रमण वा ब्राह्मण के परमार्थ को स्वर्ण ज्ञान साक्षात् कर और प्राप्त कर बिहार नहीं करते ।

मिथुनी ! जो भ्रमण वा ब्राह्मण जरा मरण संस्कार की निरोधगामिनी प्रतिपदा को जानते हैं—इन्हीं भ्रमणों की भ्रमणों में गिनती होती है और ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में । वे आयुष्मान् इसी जन्म में भ्रमण वा ब्राह्मण के परमार्थ को स्वर्ण ज्ञान साक्षात् कर और प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

§ १०. द्वादशम समणब्राह्मण सूत्र (१ ३ १०)

संस्कार-पारंगत भ्रमण ब्राह्मण

भाषस्ती मे ।

मिथुनी ! जो भ्रमण वा ब्राह्मण जरा मरण जाति संस्कारों को नहीं जानते हैं समुच्च को नहीं जानते हैं निरोध को नहीं जानते हैं निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं—वे जरा मरण संस्कारों को पार कर लेना ऐसा सम्भव नहीं ।

मिथुनी ! जो भ्रमण वा ब्राह्मण जरा मरण संस्कारों को जानते हैं समुच्च को जानते हैं निरोध को जानते हैं निरोधगामिनी प्रतिपदा को जानते हैं—वे जरा मरण संस्कारों को पार कर लेंगे—वेना हो सकता है ।

दशमस्क पद्य समाप्त

त्रौथा भाग कलार क्षत्रिय वर्ग

§ १. भृतमिदं लुत्त (१२ ४ १)

यथार्थं प्राण

प्रेमा मेने सुता ।

एह नमय भगवान् धाघस्ती मे अनाश्रपिण्डक के जेतवन आराममे विहार करते थे ।

क

यहाँ, भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र को आमन्त्रित किया—मारिपुत्र ! अजित के प्रश्न पूछनेमें यह कहा गया था—

जिन्होंने धर्म जान लिया है, जो इस शासन में योग्यमें योग्य है,

उनके ज्ञान और आधार कहे, है मारिप ! मैं पूछता हूँ ॥

मारिपुत्र ! इस मक्षेप में कहे गये का कौसे विस्तार में अर्थ समझना चाहिये ?

इस पर आयुष्मान् सारिपुत्र चुप रहे ।

दूसरी बार भी ।

तीसरी बार भी आयुष्मान् सारिपुत्र चुप रहे ।

ख

सारिपुत्र ! यह हो गया, तुम देखो । सारिपुत्र ! यह श्रोत गया, तुम देखो ।

भन्ते ! यह हो गया, इसे यथार्थत सम्यक् प्रज्ञा में देखता ह । यह हो गया—इसे यथार्थत सम्यक् प्रज्ञा से देखकर, उसके निर्वेद = विराग = निरोध के लिये यत्नवान् होता है । उसे आहार के हेतु में होते सम्यक् प्रज्ञा में देखता है । इन्से आहार के हेतु में होते सम्यक् प्रज्ञा से यथार्थत देख, आहार के सम्भव के निर्वेद = विराग = निरोध के लिये यत्नवान् होता है । उसके आहार के निरोध से जो हो गया है उसका भी निरोध होना यथार्थत सम्यक् प्रज्ञा से जान निरोध धर्म के निर्वेद = विराग = निरोध = अनुपादान में विमुक्त हो जाता है । भन्ते ! धर्म इसी तरह जाना जाता है ।

भन्ते ! अजित के प्रश्न पूछने में जो यह कहा गया था—

जिन्होंने धर्म ॥

उस मक्षेप से कहे गये का मैं ऐसे ही विस्तार से अर्थ समझता हूँ ।

ग

ठीक है, सारिपुत्र, ठीक है ! निर्वेद=विराग=निरोध=अनुपादान से विमुक्त हो जाता है ।

[ऊपर जो कहा गया है उसी की पुनरुक्ति]

आदि को जानता है । मद्य को जानता है । उपादान को जानता है । नृप्य को जानता है । वेदना को जानता है । स्पर्श को जानता है । पद्मापतन को जानता है । नामरूप को जानता है । विज्ञान को जानता है । संस्कार को जानता है ।

मिथुनी ! अरामरथ क्या है ? [ऊपर क सूत्र पढ़ो]

§ ९ पठम समणब्राह्मण सुत्त (१० ३ ९)

परमार्थहाता भ्रमण-ब्राह्मण

भाषस्ती में ।

क

मिथुनी ! जो भ्रमण या ब्राह्मण अरामरथ आदि मद्य उपादान नृप्य वेदना स्पर्श पद्मापतन नामरूप विज्ञान संस्कार को नहीं जानते हैं संस्कार के समुत्पन्न को नहीं जानते हैं संस्कार के निरोध को नहीं जानते हैं संस्कार की निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं—उन भ्रमणों की न तो भ्रमणों में गिनती होती है और न ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में । वे ध्यायुष्मान् हसी जन्म में भ्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को स्वयं जान साझान् कर और प्राप्त कर बिहार नहीं करते ।

मिथुनी ! जो भ्रमण या ब्राह्मण अरामरथ संस्कार की निरोधगामिनी प्रतिपदा को जानते हैं—हन्ती भ्रमणों की भ्रमणों में गिनती होती है और ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में । वे ध्यायुष्मान् हसी जन्म में भ्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को स्वयं जान साझान् कर और प्राप्त कर बिहार करते हैं ।

§ १० दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (१० ३ १०)

संस्कार-पारंगत भ्रमण ब्राह्मण

भाषस्ती में ।

मिथुनी ! जो भ्रमण या ब्राह्मण अरामरथ आदि संस्कार को नहीं जानते हैं समुत्पन्न को नहीं जानते हैं निरोध को नहीं जानते हैं निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं—वे अरामरथ संस्कारों की पार कर जेंगे ऐसा सम्भव नहीं ।

मिथुनी ! जो भ्रमण या ब्राह्मण अरामरथ संस्कार को जानते हैं समुत्पन्न को जानते हैं निरोध को जानते हैं निरोधगामिनी प्रतिपदा को जानते हैं—वे अरामरथ संस्कारों की पार कर जेंगे—ऐसा ही संभवता है ।

दृशाचम धग ममात्त

मैंने जान लिया कि—जाति क्षीण हो गई, प्रलयचर्य पूरा हो गया, जो करना था तो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा ।

सारिपुत्र ! यदि तुमसे कोई ऐसा पूछे—आहुस सारिपुत्र ! जातिका क्या निदान है,=क्या उत्पत्ति है,=क्या प्रभव है ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि तुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आहुस ! जातिका निदान भव है ।

**भवका निदान उपादान है ।

***उपादानका निदान तृष्णा है ।

तृष्णाका निदान वेदना है ।

सारिपुत्र ! यदि तुमसे कोई ऐसा पूछे—आहुस सारिपुत्र ! क्या जान और देखा लेने से आपको किसी वेदनाके प्रति आसक्ति नहीं होती है ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आहुस ! वेदनायें तीन हैं । कौन सी तीन ? (१) सुखा वेदना, (२) दुःखा वेदना, (३) अट्टल-सुखा वेदना ! आहुस ! यह तीनों वेदनायें अनिश्चय हैं । "जो अनित्य है वह दुःख है" जान, किसी वेदना के प्रति मुझे आसक्ति नहीं होती है ।

ठीक कहा है, सारिपुत्र, ठीक कहा है । इसे सक्षेप में यों भी कहा जा सकता है—जितने अनुभव (=वेदना) हैं, सभी दुःख ही हैं ।

सारिपुत्र ! यदि तुम से कोई पूछे—किस विमोक्ष के आधार पर आपने दूसरों को कहा कि जाति क्षीण हो गई, ऐसा मैंने जान लिया ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आहुस ! भीतर की गाँठों से मैं छूट गया, सारे उपादान क्षीण हो गये, मैं ऐसा स्मृतिमान् होकर विहार करता हूँ कि आश्रव आने नहीं पाते और अपना भी निरादर नहीं होता ।

ठीक कहा है, सारिपुत्र, ठीक कहा है ! इसे सक्षेप में यों भी कहा जा सकता है—भ्रमणो ने जिन आश्रवों का निर्देश किया है उनमें मुझे सबेह बना नहीं है, वे मेरे में प्रहीण हो चुके, मुझे विचिकित्सा भी नहीं रही ।

यह कह, भगवान् आसन से उठ विहार में पैठ गये ।

ग

भगवान् के जाने के बाद ही आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

आहुसो ! भगवान् ने जो मुझे पहला प्रश्न पूछा था वह मुझे विदित नहीं था, इसीलिये कुछ शैथिल्य हुआ । जब भगवान् ने मेरे पहले प्रश्न का अनुमोदन कर दिया, तब मेरे मन में हुआ—

यदि भगवान् मुझे भिन्न-भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से दिन भर इसी विषय में पूछते रहें तो मैं दिन भर भिन्न-भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से उन्हें सतोपजनक उत्तर देता रहूँ ।

यदि भगवान् "रातभर, रात दिन, दो रात दिन, तीन, चार, पाँच, छ, सात रात दिन इसी विषयमें पूछते रहें तो मैं "उत्तर देता रहूँ ।

घ

तब, भिक्षु कलारक्षत्रिय आसनसे उठ, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान्का अभिवादन कर एक एक ओर बैठ गया ।

४२ कलार सुप्त (१० ४ २)

प्रतीय समुत्पात् सारिपुत्र का सिद्धान्त

धायन्ती में ।

क

तब मिश्र कलारक्षत्रिय बहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र ये बहाँ जाया । आकर आयुष्मान् सारिपुत्र का सम्मोहन किया, तथा कुलक्षेत्र के प्रश्न पूछ कर एक और बैठ गया ।

एक और बैठ मिश्र कलारक्षत्रिय आयुष्मान् सारिपुत्र से बोला—

आहुस सारिपुत्र ! मिश्र मोक्षियफगुण भीतर छोड़ गृहस्थ हो गयाई । उस आयुष्मान् ने इस धर्मविनय में आधासन नहीं पाया ।

क्या आप आयुष्मान् सारिपुत्र न इस धर्मविनय में आधासन पाया है ।

आहुस ! इसमें मुझे कुछ संशय नहीं है ।

आहुस ! धर्मिण्यकक में ।

आहुस ! इसकी मुरा विधिक्रिया नहीं है ।

तब, मिश्र कलारक्षत्रिय आसन से उठ बहाँ भगवान् थ बहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर एक और बैठ गया ।

एक और बैठ मिश्र कलारक्षत्रिय भगवान् से बोला “मन्ते ! सारिपुत्र ने जान किया है कि जाति क्षीण हो गई, मद्यधर्म पूरा हो गया जो करना था सो कर लिया अब और कुछ बाकी नहीं बचा है—ऐसा मैं जानता हूँ ।”

तब भगवान् ने किसी मिश्र को आमन्त्रित किया—ई मिश्र ! सुनो आकर सारिपुत्र को कहे कि कुछ तुम्हें बुझा रहे हैं ।

मन्ते ! बहुत अच्छा कह वह मिश्र भगवान् को उत्तर दे बहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र ये बहाँ गया और बोला—आहुस सारिपुत्र ! आपकी बुझ बुझा रहे हैं ।

“आहुस ! बहुत अच्छा” कह, आयुष्मान् सारिपुत्र उस मिश्र को उत्तर दे बहाँ भगवान् ने बहाँ गए आर भगवान् का अभिवादन करके एक और बैठ गये ।

ख

एक और बैठे हुये आयुष्मान् सारिपुत्र को भगवान् ने कहा—सारिपुत्र ! क्या तुमने सचमुच आश्चर्य ऐसा कहा है कि मैं जानता हूँ कि जाति क्षीण हो गई, मद्यधर्म पूरा हो गया ?

मन्ते ! मैंने इन बातोंको इस तरह नहीं कहा है ।

सारिपुत्र ! जिन किसी तरहकी बुझपुत्र दूसरेको कहे किन्तु कहा हुआ तो कहा हुआ ही हुआ ।

मन्ते ! तभी तो मैं कहता हूँ कि मैंने इन बातोंको इस तरह नहीं कहा है ।

सारिपुत्र ! यदि तुमस कोई पूछे—आहुस सारिपुत्र ! क्या आप और वैकुण्ठ अपने दूसरोंको कहा कि “जाति क्षीण हो गई, मद्यधर्म पूरा हो गया जो करना था सो कर लिया अब और कुछ बाकी नहीं बचा है—ऐसा मैंने जान किया है ?”—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

मन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आहुस ! जिस विद्वान् (२० वैद) स जाति होती है उस विद्वान्क धर्म हो जायेसे मैंने जान किया कि उसका भी धर्म हो गया । वह आश्चर्य

मैंने जान लिया कि—जहाँ क्षीण हो गई, प्रलयार्थ पूरा हो गया, जो करना था मैं कर लिया, धन और कुछ बाकी नहीं बचा ।

सावित्रि ! यदि तुमसे कोई ऐसा पूछे—आतुम सावित्रि ! जानिऊ क्या निदान है, क्या उपपत्ति है, क्या प्रभव है ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आतुम ! जातिका निदान भय है ।

••• भयका निदान उपादान है ।

••• उपादानका निदान कृपा है ।

कृपाका निदान वेदना है ।

सावित्रि ! यदि तुमसे कोई ऐसा पूछे—आतुम सावित्रि ! क्या जान और देख लेने से आपको किसी चेदनाके प्रति आकर्षित नहीं होती है ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आतुम ! चेदनायें तीन हैं । कौन सी तीन ? (१) सुखा वेदना, (२) दुःखा वेदना, (३) अदुःख सुखा वेदना । आतुम ! यह तीनों वेदनायें अनित्य हैं । “जो अनित्य है वह दुःख है” जान, किसी चेदना के प्रति मुझे आकर्षित नहीं होती है ।

ठीक कला है, सावित्रि, ठीक कहा है । हमें सक्षेप में यों भी कहा जा सकता है—जितने अनुभर (=वेदना) हैं, सभी दुःख ही हैं ।

सावित्रि ! यदि तुम से कोई पूछे—किस विमोक्ष के आधार पर आपने दुःखों को कहा कि जाति क्षीण हो गई, ऐसा मैंने जान लिया ?—ता तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आतुम ! भारत की गाँवों में मैं छूट गया, भारे उपादान क्षीण हो गये, मैं ऐसा स्मृतिमान् होकर विहार करता हूँ कि आश्रय आने नहीं पाते और अपना भी निराश्र नहीं होता ।

ठीक कहा है, सावित्रि, ठीक कला है । हमें सक्षेप में यों भी कहा जा सकता है—भ्रमणों से जिन आश्रयों का निर्द्वेष किया है उनमें मुझे सदेह बना नहीं है, वे मेरे में प्रहीण हो चुके, मुझे त्रिचिकित्सा भी नहीं रही ।

यह कह, भगवान् आसन से उठ विहार में पैठ गये ।

ग

भगवान् के जाने के बाद ही आयुष्मान् सावित्रि ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

आतुमो ! भगवान् ने जो मुझे पहला प्रश्न पूछा था वह मुझे विदित नहीं था, इसीलिये कुछ प्रश्नित्व हुआ । जब भगवान् ने मेरे पहले प्रश्न का अनुमोदन कर दिया, तब मेरे मन में हुआ—

यदि भगवान् मुझे भिन्न-भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से दिन भर इसी विषय में पूछते रहें तो मैं दिन भर भिन्न-भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से उन्हें सतोषजनक उत्तर देता रहूँ ।

यदि भगवान् ‘रातभर, रात दिन, दो रात दिन, तीन, चार, पाँच, छ, सात’ रात दिन इसी विषयमें पूछते रहें तो मैं ‘उत्तर देता रहूँ ।

घ

तब, भिक्षु कलारक्षत्रिय आसनसे उठ, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् का अभिवादन कर एक एक ओर बैठ गया ।

एक जोर बैठ कलारभूमिय मिथु भगवान्से बोला—भन्ते ! आमुष्मान् सारियुञ्ज मे सिंहनाद किया है कि आनुतो ! यदि भगवान् सात रातदिब हूँतो बिषयमें पूछते रहें तो मैं बैचर देता हूँ। हे मिथु ! सारियुञ्जे (प्रतीत्य समुत्पाद्) बर्मको पूरा-पूरा समझ किया है। यदि मैं सात रात दिब मी "हूँती बिषयमें पूछता हूँ तो वह" उचर देता रहेगा।

§ ३ पठम भाष्यवस्तु सूक्त (१२४३)

ज्ञानके विषय

आवस्ती में।

मिथु ७० ! मैं ७७ ज्ञानके विषयोंका उपदेश करूँगा। उसे तुमनी अच्छी तरह मन लगाओ मैं करता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह मिथुमोंने भगवान्को उचर दिया।

भगवान् बोले—मिथुमो ! ज्ञानके ७७ विषय कौनसे हैं ?

अरामरमक ज्ञान अरामरमके समुद्बक ज्ञान अरामरमके विरोधक ज्ञान अरामरमकी विरोध गामिनी प्रतिपदा का ज्ञान।

१—८ आतिष्क ।

९—१२ मन ।

१३—१९ अपादाव ।

१७—२ तृष्णा ।

२१—२४ वेदना ।

२५—२८ स्वर्ग ।

२९—३२ पद्मावतन ।

३३—३६ नामरूप ।

३७—४ विज्ञान ।

४१ संस्कार का ज्ञान ४२ संस्कार के समुद्बक ज्ञान ४३ संस्कार के विरोध का ज्ञान और ४४ संस्कार की विरोधगामिनी प्रतिपदा का ज्ञान।

मिथुमो ! यही ७७ ज्ञान के विषय कहे जाते हैं।

मिथुमो ! अरामरम क्या है ? [देखो बुद्धबर्ग पहला भाग § २ (९)]

मिथुमो ! आति के समुद्ब से अरामरम का समुद्बक होता है; आति के विरोध से अरामरम का विरोध होता है। अरामरम की विरोधगामिनी प्रतिपदा यही अर्थांगिक मार्ग है जो कि (१) सम्बद्धि, (२) सम्बद्ध सकल्प (३) सम्बद्ध बाध (४) सम्बद्ध कर्मात्ता (५) सम्बद्ध आजीव (६) सम्बद्ध व्यापाम (७) सम्बद्ध स्थिति (८) सम्बद्ध समाधि।

मिथुमो ! जो कार्य बाधक हूँ तो अरामरम को जान लेता है अरामरम के समुद्बक को जान लेता है अरामरम के विरोध को जान लेता है अरामरम की विरोधगामिनी प्रतिपदा को जान लेता है; यही जलका बर्तन-जान है। जो हूँ तो बर्म को देख लेता है जान कटा है पर्वुव लुप्तता है प्राप्त कर लेता है अकार्यता अकार्यता कर लेता है यही अतीत और अवागत में केवल मदक करता है।

अतीत बाध में जिन अमन वा आद्यमे अरामरम को बाधक है उनमे हूँ तो तरह जाना है ज्ञान में कह रहा हूँ।

अजिन में जो अमन वा आद्यमे अरामरम को बाधते वे हूँ तो तरह जानते ज्ञान में कह रहा हूँ। वह अरामरम का ज्ञान है।

भिक्षुओ ! जिन आर्य धावकों को (१) धर्म का ज्ञान, और (२) परम्परा का ज्ञान परिशुद्ध हो जाता है, वे आर्य धावक दृष्टि-सम्पन्न कहे जाते हैं, दर्शन सम्पन्न, धर्म में पहुँचे हुये, धर्मदृष्टा, शैक्ष्य ज्ञान से युक्त, शैक्ष्य विद्या से युक्त, धर्म-स्रोतापन्न, आर्य निर्वैधिकप्रज्ञ, और अमृत के द्वार पर पहुँच कर खड़े होने वाले कहे जाते हैं ।

भिक्षुओ ! जाति . , भव . , उपादान . , तृष्णा . , वेदना . , स्पर्श . , पद्दायतन . , नाम-रूप . . . , विज्ञान . , संस्कार . ।

§ ४. तृतीय जाणवत्थु सुत्त (१२ ४. ४)

ज्ञान के विषय

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! मैं ७७ ज्ञान के विषयों का उपदेश करूँगा । उसे सुनो... ।

भिक्षुओ ! ७७ ज्ञान के विषय कौन से हैं ?

(१) जाति के प्रत्यय से जरामरण होने का ज्ञान, (२) जाति के नहीं होने से जरामरण के नहीं होने का ज्ञान, (३) अतीत काल में भी जाति के प्रत्यय से जरामरण हुआ करता था इसका ज्ञान, (४) अतीत काल में भी जाति के नहीं होने से जरामरण नहीं होता था इसका ज्ञान, ५-६ भविष्य में भी, ... और (७) जिन धर्मों की स्थिति का ज्ञान है वे भी क्षय होने वाले, व्यय होने वाले, छूटने वाले और रुक जाने वाले हैं—इसका ज्ञान ।

२ भव के प्रत्यय से जाति होने का ज्ञान ।

३. उपादान के प्रत्यय से भव ।

४. तृष्णा के प्रत्यय से उपादान ।

५. वेदना के प्रत्यय से तृष्णा ।

६. स्पर्श के प्रत्यय से वेदना ।

७ पद्दायतन के प्रत्यय से स्पर्श... ।

८ नामरूप के प्रत्यय से पद्दायतन ।

९ विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप ।

१० संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान ।

११ अविद्या के प्रत्यय से संस्कारों के होने का ज्ञान... ।

भिक्षुओ ! यही ७७ ज्ञान के विषय कहे गये हैं ।

§ ५. पठम अविज्जा पच्चया सुत्त (१२ ४ ५)

अविद्या ही दुःखों का मूल है

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! अविद्या के प्रत्यय (=होने) से संस्कार होते हैं । संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान होता है... । इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है ।

ऐसा कहने पर एक भिक्षु ने भगवान् को शब्द कहा—

अन्ते ! जरामरण क्या है, और जरामरण किसको होता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है । भिक्षु ! जो ऐसा कहे कि "जरामरण क्या है, और जरामरण किसको होता है", अथवा जो ऐसा कहे कि "जरामरण दूसरी ही चीज है, और दूसरे ही को वह

जरामरण होता है जो श्वर दोनों का अर्थ एक है, केवल शब्द ही भिन्न हैं। मिथु ! जो जीव है बही शरीर है, जो जीव दूसरा है और शरीर दूसरा—ऐसी दृष्टि रखनेवाले का महाधर्मपात्र सफ़्त नहीं हो सकता है। मिथु ! इन दोनों अर्थों को छोड़ कुछ मध्य से धर्म का उपदेश करते हैं कि जाति के प्रत्यय से जरामरण होता है।

मन्ते ! जाति क्या है और किसकी जाति होती है ?

भयबाहू बोले—पूसा पुष्पा ही गरुड है। [जैसा ऊपर कहा गया है] मिथु ! इन दोनों अर्थों को छोड़ कुछ मध्य से धर्म का उपदेश करते हैं कि भव के प्रत्यय से जाति होती है।

उपादान के प्रत्यय से मय ।

पुष्पा के प्रत्यय से उपादान ।

बेदना के प्रत्यय से पुष्पा ।

स्पर्श के प्रत्यय से बेदना ।

पञ्चायतन के प्रत्यय से स्पर्श ।

नामरूप के प्रत्यय से पञ्चायतन ।

विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप ।

संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान ।

अधिष्ठा के प्रत्यय से संस्कार ।

मिथु ! उसी अधिष्ठा के विषयक इन और एक जाति से जो कुछ भी गणनाही और उकड़ी पकड़ी है कि—जरामरण क्या है और जरामरण होता है किसकी, जबका जरामरण दूसरी जीव है और किसी दूसरे को जरामरण होता है, जबका जो जीव है बही शरीर है और जीव दूसरा है और शरीर दूसरा—सभी इन जाति के विरुद्ध हो जाती है फिर भी उगमै कायक नहीं रहती है।

जाति संस्कार सभी इन जाति है ।

४ ६ दुतिय अधिष्ठा पञ्चमा सुप्त (१२ ४ ६)

अधिष्ठा ही तुकों का मूल है

आयत्नी में ।

मिथुओ ! अधिष्ठा के प्रत्यय से संस्कार होते हैं । इस तरह सारा दुःख-ससूद उठ बना होता है ।

मिथुओ ! यदि कोई पूछे कि जरामरण क्या है और जरामरण होता किसकी है। भयबा यह कि जरामरण कुछ दूसरी ही जीव है और किसी दूसरे ही जीव को जरामरण होता है, तो मिथुओ दोनों का एक ही अर्थ है ।

मिथुओ ! जो जीव है बही शरीर है, जबका जीव दूसरा है और शरीर दूसरा—ऐसी सिध्दाधि होने से महाधर्म प्राप्त नहीं हो सकता है ।

मिथुओ ! इन दोनों अर्थों को छोड़ कुछ मध्य से धर्म का उपदेश करते हैं ।

मिथुओ ! यदि कोई पूछे कि जाति क्या है ।

मय क्या है ।

उपादान क्या है ।

पुष्प क्या है ।

-- बेदना क्या है ।

-- स्पर्श क्या है ।

• पदायतन पया हे • ।

• नामक्य पया हे ।

• विज्ञान पया हे • ।

• मस्कार पया हे • । भिक्षुओ ! इन दोनों धर्मों को छोड़ बुद्ध मध्य में धर्म का उपदेश करते

हैं, कि, भविष्या के प्रत्यय से मस्कार होते हैं ।

भिक्षुओ ! उन्नी भविष्या के दिक्कल हट और रुक जाने से जो बुद्ध मद्ययर्दी और उल्टी पलटी हैं, कि—जराभरण पया है, और जराभरण होता है विम्वी, भधवा, जराभरण दसरी पाजा है । --गमी हट जाती है ।

जाति—मस्कार गमी हट जाती है ।

§ ७. न तुम्ह सुत्त (१२. ४. ७)

शरीर अपना नहीं

धावस्ती में ।

भिक्षुओ ! यह कया न तुम्हारी अपना है, और न दूसरे किसी की । भिक्षुओ ! यह पूर्व कर्मों के फलस्वरूप, चेतना और वेदना से युक्त, प्रत्ययों के होने से उत्पन्न है ।

भिक्षुओ ! आर्यधावक इसे नीरस प्रतीत्यसमुत्पाद का ही ठीक से समझ करता है ।

इस तरह, इसके होने से यह होता है, इसके उत्पाद से यह उत्पन्न हो जाता है । इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है ।

भविष्या के प्रत्यय से मस्कार ।

उन्नी भविष्या के दिक्कल हट और रुक जाने से ।

§ ८. षष्ठम चेतना सुत्त (१२. ४. ८)

चेतना और संकल्प के अभाव में मुक्ति

धावस्ती में ।

भिक्षुओ ! जो चेतना करता है, किसी काम को करने का संकल्प करता है, किसी काम में लग जाता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है । विज्ञान के बने रहने से, बढ़ते रहने से, भविष्य में बार-बार जन्म लेता है । भविष्य में बार-बार जन्म लेने से जराभरण, शोक बना रहता है । इस तरह, सारा दुःख-समुद्ग उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! जो चेतना नहीं करता है, संकल्प नहीं करता है, किन्तु काम में लग जाता है, वह भी विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है । विज्ञान के बने रहने, बढ़ते रहने से, भविष्य में बार-बार जन्म लेता है । भविष्य में बार-बार जन्म लेने से जराभरण शोक बना रहता है । इस तरह, सारा दुःख-समुद्ग उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! जो चेतना नहीं करता है, संकल्प नहीं करता है, और न किसी काम में लगता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन नहीं होता है । विज्ञान के बने नहीं रहने से, बढ़ते नहीं रहने से भविष्य में बार-बार जन्म नहीं लेता है । भविष्य में जन्म नहीं होने से जराभरण, शोक से छूट जाता है । इस तरह, सारा दुःख-समुद्ग रुक जाता है ।

§ ९ द्वितीय चेतना सुप्त (१० ४ ९)

चेतना भीर संकल्प के अभाव में मुक्ति

ध्यायस्ती में ।

मिथुनी ! जो चेतना करता है संकल्प करता है किसी काम में क्या जाता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल होता है। आकम्बल होने से विज्ञान जमा रहता है। विज्ञान के जमे रहने और बढ़ते रहने से नाम-रूप उगते रहते हैं।

नाम रूप के होने से पदापत्तन होता है। पदापत्तन के होने से स्वप्न होता है। वेदना ।
पृष्ठा । 'उपादान । भव । साति । अरामरम ।

मिथुनी ! जो चेतना नहीं करता है संकल्प नहीं करता है किन्तु काम में क्या रहता है वह विज्ञान की स्थिति में बनाये रखने का आकम्बल होता है। आकम्बल होने से विज्ञान जमा रहता है। विज्ञान के जमे रहने और बढ़ते रहने से नाम-रूप उगते रहते हैं।

अरामरम 'सारा दुःख-समूह उठ जाता होता है।

मिथुनी ! जो चेतना नहीं करता संकल्प नहीं करता और न उसमें क्या रहता है वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल नहीं होता है। आकम्बल नहीं होने से विज्ञान संहारा नहीं पाता। विज्ञान के संहारा व पाने से नाम रूप नहीं उगते।

नाम-रूप के एक जाने से पदापत्तन नहीं होता । इस तरह सारा दुःख-समूह एक जाता है।

§ १० तृतीय चेतना सुप्त (१० ४ १०)

चेतना भीर संकल्प के अभाव में मुक्ति

ध्यायस्ती में ।

मिथुनी ! जो चेतना करता है संकल्प करता है किसी काम में क्या जाता है वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल होता है। आकम्बल होने से विज्ञान जमा रहता है।

विज्ञान के जमे रहने और बढ़ने से सुकाम (=गति) होता है। सुकाम होने से भविष्य में गति होती है। भविष्य में गति होने से मरणा-जीवा होता है। मरणा-जीवा होने से साति अरामरम । इस तरह सारा दुःख-समूह एक जाता होता है।

मिथुनी ! जो चेतना नहीं करता संकल्प नहीं करता किन्तु किसी काम में क्या रहता है वह भी विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल होता है। इस तरह सारा दुःख-समूह उठ जाता होता है।

मिथुनी ! जो चेतना नहीं करता संकल्प नहीं करता काम में नहीं क्या रहता वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आकम्बल नहीं होता है। आकम्बल नहीं होने से विज्ञान जमा नहीं रहता है और बढ़ने नहीं पाता।

विज्ञान के न जमे रहने और न बढ़ते रहने से सुकाम (=गति) नहीं होता है। सुकाम नहीं होने से भविष्य में गति भी नहीं होती। गति नहीं होने से जीवा-मरणा नहीं होता। सारा दुःख-समूह एक जाता है।

कछार इन्धिय बगै समाप्त ।

पाँचवाँ भाग

गृहपति वर्ग

§ १. पठम पञ्चवेरभय सुक्त (१२. ५. १)

पाँच वैर-भय की शान्ति

श्रावस्ती मे ।

क

तत्र, अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति से भगवान् बोले—गृहपति ! जब आर्य श्रावक के पाँच वैर-भय शान्त हो जाते हैं, चार स्रोतापत्ति के अगों से युक्त हो जाता है, आर्य ज्ञान प्रज्ञा से अच्छी तरह देख और समझ लिया गया होता है, तो वह यदि चाहे तो अपने को ऐसा कह सकता है—मेरा निरय क्षीण हो गया, मेरी तिरक्षीन-योनि क्षीण हो गई, मेरी प्रेत-योनि क्षीण हो गई, मेरा अपाय और दुर्गति में पचना क्षीण हो गया । मैं स्रोतापन्न हो गया हूँ, मैं मार्ग से च्युत नहीं हो सकता, परम ज्ञान को प्राप्त कर लेना मेरा निश्चय है ।

कौन से पाँच वैर भय-शान्त हो जाते हैं ?

गृहपति ! जो प्राणी-हिंसा है, प्राणी-हिंसा करने से जो इसी जन्म में, या दूसरे जन्म में भय और वैर बढ़ाता है, चित्त में दुःख और दौर्गमनस्य भी बढ़ाता है, सो भय और वैर प्राणी-हिंसा से विरत रहने वाले को शान्त हो जाते हैं ।

गृहपति ! सो भय और वैर चोरी करने से विरत रहने वाले को शान्त हो जाता है ।

गृहपति ! सो भय और वैर मिथ्याचार, मृषा भाषण, गरीबी वस्तुओं के सेवन करने से विरत रहने वाले को शान्त हो जाता है ।

यही पाँच वैर-भय शान्त हो जाते हैं ।

ख

किन चार स्रोतापत्ति के अगों से युक्त होता है ?

गृहपति ! जो आर्य-श्रावक बुद्ध के प्रति अच्छे श्रद्धालु होता है—वे भगवान् अर्हन्, सम्यक्-सम्बुद्ध, विद्याचरण से सम्पन्न, सुगति को पाये, लोकविद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने वाले, देवता और मनुष्यों को राह दिखाने वाले भगवान् बुद्ध ।

गृहपति ! जो आर्य-श्रावक धर्म के प्रति अच्छे श्रद्धालु होता है—भगवान् का धर्म स्वाख्यात है, साहित्यिक है, (=इसी जन्म में फल देने वाला है), अकालिक (=बिना देरी के फल देने वाला है), लोगों को बुला बुला कर दिखाया जानेवाला है (=प्रक्षिपसिक्क), निर्घाण तक ले जाने वाला है, विघ्नों के द्वारा अपने भीतर ही (=प्रत्यात्म) अनुभव किया जानेवाला है ।

गृहपति ! जो आर्ध-आयक संघ के प्रति अयत्न भ्रष्टास्तु होता है—भगवान् का आयक संघ सुमार्ग पर आरूप है सीधे मार्ग पर आरूप है शान्त क मार्ग पर आरूप है अच्छी तरह स मार्ग पर आरूप है । जो यह पुण्यों का चार बोधा आठ जाने, पही भगवान् का आयक-संघ है । पही आयक-संघ निर्मलित करण क योग्य है सत्कार करने के योग्य है शान्त देने के योग्य है प्रणाम करने के योग्य है लोक का अनुसर पुण्य क्षेत्र है ।

सुन्दर सीधों से युक्त होता है; अत्यन्त अछिन्न भ्रमक निर्दोष सुता हुआ विज्ञों से प्रवर्धित समाधि क अनुकूल सीधों से ।

इन चार आवापति के अर्थों से युक्त होता है ।

प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा और जाना इसका आर्य ज्ञान क्या है ?

गृहपति ! आर्य-आयक प्रतीत्यसमुत्पाद की ही डीक से भावना करता है । इसके होने से यह होता है इस तरह सारा दुःख-समुत्पाद टक जाता है ।

पही प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा और जाना इसका आर्य ज्ञान होता है ।

§ २ द्वितीय पञ्चवेरमय सुक्त (१२ ५ २)

पौष वैर मय की शान्ति

आवसती मे ।

तव कुत्र मिथुनो वहाँ भगवान् के वहाँ ।

भगवान् बोले— [ऊपर बाक सूक्त के समाप्त ही] ।

§ ३ दुःख सुक्त (१२ ५ ३)

दुःख और अस्वका छय

आवसती मे ।

मिथुनो ! मैं दुःख के समुत्पाद और कब हो जाने के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

कु

मिथुनो ! दुःख का समुत्पाद क्या है ?

असु और कर्षों के होने से असु-विज्ञान पैदा होता है । तीनों का मिथुना स्वर्ग है । स्वर्ग के होने से वेदना । मिथुनो ! इसी तरह दुःख का समुत्पाद होता है ।

भोज और शपत्तों के होने से । आज और गन्धों के होने से । मिथुन और रसों के होने से । कषा और गृहणों के होने से ।

मन और जनों के होने से धर्मोक्तिज्ञान पैदा होता है । तीनों का मिथुना स्वर्ग है । स्वर्ग के होने से वेदना होती है । मिथुनो ! वही दुःख का समुत्पाद है ।

ख

मिथुनो ! दुःख का कब हो जाना (अनर्हणमः) क्या है ?

असु और कर्षों के होने से असु-विज्ञान पैदा होता है । तीनों का मिथुना स्वर्ग है । स्वर्ग के होने से वेदना होती है । वेदना के होने से दुःख होती है ।

उसी तृष्णा को बिलकुल हटा और रोक देने से उपादान नहीं होता। उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता। '। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

भिक्षुओ ! यही दुःख का लय हो जाना है।

श्रोत्र और शब्द ' मन और धर्मों के होने से '। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है। '

§ ४. लोक सुत्त (१२. ५ ४)

लोक की उत्पत्ति और लय

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! लोक के समुदय और लय हो जाने के विषय में उपदेश कहेँगा। "

क

भिक्षुओ ! लोक का समुदय क्या है ?

चक्षु और रूपों के होने से [पूर्ववत्] भिक्षुओ ! यही लोक का समुदय है।

ख

भिक्षुओ ! यही लोक का लय हो जाना है।

§ ५. जातिका सुत्त (१२. ५. ५)

कार्य-कारण का सिद्धान्त

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् जातिक में गिञ्जकावस्थ में विहार कर रहे थे।

क

तब, एकान्त में ध्यान करते हुये भगवान् ने इस प्रकार धर्म का उपदेश दिया—

चक्षु और रूपों के होने से चक्षुविज्ञान पैदा होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। वेदना के होने से तृष्णा होती है "। इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

श्रोत्र और शब्दों के होने से " , मन और धर्मों के होने से ।

चक्षु और रूपों के होने से चक्षुविज्ञान पैदा होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। वेदना के होने से तृष्णा होती है।

उसी तृष्णा के बिलकुल हट और रुक जाने से उपादान नहीं होता। उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता। " इस तरह सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

श्रोत्र और शब्दों के होने से , भव और धर्मों के होने से ।

ख

उस समय कोई भिक्षु भगवान् के पास खड़ा होकर सुन रहा था।

भगवान् मे डले पास में गया हो मुगते देया । देरकर उस भिगु को कहा—भिगु ! तुमने मुना बिन प्रकार सैने धम का कहा ?

भय ! जी हौं ।

भिगु ! हुमी प्रकार धम का सीलो । भिगु ! हुमी प्रकार धर्म को पूरा करो । भिगु ! हुमी प्रकार यह धम अर्पवान् हाता है । अन्नधर्म-वाम का यह मूल-उपदेश है ।

३ ६ अञ्जतर मुत्त (१० ५ ६)

मध्यम माग का उपदेश

धायन्ती में ।

तब कोई ब्राह्मण जहाँ भगवान् से बहों आया । आकर कुशल धम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ कर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! क्या जो करता है बड़ी भागता है ? ब्राह्मण ! क्या कहना कि जो करता है बड़ी भागता है एक धम्म है ।

हे गौतम ! क्या करता है कोई दूसरा और भागता है कोई दूसरा ?

हे ब्राह्मण ! क्या कहना कि "कहना है कोई दूसरा और भागता है कोई दूसरा" दूसरा धम्म है ।

ब्राह्मण ! हम तुम्हारे धर्मों का साथ कुछ मध्यम से धर्म का उपदेश करता है ।

अधिका क हान से संवहार हान है ।

उर्गा अधिका क विपयुल हट और एक कामे से" ।

क्या कहने पर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला—" मुझ अपना शरणागत उपासक शरीकार करें ।

३ ७ जानुम्मोणि मुत्त (१० १ ७)

मध्यम माग का उपदेश

धायन्ती में ।

तब जानुधायि ब्राह्मण जहाँ भगवान् से बहों आया आर कुशल धम के प्रश्न पूछ कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ जानुधायि ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! क्या सभी कुछ है ?

हे ब्राह्मण ! क्या कहना कि "सभी कुछ है" सब ही सही सब काम है ।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ नहीं है ?

हे ब्राह्मण ! क्या कहना कि "सभी कुछ नहीं है" दूसरा धम्म है । ब्राह्मण ! हम तुम्हारे धर्मों का साथ कुछ मध्यम धर्मों से [उपर के मूल उपास] ।

३ ८ साचायग मुत्त (१० ५ ८)

मौक्तिक मागों का उपास

धायन्ती में ।

तब साचायगिण्ड ब्राह्मण जहाँ भगवान् से बहों आया आर कुशल धम के प्रश्न पूछ कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ कर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! क्या सभी कुछ है ?

हे ब्राह्मण ! क्या कहना कि "सभी कुछ है" सब ही सही सब काम है ।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ नहीं है ?

हे ब्राह्मण ! क्या कहना कि "सभी कुछ नहीं है" दूसरा धम्म है ।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ एकत्व (=अद्वैत) है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि "सभी कुछ एकत्व ही है" तीसरी लौकिक बात है ।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ नाना है ?

हे गौतम ! "सभी कुछ नाना है" ऐसा कहना चौथी लौकिक बात है । ब्राह्मण ! इन अन्तों को छोड़ बुद्ध मध्यम से** ।

§ ९. षष्ठम अरियसावक सुत्त (१२ ५. ९)

आर्यश्रावक को प्रतीत्यसमुत्पाद में सन्देह नहीं

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक को ऐसा संदेह नहीं होता—पता नहीं कि क्या होने से क्या होता है ? किसके उत्पन्न होने से क्या उत्पन्न होता है ? किसके होने से सत्कार होते हैं ?** किसके होने से जरामरण होता है ?

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक को यह ज्ञान तो प्राप्त ही होता है—इसके होने से यह होता है*** जाति के होने से जरामरण होता है । वह जानता है कि लोक का समुदय इस प्रकार होता है ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक को ऐसा संदेह नहीं होता—पता नहीं, किसके रुक जाने से क्या नहीं होता ?*** किसके रुक जाने से जरामरण नहीं होता ?

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक को तो यह प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान प्राप्त ही होता है—इसके रुक जाने से यह नहीं होता **जाति के रुक जाने से जरामरण नहीं होता है । वह जानता है कि लोक का निरोध इस प्रकार है ।

भिक्षुओ ! क्योंकि वह लोक के समुदय और निवृद्ध होने को थयार्थत जानता है, इसीलिये आर्यश्रावक दृष्टिसम्पन्न कहा जाता है ।

§ १० दुतिय अरियसावक सुत्त (१२ ५. १०)

आर्यश्रावक को प्रतीत्यसमुत्पाद में सन्देह नहीं

[ऊपर वाले सूत्र के समान ही]

गृहपति वर्ग समाप्त ।

छठों भाग

वृत्त चर्चा

§ १ परिविपसा मुच (१२ ६ १)

सयशः शुक्ल-क्षय के लिए प्रतीत्यसमुत्पाद् का गतन

येना मीने मुना ।

एक समय भगवान् आपस्ती में भगायपिण्डिक के जेयया आराम में बिहार करते थे ।

बहों भगवान् ने मिथुओं को आगमि किया—मिथुओं !

मन्त्र ! कहकर मिथुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—मिथुओं ! सर्वसाः शुक्ल के क्षय के किये बिचार करते हुए मिथु किये बिचार कर ?

भन्ते ! हमें क आचार नायक तथा अविद्याता भगवान् ही हैं । भय्य होता कि भगवान् ही हस कहे हुये का भय यताले । भगवान् स मुन कर मिथु धारण करते ।

ती मिथुओं ! मुनी भप्टी तरह मन कगाभी मी कइता हूँ ।

“भन्ते ! बहुत बप्टा कह मिथुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—मिथुओं ! मिथु बिचार करते हुये बिचार करता है—ओ जराभरण हवादि बनेक प्रकार से बाबा शुक्ल भोक में उत्पन्न होने हैं उनका निदान क्या है समुद्रय क्या है अथवा क्या है प्रभव क्या है ? किमके होन से जराभरण होता है ? किमके नहीं होन से जराभरण नहीं होता है ?

बिचार करते हुये पद ह्य प्रकार जान भेना ह—ओ जराभरण हवादि बनेक प्रकार से बाबा शुक्ल धाक में उत्पन्न होमे हैं उनका निदान जति है । जति के हाने से जराभरण होता है । जति के नहीं हाने से जराभरण नहीं होता है ।

बह जराभरण को जय भजा है जराभरण क समुद्रय निरोध प्रतिपदा को जान येतर है । बह हम प्रकार हमें क सर्वे साग पर आकड़ हा जाता ह ।

मिथुओं ! बह मिथु मयरा शुक्ल-क्षय के किये जराभरण क निरोध के किये प्रतिपन्न होता है ।

हमके बाद मी बिचार करन हुये बिचार करता है—भय कयादान मुक्त येवता “, इयता यदावगत—नागरुच विज्ञान संस्कार का निदान क्या है “ ?

बह बिचार करते हुए बह जान भजा है संस्कार का निदान अविद्या है “ अविद्या के हाने से संस्कार होन है । अविद्या के नहीं होने से संस्कार नहीं होने है ।

बह संस्कारों का जय भेना है समुद्रय निरोध प्रतिपदा को जय भजा । हम प्रकार बह हमें के सर्वे साग पर आकड़ होता है “ ।

मिथुओं ! अविद्या से बह दुभा पुत्र पुत्र-धर्म करता है, तब मुक्त का विज्ञान उमे हाता है । अनुभव (अ वाच) धर्म करता है तब अनुभव का निदान उहा हाता है । बह अथक-धर्म (अभावत) क करता है तब अथक-धर्म का विज्ञान उही हाता है ।

क बार भयन लक्ष्मण की आनक (भयन कम) नहीं जाती है ।

भिक्षुओ ! जय भिक्षु की अविद्या प्रदीण हो जाती है और विद्या उत्पन्न होती है, तो वह न तो पुण्य—कर्म करता है न पाप-कर्म, और न अवल-कर्म (कोई भी संस्कार नहीं होने देता है) । कोई भी संस्कार न करते, कोई चेतना न करने, लोक में कहीं भी जासक नहीं होता है । मर्यादा अनासक्त होने से उसे कहीं गम नहीं होता, वह अपने भीतर ही निर्वाण पा लेता है । जाति क्षीण हो गई, प्रज्ञाचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब ओर कुछ चाकी नहीं है—ऐसा जान लेता है ।

यदि उसे सुख-वेदना का अनुभव होता है तो जानता है कि यह अनित्य है, चाहने योग्य नहीं है, त्याग देने योग्य नहीं है । यदि उसे दुःख वेदना, अदुःख असुख वेदना तो जानता है कि यह अनित्य है—” ।

यदि उसे सुख-वेदना, दुःख वेदना, या अदुःख-असुख वेदना होती है तो उसमें वह आसक्त नहीं होता ।

जब वह ऐसा अनुभव करता है कि कथा का या जीवन का अन्त हो रहा है तो वह उस बात से सचेत रहता है । शरीर छूटने और जीवन का अन्त हो जाने पर सारी वेदनाएँ यही शान्त, बेकार और टटी हो जायँगी । शरीर छूट जाते हैं—ऐसा जानता है ।

भिक्षुओ ! जैसे, कुम्हार के बाँया में निकालकर गरम धतन कोई ऊपर रख दे तो उसकी सारी गर्मी निकल जाती है और धतन टूट जाता है, वैसे ही शरीर छूट जाते हैं—ऐसा जानता है ।

भिक्षुओ ! तो क्या क्षीणाश्रय भिक्षु पुण्य, अपुण्य या अवल संस्कार इच्छा करेगा ?

नहीं भन्ते !

सर्वथा संस्कारों के न होने से, संस्कारों का निरोध हो जाने से, उसे विज्ञान होगा ?

नहीं भन्ते !

सर्वथा जाति के न होने से, जाति का निरोध हो जाने से, उसे जरामरण होगा ?

नहीं भन्ते !

ठीक है, भिक्षुओ, ठीक है ! ऐसी ही बात है, अन्यथा नहीं । भिक्षुओ ! इस पर श्रद्धा करो, मन्देह छोड़ो, काक्षा और विचिकित्सा को हटाओ । यही दुःखों का अन्त है ।

§ २. उपादान सुत्त (१२. ६. २)

सासारिक आकर्षणों में बुराई देखने से दुःख का नाश

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है । इस तरह, सारा दुःख-संग्रह उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! भाग की भारी ढेर में दूध, बीस, तीस, या चालीस भार लकड़ियों भी देकर कोई जलवावे । कोई पुरुष रह रह कर यदि उसमें सूखी घाम डालता रहे, गोंधड़े डालता रहे, लकड़ियों डालता रहे, तो सभी जल जाती हैं । भिक्षुओ ! इसी तरह, कोई भद्रा अनित्यकथ आहार पकते रहने के कारण धराधर जलता रहेगा ।

भिक्षुओ ! ठीक उसी तरह, संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है । इस तरह, सारा दुःख समूह उठ खड़ा होता है ।

भिक्षुओ ! संसार के आकर्षक धर्मों में बुराई ही बुराई देखने से तृष्णा रुक जाती है । तृष्णा रुक जाने से उपादान रुक जाता है । इस तरह, सारा दुःखसंग्रह रुक जाता है ।

भिक्षुओ ! यदि कोई पुरुष रह-रह कर उस अनित्यकथ में सूखी घासों न डाले, गोंधड़े न

बाके ककचियाँ न बाके, तो वह भूमिस्वल्प पहले के आहार समाप्त हो जान और बचे न पाने के कारण कुछ कर ईबा हो जायगा ।

मिथुभो ! इसी प्रकार संसार के आकर्षक धर्मों में तुराई ही तुराई बचने से सारा दुःख समूह दफ जाता है ।

§ ३ पठम सञ्जोवन सुच (१२ ६ ३)

आत्माव-रपाग से तृष्णा का नाश

भावस्ती में ।

बन्धन में बाधनेवाक धर्मों में आत्माव केते हुए बिहार करने से तृष्णा बढती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है । 'इस तरह सारा दुःख-समूह उठ जाया होता है ।

मिथुभो ! तेक और बची के होने से (जक प्रदीप से) तेक प्रदीप जकता रहता है, उस प्रदीप में कोई पुदप रह रह कर तेक जाकता जाव और बची उसकाता जाव तो वह आहार पाते रहने से बहुत काक तक बकता रहेगा ।

मिथुभो ! बसे ही बन्धन में बाधने बाके धर्मों में आत्माव केते हुए बिहार करने से तृष्णा बढती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है । 'इस तरह सारा दुःख समूह उठ जाया होता है ।

---मिथुभो ! उस प्रदीप में कोई पुदप रह रह कर न तो तेक बाके और न बची उसकाते तो वह प्रदीप पहले के सभरी आहार समाप्त हो जाने पर बचे न पाने के कारण कुछ जायगा ।

मिथुभो ! बसे ही बन्धन में बाधने बाके धर्मों में तुराई ही तुराई बचने हुए बिहार करने से तृष्णा बढी बढती है । इस तरह सारा दुःख-समूह दफ जाता है ।

§ ४ दुतिय सञ्जोवन सुच (१२ ६ ४)

आत्माव-रपाग से तृष्णा का नाश

भावस्ती में ।

मिथुभो ! तेक और बची के होने से तेक-प्रदीप जकता रहता है । कोई पुदप उस प्रदीप में रह रह कर तेक जाकता जाव और बची उसकाता जाव तो वह आहार पाते रहने से बहुत काक तक बकता रहेगा ।

[कपर के सूत्र जैसा]

§ ५ पठम महावृक्ष सुच (१२ ६ ५)

तृष्णा महावृक्ष है

भावस्ती में

मिथुभो ! संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढती है । तृष्णा के होने से उपादान ।

मिथुभो ! कोई महावृक्ष हो । उसके को मूक नीचे वा अगक बागक केके हों, सभी कपर उस केके हों । इस तरह वह महावृक्ष आहार पाते रहने के कारण फिरकाक तक रह सकता है ।

मिथुभो ! बैसे ही संसार के आकर्षक धर्मों में - ।

मिथुभो ! कोई महावृक्ष हो । तब कोई पुदप कुजाक और डोफरी ककर जाये । वह उस वृक्ष के मूक को काटे, मूक को काट कर उसके नीचे सु(ग कोट्टे के और वृक्ष के सभी मूककोई को काट कर निकाल दे । वह वृक्ष को काट कर हुकने-हुकने कर दे । फिर हुकनों को भी और बाके । और कर छोटी बकती

निकाल दे। घैली को धूप और हवा में सुखा कर जला दे। जला कर कोयला बना दे। कोयले और राख को या तो हवा में उड़ा दे या नदी की धार में धहा दे। भिक्षुओ! इस तरह वह महावृक्ष उन्मूल हो जाय, उसका फिर प्रयोग नहीं हो।

भिक्षुओ! वैसे ही, समार के आकर्षक धर्मों में केवल बुराई देगने से तृष्णा रुक जाती है। तृष्णा के रूढ़ जाने से उपादान नहीं होता है। इस तरह सारा दुःख समूह रुक जाता है।

§ ६. दुतिय महारुक्ख सुत्त (१२. ६. ६)

तृष्णा महारुक्ख है

श्रावस्ती में।

***[ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ७. तरुण सुत्त (१२. ६. ७)

तृष्णा तरुणवृक्ष के समान है

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है।***

भिक्षुओ! कोई तरुणवृक्ष हो। कोई पुरुष समय समय पर उसके थाल को फुलका बनाता रहे, माद देता रहे, और पानी पटाता रहे। भिक्षुओ! इस प्रकार वह वृक्ष आहार पाकर फुलगे, बढ़े और खूब फैल जाय।

भिक्षुओ! वैसे ही, आस्वाद देखते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है***।

भिक्षुओ! कोई तरुणवृक्ष हो। तब, कोई पुरुष कुदाल और टोकरी लेकर आवे।

भिक्षुओ! वैसे ही, बन्धन में ढालने वाले धर्मों में बुराई ही बुराई देखते हुये विहार करने से तृष्णा नहीं बढ़ती। तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ८. नामरूप सुत्त (१२. ६. ८)

सांसारिक आस्वाद-दर्शन से नामरूप की उत्पत्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से नाम-रूप उठते हैं।

[महारुक्ख की उपमा देकर ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ ९. विज्ञान सुत्त (१२. ६. ९)

सांसारिक आस्वाद-दर्शन से विज्ञान की उत्पत्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से विज्ञान उठता है।

[ऊपर वाले सूत्र के समान]

बाड़े ककड़ियाँ न बाड़े तो वह अग्निकल्प पहले के आहार समाप्त हो जाने और नये न पाने के कारण बुझ कर टंटा हो जायगा ।

मिथुनी ! उसी प्रकार, संसार के आकर्षक धर्मों में पुराई ही पुराई देखने से 'सारा हुआ समूह टूट जाता है ।

§ ३ पठम सम्ब्रोजन सुच (१२ १ ३)

आस्वाद-रयाग से तृष्णा का नाश

भावस्ती में ।

बन्धन में बाँधनेवाले धर्मों में आस्वाद लेते हुए विहार करने से तृष्णा बढ़ती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है । 'इस तरह सारा हुआ समूह उठ खड़ा होता है ।

मिथुनी ! तेज और बची के होने से (एक प्रतीप से) एक प्रतीप बढ़ता रहता है; उस प्रतीप में कोई पुष्प रह रह कर एक बढ़ता जाय और बची उसकसा जाय तो वह आहार पाते रहने से बहुत काज तक बढ़ता रहेगा ।

मिथुनी ! वैसे ही बन्धन में बाँधने वाले धर्मों में आस्वाद लेते हुए विहार करने से तृष्णा बढ़ती है । तृष्णा के होने से उपादान होता है । 'इस तरह सारा हुआ-समूह उठ खड़ा होता है ।

-- मिथुनी ! उस प्रतीप में कोई पुष्प रह रह कर न तो एक बाँधे और न बची उसकसे तो वह प्रतीप पहले के समी आहार समाप्त हो जाने पर नये न पाने के कारण बुझ जायगा ।

मिथुनी ! वैसे ही बन्धन में बाँधने वाले धर्मों में पुराई ही पुराई देखते हुए विहार करने से तृष्णा नहीं बढ़ती है । इस तरह सारा हुआ-समूह टूट जाता है ।

§ ४ द्वितीय सम्ब्रोजन सुच (१२ १ ४)

आस्वाद-रयाग से तृष्णा का नाश

भावस्ती में ।

मिथुनी ! एक और बची के होने से एक-प्रतीप बढ़ता रहता है ! कोई पुष्प उस प्रतीप में रह रह कर एक बढ़ता जाय और बची उसकसा जाय तो वह आहार पाते रहने से बहुत काज तक बढ़ता रहेगा ।

[ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ५ पठम महावृक्ष सुच (१२ १ ५)

तृष्णा महावृक्ष है

भावस्ती में

मिथुनी ! संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है । तृष्णा के होने से उपादान' ।

मिथुनी ! कोई महावृक्ष हो । उसके जो मूक नीचे या अगल अगल फैके हों, समी ऊपर रस भेजते हैं । इस तरह वह महावृक्ष आहार पाते रहने के कारण विकसल तक रह सकता है ।

मिथुनी ! वैसे ही संसार के आकर्षक धर्मों में --

मिथुनी ! कोई महावृक्ष हो । तप कोई पुष्प कुशाक और दीपरी केन्द्र जाने । वह उस वृक्ष के मूक की करते, मूक को काट कर उसके नीचे सुगंध और वै और वृक्ष के समी मूकसीई की काट कर विकसल है । वह वृक्ष की काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दे । फिर टुकड़ों को भी और बाँधे । और कर, छोटी बड़ी

निकाल दे। घैली को धूप और हय में सुग्रा कर जला दे। जला कर कोयला बना दे। कोयले और राख को या तो हय में उड़ा दे या नदी की धार में बहा दे। भिक्षुओ! इस तरह वह महावृक्ष उन्मूल हो जाय, उसका फिर प्ररोह नहीं हो।

भिक्षुओ! वैसे ही, संसार के आकर्षक धर्मों में कवल घुराई देगने से तृष्णा रुक जाती है। तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता है।... इस तरह सारा दुःख समूह रुक जाता है।

§ ६. दुतिय महारुख सुक्त (१२. ६. ६)

तृष्णा महारुख है

श्रावस्ती में।

...[ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ७. तरुण सुक्त (१२. ६. ७)

तरुणा तरुणवृक्ष के समान है

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देगते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है।...

भिक्षुओ! कोई तरुणवृक्ष हो। कोई पुरुष समय समय पर उसके बाल को फुलका बनाता रहे, माद देता रहे, और पानी पटाता रहे। भिक्षुओ! इस प्रकार वह वृक्ष आहार पाकर फुलगे, बढ़े और खूब फल जाय।

भिक्षुओ! वैसे ही, आस्वाद देखते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है।...

भिक्षुओ! कोई तरुणवृक्ष हो। तब, कोई पुरुष कुदाल और टोकरी लेकर आवे।

भिक्षुओ! वैसे ही, बन्धन में ढालनेवाले धर्मों में घुराई ही घुराई देखते हुये विहार करने से तृष्णा नहीं बढ़ती। तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ८. नामरूप सुक्त (१२. ६. ८)

सांसारिक आस्वाद-दर्शन से नामरूप की उत्पत्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से नाम-रूप उठते हैं।

[महावृक्ष की उपमा देकर ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ ९. विज्ञान सुक्त (१२. ६. ९)

सांसारिक आस्वाद-दर्शन से विज्ञान की उत्पत्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! बन्धन में ढालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से विज्ञान उठता है।

[ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ १० निदान सूत्र (१२ ६ १०)

प्रतीत्यसमुत्पाद् की गम्भीरता

एक समय भगवान् बुद्ध-जनपद में कम्मासद्म्म नामक कुक्करो के कस्से में विहार करते थे ।
तब आयुष्मान् आनन्द् वहाँ भगवान् से वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर
बढ़ गये ।

एक ओर बैठ आयुष्मान् आनन्द् भगवान् से बोले :—भन्ते ! आश्चर्य है अद्भुत है ! भन्ते !
प्रतीत्यसमुत्पाद् कितना गम्भीर है ! देखने में कितना गूढ़ भाव्य होता है ! किन्तु, मुझे यह थिस्टुक साफ
साक्ष्य होता है ।

आनन्द् ! ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो । यह प्रतीत्यसमुत्पाद् बड़ा गम्भीर भार गूढ़ है !
आनन्द् ! इमी जर्म को ठीक-ठीक नहीं जानने और समझने के कारण वह भना ठकसाई हुई भागे की गुन्बी
बैसी गॉठ भार बन्बनों बाकी मूँच की झाबी बैसी हो जपाप में यह दुर्गति को प्राप्त होती है; संसार से
सूझने नहीं पाती है ।

आनन्द् ! संसार के आकर्षक जर्मों में भासक होने से तृष्णा बढ़ती है । [महादूस की उपमा
दूरवद]

दूरवर्ग समाप्त

सातवाँ भाग

महा वर्ग

§ १. पठम अस्सुतवा सुत्त (१२ ७ १)

चित्त वन्दर जैसा है

पेसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

भिक्षुओ ! अज्ञ पृथक्जन भी अपने इम चातुर्महाभूतिक शरीर से ऊब जाय, विरक्त हो जाय, और छूटने की इच्छा करे ।

सो क्यों ? क्योंकि, इस चातुर्महाभूतिक शरीर में घटना, बढ़ना, लेना और फेंक देना सभी अपनी आँखा से देखता है । इसके कारण, अज्ञ पृथक्जन भी अपने इम चातुर्महाभूतिक शरीर से ऊब जाय, विरक्त हो जाय, छूटने की इच्छा करे ।

भिक्षुओ ! किन्तु, यह जो चित्त=मन=विज्ञान है उससे पृथक्जन अज्ञ नहीं ऊब जाता, विरक्त होता, और छूटने की इच्छा करता ।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि विरकाल से अज्ञ पृथक्जन, 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है' के अज्ञान और ममत्व में पडा रहा है ।

भिक्षुओ ! अच्छा होता कि अज्ञ पृथक्जन इस शरीर को, न कि चित्त को आत्मा कह कर मानता । सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि यह चातुर्महाभूतिक शरीर एक वर्ष भी, दो वर्ष भी, सौ वर्ष भी, और अधिक भी ठहरा हुआ देखा जाता है । भिक्षुओ ! किन्तु, यह चित्त=मन=विज्ञान रात दिन बूसरा ही बूसरा उत्पन्न होता आर निरुद्ध होता रहता है ।

भिक्षुओ ! जैसे जगल में घूमते हुये बानर एक डाल पकड़ता है, उसे छोडकर दूसरी डाल पर उछल जाता है—वैसे ही यह चित्त=मन=विज्ञान रात दिन ।

भिक्षुओ ! यहाँ, ज्ञानी आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद का ही टीक से मनन करता है । इसके होने से यह होता है । इसके नहीं होने से यह नहीं होता है । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

भिक्षुओ ! इमे देख, ज्ञानी आर्यश्रावक रूप से भी विरक्त रहता है, बेवना से भी विरक्त रहता है, सजा , सस्का , विज्ञान । इस वैराग्य से वह मुक्त हो जाता है । जाति क्षीण हो गई, पेसा जान लेता है ।

§ २. दुनिय अस्सुतवा सुत्त (१२ ७, २)

पञ्चस्कन्धके वैराग्य से मुक्ति

श्रावस्ती में ।

[ऊपर के सूत्र जैसा]

भिक्षुओ ! यहाँ, ज्ञानी आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद का ही टीक से मनन करता है । इसके होने से यह होता है, इसके नहीं होने से यह नहीं होता है । इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है ।

मिथुमा ! मुखवेदनीय स्पर्श के हाथे स मुद्रावेदना पैदा होती है । उसी मुखवेदनीय स्पर्श के निरोध से यह मुद्रावेदना निरुद्ध और शान्त हो जाती है ।

मिथुमी ! मुखवेदनीय स्पर्श के हाथे से ; अनुपपन्न मुखवेदनीय स्पर्श क होनेस यह वेदना निरुद्ध और शान्त हो जाती है ।

मिथुमो ! दो मूकवियों में हाथ काने स गर्मी पैदा होती ह और जाग निरुद्ध जाती है । उन दो मूकवियों क अलग-अलग कर देल स यह गर्मी और जाग पुनरुत्पन्न ठण्डी हो जाती है ।

मिथुमा ! विस ही मुद्रावेदनीय स्पर्श के हाथे स मुद्रावेदना पैदा होती है । उसी मुखवेदनीय स्पर्श के निरोध स यह मुद्रावेदना निरुद्ध और शान्त हो जाता है ।

मिथुमी ! दुःखवेदनीय स्पर्श क हाथ से ; अनुपपन्न मुखवेदनीय स्पर्श के हाथ से ।

मिथुमो ! हमे देख शानी आर्यभ्यायक स्पर्श से भी बिरुद्ध रहता है वेदना संज्ञा बिनाम । हम बराबर से यह मुक्त हो जाता है । अति क्रीय हो गई पूमा जाय भेता है ।

§ ३ पुत्रमस सुच (१ ७ ३)

चार प्रकार के आहार

आयस्ती में ।

मिथुमो ! उ पन्न पुण प्राणी की स्थिति के सिंग, तथा उपन्न इनेवाचों के अनुग्रह के सिंग चार आहार दे । कीम स चार ? (१) स्पूक या सूत्रम और क रूप में । (२) स्पर्श । (३) मन की संभलता । (४) विज्ञान ।

मिथुमा ! और के रूप का आहार किम प्रकार का समझना चाहिये ?

मिथुमा ! दो पति पत्नी कुठ पाथेय डेकर आन्तर के किसी माग में पद जाय । उनके साथ अपना एक प्यारा आनन्द पुत्र हा । तब उनका पापच और-शरीर समाप्त हो जाय, पास में कुठ न बचे और आन्तर कुठ ही करना पाकी बचा रहे ।

मिथुमा ! तब उन पति पत्नी के मग में यह हा—हम लोगों का पाथेय समाप्त हो गया पास में कुठ नहीं बचा है । ता हम लोग अपने दुःखमल चारे कापके पुत्र को मार डुक्के-डुक्के और बोटी बाटी कर डग गाले कुठ पाकी आन्तर को न करें । तीनों क तीनों ही मर न जायें ।

मिथुमा ! तब के अरने डुक्करीने प्यार कापस पुत्र को मार डुक्के डुक्के और बाटी बाटी कर उन गाले कुठ पाकी आन्तर को न करें । क पुत्र-मोग गार्थे मी और उ ती पीठ पीठ कर विभाव मी करें—हा पुत्र ! हा पुत्र !

मिथुमा ! ता गुम पया समझन हा बचा य हम तरह मर मरदन और विभूजन के निने आहार करन दे ?

नहीं जन्मे ।

मिथुमो ! पैमा ही और क रूप का आहार समझना चाहिये । क्या समझन न बरिष आन्तरुमी क हाग का पहचान जना है । बरिष काज-गुना क हाग का पहचान जना न उनके सिव यह बरिषन नहीं लना है सिव बरिषन में बरिषकर यह पिर जन्म प्रदान करे ।

मिथुमो ! वरिष क आहार की पैमा समझना चाहिये ?

मिथुमा ! कुठ कागी डुई कोई गाव किगी माल क गहारे लगकर लगी हा, भीत में रहने वाल बाड़े इने काटे । यह किपी कुठ क गहारे लगकर लगी हो, कुठ में रहने वाल बाड़े उने काटे । बागी में लगी हो । अन्तरा में लगी हा । मिथुमा ! यह गाव जहाँ जहाँ आकर लगी हो वहाँ वहाँ के बाड़े उने करे । मिथुम ! वरिष क आहार को मी इमी बरिष का समझना चाहिये ।

भिक्षुओ ! स्पर्श के आहार को इस प्रकार समझ लेने से तीनों वेदनायें जान ली जाती हैं । तीनों वेदनाओं को जान लेने से आर्येन्द्रियक को फिर और कुछ करना याकी नहीं बचना है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! मन की सचेतना के आहार को क्या समझना चाहिये ?

भिक्षुओ ! किसी पौरुषे भर मग्ने में लपट और वैसा में रहित लहलहाती टुटे भाग भरी लो । तब, कोई पुरुष आये जो जोगे की सामान्य स्वता लो, सरना नहीं चाहता लो, सुख पाणा चाहता लो, दुःख से दूर रहना चाहता लो । उसे लो कलत्रांग आउसी एक एक घाँ पकड़ कर उस मग्ने में डाले लें । भिक्षुओ ! तो, उस पुरुष की चेतना, प्रार्थना और प्रणिधि यहाँ से उठने के लिये ली हांगी ।

तो क्या ? भिक्षुओ ! क्योंकि यह जानता हे कि इस भाग में गिर कर मे भर जाऊँगा, या सरने के समान दुःख उठाऊँगा । भिक्षुओ ! मन की सचेतना के आहार को ऐसा ही समझना चाहिये—मैं ऐसा कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! विज्ञान के आहार को क्या समझना चाहिये ?

भिक्षुओ ! किसी चोर अपराधी को लोग पकड़ कर राजा के पास ले जाँय, और कहे—देव ! यह आप का चोर अपराधी हे, उसे जैसी इच्छा लो उण्ड लें । तब, राजा यह कहे—जाओ, उसे पूर्वाह्न समय एक मी भालों में भोक लें । उसे लोग पूर्वाह्न समय भोक लें ।

तब, राजा मध्याह्न समय यह कहे—उस पुरुष की क्या हालत हे ?

देव ! यह वैसा ही जीवित हे ।

तब, राजा फिर कहे—जाओ, उसे मध्याह्न समय भी मी भाले भोक लें । लोग भोक लें ।

तब, राजा साय को कहे—उस पुरुष की क्या हालत हे ?

उसे साय में भी लोग मी भाले भोक लें ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, दिन भर में तीन मी भालों से सुभ कर उस दुःख और वेदना लीगी या नहीं ?

भन्ते ! एक ही भाला से सुभ कर तो बड़ा दुःख होवा ले, तीन मी की तो बात क्या ?

भिक्षुओ ! विज्ञान के आहार को ऐसा ही समझना चाहिये ।

भिक्षुओ ! विज्ञान को इस प्रकार जन, नामरूप को पहचान लेता हे । नामरूप को पहचान आर्य धानक को फिर और कुछ करना याकी नहीं रहता—मैं ऐसा करता हूँ ।

§ ४. अतिथिराग सुत्त (१२ अ ४)

चार प्रकार के आहार

श्रावस्ती में ।

भिक्षुओ ! उदरज हुये प्राणी की स्थिति के लिये, तथा उत्पन्न होने वालों के अनुग्रह के लिये चार आहार हैं । कौन से चार ? (१) स्थूल या सूक्ष्म कौर के रूप में । (२) स्पर्श । (३) मन की सचेतना । (४) विज्ञान ।

भिक्षुओ ! कौर के रूप के आहार में यदि राग होता हे, सुख का आस्वाद होता हे, वृष्णा होती हे, तो विज्ञान जमता और बढ़ता हे ।

जहाँ विज्ञान जमता और बढ़ता हे वहाँ नामरूप उठता हे । जहाँ नामरूप उठता हे वहाँ संस्कारों की वृद्धि होती हे । जहाँ संस्कारों की वृद्धि होती हे वहाँ पुनर्जन्म होता हे । जहाँ पुनर्जन्म होता हे वहाँ जाति, जरा, मरण होते हे । भिक्षुओ ! जहाँ जाति, जरा, मरण होते हे वहाँ शोक, भय, और उपायास (अपरेश्रान्ति) होते हे—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! स्पर्श , मन की चेतना , विज्ञान के आहार में यदि रोग होता हे ।

मिथुनो ! कोई रंगरेख या चित्रकार रंग या क्लेश या हल्करी या कीक या मंसीठ के होने से बचती तरह साफ और चिड़ना किब फमक पर, या मिथि पर वा कपड़े के टुकड़े पर मनी भंगों से बुलकी या पुरप का रूप उतार दे ।

मिथुन ! मन ही और के रूप में आहार में यदि राग होता है । सुख का भास्वात् होता है वहाँ सोक भव और उपायाम होते हैं ।

मिथुनो ! स्वर्ग... ; मन की संवेतना ; विज्ञान के आहार में यदि राग होता है ।

मिथुनो ! और के रूप के आहार में यदि राग नहीं होता है सुख का भास्वात् नहीं होता है मृत्पा नहीं होती है, तो विज्ञान नहीं जमता पाता ।

वहाँ विज्ञान जमता और बढ़ता नहीं है वहाँ नामरूप नहीं उठता । वहाँ नामरूप नहीं उठता है वहाँ मंदस्वर्ग की वृद्धि नहीं जाती है । वहाँ सोक भव और उपायाम नहीं होते हैं—पेसा में कहता हूँ ।

मिथुनो ! स्वर्ग ; मन की संवेतना ; विज्ञान के आहार में यदि राग नहीं होता है— तो वहाँ सोक नहीं होते ।

मिथुनो ! कोई वृद्धागार या वृद्धागारवाला हो । उसके ठहर बुद्धि और पूर्व में लिखिबिबी मरी हो । तो सूर्य के उगने पर किरणें उसमें प्रवेद कर वहाँ पहुँगी ?

मन्ने ! पश्चिम वाली दीवाल पर ।

मिथुनो ! यदि पश्चिम में कोई दीवाल न हो तो ?

मन्ने ! ता जमीन पर ।

मिथुनो ! यदि जमीन नहीं हो तो वहाँ पहुँगी ?

मन्ने ! जल पर ।

मिथुनो ! यदि जल भी नहीं हो तो वहाँ पहुँगी ?

मन्ने ! वहाँ नहीं पहुँगी ।

मिथुन ! ईसे ही और के रूप के स्वर्ग... मन की संवेतना विज्ञान के आहार में यदि राग नहीं भास्वात् नहीं मृत्पा नहीं तो विज्ञान जमता और बढ़ता नहीं है । ...वहाँ सोक भव और उपायाम नहीं होते हैं—पेसा में कहता हूँ ।

§ ५ नगर सुप्त (१० ७ ५)

माय भ्रष्टाक्षिक माग प्राचीन युद्ध माग है

आपानी में ।

मिथुनो ! बुद्ध का प्राप्त करने के वदन्त धोपिमात्प रहते में मन में ऐसा दुःख—आव । वह क्लेश जाती विगिनि में ईसा है । जमता है बुद्धात्ता है मरता है वहाँ मरकर वहाँ पैदा होता है । और उदात्तत्व के बुद्ध में ईसे मरुद्वारा होगा नहीं जानता है । इम उदात्तत्व के बुद्ध में सुक्ति का लक्ष कब होगा ?

मिथुनो ! मन में मन में यह दुःख—किरक होने में उदात्तत्व जाना है उदात्तत्व का प्रत्यय क्या है ?

मिथुनो ! इन पर उचित मन्त्र करने में सुनि ज्ञान का उद्व हो गया—जानि के जाने में उदात्तत्व जाना है ; जानि ही उदात्तत्व का प्रत्यय है ।

...मन्त्र... ; उदात्त... ; बुद्ध... ; वेदना ; स्वर्ग ; उदात्तत्व... ; नामरूप ।

मिथुनो ! इन पर उचित मन्त्र करने में सुनि ज्ञान का उद्व हो गया—विज्ञान के होने में उदात्तत्व जाना है ; विज्ञान ही उदात्तत्व का प्रत्यय है ।

बिभ्रुओ ! तब, मेरे मन में हुआ—किमके होने से विज्ञान होता है, विज्ञान का प्रत्यय क्या है ?
बिभ्रुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—नामरूप के होने से
विज्ञान होता है, नामरूप ही विज्ञान का प्रत्यय है ।

बिभ्रुओ ! तब मेरे मन में यह हुआ—नामरूप से यह विज्ञान लौट जाता है, अग्रे नहीं बढ़ता ।
इतने से जनमता है, पुत्रता है "। जो नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है, विज्ञान के प्रत्यय से नाम-
रूप होता है । नामरूप के प्रत्यय से पदायतन होता है । पदायतन के प्रत्यय से स्पर्श" । इस तरह, यारा
हु प-ममह उठ चढ़ा होता है ।

बिभ्रुओ ! "उठ चढ़ा लाता है" (=ममुदय) =मेरा पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों से बहुत
उत्पन्न हुआ, ज्ञान पदा हुआ, प्रजा उत्पन्न हुई, विशा उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ ।

बिभ्रुओ ! तब, मेरे मन में यह हुआ—किमके नहीं होने से जराभरण नहीं होता है, किमका
निरोध होने से जराभरण का निरोध होता है ।

बिभ्रुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—जाति के नहीं होने से
जराभरण नहीं होता है । जाति का निरोध होने से जराभरण का निरोध होता है ।

नम , उपादान , वृक्षा , चेटना स्पर्श , पदायतन " , नामरूप , किमका निरोध
होने से नामरूप का निरोध होता है ?

बिभ्रुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—विज्ञान के नहीं होने से
नामरूप नहीं होता है, विज्ञान का निरोध होने से नामरूप का निरोध होता है ।

किमके नहीं होने से विज्ञान नहीं होता, किमका निरोध होने से विज्ञान का निरोध हो
जाता है ?

नामरूप के नहीं होने से विज्ञान नहीं होता है, नाम-रूप का निरोध होने से विज्ञान का
निरोध हो जाता है ।

बिभ्रुओ ! तब मेरे मन में यह हुआ—मैंने मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर लिया, नाम-रूप के निरोध
से विज्ञान का निरोध होता है । विज्ञान के निरोध से नाम-रूप का निरोध होता है । नाम-रूप के निरोध
से पदायतन का निरोध होता है । पदायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध होता है । । इस तरह,
यारे हु च-ममह का निरोध हो जाता है ।

बिभ्रुओ ! "निरोध, निरोध" मेरा पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों से बहुत उत्पन्न हुआ, ज्ञान
पदा हुआ" ।

बिभ्रुओ ! कोई पुरुष जगल में घूमते हुये एक पुराना मार्ग देखे, पूर्वकाल के लोगों का बनाया,
पूर्वकाल के लोगों का इन्धेमाल किया । वह पुरुष उस मार्ग को पकड़ कर अगे जाय, और एक पुराने
राजधानी नगर की देखे, जहाँ पूर्वकाल में लोग रहा करते थे, जो आराम, चाटिका, पुष्करिणी, और सुन्दर
बहार-टिवाली से युक्त हो ।

बिभ्रुओ ! तब, वह पुरुष राजा या राजमन्त्री को जाकर कह दे—भन्ते ! जानते हैं, मैंने जगल
में घूमते । भन्ते ! अन्ता होता कि उस नगर की फिर वसावें ।

बिभ्रुओ ! तब, राजा या राजमन्त्री उस नगर को फिर भी वसावे । वह नगर कुछ काल के बाद
बड़ा गुलजार, समृद्ध, और उत्तमिदरि हो जाय ।

बिभ्रुओ ! वैसे ही, मैंने पुराना मार्ग देख लिया है, जिस मार्ग पर पूर्व के सम्यक् सम्यक् चल चुके हैं ।

बिभ्रुओ ! पूर्व के सम्यक्-सम्युद्धों से चला गया वह पुराना मार्ग क्या है ? यही आर्य-अष्टांगिक
मार्ग, जो सम्यक् दृष्टि सम्यक् मसाधि ।

उस मार्ग पर मैंने चला । उस मार्ग पर चलकर मैंने जराभरण तो जान लिया, जराभरण के

मनुष्य को ज्ञान दिया, ज्ञानमरण के विरोध को ज्ञान दिया घनामरण की विरोधगामिनी प्रतिपदा का ज्ञान दिया ।

उस भाग पर मैंने पाया । उस मार्ग पर चलकर मैंने ज्ञाति भव " उपपादन मृत्या" ब्रह्मा स्वर्ग पदावतन नामस्य विज्ञान संस्कार ।

उस ज्ञान मैंने मित्तुओं का मित्तुणियों का उपपादकों का और उपपरिवाहों का उपवेदा । मिथुनी । परी मनुष्य पर दूना मनुष्य भार उच्चतिसील इ विचारित इ बहुत जनों में भर गया है मनुष्यों और देवताओं में सभी प्रकार में प्रकाशित है ।

§ ६ सम्मत्तन सुत (१- ७ ६)

अपारिभ मम

येमा मीने मुता ।

एक समय भगवान् पुच्छजसपद में जम्मामदम्म नामक कुटुम्बों के कथ में बिहार करते थे ।

भगवान् बाले—मित्तुओ ! तुम अपने भीतर ही भीतर कुछ चेतन करो ।

येमा कदमे पर कोई मित्तु भगवान् से चाला—ममो ! मैं अपने भीतर ही भीतर कुछ चेतन करता हूँ ।

मित्तु ! कहा ता गरी तुम अपने भीतर ही भीतर कैसा चेतन करते हो ।

मित्तु ने चाम्पया किन्तु उमके बलबाले से भगवान् का पित्त संतुष्ट नहीं हुआ ।

तब ब्राह्मणान् भालम्पु भगवान् से बाले—इ भगवान् ! जब पद ममक है—भगवान् स्वरा

उपदेता करें कि अपने भीतर ही भीतर कथे चेतन चेतन जाता है । भगवान् से सुनकर मित्तु धारण करेंगे ।

ता बालम्पु ! तुम्हा अपनी तरह मम लगानो मैं करता हूँ ।

"ममने ! बहुत अपना बर मित्तुओं से भगवान् का उपर दिया ।

भगवान् बाले—मित्तुओ ! अपने भीतर ही भीतर मित्तु कुछ चेतन करता है—यह जो ज्ञानमरण

हृषादि बनक प्रकार के ज्ञाना दुःख लोक में पैदा होते हैं उनका विनाश क्या है ? उपाधि क्या है ? प्रसव

क्या है ? किमक जाने से ज्ञानमरण होता है ? किमके नहीं जाने से ज्ञानमरण नहीं होता है ?

जन्म चेतन हुए वह ज्ञान होता है— "यह दुःख उपाधि के विनाश से होते हैं । उपाधि के होने

से ज्ञानमरण होता है ; उपाधि के नहीं होने से ज्ञानमरण नहीं होता है । वह ज्ञानमरण को ज्ञान होता है ।

मनुष्य विरोध भार "विपदा का ज्ञान होता है । हम ताद वह जर्म के मरने मार्ग पर

जाता होता है ।

मित्तुओ ! वह मित्तु ममता ममक दुःखदुःख के निवृ तथा ज्ञानमरण के विरोध के निवृ प्रतिपद

करा जाता है ।

उमके बाद भी अपने भीतर ही भीतर चेतन करता है—उपाधि (ज्ञानमरण) का विनाश

क्या है ?

उपाधि का विनाश मृत्यु है । । वह उपाधि को ज्ञान होता है ।

मित्तुओ ! उमके बाद भी अपने भीतर ही भीतर चेतन करता है—यह तुम्हा जन्मक वाली हुई

केने जन्मक होती है म । नहीं जन्मक होती है ?

उमके बाद भी अपने भीतर ही भीतर चेतन करता है—उपाधि का विनाश मृत्यु है । उपाधि के होने

से ज्ञानमरण होता है ; उपाधि के नहीं होने से ज्ञानमरण नहीं होता है ।

मनुष्य विरोध भार "विपदा का ज्ञान होता है । हम ताद वह जर्म के मरने मार्ग पर जाता होता है ।

भिक्षुओ ! अतीत काल में जिन भ्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने विषयों को अनित्य, सुख, आत्मा, आरोग्य और क्षेम के ऐसा देखा, उनमें तृष्णा को बढ़ाया ।

जिनने तृष्णा को बढ़ाया उनमें उपाधि को बढ़ाया । जिनने उपाधि को बढ़ाया उनमें दुःख को बढ़ाया । जिनने दुःख को बढ़ाया वे जाति जराभरण, शोक से मुक्त नहीं हुए । दुःख से मुक्त नहीं हुए—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य काल में जो भ्रमण या ब्राह्मण ।

भिक्षुओ ! वर्तमान काल में जो भ्रमण या ब्राह्मण ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पीने का कटोरा हो, जो रंग, गन्ध और रस से युक्त हो, किन्तु उसमें विष लगा हो । तब, कोई घाम में गर्माया, घमाया, थका, सँदा प्यासा पुरुष आवे । उस पुरुष को कोई कहे—हे पुरुष ! यह तुम्हारे लिए पीने का कटोरा है, जो रंग, गन्ध और रस से युक्त है, किन्तु इसमें विष लगा है । यदि चाहो तो पी सकते हो । पीने से यह रंग, गन्ध और स्वाद में बढ़ा अच्छा लगेगा । पीने के बाद उसके कारण या तो मर जाओगे या मरने के समान दुःख भोगोगे । वह पुरुष सहसा बिना कुछ विचार किये उस कटोरे को पी ले, अपने को नहीं रोके । वह उसके कारण मर जाय या मरने के समान दुःख पावे ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, अतीत काल में जिन भ्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने । दुःख से मुक्त नहीं हुए—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य काल में, वर्तमान काल में ।

भिक्षुओ ! अतीतकाल में जिन भ्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने विषयों को अनित्य, दुःख, अनात्म, रोग, और भय के ऐसा देखा, उनमें तृष्णा को छोड़ दिया ।

जिनने तृष्णा को छोड़ दिया उनमें उपाधि को छोड़ दिया । जिनने उपाधि को छोड़ दिया उनमें दुःख को छोड़ दिया । जिनने दुःख को छोड़ दिया वे जाति, जराभरण, शोक से मुक्त हो गये । वे दुःख से छूट गये—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य में, वर्तमान काल में । वे दुःख से छूट गये—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! जैसे । यदि चाहो तो पी सकते हो । पीने से यह रंग, गन्ध और स्वाद में बढ़ा अच्छा लगेगा । पीने के बाद उसके कारण या तो मर जाओगे या मरने के समान दुःख भोगोगे ।

भिक्षुओ ! तब, उस पुरुष के मन में यह हो—मैं इस प्यास को सुरा से, पानी से, उही-महा से, छस्ती से, या जीरा के पानी से मिटा सकता हूँ । इस प्यास को मैं न पीऊँ जो बहुरत काल तक मेरे अहित और दुःख के लिए हो । वह समस्त बृषकर उम्र कटोरे को छोड़ दे, न पीये । इससे वह न तो मरे और न मरने के समान दुःख पावे ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, अतीत काल में जिन भ्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने विषयों को अनित्य, दुःख, अनात्म, रोग और भय के ऐसा देखा, उनमें तृष्णा को छोड़ दिया ।

वे दुःख से छूट गये—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य में, वर्तमान काल में । वे दुःख से छूट जाते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ ।

§ ७. नलकलाप सुक्त (१२. ७ ७)

जराभरण की उत्पत्ति का नियम

एक समय आयुष्मान् स्वारिपुत्र और अयुष्मान् महाकोटित वाराणसी के समीप श्रमिपतन मृगदाय में विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् महाकोटित सीस का प्यान म उठ बहो आयुष्मान् सारियुष धे बहो गये थीर
कुसल क्षम के प्रभ पृथकर पृक मोर यग गये ।

एक भार यठ आयुष्मान् महाकोटित आयुष्मान् सारियुष स बाळ—आयुस सारियुष ! क्या
अरामरन अपना स्वर्ष किया हुआ है या दूसरे का किया हुआ है या अपना स्वर्ष भी थीर दूसरे का
भी किया हुआ है या न अपना स्वर्ष भार न दूसरे का किया हुआ किन्तु अकारण हठाए उल्पष हो
गया है ?

=आयुस कोटित ! हममें एक भी ठीक नहा ।

=आयुस सारियुष ! क्या जाति सब उपाराण मृष्ठा वेदता -- स्वर्षा
पदायतन नामरूप अपना स्वर्ष किया हुआ है या अकारण हठाए उल्पष हो गया है ?

आयुस कोटित ! हममें एक भी ठीक नहीं । किन्तु, विज्ञान क प्रत्यय से नामरूप होता है ।

आयुस सारियुष ! क्या विज्ञान अपना स्वर्ष किया हुआ है या अकारण उल्पष हुआ है ?

आयुस कोटित ! हममें एक भी ठीक नहीं; किन्तु नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है ।

तो हम आयुष्मान् सारियुष के बड़े का अब हम प्रकार जायें—नामरूप बार विज्ञान न ता अपना
स्वर्ष किया हुआ है न अकारण हठाए उल्पष हुआ है; किन्तु विज्ञान क प्रत्यय से नामरूप और नाम
रूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है ।

आयुस सारियुष ! हमरा भर्ष पों ही न समझना चाहिये ?

तो आयुस ! मैं एक अपना नकर समझता हूँ; अपना मैं कितने बिल पुरुष बड़े हुए का भर्ष सर
समझ कर हूँ ।

आयुस ! जम दा अस्फुजय (= नरकर क बोझ) एक दूसरे के सहार उठाकर लड़े हों; जैसे ही
नामरूप क प्रत्यय से विज्ञान और विज्ञान क प्रत्यय से नामरूप होता है । नामरूप क प्रत्यय से पदायतन
होता है । इस तरह सारा दुःख-समूह उठ पड़ा होता है ।

आयुस ! जैम उठ हो अस्फुजयों में एक का सीक लेने से दूसरा गिर पड़ता है; जैसे ही नामरूप
के निराध से विज्ञान का निरोध और विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध होता है । नामरूप के
निरोध से पदायतन का निरोध होता है । पदायतन के निरोध से स्वर्षा का निराध होता है । इस
तरह सारे दुःख-समूह का निरोध हो जाता है ।

आयुस सारियुष ! आभर्ष है अनुमन है ! आय ने इस इतना अध्ण समझाया ! आय के बड़े
हूब का हम उ लम प्रकार से अनुमान करतें हैं ।

जो बिधु अरामरन क निर्वेद बैराग्य और निराध क लिये धर्मादेश करता है बड़ा अकबला
धर्मबधिय करत जा सकता है । जो बिधु अरामरन क निर्वेद बैराग्य और निराध क लिये अतिरिक्त होता
है वही अकबला धर्मानुवर्ष प्रतिपष करता जा सकता है । जो बिधु अरामरन क निर्वेद बैराग्य निरोध
अनुपाराण से विमुक्त हो जाता है वही अकबला एहकर्मनिर्वाण प्राप्त करत जा सकता है ।

जाति सब उपाराण मृष्ठा वेदता स्वर्षा पदायतन नामरूप --
विज्ञान संस्कार । जो बिधु कबिया क निर्वेद बैराग्य निरोध अनुपाराण से विमुक्त हो जाता
है वही अकबला एहकर्मनिर्वाण प्राप्त करत जा सकता है ।

१ / सांगम्पी मुष (१० उ ८)

मय का निराध ही निराध

एक अकबल आयुष्मान् मुषिष्ण आयुष्मान् सारियुष आयुष्मान् नाम्क भार आयुष्मान् अरामर
कानावर्षी के सारिगानाम में विचार करने से ।

क

तथ, आयुष्मान् सविद् आयुष्मान् मूलि से बोले—आयुस् मूलि । श्रद्धा को छोड़, रधि का छोड़, अनुभव को छोड़, आकारपरिवर्तक को छोड़, रट्टिनिध्यान क्षान्ति को छोड़, आयुष्मान् मूलि को क्या अपने भीतर ही ऐसा जान हो गया है कि जाति के प्रत्यय से जराभरण होता है ?

आयुस् सविद् । श्रद्धा को छोड़ , मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ कि जाति के प्रत्यय से जराभरण होता है ।

आयुस् मूलि । श्रद्धा को छोड़ , आयुष्मान् मूलि को क्या अपने भीतर ही ऐसा जान हो गया है कि भव के प्रत्यय से जाति होती है ?

कि उपादान के प्रत्यय से भव होता है ?**

कि तृष्णा के प्रत्यय से उपादान होता है ?

• कि वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है ?

कि स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है ? •

कि पद्मायतन के प्रत्यय से स्पर्श होता है ? •

कि नामरूप के प्रत्यय से पद्मायतन होता है ?***

कि विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होता है ?

कि सत्कारों के प्रत्यय से विज्ञान होता है ?

**कि अविद्या के प्रत्यय से सत्कार होते हैं ?

आयुस् सविद् । श्रद्धा को छोड़***, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ कि अविद्या के प्रत्यय से सत्कार होते हैं ।

आयुस् मूलि । श्रद्धा को छोड़ , आयुष्मान् मूलि को क्या अपने भीतर ऐसा जान हो गया है कि जाति का निरोध होने से जराभरण का निरोध होता है ।

आयुस् सविद् । श्रद्धा को छोड़* , मैं यह जानता और देखता हूँ कि जाति का निरोध होने से जराभरण का निरोध होता है ?

** भव के निरोध से जाति का निरोध । [प्रतिश्लोम वश से] अविद्या के निरोध से सत्कारों का निरोध होता है ।

आयुस् मूलि । श्रद्धा को छोड़ , आयुष्मान् मूलि को क्या अपने भीतर ऐसा जान हो गया है कि भव का निरोध होना ही निर्वाण है ?

आयुस् सविद् । श्रद्धा को छोड़ , मैं यह जानता और देखता हूँ कि भव का निरोध होना ही निर्वाण है ?

तो आयुष्मान् मूलि क्षीणाश्रव अर्हन् है ।

इस पर आयुष्मान् मूलि चुप रहे ।

ख

तथ, आयुष्मान् नारद् आयुष्मान् सविद् से बोले—आयुस् सविद् । अच्छा होता कि मुझे भी वह प्रश्न पूछा जाता । मुझसे वह प्रश्न पूछें । मैं आप को इस प्रश्न का उत्तर दूँगा ।

मैं आयुष्मान् नारद् को भी वह प्रश्न पूछता हूँ । आयुष्मान् नारद् मुझे इस प्रश्न का उत्तर दें ।

[पूर्ववत्]

आजुप्त सविह ! भद्रा को छोड़ मैं यह जानता भीर दगता हूँ कि भय का निरोध होना ही निर्वाण है ।

तो आयुष्मान् नारद क्षीणाश्रम आईएँ हैं ।

आजुप्त ! मैंने इन पथार्थ ज्ञान को पा लिया है कि भय का निरोध होना ही निर्वाण है किन्तु मैं क्षीणाश्रम आईएँ नहीं हूँ ।

आजुप्त ! जिस किसी काम्यार मार्ग में एक कुँजा है । वहाँ न डार हो न बाछरी । तब कोई धाम में रामाया धमामा धका-मोहा प्यासा पुरुष जाव । वह उस कुँजा में झाँके । 'पानी है' ऐसा कह जाने किन्तु वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ हो ।

आजुप्त ! वन ही मैंने इस पथार्थ-ज्ञान का पा लिया है कि भय का निरोध होना ही निर्वाण है किन्तु मैं क्षीणाश्रम आईएँ नहीं हूँ ।

ग

पूसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द आयुष्मान् सविह ने बोले—आजुप्त सविह ! पूसा कह कर आप आयुष्मान् नारद का क्या कहना चाहते हैं ?

आजुप्त आनन्द ! मैं आयुष्मान् नारद को बुलाऊँ और बन्धान छोड़ कर कुछ दूसरा करना नहीं चाहता हूँ ।

§ ९ उपपन्ति सुत्त (१० ७ ५)

अरामरण का इतना

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् आवस्ती में अनाद्यपिण्डिक के आराम जंतघन में विहार करते थे ।

भगवान् बोले—मिच्छुभी ! महासमुद्र बहकर महानदियों को बहा देता है । महानदियाँ बहकर छोटी-छोटी नदियाँ (= साखा नदियाँ) को बहा देती हैं । बड़ी बड़ी नदियों का बहा देती हैं ।"" छोटी-छोटी नदियों को बहा देती हैं ।

मिच्छुभी ! इसी तरह अविद्या बहकर संस्कारों को बहा देती है । संस्कार बहकर विज्ञान को बहा देते हैं ।"" अदि बहकर अरामरण को बहा देती है ।

मिच्छुभी ! महासमुद्र के ऊँट जाने पर महा नदियाँ ऊँट जाती हैं ।

मिच्छुभी ! इसी तरह अविद्या के इत जाने से संस्कार इत जाते हैं । संस्कारों के इत जाने से विज्ञान इत जाता है । अदि के इत जाने से अरामरण इत जाता है ।

§ १० सुत्तीय सुत्त (१२ ७ १०)

धर्म-स्वभाव-ज्ञान के पद्मात् निर्वाण का ज्ञान

अभिरयता चार की तरह साधु हो तुम्हें मांगता है

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के धनुवन कन्दक-निवाप में विहार करते थे ।

क

उस समय भगवान् का बड़ा सत्कार = गुरुकार = सम्मान = पूजन = जादर हो रहा था । उन्हें भीबर पिण्डपाठ शबवासव ग्गानयन्वक भयम्भ परिष्कार प्राप्त हो रहे थे ।

भिक्षुमंच का भी प्रज्ञा मन्कार' ।

किन्तु, अन्य तैर्गिकों का मन्कार' 'नहीं होता था । उन्हें चीघर "प्राप्त नहीं होते थे ।

ख

उस समय सुसीम परित्राजक परित्राजकों की एक बड़ी मण्डली के साथ राजगृह में टहरा हुआ था ।

तब, सुसीम परित्राजक की मण्डली ने सुसीम परित्राजक को कहा—मित्र सुसीम ! सुनें, आप धर्मण गौतम के पास दीक्षा ले लें । धर्मण गौतम से धर्म सीख कर आएं और हम लोगों को कहें । आप से धर्म सीखकर हम लोग गुरुओं को उपदेश देंगे । इस तरह, हम लोगों का भी मन्कार' होगा, और हम भी चीघर प्राप्त करेंगे ।

"मित्र ! बहुत अच्छा" का, सुसीम परित्राजक अपनी मण्डली को उत्तर दे, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया, ओर कुशल क्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गया ।

ग

एक ओर बैठ, सुसीम परित्राजक आयुष्मान् आनन्द से बोला—आयुस आनन्द ! मैं इस धर्म-विनय में ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ ।

तब, आयुष्मान् आनन्द सुसीम परित्राजक को ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले—सुसीम परित्राजक मुझसे कहता है कि आयुस आनन्द ! मैं इस धर्मविनय में ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ ।

आनन्द ! तो सुसीम को प्रव्रजित करो ।

सुसीम परित्राजक ने भगवान् के पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा पाई ।

उस समय कुछ भिक्षुओं ने भगवान् के पास ऐसा स्वीकार कर लिया था—जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ नहीं बचा, ऐसा जान लिया ।

घ

आयुष्मान् सुसीम ने इसे सुना कि कुछ भिक्षुओं ने भगवान् के पास ऐसा स्वीकार कर लिया है ।

तब, आयुष्मान् सुसीम जहाँ थे भिक्षु थे वहाँ गये, और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछकर और बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सुसीम उन भिक्षुओं से बोले—क्या यह सच्ची बात है कि आयुष्मान् ने भगवान् के पास ऐसा स्वीकार कर लिया है ?

हाँ, आयुस !

आयुष्मान् ने यह जानते और देखते हुये क्या अनेक प्रकार की अद्विष्टियों को प्राप्त कर लिया है ? एक छोकर भी बहुत हो जाते हैं ? बहुत होकर भी एक ही जाते हैं ? क्या आप प्रगट होते और छिप्त हो जाते हैं ? क्या आप जीवाल, हाता, पहाड़ के आर-पार बिना लगे बसे चले जा सकते हैं, जैसे आकाश में ? पृथ्वी में भी क्या आप दुर्बकियाँ लगा सकते हैं जैसे पानी में ? जल के तल पर भी क्या आप चल सकते हैं, जैसे पृथ्वी के ऊपर ? आकाश में भी क्या आप पलथी लगाकर रह सकते हैं, जैसे पक्षी ? चाँद सूरज जैसे तेजवान् को भी क्या आप हाथ में छू सकते हैं ? ब्रह्मलोक तक भी क्या आप अपने शरीर से वदा ले कर सकते हैं ?

आयुस नहीं ।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या दिव्य अलौकिक विद्युत् भोगपाठ से दिव्य भीरु मानुष तथा वृक्ष और मिश्र के क्षत्रियों को सुन सकते हैं ?

आयुस ! नहीं सुन सकते हैं ।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते आर देखते हुये क्या दूसरे जीवों और पुरुषों के चित्त को अपने चित्त से जान लेते हैं ? सराग चित्त को सराग चित्त है ऐसा जान लेते हैं ? वीतराग चित्त को वीतराग चित्त है, ऐसा जान लेते हैं ? ह्येय 'मीह वास चित्त को... वैसा जान लेते हैं ? संक्षिप्त 'विक्षिप्त', महात्', जमहात्' सोत्तर अनुत्तर समाहित अपमाहित 'विमुक्त', जविमुक्त चित्त को वैसा-वैसा जान लेते हैं ?

आयुस नहीं ।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या अनेक प्रकार के अपने पूर्व जन्म की बातों को स्मरण करते हैं—जस एक जन्म भी दो जन्म भी पौष दस - बौध पचास सी हजार काज - । अनेक संवर्त कल्प भी अनेक विवर्त कल्प भी अनेक संवर्तविवर्त कल्प भी । नहीं वा; इस नाम का इस गोन का इस बर्ण का इस आहार का ऐसा सुखदुःख भोगने बाका इतनी आयु बाका । सो वहाँ से मर कर वहाँ उत्पन्न हुआ । वहाँ भी इस नाम का - वा । सो वहाँ से मर कर वहाँ उत्पन्न हुआ - इस प्रकार क्या आप आकर भी उद्वेग के साथ अनेक प्रकार के अपने पूर्व जन्म की बातों को स्मरण करते हैं ।

आयुस नहीं ।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते आर देखते हुये क्या दिव्य अलौकिक विद्युत् बहुत से सार्वों को—मरते जबमते हीन प्रणीत सुन्दर कुक्ष अन्धी गति को प्राप्त भुरगति को प्राप्त अपने कर्म के अनुसार अबस्था को पाये—देखते हैं ? ने जीव सरिर बचन और मन से दुराचार करने वाले हैं आर्ष पुरुषों की विद्या करने वाले हैं मिथ्या दृष्टि वाले हैं मिथ्या दृष्टि में पण कर व्याकरण करने वाले हैं—जो मरने क बाद नरक में उत्पन्न हो कर भुरगति को प्राप्त होंगे ? ने जीव सरिर बचन और मन से सदाचार करने वाले हैं जो मरने क बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो कर भुरगति को प्राप्त होंगे ? इस प्रकार क्या जीवों को मरते जबमते हीन प्रणीत सुन्दर कुक्ष अन्धी गति को प्राप्त भुरगति को प्राप्त अपने कर्म के अनुसार अबस्था को पाये—देखते हैं ?

आयुस नहीं ।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या उस आन्ध विमोक्ष रूप के परे अक्षय जो हैं उन्हे सरिर से स्पर्श करत विहार करते हैं ?

आयुस नहीं ।

क्या आयुष्मानों का स्वीकार करना ठीक होते हुये जो आप ने इन (अलौकिक) जनों को नहीं पाया है ?

नहीं आयुस यह नहीं है ।

तो कैसे यह सम्भव है ।

आयुस सुधीम ! इस लोग प्रज्ञा-विमुक्त हैं ।

आयुष्मानों के इस संक्षेप से कहे गये का इन विन्दव से भर्ष नहीं समझते हैं । ह्येय कर के आप लोग ऐसा कहे कि आयुष्मानों के इस संक्षेप से कहे गये का इन वित्त्वार से भर्ष जान लें ।

आयुस सुधीम ! आप जान लें वाँ न जान लें, किन्तु इस लोग प्रज्ञा-विमुक्त हैं ।

हु

तब, आयुष्मान् सुखीम धावन से उठ जाँँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन पर एक ओर घेँट गये । एक ओर घेँट, आयुष्मान् सुखीम ने उन भिक्षुओं के साथ जो कथा-संलाप हुआ था सभी भगवान् को कह सुनाया ।

सुखीम ! पहले धर्म के स्वभाव का ज्ञान होता है, पीछे निर्वाण का ज्ञान ।

भगवान् के हम स्वभाव से कहे गये या हम विचार में अर्थ नहीं समझते हैं । छुपा कर भगवान् ऐसा कहें कि भगवान् के हम स्वभाव से कहे गये का हम विचार में अर्थ जान ले ।

सुखीम ! तुम जानो या न जानो, किन्तु पहले धर्म के स्वभाव का ज्ञान होता है, पीछे निर्वाण का ज्ञान । सुखीम ! तो क्या समझने ही रूप निय है अथवा अनिय ?

भन्ते ! अनिय है ।

जो अनिय है वह हु या है या मुग् ?

भन्ते ! हु या है ।

जो अनिय, हु या त्रिपरिणामधर्मा है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

वेदना निय है या अनिय ?

सत्ता निय है या अनिय ?

संस्कार निय है या अनिय ?

चिज्ञान निय है या अनिय ?

जो अनिय, हु या, त्रिपरिणामधर्मा है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

सुखीम ! तो, जो कुछ अतीत, अनगत या वर्तमान के रूप है—आध्यात्म या धात्व, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रणीत, वृत्त्य या निरुत्थ—सभी न मेरे हैं, न हम हैं, और न हमारे आत्मा है ।

सुखीम ! जो कुछ अतीत अनागत या वर्तमान के वेदना, संज्ञा, संस्कार, चिज्ञान हैं सभी न मेरे हैं, न हम हैं, और न हमारे आत्मा है । इन बात का यथार्थ रूप में अच्छी तरह साक्षात्कार कर लेना चाहिये ।

सुखीम ! ऐसा देखते हुये ज्ञानी ज्ञानिप्रायक का चित्त रूप से हट जाता है, वेदना से हट जाता है, संज्ञा से हट जाता है, चिज्ञान से हट जाता है । चित्त के हट जाने पर वैराग्य उत्पन्न होता है । वैराग्य से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जाने पर विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान होता है । जाति क्षीण हुई, ब्रह्म चर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब ओर कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है ।

सुखीम ! तुम देखते हो कि जाति के प्रत्यय से जराभरण होता है ?

हाँ भन्ते !

सुखीम ! तुम देखते हो कि भव के प्रत्यय से जाति होती है ?

हाँ भन्ते !

सुखीम ! तुम देखते हो अधिष्ठा के प्रत्यय से संस्कार होते हैं ?

हाँ भन्ते !

सुखीम ! देखते हो कि जाति का निरोध होने से जराभरण का निरोध होता है ?

हैं मन्त !

सुसीम ! देखते हो कि भविष्य का निरोध होने से मस्कारों का निरोध हो जाता है ।

हैं मन्ते !

सुसीम ! क्या तुमने ऐसा बातों के दर देखते हुये अनेक प्रकार की कदियों को प्राप्त कर लिया है ? कि एक हो कर बहुत हो जामा [किन्तु सुसीम ने इन भिक्षुओं से पूछा था]

नहीं मन्त !

सुसीम ! ऐसा कहना भी और इस जगत् को न पा केना सी—सुसीम ! बहरी हमने किया है ।

च

तब, आपुष्पात् सुसीम भगवान् के चरणों पर क्षिर से प्रणाम करके बोले—शोक मूढ़ अज्ञानक के ऐसा मुझ से अपराध हो गया कि जैसे जैसे धर्म-विभव में शोर के प्रसा प्रवर्धित हुआ । मन्त ! भगवान् के पास में अपना अपराध स्वीकार करता हूँ ; जो भगवान् मुझे क्षमा कर दें । भविष्य में प्रसा नहीं करूँगा ।

सुसीम ! तुमने ठीक में बड़ा अपराध किया है ।

सुसीम ! जैसे लोग किमी शोर या शोषी का पकड़ कर राजा के पास के चारों और कहे—देव ! यह आपका शोर शोषी है, आप जमा बाँटें इसे कुछ दें । तब राजा कहे—जामी इसके हाथों को पीछे करके रस्मी से कम कर बाँध दो माया मुझ हो विज्ञान और शोक पीठत इस एक राक्षी से सुमरी राक्षी और एक चौराहे में चूमरे चौराहे के बाते हुए दक्षिण के फाटक से विभाक कर नगर के दक्षिण ओर इत्यत्र सिर झट हो । इस लोग जैसे ही के जाकर उसका फिर कर दें ।

सुसीम ! तो क्या समझते हो उस पुरुष को उसमें दुःख कैसी हागी पर नहीं ?

मन्ते ! अबश्य हागी ।

सुसीम ! उस पुरुष को दुःख हो या नहीं हा किन्तु जो शोर का तरह हम धर्म-विभव में प्रवर्धित हात है उन्हें अधिकाधिक दुःख भोगना होता है । वह तरह में पड़ता है ।

सुसीम ! जो तुम अपने अपराध का अपराध समझ-स्वीकार कर रहे हो इत्यने हम क्षमा कर रहे हैं । सुसीम ! धर्म-विभव में हमकी दृष्टि ही है जो अपने अपराध का जमानुद्धक प्रवर्धित कर देता है और भविष्य में न करने का संकल्प कर लेता है ।

महापद्म समाप्त

आठवाँ भाग

श्रमण-ब्राह्मण वर्ग

§ १. पञ्च सुत्त (१२. ८. १)

परमार्थज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

“ भगवान् धोले—भिक्षुओं ! जो श्रमण या ब्राह्मण जराभरण को नहीं जानते हैं, जराभरण के निरोध को नहीं जानते हैं, जराभरण की निरोधमाग्निर्वा प्रतिपदा को नहीं जानते हैं, उन श्रमणों में न तो श्रामण्य है और ब्राह्मणों में ब्राह्मण्य । वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार नहीं करते हैं ।

भिक्षुओं ! जो श्रमण या ब्राह्मण जराभरण को जानते हैं, उन्हीं श्रमणों में श्रामण्य और ब्राह्मणों में ब्राह्मण्य है । वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को इसी जन्म में स्वयं जान कर विहार करते हैं ।

§ २-१०. पञ्च सुत्त (१२. ८. २-१०)

परमार्थज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण

श्रावस्ती ' जेतवन ' में ।

जाति को नहीं जानता है ।

भव को नहीं जानता है ।

उपादान को नहीं जानता है ।

तृष्णा को नहीं जानता है ।

वेदना को नहीं जानता है ।

स्पर्श को नहीं जानता है ।

पञ्चायतन को नहीं जानता है ।

नामरूप को नहीं जानता है ।

विज्ञान को नहीं जानता है ।

§ ११. पञ्च सुत्त (१२. ८. ११)

परमार्थज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण

संस्कार को नहीं जानता है ।

श्रमण ब्राह्मण वर्ग समाप्त ।

नवाँ भाग

अन्तर पेय्याल

§ १ सत्या सुच (१० ९ १)

यथार्थज्ञान के लिए बुद्ध की खोज

मिथुना ! अरामरुण को न जानते हुए, न वेजते हुए, अरामरुण के यथार्थ ज्ञान के लिए बुद्ध की खोज करनी चाहिये । समुद्रप निरोध धीर प्रतिपदा के यथार्थ ज्ञान के लिए बुद्ध की खोज करनी चाहिये । यह पहला सूत्रात् है ।

सभी के हस्तों में प्रति समझ करना चाहिये ।

मिथुना ! जाति को न जानते हुए ।

मिथुना ! भव जपाहाम गुप्ता वेदना स्वर्ग पचापतन नामक्य
विज्ञान संस्कार को न जानते हुए बुद्ध की खोज करनी चाहिये ।

§ २ सिक्खा सुच (१० ९ २)

यथार्थज्ञान के लिए शिक्षा लेना

मिथुना ! अरामरुण को न जानते हुए अरामरुण के यथार्थ-ज्ञान के लिए शिक्षा लेनी चाहिये ।

[ऊपर के सूत्र के समान ही । "बुद्ध की खोज करनी चाहिये" के स्थान पर "शिक्षा लेनी चाहिये"]

§ ३ योग सुच (१० ९ ३)

यथार्थज्ञान के लिए याग-फिरना

भाग करना चाहिये ।

§ ४ छन्द सुच (१० ९ ४)

यथार्थज्ञान के लिए छन्द करना

छन्द करना चाहिये ।

§ ५ उस्तोखि सुच (१० ९ ५)

यथार्थज्ञान के लिए उस्ताह करना

उस्ताह करना चाहिये ।

§ ६ मप्पटिवानिय सुच (१० ९ ६)

यथार्थज्ञान के लिए पीछे न झींजना

... पीछे न झींजना चाहिये ।

§ ७ भातप्प सुच (१० ९ ७)

यथार्थज्ञान के लिए उद्याग करना

... उद्याग करना चाहिये ।

§ ८. विरिय सुत्त (१२. ९ ८)

यथार्थ ज्ञान के लिए वीर्य करना

.. वीर्य करना चाहिये ।

§ ९. सातच्च सुत्त (१२. ९. ९)

यथार्थ ज्ञान के लिए सतत परिश्रम करना

अध्यवसाय करना चाहिये ।

§ १०. सति सुत्त (१२. ९ १०)

यथार्थ ज्ञान के लिए स्मृति करना

.. स्मृति करनी चाहिये ।

§ ११. सम्पज्ज सुत्त (१२. ९ ११)

यथार्थ ज्ञान के लिए संमग्न रहना

समग्न रहना चाहिये ।

§ १२. अप्रमाद सुत्त (१२. ९. १२)

यथार्थ ज्ञान के लिए अप्रमादी होना

अप्रमाद करना चाहिये ।

अन्तर पेण्यालं वर्ग समाप्त ।

नवौं भाग

अन्नर पेखाल

§ १ सत्या सुच (१२ ९ १)

यथार्थज्ञान के लिए बुद्ध की ओर

मिथुना ! अरामरज को न जानते हुए, न बेपत्त हुए, अरामरज न सोच करनी चाहिये । समुद्रय निरोध धीरे प्रतिपत्ता के यथार्थ ज्ञान चाहिये । यह पहला सूत्रान्त है ।

समी में इसी भौति समझ देना चाहिये ।

मिथुनो ! जाति को न जानते हुए ।

मिथुनो ! सब अपादान सृष्ठा बहना विज्ञान संस्कार को न जानते हुए बुद्ध की ओर करनी

§ २ सिद्धा सुच (

यथार्थज्ञान के लिए :

मिथुना ! अरामरज को न जानते हुए अरामरज

[ऊपर के सूत्र के समान ही ।

कनी चाहिये]

§ ३ योग

यथार्थज्ञान

योग करवा चाहिये ।

§ ४ र

रज

छन्द करवा चाहिये ।

§ ५

असाह करना चा

§

पॉले न कीटय

भिष्णुओ ! जैसे, जहाँ महानदियों का संगम होता है—जैसे गंगा, यमुना, अचिरवती, सरयू, मही नदियों का—वहाँ से कोई पुरुष दो या तीन बूँद पानी निकाल ले ।

भिष्णुओ ! तो क्या समझते हो [ऊपर के सूत्र जैसा] .

§ ४. सम्भेज्जउदक्क सुत्त (१२. १०. ४)

महानदियों के संगम से तुलना

आवस्ती जेतवन" में ।

भिष्णुओ ! जैसे, जहाँ महानदियों का संगम होता है.. वहाँ का जल सूख कर खतम हो जाय, केवल कुछ बूँद बच जायें ।

भिष्णुओ ! तो क्या समझते हो. ।

§ ५. पठवी सुत्त (१२. १०. ५)

पृथ्वी से तुलना

आवस्ती जेतवन" में ।

भिष्णुओ ! कोई पुरुष वैर के बराबर पृथ्वी पर सात गोलियाँ फेंक दे । तो कौन बचा है, वैर के बराबर सात गोलियाँ या महापृथ्वी ?

[पूर्ववत्]

§ ६. पठवी सुत्त (१२. १०. ६)

पृथ्वी से तुलना

आवस्ती जेतवन" में ।

भिष्णुओ ! जैसे महापृथ्वी नष्ट हो जाय, खतम हो जाय, वैर के बराबर सात गोलियों को छोड़कर ।

§ ७. समुद्द सुत्त (१२ १० ७)

समुद्र से तुलना

आवस्ती जेतवन" में ।

भिष्णुओ ! जैसे, कोई पुरुष महासमुद्र से दो या तीन पानी के बूँद निकाल ले . ।

§ ८. समुद्द सुत्त (१२. १०. ८)

समुद्र से तुलना

आवस्ती जेतवन" में ।

भिष्णुओ ! जैसे, महासमुद्र सूख कर खतम हो जाय, दो या तीन पानी के बूँद छोड़कर । भिष्णुओ ! तो क्या समझते हो ।

§ ९. पब्बत सुत्त (१२. १०. ९)

पर्वत की उपमा

आवस्ती जेतवन" में ।

दशवाँ भाग

अभिसमय वर्ग

§ १ नखसिख सुप्त (१० १० १)

श्रोतापत्र के गुण अत्यल्प है

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् आधस्ती में अनाधपिण्डिक के जेतवन अराम में बिहार करत थे ।

तब भगवान् ने अपने बक के ऊपर एक पाण्डु का कल रज मिश्रुओं को आमन्त्रित किया—
मिश्रुओ ! क्या समझते हो कीम बचा है यह पाण्डु का छोटा कण जिससे मैंने अपने बक पर रज किया है या महापृष्ठी ?

मन्ते ! महापृष्ठी ही बहुत बड़ी है; भगवान् ने जिस पाण्डु-कण को अपने कण पर रज किया है वह तो बड़ा अर्थात् है । यह महापृष्ठी का काकवाँ भाग भी नहीं है ।

मिश्रुओ ! वैसे ही दक्षिसपथ शानी आर्षभाषक का वह तुल्य बचा है जो कीम हो गया = कड गया; जो बचा है वह तो अल्प अल्पमात्र है । पूर्व के कीम हो गये-उत्तर गये उस तुल्य कण के सामने वह बचा हुआ तुल्य जो अधिक से अधिक सात अणुओं तक रह सकता है साकवाँ भाग भी नहीं है ।

मिश्रुओ ! धर्म का शान हो जना इतना बचा परमार्थ का है; धर्म बहू का प्रतिष्ठाप इतना बचा परमार्थ का है ।

§ २ पोकखरणी सुप्त (१२ १० २)

श्रोतापत्र के गुण अत्यल्प है

आधस्ती "जेतवन" में ।

मिश्रुओ ! पचास बोजन कणों पचास बोजन बीड़ी कीर पचास बोजन गहरी पानी से कमाऊन गरी कोई पुष्करिणी हो कि जिसके किनारे बैठ कर बीया भी पानी पी सकता हो । तब कोई पुष्प उस पुष्करिणी से कुन्नाम से कुछ पानी निकाल के ।

मिश्रुओ ! जो क्या समझते हो कुन्नाम में जाने कककन में अधिक पानी है वा पुष्करिणी में ?

मन्ते ! कुन्नाम में जाने कककन से पुष्करिणी का पानी अल्प अल्प अधिक है; वह तो उसका काकवाँ भाग भी नहीं उद्धरता है ।

मिश्रुओ ! वैसे ही दक्षिसपथ शानी आर्षभाषक [ऊपर के सूत्र के पृष्ठा ही]

§ ३ सम्मेज्जउदक सुप्त (१२ १० ३)

महानदिपों के संगम से उद्भवा

आधस्ती "जेतवन" में ।

दूसरा परिच्छेद

१३. धातु-संयुक्त

पहला भाग

नानात्व वर्ग

(आध्यात्म पञ्चक)

§ १. धातु सुत्त (१३ १. १)

धातु की विभिन्नता

श्रावस्ती जेतवन में ।

भिक्षुओ ! धातु के नानात्व पर उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ ।

“भन्ते ! ब्रह्म अष्टा” कह, भिक्षुओ ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! धातु का नानात्व क्या है ?

चक्षुधातु, रूपधातु, चक्षुविज्ञान धातु । श्रोत्रधातु, शब्दधातु, श्रोत्रविज्ञान धातु । घ्राणधातु, गन्धधातु, घ्राणविज्ञान धातु । जिह्वा धातु, रसधातु, जिह्वाविज्ञानधातु । कायधातु, स्पृष्टव्य धातु, काय-विज्ञानधातु । मनोधातु, मनोविज्ञानधातु ।

भिक्षुओ ! इसी को धातुनानात्व कहते हैं ।

§ २. सम्फस्स सुत्त (१३ १ २)

स्पर्श की विभिन्नता

श्रावस्ती जेतवन में ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व होता है ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ?

चक्षुधातु, श्रोत्रधातु, घ्राणधातु ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व कैसे उत्पन्न होता है ?

भिक्षुओ ! चक्षुधातु के होने से चक्षुसस्पर्श उत्पन्न होता है । श्रोत्रसस्पर्श उत्पन्न होता है । घ्राणसस्पर्श उत्पन्न होता है । जिह्वासस्पर्श उत्पन्न होता है । कायसस्पर्श उत्पन्न होता है । मनसस्पर्श उत्पन्न होता है ।

भिक्षुओ ! इस प्रकार, धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है ।

§ ३. नो चेत्तं सुत्त (१३ १ ३)

धातु विभिन्नता से स्पर्श विभिन्नता

श्रावस्ती जेतवन में ।

मिथुभो ! जैसे, कोई पुराण पर्वतराज हिमालय से मात सरसों के बराबर कंकड़ ले ले। मिथुभो ! तो क्या समझत हो ?”

§ १० पञ्चत सुक्त (१० १० १०)

पर्यंत की उपमा

धायस्त्री जेतयत मे ।

मिथुभो ! जैसे पर्वतराज हिमालय नष्ट हो जाय जलम हो जाय मात सरसों के बराबर कंकड़ छानकर । मिथुभो ! तो क्या समझते हो ।

§ ११ पञ्चत सुक्त (१० १० ११)

पर्यंत की उपमा

धायस्त्री जेतयत मे ।

मिथुभो ! जैसे पर्वतराज सुमेरु म कोई पुराण मात भूँग के बराबर कंकड़ फेंक दे । मिथुभो ! तो क्या समझते हो । पर्वतराज सुमेरु बड़ा होगा या वे मात भूँग के बराबर कंकड़ ?

भस्मे ! पर्वतराज सुमेरु ही उन मात भूँग के बराबर कंकड़ों से बड़ा होगा । वे तो इसका मालवों भाग नहीं ही देखते ।

मिथुभो ! बसे ही दृष्टिगन्तव्य जामी आर्य धावक का यह दुःख बड़ा है जो क्षीण हो गया—जड़ गया, जो बचा है वह तो अपत्य अपरमात्र है । पूर्व के क्षीण हो गये—जड़ गये उस दुःख दृश्य के सामने वह बचा हुआ दुःख जो अधिक म अधिक मात जम्हों तक रह सकता है— मालवों भाग भी नहीं है ।

अभिप्रेतय संयुक्त समाप्त



भिक्षुओ ! ध्रोप्रधातु मनोधातु ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है; स्पर्शनानात्व के होने से वेदनानानात्व उत्पन्न होता है। वेदनानानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न नहीं होता है, स्पर्शनानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता है।

(बाह्य पञ्चक)

§ ६. धातु सुत्त (१३. १. ६)

धातु की विभिन्नता

आवस्ती^१ जेतघन मे ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के विषय में उपदेश करेंगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूपधातु, शब्दधातु, गन्धधातु, रसधातु, सूक्ष्मधातु और धर्मधातु ।

भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं धातुनानात्व ।

§ ७. सञ्जा सुत्त (१३. १. ७)

संज्ञा की विभिन्नता

आवस्ती^१ जेतघन मे ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व उत्पन्न होता है। संज्ञानानात्व के होने से सकल्पनानात्व उत्पन्न होता है। सकल्पनानात्व के होने से छन्दनानात्व उत्पन्न होता है। छन्दनानात्व के होने से हृदय में तरह-तरह की लगन पैदा होती है। तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूपधातु धर्मधातु ।

भिक्षुओ ! कैसे तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ?

भिक्षुओ ! रूपधातु के होने से रूपसंज्ञा उत्पन्न होती है। रूपसंज्ञा के होने से रूपसकल्प उत्पन्न होता है। रूप में तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ?

धर्मधातु के होने से ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व होता है।

§ ८. नो चेतं सुत्त (१३. १. ८)

धातु की विभिन्नता से संज्ञा की विभिन्नता

आवस्ती जेतघन मे ।

• तरह-तरह के यत्न होने से तरह-तरह की लगन पैदा नहीं होती है। तरह-तरह की लगन

* परिच्छानान्त=किसी चीज के पाने के लिये हृदय में एक लगन ।

मिथुनो ! घातुनामात्त्व के होने से स्पर्शनामात्त्व उत्पन्न होता है। यह नहीं कि स्पर्शनामात्त्व के होने से घातुनामात्त्व उत्पन्न हो।

मिथुनो ! घातुनामात्त्व क्या है ? अक्षुपाद्य मनोघात। मिथुनो ! इसी का कबूते हैं घातुनामात्त्व।

मिथुनो ! घातुनामात्त्व के होने से स्पर्शनामात्त्व कैसे होता है, और यह नहीं कि स्पर्शनामात्त्व के होने से घातुनामात्त्व हो ?

मिथुनो ! अक्षुपाद्य के होम से अक्षुसंस्पर्श उत्पन्न होता है अक्षुसंस्पर्श के होने से अक्षुपाद्य उत्पन्न नहीं होता। । मनोघात के संस्पर्श होने से मनासंस्पर्श उत्पन्न होता है; मनासंस्पर्श के होने से मनाघात उत्पन्न नहीं होता।

मिथुनो ! इसी प्रकार, घातुनामात्त्व के होने से स्पर्शनामात्त्व उत्पन्न होता है; स्पर्शनामात्त्व के होने से घातुनामात्त्व नहीं होता है।

§ ४ पठम वेदना सूच (१३ १ ४)

वेदना की विभिन्नता

भाष्यज्ञी अंतवचन में।

मिथुनो ! घातुनामात्त्व के होने से स्पर्शनामात्त्व उत्पन्न होता है। स्पर्शनामात्त्व के होने से वेदना नामात्त्व उत्पन्न होता है।

मिथुनो ! घातुनामात्त्व क्या है ? अक्षुपाद्य मनोघात।

मिथुनो ! घातुनामात्त्व के होने से स्पर्शनामात्त्व कैसे उत्पन्न होता है और स्पर्शनामात्त्व के होने से वेदना नामात्त्व कैसे उत्पन्न होता है ?

मिथुनो ! अक्षुपाद्य के होने से अक्षु-संस्पर्श उत्पन्न होता है। अक्षु संस्पर्श के होने से अक्षु-संस्पर्शका वेदना उत्पन्न होती है। । मनोघात के होने से मनासंस्पर्श उत्पन्न होता है। मनासंस्पर्श के होने से मनासंस्पर्शका वेदना उत्पन्न होती है।

मिथुनो ! इसी तरह घातुनामात्त्व के होने से स्पर्शनामात्त्व उत्पन्न होता है। स्पर्शनामात्त्व के होने से वेदना नामात्त्व उत्पन्न होता है।

§ ५ द्वितीय वेदना सूच (१३ १ ५)

वेदना की विभिन्नता

भाष्यज्ञी अंतवचन में।

मिथुनो ! घातुनामात्त्व के होने से स्पर्शनामात्त्व उत्पन्न होता है। स्पर्शनामात्त्व के होने से वेदना नामात्त्व उत्पन्न होता है। वेदना-नामात्त्व के होने से स्पर्शनामात्त्व नहीं होता है। स्पर्शनामात्त्व के होने से घातुनामात्त्व नहीं होता है।

मिथुनो ! घातुनामात्त्व क्या है ? अक्षु -- मना ।

मिथुनो ! घातुनामात्त्व के होने से स्पर्शनामात्त्व कैसे उत्पन्न होता है; स्पर्शनामात्त्व के होने से वेदना-नामात्त्व उत्पन्न होता है; वेदना नामात्त्व के होने से स्पर्शनामात्त्व उत्पन्न नहीं होता; स्पर्शनामात्त्व के होने से घातुनामात्त्व नहीं होता है ?

मिथुनो ! अक्षुपाद्य के होने से अक्षुसंस्पर्श उत्पन्न होता है। अक्षुसंस्पर्श के होने से अक्षुसंस्पर्शका वेदना उत्पन्न होती है। अक्षुसंस्पर्शका वेदना के होने से अक्षुसंस्पर्श नहीं होता है। अक्षुसंस्पर्श के होने से अक्षुपाद्य उत्पन्न नहीं होता।

भिक्षुओ ! ओत्रधातु मनोधातु" ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है, स्पर्शनानात्व के होने से वेदनानानात्व उत्पन्न होता है । वेदनानानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न नहीं होता है, स्पर्शनानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता है ।

(बाह्य पञ्चरू)

§ ६. धातु सुत्त (१३. १. ६)

धातु की विभिन्नता

आद्यस्ती" जेतवन् मे ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूपधातु, शब्दधातु, गन्धधातु, रसधातु, सूक्ष्मधातु और धर्मधातु ।

भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं धातुनानात्व ।

§ ७. सञ्जा सुत्त (१३. १. ७)

संज्ञा की विभिन्नता

आद्यस्ती" जेतवन् मे ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से सञ्ज्ञानानात्व उत्पन्न होता है । सञ्ज्ञानानात्व के होने से सकल्पनानात्व उत्पन्न होता है । सकल्पनानात्व के होने से छन्दनानात्व उत्पन्न होता है । छन्दनानात्व के होने से हृदय में तरह-तरह की लगन पैदा होती है । तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूपधातु धर्मधातु ।

भिक्षुओ ! कैसे तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ?

भिक्षुओ ! रूपधातु के होने से रूपसंज्ञा उत्पन्न होती है । रूपसंज्ञा के होने से रूपसकल्प उत्पन्न होता है । रूप में तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ?

धर्मधातु के होने से ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से सञ्ज्ञानानात्व होता है ।

§ ८. नो चेत् सुत्त (१३. १. ८)

धातु की विभिन्नता से संज्ञा की विभिन्नता

आद्यस्ती" जेतवन् मे ।

* तरह-तरह के यत्न होने से तरह-तरह की लगन पैदा नहीं होती है । तरह-तरह की लगन

॥ परिहाहनानत्त=किरी चीज के पाने के लिये हृदय में एक लगन ।

पैदा होने से छम्बुनामात्वं उत्पन्न नहीं होता । छम्बुनामात्वं क होने से संकल्पनामात्वं उत्पन्न नहीं होता । मयश्चामात्वं के होने से संज्ञानामात्वं नहीं होता । संज्ञानामात्वं क होने से भातुनामात्वं नहीं होता ।

मिथुनो ! भातुनामात्वं क्या है ? रूपभातु चर्मभातु ।

मिथुनो ! कैसे भातुनामात्वं के होने से संज्ञानामात्वं उत्पन्न होता है ? अगर [प्रतिबन्धमयस्य स बह जीक नहीं होता है] संज्ञानामात्वं क होने से भातुनामात्वं नहीं होता है ?

मिथुनो ! रूपभातु क होने से रूप संज्ञा उत्पन्न होती है । रूप में तरह-तरह की कगम पैदा होने से (उसकी पूर्ति के बिना) तरह-तरह के पक्ष होते हैं । तरह-तरह क पक्ष होने से तरह-तरह की कगम पैदा नहीं होती है । संज्ञानामात्वं के होने से भातुनामात्वं उत्पन्न नहीं होता है ।

सम्बुभातु ; गम्बुभातु ; रसभातु ; स्तम्बुभातु ; चर्मभातु ।

मिथुनो ! इसी तरह भातुनामात्वं के होने से संज्ञानामात्वं उत्पन्न होता है । अगर संज्ञानामात्वं के होने से भातुनामात्वं नहीं होता है ।

§ ९ पठम फस्त सूच (१३ १ ९)

विभिन्न प्रकार के काम के कारण

आपस्ती "जेतयन में ।

मिथुनो ! भातुनामात्वं के होने से संज्ञानामात्वं उत्पन्न होता है । संज्ञानामात्वं क होने से संकल्पनामात्वं उत्पन्न होता है । मयश्चामात्वं के होने से स्पर्शनामात्वं उत्पन्न होता है । मयश्चामात्वं के होने से वेदनामात्वं उत्पन्न होता है । वेदनामात्वं के होने से छम्बुनामात्वं उत्पन्न होता है । छम्बुनामात्वं के होने से रूप में तरह तरह की कगम पैदा होती है । तरह-तरह की कगम पैदा होने से तरह-तरह के पक्ष होते हैं । तरह तरह के पक्ष होने से तरह-तरह के काम होते हैं ।

मिथुनो ! भातुनामात्वं क्या है ? रूपभातु चर्मभातु ।

मिथुनो ! काम तरह-तरह की कगम पैदा होने से तरह-तरह के पक्ष होते हैं ?

मिथुनो ! रूपभातु क होने से रूपसंज्ञा उत्पन्न होती है । रूपसंज्ञा के होने से रूपसंकल्प उत्पन्न होता है । रूपसंकल्प के होने से रूपसंस्पर्श उत्पन्न होता है । रूपसंस्पर्श के होने से रूपसंस्पर्शा वेदना होती है । रूपसंस्पर्शा वेदना के होने से रूपकम्बु उत्पन्न होता है । रूपकम्बु के होने से रूप में तरह तरह की कगम पैदा होती है । रूप में तरह-तरह की कगम पैदा होने से तरह-तरह क पक्ष होते हैं । रूप में तरह तरह क पक्ष होने से रूप के तरह-तरह के काम होते हैं ।

सम्बु भातु चर्मभातु ।

मिथुनो ! इसी तरह भातुनामात्वं के होने से संज्ञानामात्वं उत्पन्न होता है । तरह-तरह के पक्ष होने से तरह-तरह के काम होते हैं ।

§ १० द्वितीय फस्त सूच (१३ १ १०)

भातु की विभिन्नता से ही संज्ञा की विभिन्नता

आपस्ती "सतयन में ।

मिथुनो ! भातुनामात्वं के होने से संज्ञानामात्वं उत्पन्न होता है । संज्ञानामात्वं के होने से संकल्पनामात्वं उत्पन्न होता है । "स्पर्श । वेदना । ... छम्बु ... L ... जगम । पक्ष । काम । ... तरह-तरह के काम होने से तरह-तरह के पक्ष नहीं होते । [इसी तरह प्रतिबन्धमयस्य से] । संज्ञानामात्वं क होने से भातुनामात्वं उत्पन्न नहीं होता ।

बिभुओ ! धातुनामाय क्या है ? रूप...धर्म ...।

बिभुओ ! केने धातुनामाय के होने से यज्ञानामाय उत्पन्न होता है । .। यज्ञानामाय के होने से धातुनामाय उत्पन्न नहीं होता ?

बिभुओ ! रूपधातु के होने से रूपमज्ञा उत्पन्न होता है ।.

शब्दधातु .धर्मधातु ...।

बिभुओ ! इसी तरह, धातुनामाय के होने से यज्ञानामाय उत्पन्न होता है ।. .। यज्ञानामाय के होने से धातुनामाय उत्पन्न नहीं होता ।

नानात्ववर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १ सत्तिमं मुत्त (१३ ५ १)

सात धानुयें

धावस्ती—अंतघन में ।

मिथुभी ! धातु यह सात हैं ।

कौन न सात ? (१) अभाधातु (२) शुभधातु, (३) अभाभावाभ्यावतन धातु, (४) विज्ञानाभ्यावतन धातु, (५) आकिञ्चन्यावतन धातु, (६) नैवसंज्ञानासंज्ञायतन धातु (७) संज्ञाव्यपित्तिरोध धातु ।

मिथुभी ! यही सात धातु हैं ।

प्रेमा कहने पर एक मिथु भगवान् स बोला—मन्ते ! किम प्रत्यय स यह सात धातु जाने जाते हैं ?

मिथु ! जो अभाधातु है वह अन्वकार के प्रत्यय से जाना जाता है । जो शुभधातु है वह म्भुभ के प्रत्यय से जाना जाता है । जो आकाशाभ्यावतन धातु है वह स्म के प्रत्यय से जाना जाता है । जो विज्ञानाभ्यावतन धातु है वह आकाशाभ्यावतन के प्रत्यय से जाना जाता है । जो आकिञ्चन्यावतन धातु है वह विज्ञानाभ्यावतन के प्रत्यय से जाना जाता है । जो नैवसंज्ञानासंज्ञायतन धातु है वह आकिञ्चन्यावतन के प्रत्यय से जाना जाता है । जो संज्ञाव्यपित्तिरोध धातु है वह विरोध के प्रत्यय से जाना जाता है ।

मन्ते ! इन सात धातुओं की प्राप्ति कैसे होती है ?

मिथु ! जो अभाधातु, शुभधातु, आकाशाभ्यावतन-धातु, विज्ञानाभ्यावतन धातु, आकिञ्चन्यावतन-धातु हैं उनकी प्राप्ति सज्ञा से होती है ।

मिथु ! जो नैवसंज्ञानासंज्ञायतन धातु है यह संस्कारों के विष्कृत अवसिद्ध हो जाने से प्राप्त होता है ।

मिथु ! जो संज्ञाव्यपित्तिरोध धातु है वह विरोध के हो जाने से प्राप्त होता है ।

§ २ सनिदान मुत्त (१३ २ २)

कारण स ही कार्य

धावस्ती—अंतघन में ।

मिथुभी ! कर्मवितर्क किसी विद्या से ही होता है, विद्या विद्या के नहीं । व्यापारवितर्क किसी विद्या से ही होता है, विद्या विद्या के नहीं । विहितवितर्क किसी विद्या से ही होता है, विद्या विद्या के नहीं ।

मिथुभी ! कैसे ?

भिक्षुओ ! कामधातु के प्रत्यय से कामसज्ञा उत्पन्न होती है । कामसज्ञा के प्रत्यय से कामसंकल्प उत्पन्न होता है । कामसंकल्प के प्रत्यय से कामसकल्प उत्पन्न होता है । कामसकल्प के प्रत्यय से कामसकण्ड उत्पन्न होता है । कामसकण्ड के प्रत्यय से काम की ओर एक लगन पैदा होती है । काम की ओर एक लगन पैदा होने के प्रत्यय से काम की प्राप्ति के लिये यत्न होता है । भिक्षुओ ! काम की प्राप्ति के लिये यत्न करते रह अधिहान्, एक जन तीन जगह सिध्या प्रतिपन्न होता है—शरीर से, वचन से और मन से ।

भिक्षुओ ! व्यापादधातु के प्रत्यय से व्यापादसज्ञा उत्पन्न होती है ।

भिक्षुओ ! विहिंसाधातु के प्रत्यय से विहिंसासंज्ञा उत्पन्न होती है ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष चलती हुई एक लुकारी को सूखी घासा की ढेर पर फेंक दे । उसे हाथ या पैर से शीघ्र ही पीट कर बुरा न दे । भिक्षुओ ! इस प्रकार, घास लकड़ी में रहने वाले प्राणी बड़ी विपत्ति में पड़ जायें, मर जायें ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो भ्रमण या ब्राह्मण पैदा बुरी-बुरी सज्ञा को शीघ्र ही छोड़ नहीं देता, दूर नहीं कर देता । बिल्कुल उबा नहीं देता है, वह इसी जन्म में दुःखपूर्वक विहार करता है, विघातपूर्वक, उपायासपूर्वक, परिलाहपूर्वक । शरीर छोड़ मरने के बाद उसे बड़ी दुर्गति प्राप्त होती है ।

भिक्षुओ ! निदान से ही नैऋत्म्य-वितर्क (= त्याग वितर्क) उत्पन्न होता है, बिना निदान के नहीं । निदान से ही अध्यापादवितर्क उत्पन्न होता है, बिना निदान के नहीं । निदान से ही अधिहिंसा-वितर्क उत्पन्न होता है, बिना निदान के नहीं ।

भिक्षुओ ! यह कैसे ?

भिक्षुओ ! नैऋत्म्यधातु (= सत्कार का ध्याय) के प्रत्यय से नैऋत्म्यसज्ञा उत्पन्न होती है । नैऋत्म्य-सकल्प । नैऋत्म्य-कण्ड । लगन । यत्न । भिक्षुओ ! नैऋत्म्य का यत्न करते हुये विद्वान् आर्यश्रावक तीन जगह सम्यक् प्रतिपन्न होता है—शरीर से, वचन से, मन से ।

भिक्षुओ ! अन्यापादधातु , अधिहिंसाधातु ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष चलती हुई एक लुकारी को सूखी घासों की ढेर पर फेंक दे । उसे हाथ या पैर से शीघ्र ही पीटकर बुरा न दे । भिक्षुओ ! इस प्रकार, घास लकड़ी में रहनेवाले प्राणी विपत्ति में न पड़ जायें, न मर जायें ।

भिक्षुओ ! वैसे ही जो भ्रमण या ब्राह्मण पैदा हुई बुरी संज्ञा को शीघ्र ही छोड़ देता है—दूर कर देता है—बिल्कुल उबा देता है, वह इसी जन्म में सुखपूर्वक विहार करता है, विघातरहित, उपायासरहित, परिलाहरहित । शरीर छोड़ मरने के बाद उसकी अच्छी गति होती है ।

§ ३. गिज्ञकावसथ सुत्त (१३ २ ३)

धातु के कारण ही संज्ञा, दृष्टि तथा वितर्क की उत्पत्ति

एक समय भगवान् ज्ञातिकों के साथ गिज्ञकावसथ में विहार करते थे ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! धातु के प्रत्यय से संज्ञा उत्पन्न होती है, वितर्क उत्पन्न होता है ।

ऐसा कहने पर, आशुप्मान् अद्दालु क्वात्थायन भगवान् से बोले —भन्ते ! बुद्धत्व न प्राप्त किये हुये लोगों में जो दृष्टि होती है वह कैसे जानी जाती है ?

क्वात्थायन । यह जो अधिधा-धातु है सो एक बड़ी धातु है ।

क्वात्थायन । हीन धातु के प्रत्यय से हीन संज्ञा, हीन दृष्टि, हीन वितर्क, हीन चेतना, हीन अभिलाषा, हीन प्रणिधि, हीन पुरुष, हीन वचन उत्पन्न होते हैं । यह हीन वालें करता है, हीन उपदेश

छेड़ें से बनी हुई आला—अद्दकथा ।

देता है हीन प्रज्ञापन करता है हीन पक्ष की स्थापना करता है हीन विचारण देता है, हीन विभाग करता है हीन समझता है । उसकी उत्पत्ति भी हीन होती है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

कारणात्मन । मध्यम प्राण के प्रत्यय क मध्यम संज्ञा । उसकी उत्पत्ति भी मध्यम होती है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

कारणात्मन । उत्तम प्राण के प्रत्यय स उत्तम संज्ञा । उसकी उत्पत्ति भी उत्तम होती है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

§ ४ हीनाधिभूति सूच (१३ २ ४)

आत्मों के अनुसार ही मेरुजोल का होना

धायस्ती जेतवन में ।

मिथुनो ! प्राण से सब सिद्धसिद्ध में चकते और मिळते हैं । हीन प्रवृत्तिवाले सब हीन प्रवृत्तियों के साथ ही सिद्धसिद्ध में चकते और मिळते हैं । कल्याण (= अच्छी) प्रवृत्तिवाले सब कल्याण प्रवृत्तियों के साथ ही सिद्धसिद्ध में चकते और मिळते हैं ।

मिथुनो ! अतीतकाल में भी प्राण ही से सब सिद्धसिद्ध में चकते रहे और मिळते रहे ।

मिथुनो ! अयागतकाल में भी ।

मिथुनो ! इस समय में भी ।

§ ५ चक्रम सूच (१३ २ ५)

प्राण के अनुसार ही सर्वों में मेरुजोल का होना

एक समय भगवान् राजगृह में गृहकृत पर्वत पर विहार करते थे ।

उस समय आनुष्मान् सारिपुत्र कुछ मिथुनों के साथ भगवान् से कुछ ही दूर पर चक्रमण कर रहे थे ।

आनुष्मान् महार्माज्ञस्यापन । महाकादयप । अनुकृत । पुष्पण म्स्थामिपुत्र ।
जपालि । मानस्य । देववृत्त भी कुछ मिथुनों के साथ भगवान् से कुछ ही दूर पर चक्रमण कर रहे थे ।

उस भगवान् ने मिथुनों को आमन्त्रित किया:—

मिथुनो ! तुम सारिपुत्रको कुछ मिथुनों के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते ।

मिथुनो ! वे सभी मिथु बड़े प्रज्ञावाले हैं ।

मिथुनो ! तुम मीठक्याचन को कुछ मिथुनों के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते !

मिथुनो ! वे सभी मिथु बड़े ज्ञानिवाले हैं ।

मिथुनो ! तुम वाचप को कुछ मिथुनों के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते !

मिथुनो ! वे सभी मिथु पुत्राङ्ग चारण करनेवाले हैं ।

मिथुनो ! तुम अनुकृत को कुछ मिथुनों के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते !

मिथुनो ! वे सभी मिथु विष्णु चतुर्वास हैं ।

भिक्षुओ ! तुम पुष्प मन्तानिपुत्र को कुछ भिक्षुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?
हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु बड़े धर्मकथिक हैं ।

भिक्षुओ ! तुम उपालि को कुछ भिक्षुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?
हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु बड़े विनयधर हैं ।

भिक्षुओ ! तुम आनन्द को कुछ भिक्षुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?
हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु बहुश्रुत हैं ।

भिक्षुओ ! तुम देववत्स को कुछ भिक्षुओं के साथ चक्रमण करते देखते हो न ?
हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु पापेच्छ हैं ।

भिक्षुओ ! धातु से ही सख सिलसिला में चलते और मिलते हैं । हीन प्रवृत्तिवाले सख हीन प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं । कल्याण प्रवृत्तिवाले सख कल्याण प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं ।

भिक्षुओ ! अतीत में भी , अनागत में भी , इस समय भी ।

§ ६. सगाथा सुक्त (१३. २. ६)

धातु के अनुसार ही मेलजोल का होना
श्रावस्ती जेतवन में ।

क

भिक्षुओ ! धातु से ही सख सिलसिला में चलते और मिलते हैं । हीन प्रवृत्तिवाले सख हीन प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं ।

भिक्षुओ ! अतीत में भी , अनागत में भी , इस समय भी ।

भिक्षुओ ! जैसे, मैला मैले के सिलसिले में चला आता और मिला जाता है । मूत्र मूत्र के । दूध दूध के । पीप पीप के । लहू लहू के । भिक्षुओ ! वैसे ही, हीनप्रवृत्तिवाले सख हीन-प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं ।

भिक्षुओ ! अतीत में भी , अनागत में भी , इस समय भी ।

भिक्षुओ ! धातु से ही सख सिलसिले में आते और मिलते हैं । कल्याण प्रवृत्तिवाले सख कल्याण प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिले में आते और मिलते हैं ।

भिक्षुओ ! जैसे, दूध दूधके साथ, तेल तेल के साथ, घी घी के साथ, मडु मडु के साथ, तथा गुध गुध के साथ सिलसिले में आता है और मिलता है ।

भिक्षुओ ! अतीत , अनागत , इस समय ।

भगवान् यह बोले । इतना कहकर बुद्ध और भी बोले—

ससर्ग से पैदा हुआ राग का जगल,

असर्ग से काट दिया जाता है,

थोड़ी सी लकड़ी के ऊपर चढ़ कर,

जैसे महासमुद्र में डूब जाता है,

बैसे ही निकम्मे आदमी के साथ रह कर
 साधु पुरुष भी हूब जाता है ॥
 इसलिये उसका पर्यन्त कर देना चाहिये,
 जो निकम्मा और धीरे-धीरे पुरुष है ।
 एकान्त में रहने वाले जो धार्यपुरुष है,
 प्रहितात्म और भ्राम में रत रहने वाले,
 जिनको सर्वत्र उस्ताह बना रहता है
 उस परिवर्तों का सहचर करे ॥

§ ७ अस्सद् सुत्त (१३ २ ७)

घातु के अनुसार ही मेलजोल का होना
 भावस्ती जेतयन में ।

क

मिथुजो ! घातु स ही । भद्राहित पुरुष भद्राहितों के साथ निर्दम निर्दमों के साथ
 बेसमझ बेसमझों के साथ मूर्ख मूर्खों के साथ निकम्मा निकम्मों के साथ मूढ़ स्पृष्टिवाले मूढ़ स्पृष्टिवाले
 के साथ तथा दुष्पथ दुष्पथों के साथ विकसितों में जाते और मेल जाते हैं ।

मिथुजो ! अतीतकाक में , अनागतकाक में । इस समय ।

ख

मिथुजो ! घातु स ही । भद्रात्त पुरुष भद्रात्तों के साथ [डीक उसका उच्छ] प्रज्ञावान्
 प्रज्ञावानों के साथ ।

§ ८ अभद्रा मूलक पञ्च (१३ २ ८)

§ ९ निर्लज्ज मूलक चार (१३ २ ९)

§ १० बेसमझ मूलक तीन (१३ २ १०)

§ ११ अल्पभक्त (= मूर्ख) होने से दो (१३ २ ११)

§ १२ निकम्मा (१३ २ १२)

[इन सूत्रों में ऊपर की कही गई बातें ही तोष-मरीचकर कही गई हैं]

छितीय वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

कर्मपथ चर्चा

§ १. असमाहित सुत्त (१३. ३. १)

असमाहित का असमाहितों से मेल होना

श्रावस्ती जेतवन में * ।

भिक्षुओं । धातु से सत्त्व * । अद्वारहित अद्वारहितों के साथ, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, वेसमक्ष वेसमक्षों के साथ, असमाहित असमाहितों के साथ, दुग्प्रज्ञ दुग्प्रज्ञों के साथ मिलमिले में आते और मिलते हैं ।

* [उलटा] । प्रजावान् प्रजावानों के साथ ।

§ २. दुग्शील सुत्त (१३. ३. २)

दुग्शील का दुग्शीलों से मेल होना

श्रावस्ती जेतवन में* ।

भिक्षुओं । धातु से सत्त्व * । अद्वारहित , निर्लज्ज * , श्रेयमग्न * , दुग्शील दुग्शीलों के साथ, दुग्प्रज्ञ ।

[उलटा] । * शीलवान् शीलवानों के साथ ।

§ ३. पञ्चसिक्खापद सुत्त (१३. ३. ३)

बुरे बुरों का साथ करते तथा अच्छे अच्छों का

श्रावस्ती जेतवन में* ।

भिक्षुओं । धातु से सत्त्व । हिंसक पुरुष हिंसकों के साथ, चोर चोरों के साथ, छिनाल छिनालों के साथ, झूठे झूठों के साथ, नशाखोर नशाखोरों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं ।

* [ठीक इसका उलटा ही] । नशा से परहेज करनेवाले पुरुष नशा से परहेज करनेवाले पुरुषों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं ।

§ ४. सत्तकम्मपथ सुत्त (१३. ३. ४)

सात कर्मपथ वालों में मेलजोल का होना

श्रावस्ती जेतवन में* ।

भिक्षुओं । धातु से सत्त्व । हिंसक पुरुष * , चोर , छिनाल * , झूठे * , सुगलखोर सुगलखोरों के साथ, गप्पी गप्पियों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं ।

[गप्प से परहेज करनेवाले गप्प से परहेज करनेवालों के साथ* ।

§ ५ दसकर्मपथ सूच (१३ ३ ५)

दस कर्मपथवालों में मेळजोळ का होना

भावस्ती जेतयन में ।

मिधुमा ! धादु से सत्व । हिसक चोर जिनाक हटे सुराकचोर कले बचन
कहनेवाल गयी कोमी व्यापकचित्त मिष्या छिदि ।

§ ६ अष्टाङ्गिक सूच (१३ ३ ६)

अष्टाङ्गिकों में मेळजोळ का होना

भावस्ती जेतयन में ।

मिधुमा ! धादु स सत्व । मिष्याछिदिबाळे । मिष्या संकल्पबाळ मिष्या बचनबाळे ,
मिष्या कर्मान्तबाळ मिष्या बीदिकाबाळ , मिष्या ज्ञायामबाळे मिष्या स्मृतिबाळे मिष्या
समाधिबाळे पुण्य मिष्या समाधिबाळे पुण्यों के साथ सिद्धसिद्धे में जाते भीर मिळते ह ।

[उक्त्य] । सगळ समाधिबाळे पुण्य सगळ समाधिबाळे पुण्यों के साथ ।

§ ७ दसङ्ग सूच (१३ ३ ७)

दशाङ्गों में मेळजोळ का होना

भावस्ती जेतयन में ।

मिधुमा ! धादु स सत्व । [ऊपर के भाड में दो अंतर जोड दिय गये ह] । मिष्या ज्ञान
बाळ मिष्या किमुक्तिबाळे ।

[उक्त्य] ।

कर्मपथ धर्म समाप्त



चौथा भाग

चतुर्थ वर्ग

§ १. चतु सुक्त (१३ ४ १)

चार धातुये

श्रावस्ती जेतधन मे ।

भिक्षुओ ! धातु चार है । कौन से चार ? (१) पृथ्वीधातु, (२) आपो धातु, (३) तेजो धातु और

(४) वायु धातु ।

भिक्षुओ ! यही चार धातु हैं ।

§ २. पुष्य सुक्त (१३ ४ २)

पूर्वज्ञान, धातुओं के आस्वाद और वुष्परिणाम

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! बुद्धत्व प्राप्त करने के पहले, बोधिसत्त्व रहते ही, मेरे मन में यह हुआ—पृथ्वीधातु का आस्वाद क्या है, आदिनव (= रोप) क्या है, और नि सरण (= मुक्ति) क्या है ?

भिक्षुओ ! तब, मेरे मन में यह हुआ—पृथ्वीधातु से जो सुख और चैन होता है वह पृथ्वीधातु का आस्वाद है । जो पृथ्वी में अनित्य, दुःख और विपरिणाम धर्म हैं वह पृथ्वीधातु का आदिनव है । जो पृथ्वीधातु के प्रति छन्दराग की दयाना और हटा देना है यही पृथ्वीधातु का नि सरण (= मुक्ति) है ।

जो आपोधातु के प्रत्ययसे , जो तेजोधातु के प्रत्यय से , जो वायुधातु के प्रत्यय से * ।

भिक्षुओ ! जबतक इन पृथ्वीधातु के आस्वाद, आदिनव और नि सरण का यथाभूत ज्ञान मुझे प्राप्त नहीं हुआ था, तब तक मैंने—देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ—इस लोक में देवता, मनुष्य, ब्राह्मण और श्रमणों के बीच ऐसा दावा नहीं किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त हुआ है ।

भिक्षुओ ! जब, इनका*** ज्ञान प्राप्त हो गया, तभी मैंने ऐसा दावा किया ** ।

मुझे ऐसा ज्ञान = दर्शन द्रष्टव्य हो गया कि अवश्य ही मेरे चित्त की विमुक्ति हो गई । यही अन्तिम जन्म है, और अब पुनर्जन्म होने का नहीं ।

§ ३. अचरि सुक्त (१३ ४ ३)

धातुओं के आस्वादन में विचरण करना

श्रावस्ती * ।

भिक्षुओ ! पृथ्वीधातु में आस्वाद ढँढ़ते हुये मैंने विचरण किया । पृथ्वीधातु का जो आस्वाद है

वहाँ तक मैं पहुँच गया। पूरबी धातु का जहाँ तक आस्वाद है मैंने प्रमाँ से दण किया। मिथुना ! पूरबी धातु में आदिनव ।

मिथुना ! पूरबीधातु का निःसरण को हँदित हुये मैंने विवरण किया। पूरबीधातु का जो निःसरण है वहाँ तक मैं पहुँच गया। निजसे पूरबीधातु का निःसरण होता है मैंने प्रमाँ से दण किया।

“ [इसी तरह भाषोधातु, तत्रोधातु और वायुधातु के साथ भी]

मिथुना ! अबतक हम चार धातुओं के आस्वाद आदिनव चार निःसरण का यथाभूत ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था; अब तक मैंने ऐसा दावा नहीं किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् समुद्भव प्राप्त हुआ है।

मिथुना ! अब इतना ज्ञान प्राप्त हो गया तभी मैंने ऐसा दावा किया” ।

मुझे ऐसा शास्त्र-दर्शन उपलब्ध हो गया कि अबतक ही मेरे चित्त की विमुक्ति हो गई। यही अन्तिम अणु है और अब पुनः अणु शान्ति का नहीं।

§ ४ नो वेदं सुच (१३ ४ २)

धातुमा क यथार्थं ज्ञान से ही मुक्ति

भाषस्ती ।

मिथुना ! यदि पूरबीधातु में आस्वाद नहीं होता तो प्राणी पूरबीधातु में रक्त नहीं करते। मिथुना ! क्योंकि पूरबीधातु में आस्वाद है इसीलिए प्राणी पूरबीधातु में रक्त करते हैं।

मिथुना ! यदि पूरबीधातु में आदिनव नहीं होते तो प्राणी पूरबीधातु से उचरते नहीं। मिथुना ! क्योंकि पूरबीधातु में आदिनव है इसीलिए प्राणी पूरबीधातु से उचरते हैं।

मिथुना ! यदि पूरबीधातु से निःसरण (= मुक्ति) नहीं होता तो प्राणी पूरबीधातु से मुक्त नहीं होते। मिथुना ! क्योंकि पूरबीधातु से निःसरण होता है इसीलिए प्राणी पूरबीधातु से मुक्त हो जाते हैं।

[इसी तरह भाषोधातु, तत्रोधातु और वायुधातु के साथ भी]

मिथुना ! अब तक हम चार धातुओं के आस्वाद, आदिनव और निःसरण का ज्ञान यथाभूत नहीं जान लेते हैं अब तक वे “हम लोक में नहीं छुरते हैं” ।

मिथुना ! अब ज्ञान इतना यथाभूत जान लेते हैं अब वे हम लोक में छुर जाते हैं तथा विमुक्त चित्त में विहार करते हैं।

§ ५ दुक्खं सुच (१३ ४ ३)

धातुमा क यथार्थं ज्ञान से मुक्ति

भाषस्ती ।

मिथुना ! यदि पूरबीधातु में कवल दुःख ही दुःख होता और सुख से विमुक्त दुःख, तो प्राणी पूरबीधातु में रक्त नहीं करते। मिथुना ! क्योंकि पूरबीधातु में दुःख है दुःख का अभाव है इसीलिए प्राणी पूरबीधातु में रक्त करते हैं।

“ [इसी तरह भाषोधातु, तत्रोधातु और वायुधातु के साथ भी]

मिथुना ! यदि पूरबीधातु में केवल सुख ही सुख होता और दुःख से विमुक्त सुख तो पूरबीधातु में विरक्त नहीं होते। मिथुना ! क्योंकि पूरबीधातु में दुःख है दुःख का अभाव है इसीलिए प्राणी पूरबीधातु में विरक्त होते हैं।

“ [इसी तरह भाषोधातु, तत्रोधातु और वायुधातु के साथ भी]

§ ६. अभिनन्दन सुत्त (१३. ४. ६)

धातुओं की विरक्ति से ही दुःख से मुक्ति

श्रावस्ती ।

क

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु में आनन्द उठता है वह दुःख का स्वागत करता है । जो दुःख का स्वागत करता है । वह दुःख से मुक्त नहीं हुआ है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

“आपोधातु”, तेजोधातु”, वायुधातु ।

ख

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु से विरक्त रहता है वह दुःख का स्वागत नहीं करता । जो दुःख का स्वागत नहीं करता है, वह दुःख में विमुक्त हो गया—ऐसा मैं कहता हूँ ।

§ ७. उप्पाद सुत्त (१३. ४. ७)

धातु-निरोध से ही दुःख-निरोध

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु का होना, रहना और लय हो जाना है (= उत्पाद, स्थिति, अभिनिर्वृति), वह दुःख ही का प्रादुर्भाव है, रोग तथा जरामरण का ही होना और रहना है ।

आपोधातु , तेजोधातु , वायुधातु ।

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु का निरोध=व्युत्पदान=वस्त हो जाता है, वह दुःख का ही निरोध है, रोग तथा जरामरण का ही व्युत्पदान और वस्त हो जाता है ।

§ ८. पठम समणब्राह्मण सुत्त (१३. ४. ८)

चार धातुयें

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! धातु चार हैं । कौन से चार ? पृथ्वीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायुधातु ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन चार भूतों के आस्वाद, आदिनव और नि सरण को यथाभूत नहीं जानते हैं, न तो उन श्रमणों में श्रमण्य है और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण्य । वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को इसी जन्म में स्वयं जान साक्षात् कर और प्राप्त कर विहार नहीं करते हैं ।

भिक्षुओ ! जो यथाभूत जानते हैं वे प्राप्त कर विहार करते हैं ।

§ ९. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (१३. ४. ९)

चार धातुयें

श्रावस्ती ।

। जो श्रमण या ब्राह्मण इन चार धातुओं के समुदय, अस्तगम, आम्वाद, आदिनव, नि सरण को यथाभूत नहीं जानते हैं [ऊपर के ऐसा] ।

§ १० तृतीय समनमाक्षण युक्त (१३ ४ १०)

चार धातुयै

आयस्ती ।

मिथुनी ! जो अमर या माह्यण पृथ्वीधातु के समुदाय को नहीं जानते हैं ; पृथ्वीधातु के विरोध को नहीं जानते हैं ; पृथ्वीधातु की विरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं ।

अपोधातु ; ऐबीधातु ; वायुधातु ।

मिथुनी ! भी जानते हैं ।

चतुर्थे वर्ग समाप्त

धातु-संयुक्त समाप्त

तीसरा परिच्छेद

१४. अनसतज्ज-संयुक्त

प्रथम वर्ग

§ १. तिणकड् सुत्त (१४. १. १)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं, घास लकड़ी की उपमा

पेसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेनघन में विहार करते थे ।

घाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

“भदन्त” कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—इस संसार का प्रारम्भ (= जाटि) निर्धारित नहीं किया जा सकता है ।

अविद्या में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बंधे, चकते-फिरते नरों की पूर्व-होति जानी नहीं जाती ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष सारे जम्बूद्वीप के घाम, लकड़ी, डाली और पत्ते को तोड़ कर एक जगह जमा कर दे, और चार-चार अगुली भर के टुकड़े करके फेंकता जाय—यह मेरी माता हुई, यह मेरी माता की माता हुई—यों यह माता का सिलसिला समाप्त नहीं होगा, किन्तु वह सारे जम्बूद्वीप के घाम, लकड़ी, डाली और पत्ते समाप्त हो जायेंगे ।

मो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि, इस संसार का प्रारम्भ निर्धारित नहीं किया जा सकता है । अविद्या में पड़े सत्त्वों की पूर्व-होति जानी नहीं जाती ।

भिक्षुओ ! चिरकाल से हुए, पीड़ा और अनर्थ हो रहे हैं, इसज्ञान भरता जा रहा है ।

भिक्षुओ ! धत तुम्हें सभी सत्त्वों से विरक्त हो जाना चाहिये, राग नहीं करना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ २. पठवी सुत्त (१४ १ २)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं, पृथ्वी की उपमा

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष सारी महापृथ्वी को चैर के बराबर करके फेंकता जाय—यह मेरा पिता, यह मेरे पिता का पिता—तो उसके पिता के पिता का सिलसिला समाप्त नहीं होगा, महापृथ्वी समाप्त हो जायगी ।

“[ऊपर के पेसा] ।

§ ३ अस्सु सुत्त (१४ १ ३)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं, अस्सु की उपमा

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ ।

मिथुना ! क्या समझते हो जो चिरकाक से जन्मते मरत भ्रिय क संबंध भीर भिय क बिबांग से रोते हुये कोठों क असु अधिक गिरे हैं वह अधिक हैं वा चारों महासमुद्र क अरु ?

भस्ते ! भगवान् के पताये धर्म का रूमा हम जानते हैं उसमे ता वदी पना बरुना है कि जो अरु गिरे हैं वही चारों महासमुद्र के अरु अधिक हैं ।

सच है मिथुनो सच है ! तुममे मरे पताये धम को डीक स जान लिया है ।

मिथुनो ! चिरकाक से तुम माता की गृधु पुत्र की गृधु पुत्री की गृधु परिवार क अरुर्भ भींग की हानि और रोग के दुःख का अनुभव करते आ रह हो जो अरु गिरे हैं वही अधिक हैं । सो क्यों ? मिथुनो ! इस संसार का प्रारम्भ ।

मिथुनो ! लडा तुम्हें सभी संस्कारों से चिरक हो जाना चाहिये, राग नहीं करना चाहिये । बिमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ ४ खीर मुक्त (१४ १ ४)

संसार क प्रारम्भ का पतर मर्ही दूध की उपमा

मिथुनो ! इस संसार का प्रारम्भ ।

मिथुनो ! तुम क्या समझते हो जो चिरकाक से जन्मते मरत रह माता का दूध पीया गया है वह अधिक है वा चारों महासमुद्र का अरु ?

भस्ते ! भगवान् के पताये धर्म को जसा हम जानते हैं जो माता का दूध पीया गया है वही चारों महासमुद्र के अरु से अधिक है ।

सच है मिथुनो ! [ऊपर के रूमा]

§ ५ फण्डित मुक्त (१४ १ ५)

कल्प की वीर्यता

आवसी ।

तब कोई मिथुन वहाँ भगवान् से वहाँ जाया भीर भगवान् का अनिवादन कर एक और बैठ गया ।

एक और बैठ वह मिथुन भगवान् से बोला—भस्ते एक कल्प कितना बसा होता है ?

मिथु ! कल्प बहुत बसा होता है । उसकी गिनती नहीं की जा सकती है कि इतने वर्ष या इतने सी वर्ष वा इतने हजार वर्ष वा इतने अरु वर्ष ।

भस्ते ! उपमा करके कुछ समझ जा सकता है ?

भगवान् बोले—उपमा करके हों कुछ समझ जा सकता है । मिथु ! जैसे एक बोझ कम्पा एक पीछल बीबा भीर एक बोझ लीच एक महान् पर्वत हो—बिबुल डोस किनमें कोई बिब भी न हो । जैसे कोई पुण्ड सी-पी वर्ष के बाद काशी के रेघम से एक-एक बार पोंछे । मिथुनो ! इस प्रकार वह पर्वत लीक ही समाप्त हो जायगा किन्तु एक कल्प भी वही पुरने पायगा ।

मिथु ! कल्प देसा दीर्घ होता है । ऐस कल्पों कल्प भीत लुके ।

तो क्यों ? क्योंकि संसार का प्रारम्भ ।

§ ६. सासप सुत्त (१४. १. ६)

कल्प की दीर्घता

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते ! कल्प कितना बढ़ा होता है ?

भगवान् बोले—हाँ, उपमा की जा सकती है । भिक्षु ! जैसे, लोहे से घिरा एक नगर हो—योजन भर लम्बा, योजन भर चौड़ा, योजन भर ऊँचा—जो थोप-थोप कर सरसों से भर दिया गया हो । कोई पुरुष उससे एक-एक सौ वर्ष के बाद एक-एक सरसों निकाल ले । भिक्षु ! तो, इस प्रकार वह सरसों की ढेर शीघ्र ही समाप्त हो जायगी किन्तु एक कल्प नहीं पुरने पायगा ।

[ऊपर के पैसे] ।

§ ६. सावक सुत्त (१४. १. ७)

बीते हुए कल्प अगण्य हैं

श्रावस्ती ।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ वह भिक्षु भगवान् से बोले—भन्ते ! अभी तक कितने कल्प बीत चुके हैं ?

.. भन्ते ! क्या उपमा करके कुछ समझा जा सकता है ?

भगवान् बोले—हाँ, उपमा की जा सकती है । भिक्षुओं ! सौ वर्षों की आयुवाले चार ब्राह्मण हों । वे प्रतिदिन एक-एक लाख कल्पों का स्मरण करें । भिक्षुओं ! वे केवल कल्पों का स्मरण ही करते आर्य । तब, सौ वर्ष की आयु समाप्त होने पर वे चारों मर जायँ ।

इस प्रकार, अधिक कल्प बीत गये हैं । उनकी गिनती नहीं की जा सकती है ।

[ऊपर के पैसे]

§ ८. गङ्गा सुत्त (१४. १. ८)

बीते हुए कल्प अगण्य हैं

राजशृङ्ग वेल्लुवन में ।

एक ओर बैठ, वह ब्राह्मण भगवान् से बोला, हे गौतम ! अभी तक कितने कल्प बीत चुके हैं ?

भगवान् बोले—हाँ ब्राह्मण ! उपमा की जा सकती है । ब्राह्मण ! जैसे, जहाँ से गङ्गा नदी निकलती है और जहाँ समुद्र में गिरती है उसके बीच में कितने बालुकण हैं । उनकी गिनती नहीं की जा सकती है ।

ब्राह्मण ! इतने अधिक कल्प बीत चुके हैं । उनकी गिनती नहीं की जा सकती है ।

तो क्या ? ब्राह्मण ! क्योंकि इस ससार का प्रारम्भ तिथित नहीं किया जा सकता है । अविद्या में पड़े, तृष्णा के बन्धन में बँधे, जीते मरते सत्त्वों की पूर्वकोटि जानी नहीं जाती ।

ब्राह्मण ! इतने विरकाल से दुःख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव हो रहा है, इमशान मरता जा रहा है । ब्राह्मण ! अतः, सभी सत्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये ।

पैसा कहने पर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! आप धन्य हैं ! आज से जन्म भर के लिये मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

९ दण्ड सुत्त (१४. १. ९)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं

भावस्ती ।

मिथुमा ! इस संसार का प्रारम्भ निश्चित नहीं । ।

मिथुमा ! जैसे ऊपर चेंबी गई छाती अपना ही कमी तो सूँझ से कमी मध्य से धीरे कमी धम्र भाग से गिर पड़ती है । वैसे ही अविद्या में पड़े तृष्णा के बन्धन में बँधे खीटे मरते सत्य कमी तो इस छोड़ सं जय छोड़ में पड़ते हैं और कमी उस छोड़ से इस छोड़ में ।

तो क्यों ? मिथुमी ! अतः सभी संस्कारों से बिरह रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये ।

१० पुग्गल सुत्त (१४. १. १०)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं

राजगृह में शूद्रकूट पकव पर ।

मिथुमी ! इस संसार का प्रारम्भ निश्चित नहीं । मिथुमी ! कल्प भर मित्र-मित्र बोनि में पदा हानेवाके एक ही पुरुष की इच्छियाँ कहीं एक जगह इकट्ठी की जाएँ—नीर बह गए नहीं हों—तो उनकी डेर सेपुल्ल पर्वत के समान हो जाय ।

तो क्यों ? मिथुमी ! अतः सभी संस्कारों से बिरह रहना चाहिये विमुक्त हो जाना चाहिये ।

भगवान् यह बोले । इतना कहकर सुहं छिद्र भी बोले—

एक पुरप तो पहाड़-सा एक डेर छग अय

महर्षि ने ऐसा कहा—की कवन भर की इच्छियाँ यदि जमा की जाएँ ।

जैसा वह महात्त सेपुल्ल पर्वत है

गृहकूट के उत्तर मगधों का गिरिवन्ज ।

का आर्षसरणों को मन्पक् महा म देख धेता इ

दुःख दुःखसमुत्थप दुःख का भन्त कर हैना

आर्ष जज्ञागिक मार्ग त्रिमसै दुःप से मुक्ति होनी है

अधिक म अधिक सात वार जन्म लेकर

दुःखों का भन्त कर देता है

सभी बन्धनों को क्षीण कर ।

प्रथम धर्म समाप्त ।

द्वितीय वर्ग

§ १. दुग्गत सुत्त (१४ २. १)

दुःखी के प्रति सहानुभूति करना

श्रावस्ती***।

• भिक्षुओ ! इस सत्तार का प्रारम्भ*** ।

भिक्षुओ ! यदि किसी को अत्यन्त दुःगति में पड़े देखो तो सोचो—इस दीर्घकाल में हमने भी कभी न कभी इस अवस्था को भी प्राप्त कर लिया होगा ।

सो क्यों ? विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ २. सुखित सुत्त (१४. २. २)

सुखी के प्रति सहानुभूति करना

श्रावस्ती** ।

भिक्षुओ ! इस सत्तार का प्रारम्भ ** ।

भिक्षुओ ! यदि किसी को सुख सुग्न करते देखो तो सोचो—इस दीर्घकाल में हमने भी कभी न कभी इस सुप्त को भोगा होगा ।

सो क्यों ? • विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ ३. तिससि सुत्त (१४ २ ३)

आदि का पता नहीं, समुद्रों के जल से खून ही अधिक

राजगृह चेलुवन में ।

तब, पाया के रहने वाले तीस भिक्षु सभी अरण्यक, सभी पिण्डपातिक, सभी पासुकूलिक, सभी तीन ही चीवर धारण करने वाले, सभी सयोजन (=वन्धन) में पड़े हुए ही—जहाँ भगवान् थं वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

तब, भगवान् के मन में वह हुआ—वे** भिक्षु सभी सयोजन में पड़े हुये ही हैं । तो, मैं इन्हें ऐसा धर्मापदेश दूँ कि इसी आसन पर बैठे-बैठे इनका चित्त आश्रयों से विमुक्त और उपादान-रहित हो जाय ।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

“भवन्त !” कह कर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले —भिक्षुओ ! सत्तार का प्रारम्भ निश्चित नहीं किया जा सकता है । भविष्य में पड़े, तुष्णा के बन्धन में बँधे, जीते मरते सर्वों की पूर्वकोटि जानी नहीं जाती ।

भिक्षुओ ! क्या समझते हो, जो चिरकाल से जीते मरते लोगों के शिर कटने से खून बहरा है वह अधिक है या चारों महासमुद्र का जल ?

९ दण्ड मुक्त (१४ १ ५)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं

आपस्ती ।

मिथुमा ! इस संसार का प्रारम्भ मिथिल नहीं ।

मिथुमा ! जब ऊपर कौड़ी गईं जगती कर्मज ही कर्मी तो गूळ ल, कर्मी मज्ज ल भीर कर्मी भ्रम भाग से गिर पड़ती है । वैसे ही अविद्या में पद मृज्जा के बन्धन में बंधे जीत मरते सार कर्मी तो इस छाऊ स उस छोक में पड़त है भार कर्मी उम साऊ स इस साऊ में ।

तो क्यों ? मिथुमा ! अतः सभी संस्कारों ल बिरल रहना चाहिये, बिमुक्त हो जाना चाहिये ।

१० पुग्गल मुक्त (१४ १ १०)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं

राजसूद में गूळकूट पर्वत पर ।

मिथुमा ! इस संसार का प्रारम्भ मिथिल नहीं । मिथुमा ! कल्प भर मिथिल-मिथिल बानि में पैदा होनेवाले एक ही पुग्ग की हड्डिबौ कहीं एक बगह हकड़ी की कार्पे—भीर बह गल नहीं हों—तो जगती डेर धपुल्ल पर्वत के समान हो जाय ।

तो क्यों ? मिथुमा ! अतः सभी संस्कारों ल बिरल रहना चाहिये, बिमुक्त हो जाना चाहिये ।

भगवान् बह पील । इतना कहकर मुद फिर भी बोक —

एक पुक्क तो पहाड़ सा एक डेर कग जाय

महर्षि ने एसा कहा—की कल्प भर की हड्डिबौ यदि जमा की जाली ।

अता यह महान् धेपुल्ल पर्वत है

गूळकूट के उत्तर भगणों का गिरिष्वाक ॥

आ धार्यसण्यो को मन्धक् मशा ल दूळ लता है

दुल्ल दु गसमुदय दुल्ल का मन्ध कर रना

भार्य अधीगिक माग जिसस्य दु ल मे मुकि हाठी है

अधिक से अधिक भात बार अन्ध छंकर

दुल्लों का मन्ध कर देता है

समी बन्धनों को छील कर ॥

प्रथम वर्ग समाप्त ।

भिष्णुओ ! बहुत ही पूर्वकाल में इस वेपुल्ल पर्वत का नाम वंक्क पड़ा था । उस समय मनुष्य रोहितस्स कहे जाते थे । आयुप्रमाण तीस हजार वर्षों का था । वे रोहितस्स मनुष्य वक्क पर्वत पर तीन दिनों में चढ़ते थे और तीन दिनों में उतरते थे ।

भगवान् कोणागमन । भिष्णुओ और सुत्तर नाम के दो अग्रश्रावक ।

विमुक्त हो जाना चाहिये ।

×

×

×

•• पर्वत का सुपस्स नाम पड़ा था । मनुष्य सुप्पिय कहे जाते थे । बीस हजार वर्षों का आयुप्रमाण । दो दिन में चढ़ते थे ।

भगवान् काश्यप । तिस्र और भारद्वाज नाम के दो अग्रश्रावक थे ।

विमुक्त हो जाना चाहिये ।

×

×

×

भिष्णुओ ! इस समय इस पर्वत का नाम वेपुल्ल पड़ा है । ये मनुष्य मागध कहे जाते हैं । भिष्णुओ ! मागध मनुष्यों का आयुप्रमाण बहुत घटकर कम हो गया है । जो बहुत जीता है वह सौ वर्ष, उसके कुछ कम या अधिक भी जीता है । मागध मनुष्य वेपुल्ल पर्वत पर अल्प काल ही में चढ़ जाते हैं और उतर भी आते हैं ।

भिष्णुओ ! इस समय, अर्हत् सम्मक्क सम्बुद्ध मैं ही लोक में उत्पन्न हुआ हूँ । मेरे सारिपुत्र और मौद्गल्यायन दो अग्रश्रावक हैं ।

भिष्णुओ ! एक समय आयेगा कि इस पर्वत का यह नाम लुप्त हो जायगा । ये मनुष्य भी नर जायेंगे । मैं भी परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाऊँगा ।

भिष्णुओ ! सस्कार इतने अनित्य हैं, अध्रुव हैं, चलायमान हैं । भिष्णुओ ! अतः सभी सस्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये ।

भगवान् यह बोले । यह कहकर उद्ध फिर भी बोले—

पाचीनवक्ख तिवरोंका, रोहितोंका वक्क,

सुप्पियों का सुपस्स, और मागधों का वेपुल्ल ॥

सभी सस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और व्यय होवेवाले,

उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं, उनका शान्त हो जाना ही सुख है ॥

द्वितीय वर्ग समाप्त

अनमतग्ग-संयुत्त समाप्त ।

मस्ते ! भगवान् क बताये धर्म को जैसा हम जानते हैं उससे तो बही मात्तम होता है कि
कृत ही अधिक बड़ा है ।

सब है मिश्रणों सब है ! तुम मेरे उपनृत किये गये धर्म को ठीक से जानते हो ।

मिश्रणों ! बिरकाक से गीलों के सिर करने से जो बल बड़ा है वह चारों समुद्र के बल से
अधिक है ।

‘धैर्य ; गैका ; बहरी ; मृग कुम्भुर ; सुभर । सुदरों ने जो लोगों के सिर काट
कर बल पहाया है’ ; धिमाकों न ।

सो क्यों ? विमुक्त हो जाना चाहिये ।

भगवान् यह बोले । मिश्रणों न संसृष्ट मन से भगवान् के कर्ष का अभिमतम्ब किया ।

इस उपदेश के किये धामे पर उन पाषा के तीस मिश्रणों का किय विमुक्त हो गया उपादान
रहित हो गया ।

§ ४ माता सुच (१४ २ ४)

माता न ह्यप सत्य असम्मथ

भाबल्ली ।

मिश्रणों ! इस संसार का प्रारम्भ ।

मिश्रणों ! ऐसा कोई साथ निकला सुविश्व है जो बिरकाक में कभी न कभी जाया न रह
सुका हो ।

सो क्यों ? विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ ५-९ पिता सुच (१४ २ ५-९)

पिता न ह्यप सत्य असम्मथ

बा बिरकाक में कभी न कभी पिता भाई बहन बैठा बैठी ।

§ १० धेपुक्लपन्वत सुच (१४ २ १०)

धेपुक्ल पर्यत की प्राचीनता सभी संस्कार अनित्य हैं

राजगृह में सुखफूट पर्यत पर ।

भगवान् बोले—मिश्रणों ! इस संसार का प्रारम्भ । मिश्रणों ! बहुत ही दुर्लभक में इस
धेपुक्ल पर्यत का नाम प्राचीनपर्यत पचा था । उस समय मनुष्य तियर फले करते थे । इन तियर
मनुष्यों का आयुबमान कालीस हजार वर्षों तक का था । मिश्रणों ! ये तियर मनुष्य प्राचीनपर्यत पर्यत
पर चार दिनों में जाते थे और चार दिनों में भीषण उतरते थे ।

मिश्रणों ! उस समय आईन् सम्पत्त्वमनुष्य भगवान् कपुसन्ध कोक में वापक हुये थे । उनसे
विपुट और सौर्जीय नाम के दो अश्वघाक थे ।

मिश्रणों ! ऐन्ने इस पर्यत का वह नाम सुत हो गया । ये मनुष्य मनी के सभी पर्यत हो गये ।
ये भगवान् की बरिनिर्वाक का अस्त हुये ।

मिश्रणों ! संस्कार इनसे अनित्य हैं अस्तु हैं अजायमान हैं । मिश्रणों ! जता सभी संस्कारों में
बिराट ररवा चाहिये विमुक्त हो जाना चाहिये ।

×

×

×

भिक्षुओ ! बहुत ही पूर्वकाल में हम त्रेपुल पर्वत का नाम ब्रह्मक पदा था । उस समय मनुष्य रोहितस्स कहे जाते थे । आयुप्रमाण तीन हजार वर्षों का था । त्रे रोहितस्स मनुष्य ब्रह्मक पर्वत पर तीन दिनों में चढ़ते थे और तीन दिनों में उतरते थे ।

‘भगवान् कोणागमन’ । ‘भित्तयो और मुत्तर नाम वै शो अग्रश्रावक’ ।

• विमुक्त हो जाना चाहिये ।

×

×

×

‘‘पर्वत का मुपस्स नाम पदा था । मनुष्य मुत्तिय कहे जाते थे । तीन हजार वर्षों का आयुप्रमाण • । • दो दिन में चढ़ते • थे ।

‘भगवान् कादयप । ‘तिस्स और मारहाज नाम के शो अग्रश्रावक थे ।

• विमुक्त हो जाना चाहिये ।

×

×

×

भिक्षुओ ! इस समय इस पर्वत का नाम त्रेपुल पदा है । ये मनुष्य मागध कहे जाते हैं । भिक्षुओ ! मागध मनुष्यों का आयुप्रमाण बहुत घटकर कम हो गया है । जो बहुत जीता है वह सौ वर्ष, उसके कुछ कम या अधिक भी जीता है । मागध मनुष्य त्रेपुल पर्वत पर अर्ध काल ही में चढ़ जाते हैं और उतर भी आते हैं ।

भिक्षुओ ! इस समय, अर्ध समयक सञ्जुद्ध में ही लोक में उत्पन्न हुआ है । मेरे सारिपुत्र और मौद्गल्यायन दो अग्रश्रावक हैं ।

भिक्षुओ ! एक समय आयेगा कि इस पर्वत का यह नाम लुप्त हो जावेगा । ये मनुष्य भी मर जायेंगे । मैं भी परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाऊँगा ।

भिक्षुओ ! संस्कार इतने अनित्य हैं, अद्रुय हैं, चलायमान हैं । भिक्षुओ ! अतः सभी संस्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये ।

भगवान् यह बोले । यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

पाचीनवश तिवरोका, रोहितिका ब्रह्मक,
मुत्तियों का मुपस्स, और मागधों का त्रेपुल ॥

सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और व्यय होनेवाले,

उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं, उनका शान्त हो जाना ही सुख है ॥

द्वितीय वर्ग समाप्त

अनमसत्तग्ग-संयुत्त समाप्त ।

चौथा परिच्छेद

१५ काश्यप-सयुक्त

§ १ सन्तुष्ट सूत्र (११ १)

प्रातःशीघ्रं आदि से सम्पुष्ट रहना

भायस्ती ।

मिथुनो ! काश्यप जैसे ठीके बीबर से संतुष्ट रहता है । जैसे ठीके बीबर से संतुष्ट रहने की प्रसंसा करता है । बीबर के किये अनुचित अन्वेषण में नहीं कपता है । बीबर नहीं प्राप्त होने से सिद्ध नहीं होता है; और मिथुने से विना बहुत कष्टसाधे=बिना ही जूये=जोम किये उसके आदिभव (= दोष) को देखते जूये मुक्ति की प्रज्ञा के साथ उस बीबर का भोग करता है ।

मिथुनो ! काश्यप जैसे ठीके पिण्डपात ; पापनाशन ; रक्षक परब्रह्म मपश्य-परिच्छार से ।

मिथुनो ! इसकिये तुम्हें भी ऐसा ही सीखना चाहिये:—जैसे ठीके बीबर से संतुष्ट रहूँगा । " संतुष्ट रहने की प्रसंसा कर्हैगा । बीबर के किये अनुचित अन्वेषण में नहीं कर्हैगा । । मुक्ति की प्रज्ञा के साथ उस बीबर का भोग कर्हैगा । पिण्डपात । सबनाशन । रक्षक प्रब्रह्म । मिथुनो ! तुम्हें ऐसा ही सिखना चाहिये ।

मिथुनो ! काश्यप जयना उसी के समान किसी दूसरे का दिवाकर तुम्हें उपदेश कर्हैगा । उपदेश पाकर तुम्हें ठीक वैसा ही बर्तना चाहिये ।

§ २ अनोत्तापी सूत्र (१५ २)

आतापी और अनोत्तापी को ही ज्ञान-प्राप्ति

वेसा मैंने सुना ।

एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप और आयुष्मान् सारिपुत्र वागावसी के पास ऋषिपत्न्य युगाद्याप में बिहार करते थे ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र सौंस को प्याल से उठ जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये और कुसक-श्रेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकाश्यप से बोले —आयुस कश्यप ! यह क्या जाता है कि आतापी (= जो अपने कष्टों को नहीं तपाता है) और अनोत्तापी (= जो कष्टों के बचने पर सावधान नहीं रहता है) परम-ज्ञान विना अनुत्तर योगक्षेम को नहीं पा सकता है । आतापी और अनोत्तापी ही परम-ज्ञान को पा सकता है ।

आयुस ! यह कैसे ?

क

आयुस ! मिथु अनुत्तर पाप जड़सक बर्नं हत्यज होकर अनर्थ करेंगे इसके किये आताप नहीं करता है । उत्पन्न पाप जड़सक बर्नं प्रहीन नहीं होने से अनर्थ करेंगे इनके किये आताप नहीं

करता है । मैंने अनुत्पन्न कुशल धर्म द्रवण नहीं होने से अनर्थ करेंगे, इसके लिये आताप नहीं करता । मैंने उपपन्न कुशल धर्म नष्ट होने हुये अनर्थ करेंगे, इसके लिये आताप नहीं करता है ।
आवुम् । इम प्रकार वह अनात्तापी होता है ।

सु

आवुस ! कैसे कोई अनोत्तापी होता है ?

आवुस ! भिक्षु, अनुत्पन्न पाप अनुत्पन्न धर्म द्रवण होकर अनर्थ करेंगे, इसके लिये उत्ताप नहीं करता । * [ऊपर के पैसा]

आवुम् । इम तरह, अनात्तापी और अनोत्तापी परम-ज्ञान, निर्वाण, अनुत्पन्न योगक्षेम को नहीं पा सकता है ।

ग-घ

[उलटा करके]

आवुम् । इम तरह, आतापी और ओत्तापी ही परम-ज्ञान को पा सकता है ।

§ ३. चन्द्रोपम सुक्त (१५ ३)

चाँद की तरह कुलों में जाना

श्रावस्ती ** ।

भिक्षुओ ! चाँद की तरह कुलों में जाओ । अपने शरीर और चित्त को समेटे, सदा नये अनजान के पैसा, अप्रगटन हुए ।

भिक्षुओ ! जैसे कोई पुरुष पुराने कुर्ये, शीतल पर्वत, उत्तरनाक नदी को देखकर अपने शरीर और मन को समेटे रहता है, वैसे ही भिक्षुओ ! चाँद की तरह कुलों में जाओ । अपने शरीर और चित्त को समेटे, सदा नये अनजान के पैसा, अप्रगटन हुए ।

भिक्षुओ ! काश्यप कुलों में चाँद की तरह जाता है ।

×

×

×

भिक्षुओ ! तुम क्या समझते हो, कैसा भिक्षु कुलों में जाने के लायक है ?

अन्ते ! धर्म के आधार भगवान् ही हैं, धर्म के नायक और आश्रय भगवान् ही हैं । अच्छा हो कि भगवान् ही इस कहे गये का अर्थ बताते । भगवान् से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे ।

तब, भगवान् ने आकाश में हाथ फेरा । भिक्षुओ ! जैसे, यह हाथ आकाश में नहीं लगता है, नहीं फैसता है = नहीं बसता है, वैसे ही जिन भिक्षु का चित्त कुलों में जाकर भी नहीं लगता = नहीं फैसता = नहीं बसता है । जो लाभकारी है वे लाभ करें, जो पुण्यकारी है वे पुण्य करें । जैसे अपने लाभ से सन्तुष्ट और प्रसन्न होता है, वैसे ही दूसरों के भी लाभ से । भिक्षुओ ! ऐसा ही भिक्षु कुलों में जाने के लायक है ।

भिक्षुओ ! काश्यप का चित्त कुलों में जाने पर नहीं लगता है=नहीं फैसता है=नहीं बसता है ।

+

+

+

+

भिक्षुओ ! तुम क्या समझते हो, किस भिक्षु की धर्मवेदना अपरिशुद्ध होती है, और किस भिक्षु की परिशुद्ध ?

भगवान् स सुमकर मिथु धारण करेंगे ।

भगवान् बोले:—मिथुमी ! जो मिथु मन में ऐसा करक धर्मदेसना करता है—जहो ! लोग मरी धर्मदेसना को सुनें सुमकर प्रसन्न हों, और प्रसन्न होकर मेरे सामने अपनी प्रसन्नता दिखायें—उन्हीं धर्मदेसना अपरिहृत होती है ।

मिथुमी ! जो मिथु मन में ऐसा करक धर्मदेसना करता है—भगवान् का धर्म स्वाक्यात है, मांडूटिक है अक्रांतिक है प्रगट है निर्वाण को ले जातेबाका है विश्वों के द्वारा अपने भीतर ही भीतर जानने क योग्य है । जहो ! लोग मेरी धर्मदेसना को सुनें, सुमकर धर्म को जानें, धारणकर उसका अभ्यास करें । पम वह अचित रीति से दूसरों को धर्म कहता है । कदना से दया से अनुकम्पा से दूसरों को धर्म कहता है । मिथुमी ! इस प्रकार के मिथु की धर्मदेसना परिहृत होती है ।

मिथुमी ! काश्यप ऐसे ही चित्त से धर्मदेसना करता है ।

मिथुमी ! वैसे ही तुम्हें भी वर्तना चाहिये ।

§ ४ कुसूपग सुच (१५ ४)

कुसों में जान योग्य मिथु

धावस्ती १

मिथुमी ! तो क्या समझते हो कसा मिथु कुसों में जाने के योग्य है और कसा मिथु नहीं ?

मिथुमी ! जो मिथु हम चित्त से कुसों में जाता है—सुसे दे ही ऐसा नहीं कि प है, बहुत द, पाया नहीं, बढ़िया ही दे पहिया नहीं, वीर्य ही द देर न लगावे; सत्कारपूर्वक ही दे विना भयकार के नहीं ।

मिथुमी ! यदि उम नहीं देते हैं बोधा देते हैं तो उसे क्या हुआ होता है बेवनी होती है ।

मिथुमी ! वह मिथु कुसों में जाने के योग्य नहीं है ।

मिथुमी ! यदि उम नहीं देते हैं बोधा देते हैं तो उसे दुःख नहीं होता है ।

मिथुमी ! वह मिथु कुसों में जाने के योग्य है ।

मिथुमी ! काश्यप कुसों में हसी चित्त से जाता है उम हुआ नहीं होता है ।

मिथुमी ! वैसे ही तुम्हें भी वर्तना चाहिये ।

§ ५ क्षिप्य सुच (१५ ५)

धारण्यफ होने के छाम

राजगृह यमुवन में—

एक और बड़े आनुभवान् मद्राकादप ले भगवत्प बोले:—काश्यप ! तुम बहुत पड़े हो गये हो यह उना वागुहक सुनें कहना न जाना होगा । इयलिये तुम गृहस्थों के दिने गये भीतर को पहनी नियन्त्रण के यान्न का भाग करा और मर पास रहा ।

अने । मैं बहुतनाम न आरण्यक हूँ और आरण्यक हाथे की प्रशंसा करता हूँ । विषयवार्तिक । वागुह्यक । नाम भीतरों को धारण करनेवाला । अण्यप्य । संसृष्ट । प्कालवासी । अर्धगृह । वागुह्यक ।

धारण्य ! किग उदरेण मे तुम बहुत नाम न आरण्यक हो भीत आरण्यक रहने की प्रशंसा करत हो ।

अने ! दा उदरेण न । एक मो गार्ध ह्य अन्न में गुण्यप्यक विदार करने के लिये, और तुमने

भविष्य में होनेवाली जनता के प्रति अनुकम्पा करके, कि कहीं वे भ्रम में न पड़ जायें।—जो बुद्ध के श्रावक थे वे बहुत काल से आरण्यक थे । पिण्डपातिक थे । उल्साहशील थे ।—ऐसा जान वे भी उचित मार्ग पर आवेंगे जिससे उनका चिरकाल तक हित और सुख होगा ।

भन्ते ! इन्हीं दो उद्देश्यों से ।

ठीक है, काश्यप ठीक है ! तुम बहुतों के हित के लिये, बहुतों के सुख के लिये, लोक पर अनुकम्पा करने के लिये, देव और मनुष्यों के परमार्थ के लिये, हित के लिये, और सुख के लिये ऐसा कर रहे हो ।

काश्यप ! तो, तुम रुपये पासुकूल चीवर धारण करो, पिण्डपात के लिये चरो, आरण्य में रहो ।

§ ६. पठम ओवाद् सुत्त (१५. ६)

धर्मोपदेश सुनने के लिए अयोग्य भिक्षु

राजगृह वेलुवन में ।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् महाकाश्यप को भगवान् बोले—काश्यप ! भिक्षुओं को उपदेश दो । काश्यप ! भिक्षुओं को धर्मोपदेश करो । चाहे हम या तुम भिक्षुओं को उपदेश दें, धर्मोपदेश करें ।

भन्ते ! इस समय भिक्षु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं, इस समय उन्हें उपदेश देना ठीक नहीं । उपदेश को वे स्वीकार और सत्कार नहीं करेंगे । भन्ते ! इस समय मैंने आनन्द के अनुचर भिक्षु भण्ड और अनुहद्ध के अनुचर भिक्षु अभिञ्जक को आपस में कहते सुना है—भिक्षु ! देखें, कौन बहुत बोलता है, कौन बड़िया बोलता है, कौन अधिक वेर तक बोलता है ?

तब, भगवान् ने किसी भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे भिक्षु ! सुनो, मेरी ओर से जाकर “ भिक्षु भण्ड, और अभिञ्जक को कहो कि “बुद्ध आयुष्मानों को बुला रहे हैं” ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, वह भिक्षु भगवान् को उत्तर दे जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गया, और बोला—बुद्ध आयुष्मानों को बुला रहे हैं ।

“अबुस ! बहुत अच्छा” कह, वे उस भिक्षु को उत्तर दे जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओं से भगवान् बोले—भिक्षुओं ! क्या यह सच है कि तुम आपस में ऐसी बातें कर रहे थे कि, ‘देखें ! कौन बहुत बोलता है, कौन बड़िया बोलता है, कौन अधिक वेर तक बोलता है ?’

हाँ भन्ते !

भिक्षुओं ! क्या मैंने तुम्हें ऐसा धर्म सिखाया है, कि तुम भिक्षुओं ! आपस में ऐसी बातें करो कौन अधिक वेर तक बोलता है ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओं ! जब तुम जानते हो कि मैंने ऐसा धर्म नहीं बताया है, तो तुम निकम्मे आदमी क्या जानबूझ इस स्वाख्यात धर्मविनय में प्रवृत्त होकर ऐसी बातें करते हो ‘ कौन अधिक वेर तक बोलता है ?’

तब, वे भिक्षु भगवान् के चरणों पर शिर टेककर बोले—ब्राह्म, मूढ़, पापी के जैसा हमलोगों ने यह अपराध किया है, कि इस स्वाख्यात धर्मविनय में प्रवृत्त होकर ऐसी बातें कर रहे थे । भन्ते ! भवितव्य में ऐसा अपराध न होगा, कृपया भगवान् क्षमा-प्रदान करें ।

भिक्षुओं ! जब तुम अपना दोष समझकर स्वीकार करते हो, तो मैं क्षमा कर देता हूँ ।

मिथुनी ! हम आम-बिचय में वह हृदि ही है जो अपन दोष को जानकर स्वीकार कर लेता है और सविष्य में फिर ऐसा न करने की सिखा करता है ।

§ ७ द्वितीय ओवाह सुक्त (१५ ७)

धर्मोपदेश सुनने के लिए अयोग्य मिथु

राजगृह येलुघन में ।

एक ओर बैठ हुए आयुष्मान् महाकादयप स भगवान् लोक—काश्यप ! मिथुनों को उपदेश था ।

भन्ते ! इस समय मिथु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं । भन्ते ! जिस किसी को कुशाक धर्मों में भ्रष्टा नहीं है । ही अवज्ञापा वीर्य प्रज्ञा नहीं है । रात दिन कुशाक धर्मों में इनकी अभवति ही होती जाती है उन्नति नहीं ।

भन्ते ! पुत्र्य अभद्रास्तु होके यह परिहानि है, यहीक अवज्ञापा-रहित काहिक दुप्यक्त; काबी " बेरी यह परिहानि ही है । भन्ते ! उपदेश देनेवाले मिथु भी नहीं हो यह परिहानि है ।

भन्ते ! जिस पुत्र्य को भद्रा ही अवज्ञापा वीर्य प्रज्ञा कुशाक धर्मों में है, इनकी दिन रात कुशाक धर्मों में हृदि ही होती है परिहानि नहीं ।

भन्ते ! जैसे सुहृदवस का जो बौद्ध है वह रात-दिन वर्ण शोभा अमा भार जारीहपरिभाह से बढ़ता हो जाता है । भन्ते ! जैसे ही जिस भद्रा है ।

भन्ते ! पुत्र्य भद्रास्तु होके यह अपरिहानि है हीक ; अपज्ञापायुक्त ; उरसाहसीक ; प्रहावात् " ; कोप-रहित " ; बेर-रहित यह अपरिहानि है । उपदेश देनेवाले मिथु हैं वह भी अपरिहानि है ।

टीक है, काश्यप टीक है ।

काश्यप ! जैसे सुहृदवस का बौद्ध रात-दिन वर्ण स हीन जाता जाता है वस ही जिस कुशाक धर्मों में भ्रष्टा नहीं है ही नहीं है प्रज्ञा नहीं है, उसे दिन-रात कुशाक धर्मों में परिहानि ही होती है हृदि नहीं ।

[काश्यप क कई गये की पुनरावृत्ति]

§ ८ तृतीय ओवाह सुक्त (१५ ८)

धर्मोपदेश सुनने के लिए अयोग्य मिथु

राजगृह येलुघन में ।

भन्ते ! हम समय मिथु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं ।

काश्यप ! तो भी एषकाल में स्वधिर मिथु आरवक ध और आरवक हीन के प्रतीक । " विन्दवर्तनिक] पानुदृष्टिक । तो आ जैसे मिथु हात थे उन्हीं की स्वधिर धर्मोपदेश पर निमग्नित करते थे—मिथु की आये कीम इतना भद्र और शिक्षाकारी होगा ! मिथुनी आये हम आसन पर बैठे ।

काश्यप ! ता सब मिथुनी के मन में वह होगा था :—आ मिथु आरवक है उन्हीं की स्वधिर धर्मोपदेश पर निमग्नित कराने है " । हम सब से भी बीसा ही आरवक करने थे जो विरकाल तक जबके दिन और सुग क किये होगा था ।

काश्यप ! हम समय स्वधिर मिथु आरवक नहीं है और आरवक हीन के प्रतीक । सब

जो भिक्षु यशस्वी है, और चीखर इत्यादि जिनसे बहुत प्राप्त होते रहते हैं, उन्हीं को गतिर भिक्षु धर्मात्मन पर निमन्त्रित करते हैं । ये चेंना करते हैं, जो चिरकाल तक उनके अर्पित और दुःख के लिये होता है ।

काश्यप ! जिसे उचित करनेवाले कहते हैं—ये त्रसचारों महाव्यस्रण के उपद्रव में पड़ गये, गिर गये ।

§ ९. ज्ञानाभिज्ञा मुच (१५. ९)

ध्यान-अभिज्ञा में काश्यप बुद्ध-तुल्य

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, कामों में त्यक्त हो, अकुशल धर्मों में त्यक्त हो, मयितकं मयिचार विवेकज्ञ प्रीति-सुगवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी प्रथम ध्यान को प्राप्त * ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, चित्तकं विचार के दान्त हो जाने में आध्यात्म सप्रमा, चित्त की पकावता में युक्त, ममाधिज्ञ प्रीति सुगवाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता हूँ—भिक्षुओ ! काश्यप भी द्वितीय ध्यान को प्राप्त ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ तो प्रीति में हट जाने से उपेक्षा के साथ विहार करता हूँ, स्मृति-मान् और संप्रज्ञ हो काया में सुख का अनुभव करते हुये । जिसे आर्यपुरुष कहते हैं कि, उपेक्षा के साथ स्मृतिमान् हो सुख से विहार करता है इस तीसरे ध्यान को प्राप्त कर सुख में विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी तीसरे ध्यान को प्राप्त ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सुख आर दुःख के ग्रहाण में, पूर्व ही सौमनस्य और शोभनस्य के अन्त हो जाने से, अदुःख, अमुद, उपेक्षा से स्मृति-पारिशुद्धिवाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी चौथे ध्यान को प्राप्त * ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सर्वथा रूपवशाओं के समतिक्रमण से, प्रतिष सज्ञाओं के अन्त हो जाने से, नानात्व सज्ञाओं के अमनयिकार से, आकाश अनन्त है—ऐसा आकाशानन्दायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सर्वथा आकाशानन्दायतन का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' ऐसा विज्ञानान्दायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ—भिक्षुओ ! काश्यप भी ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सर्वथा विज्ञानान्दायतन का समतिक्रमण कर 'कुल नहीं है' ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सर्वथा आकिञ्चन्यायतन का समतिक्रमण कर नैवसज्जानासज्ञायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, सर्वथा नैवसज्जानासज्ञायतन का समतिक्रमण कर सज्ञावेद्यित निरोध को प्राप्त कर विहार करता हूँ—भिक्षुओ ! काश्यप भी*** ।

भिक्षुओ ! जय में चाहता हूँ, अनेक प्रकार की वरद्वियों का अनुभव करता हूँ—एक होकर बहुत हो जाता हूँ [देखो पृष्ठ २४३] ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी ।

भिक्षुओ ! मैं आश्रवों के क्षीण हो जाने से, आश्रव-रहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार करता हूँ ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी आश्रवों के क्षीण हो जाने से, आश्रव-रहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार करता है ।

§ १० उपस्तय सुप्त (१५ १०)

शुक्लतिस्सा मिथुणी का संघ से यहिष्कार

पसा मैंने सुना ।

एक समय आनुष्मान् काश्यप आश्रम में अबाधपिण्डिक के नाराम अंतघन में बिहार करते थे ।

क

एक आनुष्मान् आनन्द् पूर्वाह्नसमय पहल और पात्रबीबर छे जहाँ आनुष्मान् महाकाश्यप से बहाँ गये । आकर आनुष्मान् महाकाश्यप से बोले—मस्त काश्यप ! जहाँ मिथुनियों का स्थान है वहाँ चले ।

आनुस आनन्द् ! आप आर्ये आपके बहुत काम धाम रहता है ।

बूसरी बार भी ?

हीसरी बार । एक आनुष्मान् महाकाश्यप पहल और पात्रबीबर छे आनुष्मान् आनन्द् को पीछे किये जहाँ मिथुनियों का स्थान था बहाँ गये । आकर बिठे आसन पर बैठ गये ।

ख

एक कुछ मिथुनियों जहाँ आनुष्मान् महाकाश्यप से बहाँ गई आकर आनुष्मान् महाकाश्यप का अभिवादन कर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठी हुई उन मिथुनियों को आनुष्मान् महाकाश्यप ने बसोंपदेशकर बिना बिना चला दिया और उनके धार्मिक भावों को उद्बुद्ध कर बिना । बसोंपदेश कर आनुष्मान् महाकाश्यप आसन से उठकर चले गये ।

एक शुक्लतिस्सा मिथुणी असंतुष्ट होकर असंतोष के शब्द कहने लगी—क्या आर्य महाकाश्यप को आर्य सेनेहमुनि आनन्द् के सामने बसोंपदेश करना अच्छा था ? बैसे, कोई सूर्य् बेचनेवाला किसी सूर्य् बलानेवाले के पास सूर्य् बेचने को जाय, बैसे ही आर्य महाकाश्यप ने आर्य आनन्द् के सामने बसोंपदेश करने का साहस किया है ।

आनुष्मान् महाकाश्यप ने शुक्लतिस्सा मिथुणी को ऐसा कहल सुना ।

ग

एक आनुष्मान् महाकाश्यप आनुष्मान् आनन्द् से बोले—आनुस आनन्द् ! क्या मैं सूर्य् बेचनेवाला हूँ और आप सूर्य् बलानेवाले या मैं सूर्य् बलानेवाला हूँ और आप सूर्य् बेचनेवाले ?

आनन्दे काश्यप ! यह सूर्य् फी है इरी लमा कर में ।

आनन्द् ! इन्हें सँघ आपके विषय में और चर्चा न करे ।

आनुस आनन्द् ! आप क्या समझते हैं ?

क्या भगवाद् ने आपके विषय में मिथुनसंघ के सामने उपस्थित किया था कि—मिथुनो ! जब मैं बाहल हूँ, प्रथम प्यान को आश कर बिहार करता हूँ—आर आनन्द् भी प्रथम प्यान को प्राप्त कर बिहार करता है ?

वही मन्ते ।

आनुस ! मेरे विषय में भगवाद् ने मिथुनसंघ के सामने ऐसा उपस्थित किया था ।

[तबों प्यावाबन्धाओं के विषय में ऐसा समझ लेना चाहिए]

आवुस । यह समझा जा सकता है कि मात हाथ का ऊँचा हाथी डेढ़ हाथ के सालवत्र में छिप जाय, किन्तु यह सम्भव नहीं कि सेरी छ अभिजायें छिप जायें ।

घ

थुस्लतिस्सा भिक्षुणी धर्म से च्युत हो गई ।

§ ११. चीवर सुत्त (१५ ११)

आनन्द 'कुमार' जैसे, थुल्लनन्दा का संघ से वहिष्कार

एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे ।

क

उस समय आयुष्मान् आनन्द दक्षिणागिरि में भिक्षुओं के एक वड़े संघ के साथ चारिका कर रहे थे ।

उस समय आयुष्मान् आनन्द के तीस अनुचर भिक्षु जो विशेष कर कुमार थे, शिक्षा को छोड़ कर गृहस्थ हो गये थे ।

ख

तब, आयुष्मान् आनन्द दक्षिणागिरि में बधेच्छ चारिका कर, राजगृह के वेलुवन में जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ पधारे, और आयुष्मान् महाकाश्यप का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द को आयुष्मान् महाकाश्यप बोले.—आवुस आनन्द ! किस उद्देश्य से भगवान् ने कुलों में 'त्रिकभोजन' की प्रवृत्ति दी है ?

भन्ते काश्यप ! तीन उद्देश्य से । बुरे लोगों के निग्रह के लिये, शीलवन्त भिक्षुओं के आराम के लिये, कि पापेच्छ लोग पक्ष लेकर कहीं संघ में घूट पैदा न कर दें, और कुलों की भलाई के लिये ।

आवुस आनन्द ! तो, आप क्यों इन नये भिक्षुओं के साथ चारिका करते हैं, जो असयमी, पेह, और सुवक्त्र हैं ? मालूम होता है कि आप शय्य और कुलों को नष्ट करते हुये विचरते हैं । आवुस आनन्द ! आप की यह नई मण्डली घट रही है, कमती जा रही है । यह नया कुमार मात्रा को नहीं जानता है ।

भन्ते काश्यप ! मेरे बाल भी एक बले, किन्तु आज तक आयुष्मान् महाकाश्यप के 'कुमार' कहकर पुकारे जाने से नहीं छूटे हैं ।

आवुस आनन्द ! इसी से तो मैं कहता हूँ, यह नया कुमार मात्रा को नहीं जानता है ।

ग

थुल्लनन्दा भिक्षुणी ने सुना कि आर्य महाकाश्यप ने आर्य वेदेहसुनि आनन्द को "कुमार" कहकर धत्ता बताया है ।

संघ, थुल्लनन्दा भिक्षुणी अस्तित्व होकर अस्तित्व के बचन कहने लगी —आयुष्मान् महाकाश्यप, जो पहले अन्य तैथिक रह चुके हैं, आर्य आनन्द को 'कुमार' कहकर धत्ता धत्ताने का कैसे दाहस करते हैं ?

आयुष्मान् महाकाश्यप ने थुल्लनन्दा भिक्षुणी को ऐसा कहते सुना ।

§ १० उपस्तप सुच (११ १)

शुक्लसिस्ता भिक्षुणी का संघ से यहि प्रकार

पूसा मने सुना ।

एक समय आशुप्मान् कादयप भायस्ती में भगवत्पिण्डिक क भाराम उत्तयम में बिहार करत थ ।

क

तब आशुप्मान् आनन्द् पूर्वाह्नसमय पहन भार पादधीवर से जहाँ आशुप्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये । जाकर आशुप्मान् महाकाश्यप से बोले—भग्ने काश्यप ! जहाँ भिक्षुणियों का स्थान है वहाँ चले ।

आशुस आनन्द् ! आप ज्यों आपकी बहुत काम धाम रहता है ।

दूसरी बार भी ।

तीसरी बार । तब आशुप्मान् महाकाश्यप पहन भार पादधीवर से आशुप्मान् आनन्द् को पीछे किए वहाँ भिक्षुणियों का स्थान था वहाँ गये । जाकर जिसे आसन पर बस गये ।

ख

तब कुछ भिक्षुणियों वहाँ आशुप्मान् महाकाश्यप थ वहाँ गईं जाकर आशुप्मान् महाकाश्यप क अभिवादन कर एक बीर बैठ गईं । एक बीर बैठी हुई तब भिक्षुणियों की आशुप्मान् महाकाश्यप से चर्मोपदेशक शिक्षा दिया पता दिया बीर उनके धार्मिक भावों को उत्प्रेरक कर दिया । चर्मोपदेश कर आशुप्मान् महाकाश्यप आसन से उठकर चले गये ।

तब शुक्लसिस्ता भिक्षुणी असंतुष्ट होकर अमताप के वाग् कहने लगी—क्या आर्ष महाकाश्यप को आपने चर्मोपदेशुनि आनन्द् से सामने चर्मोपदेश करना मरण था ! कैसे, कोई सूई बेचनेवाला किसी सूई बचानेवाले के पास सूई बेचने का आवाज कैसे ही आर्ष महाकाश्यप ने आर्ष आनन्द् के सामने चर्मोपदेश करने का साहस किया है ।

आशुप्मान् महाकाश्यप न शुक्लसिस्ता भिक्षुणी को पूसा कहते सुना ।

ग

तब, आशुप्मान् महाकाश्यप आशुप्मान् आनन्द् से बोले—आशुस आनन्द् ! क्या मैं सूई बेचनेवाला हूँ और आप सूई बचानेवाले वा मैं सूई बचानेवाला हूँ और आप सूई बचानेवाले ?

भग्ने काश्यप ! यह सूई की है इसे क्या कर दें ।

आनन्द् ! उन्हें सब आपने बिपय में और चर्चा न करे ।

आशुस आनन्द् ! ध्यप क्या समझते हैं ?

क्या मगवात् ने आपके बिषय में भिक्षुसंघ के सामने उपस्थित किया था कि—भिक्षुजी ! जब मैं बाहला हूँ, प्रथम प्याज की भाँस कर बिहार करता हूँ—और आनन्द् भी "प्रथम प्याज को प्राप्त कर बिहार करता है ?

वही भग्ने !

आशुस ! मेरे बिषय में मगवात् न भिक्षुसंघ के सामने ऐसा उपस्थित किया था ।

[क्या प्याजाबन्धाओं के बिषय में ऐसा प्रथम प्रश्न आदिने]

आयुस ! कोई यह ठीक ही कह सकता है—यह भगवान् का पुत्र, मुझसे उत्पन्न, धर्म से उत्पन्न, धर्म से निर्मित, धर्मदायाद है जो उनके टाट जैसे रूखे पासुकूल को धारण करता है ।

आयुस ! जब मैं चाहता हूँ, प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूँ ।

आयुस ! मैं आश्रवों के क्षीण हो जाने से, आश्रव-रहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्तकर विहार करता हूँ ।

आयुस ! ...मेरी छ अभिज्ञायें नहीं छिप सकतीं ।

घ

धुल्लुनन्ना भिक्षुणी धर्म से व्युत्त हो गई ।

§ १२. परम्भरण सुत्त (१५. १२)

अध्याकृत, चार आर्यस्तय

एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप और आयुष्मान् सारिपुत्र वाराणसी के पास अपिपतन मृगदाय में विहार करते थे ।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र सांख को ध्यान से उठ नहीं आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये, और कुशल क्षेम के प्रश्न पूछकर पृष्ठ और बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकाश्यप से बोले—आयुस काश्यप ! क्या जीव मरने के बाद रहता है ?

आयुस ! भगवान् ने ऐसा नहीं बतलाया है कि जीव मरने के बाद रहता है ।

आयुस ! तो क्या जीव मरने के बाद नहीं रहता ?

आयुस ! भगवान् ने ऐसा भी नहीं बतलाया है कि जीव मरने के बाद नहीं रहता है ।

आयुस ! तो क्या होता भी है, नहीं भी होता है, न होता है, न नहीं होता है ।

आयुस ! भगवान् ने इसे क्यों नहीं बताया है ?

आयुस ! क्योंकि, यह न तो परमार्थ के लिये है, न ब्रह्मचर्य का साधक है, न निर्वेद के लिये है, न विराग के लिये है, न विरोध के लिये है, न शान्ति के लिये है, न ज्ञान के लिये है, न सम्बन्धि के लिये है, और न निर्वाण के लिये है । इसीलिये भगवान् ने इसे नहीं बताया ।

आयुस ! तो, भगवान् ने क्या बताया है ?

आयुस ! यह दुःख है—ऐसा भगवान् ने बताया है । यह दुःख-समुदय, निरोध, निरोध-गामिनी प्रतिपदा है—ऐसा भगवान् ने बताया है ।

आयुस ! भगवान् ने इसे क्यों बताया है ?

आयुस ! क्योंकि, यही परमार्थ का साधक है, ब्रह्मचर्य का साधक है, निर्वेद के लिये है निर्वाण के लिये है । इसी से भगवान् ने इसे बताया है ।

§ १३. सद्धर्मपतिरूपक सुत्त (१५. १३)

नकली धर्म से सद्धर्म का लोप

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथार्षिक के आराम जेतवन में विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यप आयुष्मान् भगवन् से बोले—आयुस भगवन् ! पुष्टतन्वा भिक्षुणी का सहसा ऐसा कहना उचित नहीं। आयुस ! जब मैं सिर दाढ़ी मुकबा कापाय बन्ध पहन घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया हूँ भार उन बर्हन् सम्बन्ध सम्यक् मगवान् को जोड़ किसी दूसरे को गुद नहीं मानता हूँ।

आयुस ! पहले घरवासी रहते मेरे मन में यह हुआ—घर में रहना बड़ा संशुद्ध है गया है, और प्रव्रज्या लुका आकास सा है। घर में रहत हुये विषकुष्ठ कुछ पूर्ण राजकिञ्चित्-सा महाकर्म पापम करवा बड़ा कठिन है। तो क्या न मैं सिर दाढ़ी मुकबा कापायबन्ध पहन घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो जाऊँ !

आयुस ! तब मैं गुह्यी का एक चीवर बना जो लोक में बर्हन् हैं उनके कश्यप से सिर दाढ़ी मुकबा कापाय बन्ध पहन घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो गया।

सो मैंने इस प्रकार प्रव्रजित हो रास्ते में जाते हुये राजगृह और माकन्दा के बीच वहुपुत्र बाल पर मगवान् को बड़े हुए देखा। देखकर मेरे मन में हुआ—यदि मैं किसी गुह को देखूँ तो मगवान् ही को देखूँ। सुगत भीर सम्बन्ध सम्यक्।

आयुस ! सो मैंने वहीं मगवान् के चरणों पर गिर कर कहा—मगवान् मेरे गुह हैं मैं आपका धावक हूँ।

आयुस ! ऐसा कहने पर मगवान् मुझसे बोले—काश्यप ! जो इस प्रकार के चित्त से समजागत धावक को बिना जाने कह दे कि 'जागता हूँ' बिना बड़े कह दे कि 'देखता हूँ' उसका सिर टूट-टूट कर गिर जाय। काश्यप ! मैं जानकर कहता हूँ कि 'जागता हूँ' देखकर कहता हूँ कि 'देखता हूँ'।

काश्यप ! इसकिये तुम्ह ऐसा सीखना चाहिये—स्वधर्मों में अपने क्रोधा में और मन्थम में ही अपयथा प्रसुपस्थित होगी।

काश्यप ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—कुशाकापसंहित जो धर्म सुर्वैसा सभी को ब्रह्म कर मन में लय एकप्रव्रित से सुर्वैसा। --

कश्यप ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अत्यन्त क्षमकारी नापगतास्मृति मुझसे कभी भी कृपे न पायगी।

तब मगवान् मुझ ऐसा उपदेश न् अत्यन्त से उठकर चले गये।

आयुस ! सात दिनों तक मैं बिना मुक्त हुये ही राजपिण्ड का भोग करता रहा। आठवें दिन मुझे दिव्य ज्ञान उत्पन्न हो गया।

+ + + +

आयुस ! तब मगवान् रास्ते से हट एक वृक्ष के नीचे गये।

आयुस ! तब मैंने अपनी गुह्यी के सपाटी को चौपैठ कर बिछा दिया और मगवान् से कहा—भन्ने ! मगवान् इस पर बैठें या फिरकतक एक मेरु दित और मुक्त के किये ह।

मगवान् बिठे आसन पर बैठ गये।

आयुस ! बट कर मगवान् मुझसे बोले काश्यप ! तुम्हारी वह गुह्यी की सपाटी तो बहुत सुकरम है।

भन्ने ! मुझपर अनुकम्पा करके मगवान् इस सपाटी को स्वीकार करें।

काश्यप ! तुम मेरे उठ जैसे कपड़े पुराने पतुक्क को धारण करोगे ?

भन्ने ! हों धारण करूँगा।

आयुस ! ना मैंने मगवान् को अपनी सपाटी दे दी और उनके पतुक्क को धारण धारण कर लिया।

पाँचवाँ परिच्छेद

१६. लाभसत्कार-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. दारुण सुत्त (१६. १. १)

लाभसत्कार दारुण है

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में धनाध्यक्षिण्डिक के धाराम जेतवन में विहार करते थे ।

“भगवान् वीले—भिक्षुओ ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लाभसत्कार बड़ा दारुण है, कट्ट है, तीखा है, विघ्नकर है ।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये कि—लाभ, सत्कार, प्रशंसा आदि को छोड़ दूँगा, उन्हें मन में उहरने नहीं दूँगा ।

भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये ।

§ २. वालिस सुत्त (१६. १. २)

लाभसत्कार दारुण है, वंशी की उपमा

श्रावस्ती ' जेतवन में ।

भिक्षुओ ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लाभसत्कार बड़ा दारुण है, कट्ट है, तीखा है, विघ्नकर है ।

भिक्षुओ ! जैसे, अंकुसी फेंकनेवाला चारा लगाकर अंकुसी को गहरे पानी में फेंक दे । तब, चारे के छोम से कोई मछली उसे निगल जाय । भिक्षुओ ! इस तरह, वह मछली अंकुसी को निगल कर बड़े दुःख और विपत्ति में पड़ जाती है, मच्छुआ जो चाहे उससे करता है ।

भिक्षुओ ! वहाँ अंकुसी फेंकनेवाला मच्छुवा पापी मार को ही समझना चाहिये, और उसकी अंकुसी वही लाभ, सत्कार, प्रशंसा आदि है ।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु लाभआदि पाने पर बड़ा खुश होता है और आनन्द उठाता है, वह मार की अंकुसी में फँसा हुआ समझा जाता है । वह दुःख और विपत्ति में पड़ता है । मार उसमें जैसा चाहता है करता है ।

इसलिये, भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यप अर्हो भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बठ गये ।

एक ओर बैठ आयुष्मान् महाकाश्यप भगवान् से बोले :—भन्ते ! क्या हेतु है क्या प्रत्यय है कि पहले जल्प ही शिक्षापद् थे और (उस पर भी) बहुतों ने अर्हत्-पद् पा लिया था ? भन्ते ! क्या हेतु है क्या प्रत्यय है कि इस समय शिक्षापद् बहुत हैं और कम अर्हत्-पद् पर प्रतिष्ठित हैं ?

काश्यप ! ऐसा ही हाता है—सत्त्वों के हीन होने और सद्धर्म के ह्रास होने पर बहुत शिक्षापद् हात हैं और जल्प मिथु अर्हत्-पद् पर प्रतिष्ठित होते हैं ।

काश्यप ! तब तक सद्धर्म का कोप नहीं होता है जब तक कोई दूसरा लक्ष्मी धर्म उठ खड़ा नहीं होता । जब कोई लक्ष्मी धर्म उठ खड़ा होता है तो सद्धर्म का कोप ही जाता है । काश्यप ! जैसे तब तक सत्त्व साध का कोप नहीं होता जब तक लक्ष्मी सैवार होने नहीं लगता—वैसे ही ।

काश्यप ! पृथ्वीपातु, सद्धर्म का तुल्य नहीं करता; न आपोपातु न तेजोपातु, और न वायुपातु । किन्तु यही वे मूर्ख लोग टापक होते हैं जो सद्धर्म का तुल्य कर दण्ड हैं । काश्यप ! जैसे अधिक मार से पाषाण टूट जाती है वम धर्म टूट नहीं जाता ।

काश्यप ! एमे पाँच कारण हैं जिनसे सद्धर्म नष्ट होकर तुल्य हो जाता है । कौन से पाँच ?

(१) काश्यप ! मिथु मिथुनी उपासक उपासिकाएँ बुद्ध के प्रति गौरव नहीं करतीं जबका रवाना नहीं करतीं हैं । (२) धर्म के प्रति । (३) संघ के प्रति । (४) शिक्षा के प्रति— । (५) समाधि के प्रति ।

काश्यप ! यही पाँच कारण हैं जिनसे सद्धर्म नष्ट हो कर तुल्य हो जाता है ।

काश्यप ! एमे पाँच कारण हैं जिनसे सद्धर्म ख़रा रहता है क्षीण और तुल्य नहीं होता ।

(१)— बुद्ध के प्रति गौरव । (२) धर्म के प्रति । (३) संघ के प्रति । (४) शिक्षा के प्रति । (५) समाधि के प्रति ।

काश्यप ! यही पाँच कारण हैं जिनसे सद्धर्म ख़रा रहता है क्षीण और तुल्य नहीं होता ।

काश्यप-संयुक्त समाप्त ।

वह भिक्षु लाभादिकों पर फूल जाता है और दूसरे शीलवन्त भिक्षुओं को नीचा समझता है। भिक्षुओ ! उस मूर्ख भिक्षु का यह चिरकाल तक अहित और दुःख के लिये होता है।

• • • ऐसा सीखना चाहिये।

§ ६ असनि सुत्त (१६. १. ६)

विजली की उपमा और लाभसत्कार

श्रावस्ती • ।

भिक्षुओ ! विजली के गिरने की उपमा उस शैश्य भिक्षु से दी जाती है जिसका मन लाभादि में फँसता है।

भिक्षुओ ! लाभादि को ही विजली का गिरना समझना चाहिये।

• ऐसा सीखना चाहिये।

§ ७. दिड्डु सुत्त (१६. १. ७)

विपैला तीर

श्रावस्ती • ।

विपैले तीर से जुम्मे पुरुष की उपमा उस शैश्य भिक्षु से दी जाती है जिसका चित्त लाभादि में फँस जाता है।

• • • ऐसा सीखना चाहिये।

§ ८. सिमाल सुत्त (१६. १. ८)

रोगी शृगाल की उपमा

श्रावस्ती • ।

भिक्षुओ ! रात के भिनसारे में तुमने शृगालों को रव करते सुना है ?

हाँ मन्ते !

भिक्षुओ ! वह शृगाल बूढ़ा, उक्कण्णक नामक रोग से पीड़ित हो न तो एकान्त में चैन पाता है, न वृक्ष के नीचे और न खुली जगह में। जहाँ-जहाँ जाता है, जहाँ-जहाँ खड़ा रहता है, जहाँ-जहाँ बैठता है और जहाँ-जहाँ लेटता है वहाँ-वहाँ बच्चा दुःख भोगता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, कितने भिक्षु लाभादि में चित्त फँसा कर न तो शून्यागार न वृक्ष के नीचे और न खुली जगह में रमते हैं। जहाँ-जहाँ जाते हैं...दुःख उठाते हैं।

ऐसा सीखना चाहिये।

§ ९. वेरम्य सुत्त (१६. १. ९)

इन्द्रियों में संयम रखना, वेरम्य वायु की उपमा

• • • भिक्षुओ ! ऊपर आकाश में वेरम्य नामकी एक हवा चलती है। इसके बीच में जो पक्षी पड़ता है वह फँसा जाता है। उस पक्षी के पैर, पाख, शिर और शरीर सभी अलग अलग हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही • • • भिक्षाटन के लिये पेटता है। उसके शरीर, चयन और मन अरक्षित रहते हैं। स्मृति और इन्द्रियों का संयम नहीं रहता है।

/ § ३ कृष्ण सुत (१६ १ ३)

जामादि मयानक हैं, कपुगा भीर व्याधा की उपमा

धावस्ती ।

मिथुनो ! पूर्वकाल में किसी ब्रह्मसम में कपुगों का एक परिवार बहुत समय से बास करता था । एक एक कपुगे ने दूसरे कपुगे से कहा—प्यारे कपुगे ! उस बगइ मय जाओ । किन्तु वह कपुगा उस बगइ पर चला गया । वहाँ किसी व्याधे ने उसे पाखा बकाकर बेच दिया । एक बह कपुगा वहाँ दूसरा कपुगा या वहाँ गया । उस कपुगे ने इसे दूर ही से जाते देखा । देखकर उसने कहा—प्यारे ! उस स्थान पर गये तो नहीं थे ?

प्यारे ! मैं उस स्थान पर गया था ।

प्यारे ! तो तुम भाड़े से छिद्-बिध तो नहीं गये ?

प्यारे ! मैं भाड़े से छिद्-बिध तो नहीं गया हूँ, किन्तु यह बागा मेरे पीछे-पीछे चला है ।

प्यारे कपुगे ! तुम छिद् गये हो बिध गये हो । इसी व्याधे से तुम्हारे कितने पाप बाने फँसाकर मार दिये गये हैं । जाओ तुम अब मरे काम के नहीं रहे ।

मिथुनो ! यहाँ व्याधा पापी मार को ही समझना चाहिये । माका यही जामादि है । जाण संसारमें स्वाद् जेना भीर राग करवा है ।

[ऊपर के पेशा]

§ ४ दीघलोमी सुत (१६ १ ४)

उम्मे बाळ बाळे सँके की उपमा

भापस्ती जेतथम में ।

मिथुनो ! जैसे उम्मे-उम्मे बाळ बाळ कोई मँका कँटीली झाड़ी में बैठ जाय । वह हजर उबर कय काप रँस काप बळ काप बड़ी विपदि में पक जाय ।

मिथुनो ! जैसे ही कितने मिथु जायादि में पककर निरुध बिध से चुबह में पहन भीर पाण पीयर के गाँव वा कस्बे में मिश्रादन के किये पैठता है । वह हजर उबर उग जाता है रँस जाता है पस जाता है ।

[पूर्ववत्]

§ ५ एलक सुत (१६ १ ५)

समसत्काण से धामस्थित होना महिलकर है ।

मिथुनो ! जैसे मीका जानेबाका कोई पिच्छ मीका से कचपय सजा हो भीर उसके सामने मीक की एक डेर पड़ी हो । इससे वह अपने को दूसरे पिच्छको स बका समझे—मैं मीका जानेबाका पिच्छ मीका से कचपय सजा हूँ और मेरे सामने मीके की एक डेर पड़ी है ।

मिथुनो ! जैसे ही मिश्रादन के किये पैठता है । वह वहाँ भोजन करने दूसरे दिव के किये की विमन्थित होता है और उसका पात्र पूरा होता है ।

वह ध्याग में जाकर मिथुनों के सामने गर्भ के ग्राह कहता है—मैंने जोबन कर किया दूसरे दिव के किये की विमन्थित हूँ और मेरा पात्र भी पूरा है । मैं बीबरादि का काम करनेवाला हूँ । वे दूसरे जमाती अपत्युत्प मिथु बीबरादि का कय नहीं करते ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. पठम पाती सुत्त (१६. २. १)

लाभस्तरकार की भयंकरता

श्रावस्ती***।

भिक्षुओ ! ***लाभस्तरकार बड़ा दारुण है ।

भिक्षुओ ! मैंने एक समय एक पुरुष के चित्त को अपने चित्त से जान लिया.—यह भिक्षु सोने की थाली में भरे हुये रजत-चूर्ण के लिये भी जान वृद्ध कर झूठ नहीं बोलेगा ।

वही पुरुष को मैंने आगे चलकर लाभस्तरकार के लिये जान वृद्ध कर झूठ धोले देखा ।

* इसलिये, ऐसा सीखना चाहिये ।

§ २. दुतिय पाती सुत्त (१६. २. २)

लाभस्तरकार की भयंकरता

श्रावस्ती** ।

भिक्षुओ ! मैंने एक समय एक पुरुष के चित्त को अपने चित्त से जान लिया—यह भिक्षु चाँदी की थाली में भरे हुये सुवर्ण-चूर्ण के लिये भी जान वृद्ध कर झूठ नहीं बोलेगा ।

वही पुरुष को** ।

§ ३-१०. सिङ्गी सुत्त (१६. २. ३-१०)

लाभस्तरकार की भयंकरता

३. सुवर्ण-निष्क के लिये भी जान वृद्ध कर झूठ नहीं ।
४. एक सौ सुवर्ण-निष्क के लिये भी ।
५. ** निष्कों की एक ढेर के लिये भी ।
६. निष्कों की सौ ढेर के लिये भी ।
७. जातरूप में भरी हुई सारी पृथ्वी के लिये भी ।
८. ससार की किसी भी वस्तु के लिये ।
९. प्राणों के निकल जाने पर भी ।
१०. सबसे सुन्दरी स्त्री के लिये भी ।

द्वितीय वर्ग समाप्त ।

बह वहाँ किसी की को देखता है जो अपने भयों को डीक स डेकी न हो। उसे देख उसके चित्त में राग चला जाता है। चित्त में राग चले जाने से वह शिक्षा को छोड़ गृहस्थ हो जाता है। तब, दूसरे लोग उसके चित्त को, पाप को आसन को धर सूरदासी को बड़ा-बड़ा कर ले जाते हैं। वेत्स हवा में पड़े पत्ती की तरह।

“ येमा सीवना चाहिये ।

§ १० समाधा सुत्त (१६ १ १०)

लामसत्कार दाग्ण ई

आपस्ति***।

मिथुभी ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लामसत्कार बड़ा दाग्ण है, कट्ट है तीया है विप्यकर है ।

मिथुभी ! मैं देखता हूँ कि कितने लोग सत्कार में अपने चित्त को रौसा कर मरने के बाद मरक में उत्पन्न हो बुद्धि को प्राप्त होते हैं ।

मिथुभी ! मैं देखता हूँ कि कितने लोग असत्कार में चित्त को लगा कर मरने के बाद मरक में उत्पन्न हो बुद्धि को प्राप्त होते हैं ।

मिथुभी ! मैं देखता हूँ कि कितने लोग असत्कार और सत्कार में चित्त लगाकर... बुद्धि को प्राप्त होते हैं ।

मिथुभी ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लामसत्कार इतना दाग्ण है कट्ट है तीया है विप्यकर है ।

मिथुभी ! हमसिये, येमा सीवना चाहिये कि—स्वयं सत्कार, परमा को छाड़ देना उन्हें मन में रखने नहीं देना ।

मगधान् बह वाले ! इतना कहकर बुद्ध फिर भी वाले—

आ सत्कार वा असत्कार के मिकने पर

अपमार्ग स विहार करत बुद्ध परमाधि को नहीं बिगाता है ।

उस पक्ष में सत्कार शुरूम छटि रग्गवात्त को,

मग्गुक्क उपादान-धील होकर समन करनवात्ता कहा है ॥

प्रथम योग समाप्ता ।

...उपासिका धायिकाओं में यही दोनों आदर्श हैं ।

बेटी ! यदि तुम घर से बेघर हो प्रदग्धित होगी तो चैमी होना जैसी कि भिक्षुणी श्रेया और उत्पलवर्णा हैं ।

** भिक्षुणी धायिकाओं में यही दोनों आदर्श हैं ।

** [ऊपर के श्रेया]

§ ५. पठम समणब्राह्मण सुत्त (१६. ३. ५)

लाभसत्कार के यथार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण लाभादि के आन्धा, आन्धीनय, और निःसरण को यथाभूत नहीं जानते हैं, वे * प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं ।

भिक्षुओ ! जो जानते हैं ** प्राप्त कर विहार करते हैं ।

§ ६. दुत्तिय समणब्राह्मण सुत्त (१६. ३. ६)

लाभसत्कार के यथार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण लाभादि के समुदय, अस्तगम, आन्धा, आन्धीनय और निःसरण को यथाभूत नहीं जानते हैं, वे * प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं ।

प्राप्त कर विहार करते हैं ।

§ ७. ततिय समणब्राह्मण सुत्त (१६. ३. ७)

लाभसत्कार के यथार्थ निरोध-ज्ञान से मुक्ति

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो लाभादि के समुदय, निरोध, और निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं, वे प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं ।

* प्राप्त कर विहार करते हैं ।

§ ८. छवि सुत्त (१६. ३. ८)

लाभसत्कार खाल को छेद देता है

** भिक्षुओ ! लाभादि खाल को छेद देता है, खाल को छेद कर धाम को छेद देता है, मांस, नदरू, हड्डी, मज्जा को छेद देता है ।

§ ९. रज्जु सुत्त (१६. ३. ९)

लाभसत्कार की रस्सी खाल को छेद देती है

श्रावस्ती ।

** लाभसत्कार दाख्य है ।

भिक्षुओ ! लाभसत्कार हड्डी को छेदकर मज्जा में जा लगता है ।

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

§ १ मातृगाम सुच (१६ ३ १)

कामसत्कार दारण द्वै

धायस्ती ।

कामसत्कार दारण द्वै ।

मिथुनी ! एकान्त में कोई अकेली ही भी जिसक चित्त को तुम्हारे में असमर्थ होती है, उसका चित्त काम सत्कार और प्रसंगा में रूँस जाता है ।

ऐसा सीखना चाहिये ।

§ २ करयाणी सुच (१६ ३ २)

कामसत्कार दारण द्वै

एकान्त में सुन्दरी ही भी ।

§ ३ पुच सुच (१६ ३ ३)

कामसत्कार में न रूँसना बुद्ध के शार्दार्थ धायक

धायस्ती ।

कामसत्कार दारण द्वै ।

मिथुनी ! अज्ञान असाधिका अपने हककीते काबजे पुत्र को इस तरह दिखाने दे—साथ ! बीसा बनना बीसा बिना गृहपति या आश्रयक इत्यर्थ है ।

मिथुनी ! क्योंकि मेरे गृहस्थ आश्रयों में नहीं हो आश्रय माने जाते हैं ।

—साथ ! यदि तुम घर से बेबर हो जाओ तो बीसा ही बनना बीसे स्वारिपुत्र और मौलस्यपण हैं ।

मिथुनी ! क्योंकि मेरे मित्र आश्रयों में नहीं हो आश्रय माने जाते हैं ।

—साथ ! अज्ञान होकर सिद्धा का पावन करते हुए कामादि के चेर में मल रूँसना । कामादि के चेर में रूँसने से यह तुम्हारे चित्त के किर होता ।

** ऐसा सीखना चाहिये ।

§ ४ एकधीता सुच (१६ ३ ४)

कामसत्कार में न रूँसना बुद्ध की शार्दार्थ आयकार्य

धायस्ती ।

कामसत्कार दारण द्वै ।

मिथुनी ! अज्ञान असाधिका अपनी हककीती काबकी कबकी को इस तरह सिपाने—वेटी ! तुम बीसी होना बीसी की असाधिका सुगुणता और ऐतुकुण्डकिय बन्ध माता हैं ।

चौथा भाग

चतुर्थ वर्ग

१. भिन्दि सुत्त (१६. ४. १)

लाभसत्कार के कारण सघ में फूट

श्रावस्ती***।

***लाभसत्कार दारण है।

लाभसत्कार में कर्म और पदकर देवदत्त ने संघ को फोड़ दिया।

ऐसा सीखना चाहिए।

§ २. मूल सुत्त (१६. ४. २)

पुण्य के मूल का कटना

देवदत्त के पुण्य के मूल कट गये।

§ ३. धम्म सुत्त (१६. ४. ३)

कुशल धर्म का कटना

***देवदत्त के कुशल धर्म कट गये।

§ ४. सुक्कधम्म सुत्त (१६. ४. ४)

शुल्क धर्म का कटना

देवदत्त के शुल्क धर्म कट गये।

§ ५. पकन्त सुत्त (१६. ४. ५)

देवदत्त के वध के लिए लाभसत्कार का उत्पन्न होना

एक समय देवदत्त के जाने के कुछ ही याद भगवान् राजगृह में गृहकूट पर्वत पर विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने देवदत्त के विषय में भिक्षुओं को आमन्त्रित किया।

भिक्षुओ! देवदत्त के अपने वध के लिए उसे इतना लाभसत्कार उत्पन्न हुआ है। अपनी परिहानि के लिए।

भिक्षुओ! जैसे, केला का वृक्ष अपने वध और अपनी परिहानि के लिए ही फल देता है, वैसे ही देवदत्त के अपने वध के लिए।

भिक्षुओ! जैसे, घेणु का वृक्ष अपने वध और अपनी परिहानि के लिए ही फल देता है।

भिक्षुओ! जैसे नल।

भिक्षुओ! जैसे, खचरी अपने वध और अपनी परिहानि के लिए ही वच्चा देती है।

मिथुनो ! जैसे कोई बकवान् पुरुष एक मजबूत स्त्री धारो से बंधे में फँस कर बैठे। वह बागा पाल को छोड़कर स्त्री को छोड़कर मज्जा में डूब करे।
बसे ही ।

§ १० मिथुस्तु सुत्र (१६ अ १०)

कामसत्कार बर्हत् के छिप मी विघ्नकारक

भाष्यस्ती ।

मिथुनो ! जो मिथु क्षीणधन्य बर्हत् है उसके छिपे भी मैं कामसत्कार को विघ्न बताता हूँ ।
ऐसा कहने पर कापुष्पाम् भामन्द मगवान् से बोले—मन्ते ! मका क्षीणधन्य बर्हत् मिथु को कामसत्कार कैसे विघ्न कर सकता है ?
भामन्द ! जिसका चित्त बिस्कुम्ब विमुक्त हो चुका है उसके छिपे मैं कामसत्कार को विघ्न नहीं बताता ।

भामन्द ! जो कुछ भाषायी महिस्ताया इसी जन्म में कुछ विहार को प्राप्त कर लेनेवालों के छिपे मैं कामसत्कार को विघ्नकर बताता हूँ ।

भामन्द ! निर्वाण प्राप्ति के मार्ग के छिपे कामसत्कार ऐसा हास्य कट्टु टीका और विघ्नकर है ।

भामन्द ! इसछिपे तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—काम सत्कार और मर्शमा को मैं छोड़ दूँगा
जबमें अपने चित्त को बँसने नहीं दूँगा ।

भामन्द ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये ।

तृतीय वर्ग समाप्त ।

छठाँ परिच्छेद

१७. राहुल-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. चक्षु सुक्त (१७. १. १)

इन्द्रियों में अनित्य, दुःख, अनात्म के मनन से विमुक्ति

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में ।

• एक भोर घंटे, आयुष्मान् राहुल भगवान् से बोले—भन्ते ! भगवान् मुझे उपदेश दें कि जिसे सुनकर मैं एकान्त में अकेला जप्रमत्त, आतापी, और प्रहितात्म होकर विहार करूँ ।

राहुल ! तो, क्या समझते हो चक्षु नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य, भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है भयवा सुख ?

दुःख, भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है क्या उसे ऐसा समझना चाहिये—वह मेरा है वह मैं हूँ, वह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

[मैंने ही]—श्रोत्र , घ्राण , जिह्वा , काया , मन ।

राहुल ! यह जान और सुनकर अत्यश्रायक चक्षु से मन को उचटा देता है ।

उचटा कर विरक्त हो जाता है । विरक्त रह विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान हो जाता है । जाति क्षीण हुई, ब्रह्मार्थ पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, और कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है ।

§ २ रूप सुक्त (१७. १. २)

रूप में अनित्य, दुःख, अनात्म के मनन से विमुक्ति

राहुल ! तो क्या समझते हो, रूप , शब्द , गन्ध , रस , स्पर्श , धर्म नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य भन्ते ।

[पूर्ववत्]

पेसा लीजना चाहिये ।

मगवान् यह बोले । इतना कह कर कुछ फिर भी बोले—

कछ पेसा को मार देता है
कछ बेणु को कछ बक को
सत्कार कापुत्र्य की मार देता है
सिमे जपना गर्म दासरी को ॥

§ ६ रथ सुच (१६ ४ ६)

देवदत्त का कामसत्कार उसकी हानि के लिए

राजगृह घेजुवन ।

उस समय कुमार अजातशत्रु साँझ सुबह पाँच सी रथों को लेकर देवदत्त के उपस्थान के के किये भाषा करता था ; पाँच ली पकवान की पाकिर्वा भेजी जाती थी ।

तब कुछ मित्र वहाँ मगवान् घे वहाँ भाये थीर मगवान् का जमिबादन कर एक थोर बैठ गये । एक थोर बैठ कर अब मित्रुओं ने मगवान् को कहा—भन्ते ! कुमार अजातशत्रु पाकिर्वा भेजी जाती है ।

मित्रुओ ! देवदत्त के कामसत्कार की ईर्ष्या मत करो । हमसे कुछज धर्मों में देवदत्त की हानि ही है वृद्धि नहीं ।

मित्रुओ ! जैस कच कुते के नाक पर कोई पिल काह दे उससे कुपा थीर भी कच हो उडे, वैसे ही, जब तक कुमार अजातशत्रु देवदत्त का उपस्थान इस प्रकार करता रहैया तब तक कुछज धर्मों में उसकी हानि ही है वृद्धि नहीं ।

पेसा लीजना चाहिये ।

§ ७ माता सुच (१६ ४ ७)

कामसत्कार दास्य है

भावस्ती ।

मित्रुओ ! कामसत्कार दास्य है ।

मित्रुओ ! मैं किसी पुत्र के बिच को जपने बिच सं जाव देता हूँ—बह माता के कारण भी जाव पृथ कर दूँ वहाँ बोधेया । मित्रुओ ! इसी को कामसत्कार में र्थस काव्यज कर दूँ बोधते देखता हूँ ।

मित्रुओ ! इसकिये दुर्गमें पेसा लीजना चाहिये—कामसत्कार को छोड़ हूँया कामसत्कार में जपने बिच को नहीं र्थसने दूँया ।

मित्रुओ ! पेसा लीजना चाहिये ।

§ ८-१३ पिता सुच (१६ ४ ८-१३)

कामसत्कार दास्य है

(८) पिता; (९) माता; (१०) बहन; (११) पुत्र; (१२) पुत्री; (१३) स्त्री
[कपर के पेसा]

चतुर्थं धर्म समाप्त ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. चक्षु सुत्त (१७. २. १)

चक्षु आदि में अनित्य, दुःख, अनात्म की भावना से मुक्ति

ध्यावस्ती ।

• एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् राहुल से भगवान् बोले—राहुल ! ...चक्षु नित्य है वा अनित्य ?

अनित्य भन्ते ।

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते ।

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसे क्या यह कहना उचित है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते ।

श्रोत्र , घ्राण , जिह्वा , काया , मन ।

राहुल ! ऐसा देख और सुनकर आर्यश्रावक इनसे उचटा रहता है । उचटा रह वैराग्य करता है । वैराग्य से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है । जाति क्षीण हुई, अक्षय्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, और कुछ धाकी नहीं बचा है—ऐसा जान लेता है ।

इसी मूर्ति दश सूत्रान्त कर लेने चाहिये ।

§ २-१०. रूप सुत्त (१७ २. २-१०)

अनित्य, दुःख की भावना

ध्यावस्ती **।

राहुल ! तो क्या समझते हो रूप —धर्म , चक्षुविज्ञान —मनोविज्ञान , चक्षुसस्पर्श ** —मन सस्पर्श , चक्षुसस्पर्शा वेदना **—मन सस्पर्शा वेदना** , रूप सज्ञा —धर्म सज्ञा , रूपसचेतना**—धर्मसचेतना , रूपतृष्णा —धर्मतृष्णा , पृथ्वी धातु —विज्ञान धातु , रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान नित्य हैं या अनित्य ?

अनित्य भन्ते ।

§ ११. अनुसय सुत्त (१७ २. ११)

सम्यक् मनन से मानानुशय का नाश

ध्यावस्ती ।

• एक ओर बैठ, आयुष्मान् राहुल भगवान् से बोले —भन्ते ! क्या ज्ञान और देख लेने से

ई ३ विष्णुाण सुक्त (१७ १ ३)

विष्णुान में अनित्य बुद्धि, अनात्म के ममत्त से मुक्ति

राहुक ! तो क्या समझते हो बहुविज्ञान अथर्वविज्ञान प्राणविज्ञान विष्णुविज्ञान
कावाविज्ञान मन्त्रविज्ञान नित्य है वा अनित्य ?
अनित्य मन्ते ।

ई ४ सम्पर्श सुक्त (१७ १ ४)

सम्पर्श में अनित्य बुद्धि अनात्म के ममत्त से मुक्ति

राहुक ! तो क्या समझते हो बहुसंस्पर्श मजसंस्पर्श नित्य है वा अनित्य ?
अनित्य मन्ते ।

ई ५ वेदना सुक्त (१७ १ ५)

वेदना का ममत्त

राहुक ! तो क्या समझते हो बहुसंस्पर्शका वेदना मजसंस्पर्शका वेदना नित्य है वा
अनित्य ?
अनित्य मन्ते ।

ई ६ सञ्जा सुक्त (१७ १ ६)

सञ्जा का ममत्त

राहुक ! तो क्या समझते हो रूप-सञ्जा —धर्म-सञ्जा नित्य है वा अनित्य ?
अनित्य मन्ते ।

ई ७ संबन्धतना सुक्त (१७ १ ७)

संबन्धतना का ममत्त

राहुक ! तो क्या समझते हो रूप-संबन्धतना —धर्म-संबन्धतना नित्य है वा अनित्य ?
अनित्य मन्ते । --

ई ८ तृष्णा सुक्त (१७ १ ८)

तृष्णा का ममत्त

राहुक ! तो क्या समझते हो रूप-तृष्णा नित्य है वा अनित्य ?
अनित्य मन्ते ।

ई ९ धातु सुक्त (१७ १ ९)

धातु का ममत्त

राहुक ! तो क्या समझते हो इत्नी धातु आपोधातु -- वेदो-धातु वातु धातु
आध्या-धातु -- विद्यातु धातु नित्य है वा अनित्य ?
अनित्य मन्ते ।

ई १० लघु सुक्त (१७ १ १०)

लघु का ममत्त

राहुक ! तो क्या समझते हो रूप- लघु -- वेदना संज्ञा संस्कार विद्यातु नित्य है वा
अनित्य ?
अनित्य मन्ते । --

प्रथम यग समाप्त ।

सातवाँ परिच्छेद

१८. लक्षण-संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. अद्विपेक्षि सुक्त (१८. १. १)

अस्थि-कंकाल, गौहत्या का दुष्परिणाम

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुचन कलन्दक निवाप में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् लक्षण और आयुष्मान् महामौद्गल्यायन गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे ।

तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन पूर्वाह्न-समय पहन और पात्रचीवर ले जहाँ आयुष्मान् लक्षण थे वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् लक्षण से बोले—आवुस लक्षण ! चलो, राजगृह में भिक्षाटन के लिये पैठें । 'आवुस, चहुत अच्छा' कहकर आयुष्मान् लक्षण ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन को उत्तर दिया । तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये एक जगह सुसकरा दिया ।

तब, आयुष्मान् लक्षण आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से बोले—आवुस ! आप के सुसकरा देने का क्या हेतु है ?

आवुस लक्षण ! इस प्रश्न का यह उचित-काल नहीं है । भगवान् के सामने मुझे यह प्रश्न पूछना

तब, आयुष्मान् लक्षण और आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भिक्षाटन से छोट भोजन कर लेने के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् लक्षण आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से बोले—आप आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये एक जगह सुसकरा दिया । सो आपके इस सुसकरा देने का क्या हेतु था ?

आवुस ! गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये मैंने हृदियों के एक ककाल को आकाश मार्ग से जाते देखा । उसे गीध भी, कौण भी, और चील भी झपट-झपट कर नोचते थे, घीचते थे, टुकड़े-टुकड़े कर देते थे, और वह आर्तस्वर कर रहा था ।

आवुस ! तब, मेरे मन में ऐसा हुआ—बड़ा आश्चर्य है, क्या अद्भुत है ! ऐसे भी प्राणी हैं । इस प्रकार का भी आत्मभाव-प्रतिष्ठाभ होता है ।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! मेरे श्रावक और जोले विहार करते हैं, ज्ञान के साथ विहार करते हैं । मेरे श्रावक इस प्रकार को भी जान लेते हैं, देख लेते हैं, साक्षात्कार कर लेते हैं ।

भिक्षुओ ! पहले मैंने भी उस सख को देखा था, किन्तु किसी को नहीं कहा । यदि मैं कहता तो

विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार = मर्मकार = मानानुष्ठान नहीं होते हैं ?

राहुक ! अतीत अवगत या वर्तमान के, अप्पारम या बाहर के स्पर्क या सूक्ष्म, हीन या प्रवीण, दूर के वा निकट के बितने रूप हैं सभी न तो मेरे हैं न मैं हूँ, न मेरे आत्मा हैं। जो इसे पचाघृत सम्यक् प्रज्ञा से देखता है।

बिदबी वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान हैं सभी न तो मेरे हैं, न मैं हूँ न मेरे आत्मा हैं। जो इसे पचाघृत सम्यक् प्रज्ञा से देखता है।

राहुक ! इसे जान और देख केने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार = मर्मकार = मानानुष्ठान नहीं होते हैं।

§ १२ अपगत सुष (१७ २ १२)

ममत्व के त्याग से मुक्ति

आवस्ती ।

“ एक ओर बैठ आपुष्मान् राहुक मयवान् से बोले — भन्ते ! क्या जान धीर देख केने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार मर्मकार और मान हट जाते हैं मम हृद शान्त और बिमुक्त हो जाता है ?

राहुक ! अतीत अवगत या वर्तमान के बितने रूप हैं सभी न तो मेरे हैं न मैं हूँ, न मेरे आत्मा हैं।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

राहुक ! इसे जान और देख केने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार मर्मकार और मान हट जाते हैं मम हृद शान्त और बिमुक्त हो जाता है।

राहुक संयुक्त समाप्त ।

§ ८. सूचिसारथी सुत्त (१८. १. ८)

सूई-जैसा लोम और सारथी

सूचिलोम पुरुष को ।

इसी राजगृह में सारथि था ।

§ ९. सूचक सुत्त (१८. १. ९)

सूई-जैसा लोम और सूचक

सूचिलोम पुरुष को ।

इसी राजगृह में सूचक था ।

§ १० गामकूटक सुत्त (१८. १. १०)

दुष्ट गाँव का पञ्च

कुम्भण्ड पुरुष को आकाश से जाते देखा ।

वह जाते हुये दान अण्डों को कन्धे पर रख कर जाता था, बैठते हुये उन्हीं पर बैठता था ।

* वह आर्तेश्वर कर रहा था ।

** वह इसी राजगृह में दुष्ट गाँव का पञ्च था ।

प्रथम वर्ग समाप्त ।

शाब्द हमारे नहीं मानते। जो मुझे नहीं मानते उनका यह चिरकाल तक अहित भीर हृत्क के छिने होता।

भिद्युमा ! यह सब इसी राजगृह में गौहत्या करने वाला था। इन पाप के फलस्वरूप यह कापों बप तक भक्त में पचता रहा। उस कर्मके अणुसाय में उसने पूरा भाग्यभाव प्रतिक्राम किया है। सभी सुधों में इसी तरह।

§ २ गोघातक मुक्त (१८ १ २)

मांसपेदी, गौहत्या का बुप्परिणाम

[इन सब सुधों में जायुष्मात् महात्मौहृत्थायन इसी प्रकार मुसकराते हैं जिसकी व्याख्या मगयात् करते हैं—]

भाकुस मांसपेदी को अफास से करते देखा ।

इसी राजगृह में गोघातक था ।

§ ३ पिण्डसाङ्गणी मुक्त (१८ १ ३)

पिण्ड और चिकित्सा

मांसपिण्ड को अफास से करते देखा ।

इसी राजगृह में चिकित्सा था ।

§ ४ निष्कयोरन्मि मुक्त (१८ १ ४)

गास उतरा भार मेड़ों का कसाई

लाक उतर हुब पुन को देखा ।

यह इसी राजगृह में मेड़ों का कसाई था ।

§ ५ असिद्धफरिफ मुक्त (१८ १ ५)

सलयार और मृग का कसाई

भाकुस ! गृहद्वर बर्षे न उतरते हुये एक अतिक्राम (अतिक्रमे शर्षे सलयार जगे हों) पुन को अफास से जग देखा। न अमि पून पून पर उसी के सरीर पर किरते न। यह करसे अतिक्रम कर रहा था।

यह इसी राजगृह में मृग का कसाई था ।

§ ६ सचिमागयी मुक्त (१८ १ ६)

धर्षी जैसा नाम और यदनिषा

सचिमाग पुन को अफास से करते देखा ।

इसी राजगृह में धुगमार (अभदेनिषा) था ।

§ ७ उमुकारनिक मुक्त (१८ १ ७)

गास जैसा नाम और अणवायी हाकिम

उमुकारन पुन को अफास से करते देखा ।

इसी राजगृह में अणवायी हाकिम था ।

§ ६. सीसच्छिन सुत्त (१८ २. ६)

शिर कटा हुआ डाकू

‘बिना शिर के एक कवच को आकाश से जाते देखा । उसकी छाती ही में आँख और मुँह थे ।’ वह आर्तस्वर कर रहा था ।

‘‘ वह सत्त्व इसी राजगृह में हारिक नामक एक डाकू था ।

§ ७. भिक्षु सुत्त (१८. २. ७)

भिक्षु

आवुस ! गुद्धकूट पर्वत से उतरते हुये मैंने एक भिक्षु को आकाश से जाते देखा ।

उसकी संघाटी लहलहा कर जल रही थी । पात्र भी लहलहा कर जल रहा था । काय-बन्धन भी । शरीर भी । वह आर्तस्वर कर रहा था ।

भिक्षुओ ! वह सत्त्व सम्प्रकृ सञ्जुद्ध भगवान् काश्यप के कालमें पापभिक्षु था ।

§ ८. भिक्षुनी सुत्त (१८ २ ८)

भिक्षुणी

भगवान् काश्यप के काल में पापभिक्षुणी थी ।

§ ९. सिक्खमाना सुत्त (१८ २ ९)

शिक्ष्यमाणा

भगवान् काश्यप के काल में पापी शिक्ष्यमाणा थी ।

§ १०. सामणेरे सुत्त (१८ २ १०)

श्रामणेरे

पापी श्रामणेरे था ।

§ ११. सामणेरी सुत्त (१८. २. ११)

श्रामणेरी

पह आर्तस्वर कर रही थी । आवुस ! तब मेरे मन में यह हुआ—आश्चर्य है, अद्भुत है । ऐसे भी सत्त्व होते हैं, ऐसा भी आत्मभाव-प्रतिलाम होता है ।

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! मेरे श्रावक आँख खोलकर विहार करते हैं, ज्ञान के साथ विहार करते हैं कि वे इस प्रकार को भी जान लेते हैं, देख लेते हैं, साक्षात्कार कर लेते हैं ।

भिक्षुओ ! पहले भी मैंने उस श्रामणेरी को देखा था, किन्तु किसी से कहा नहीं । यदि मैं कहता तो शायद लोग विश्वास नहीं करते, यह चिरकाल तक उनके अहित और दुःख के लिये होता ।

भिक्षुओ ! वह श्रामणेरी सन्धक् सञ्जुद्ध भगवान् काश्यप के कालमें पाप-श्रामणेरी थी । वह उस पाप के फल से लाखों वर्ष नरक में पड़ती रही । उस कर्म के अवसान में उसने ऐसा आत्मभाव-प्रतिलाम किया है ।

द्वितीय वर्ग

लक्षण-संयुक्त समाप्त

दूसरा भाग

द्वितीय खण्ड

§ १ कूपनिमुग्ग सुत्त (१८ २ १)

परस्त्री-नाशन करने वाला कूप्ये में गिरा

'भाउस ! घुड़घर पर्वत से उठते हुए मैंने गूड के कूप्ये में विष्कुक होने एक पुरुष को देखा ।
'बह इसी राजघर में परस्त्री के पास जाने वाला था ।

§ २ गूयखादी सुत्त (१८ २ २)

गूह जानेवाला दुष्ट प्राण

'एक पुरुष को देखा जो गूह के कूप्ये में गिरकर दोनों हाथों से गूह धा रहा था ।

मिथुनो ! यह सत्व इसी राजघर में एक प्राण था । उसने सत्वस्त्वसुह मगधार् कूप्येप
के सासन रहते मिथु-संब को भीजन के द्विसे निमग्नित कर एक वर्तन में गूह भर कर कड़ा—जाप
योग जितनी मरबी कार्ये और छ भी कार्ये ।

§ ३ निच्छवित्थी सुत्त (१८ २ ३)

छाछ उठारी हुई छिनाछ की

काक उठारी हुई थी जो आकार से जाती देना । यह आर्तस्वर कर रही थी ।
बह इसी राजघर में कबी छिनाछ की थी ।

§ ४ मङ्गलित्थी सुत्त (१८ २ ४)

रमस फेंकनेवाली मंथुली की

दुग्ध से भरी कुम्प की को देखा । 'आर्तस्वर कर रही थी ।
बह इसी राजघर में रमस फेंक करती थी ।

§ ५ ओकिलिनी सुत्त (१८ २ ५)

खुरी—सीत पर अंगार फेंकनेवाली

मूर्ख विभी और बर्हबास एक थी जो आकार से जाती देना । यह आर्तस्वर कर रही थी ।
विधुनो ! यह थी कलिङ्ग राजा की बरानी थी । उसने ईर्ष्या से अपनी सीत के ऊपर एक
कड़ाही अंगार फेंक दिया था ।

भिक्षुओ ! जैसे ही, जिस किन्मी भिक्षु की मैत्री चेतोविमुक्ति भावित और अभ्यस्त रहती है वह अमनुष्यों से पीड़ित नहीं किया जा सकता है ।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी, अभ्यस्त होगी, अपनी कर ली गट्टे होगी, सिद्ध होगी, अनुष्ठित होगी, परिचित होगी, सुसमारब्ध होगी ।

§ ४. ओक्खा सुत्त (१९. ४)

मैत्री-भावना

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो सुबह, दोपहर और साँझ को सी-सां ओक्खा^१ का दान दे^२ । और जो 'गाय के एक दूहन भर भी मैत्री की भावना करे, तो वही अधिक फल देनेवाला है ।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी^३ ।

§ ५. सत्ति सुत्त (१९. ५)

मैत्री-भावना

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई तेज धारवाली घड़ी हो । तब, कोई पुरुष आवे—मैं इस तेज धारवाली घड़ी को हाथ और मुक्के से उलट दूँगा, फट दूँगा, पीट दूँगा । भिक्षुओ ! तो, क्या समझते हो वह पुरुष ऐसा कर लकेगा ?

नहीं मन्ते !

तो क्यों ?

मन्ते ! तेज धारवाली घड़ी को कोई पुरुष हाथ और मुक्के से ऐसा नहीं कर सकता है । यकिक, उम पुरुष का हाथ ही जल्मी हो जायगा और उसे पञ्च कष्ट भोगना पड़ेगा ।

भिक्षुओ ! जैसे ही, जिस किन्मी भिक्षु की मैत्री चेतोविमुक्ति भावित रहती है, उसे यदि कोई अमनुष्य टरा टेना चाहे तो उसी को विपत्ति में पड़कर कष्ट भोगना पड़ेगा ।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी ।

§ ६. धनुग्गह सुत्त (१९. ६)

अप्रमाद के साथ विहरना

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जैसे, चार वीर धनुर्धर—शिक्षित, हाथ साफ, अभ्यासी—चारों दिशाओं में खड़े हों । तब, कोई पुरुष आवे और कहे—मैं इन चारों के छोड़े हुये धाण को पृथ्वी पर गिरने के पहले ही ले आऊँगा ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, ऐसी फुर्ती होने से वह बड़ा भारी फुर्तीवाज कहा जा सकेगा ?

मन्ते ! यदि एक ही के छोड़े धाण को पृथ्वी पर गिरने से पहले ले आवे, तो वह सबसे बड़ा फुर्तीवाज कहा जायगा, चारों की याव तो दूर रहे ।

भिक्षुओ ! उम पुरुष की जो तेजी है, उससे भी अधिक तेज चाँद-सूरज हैं । भिक्षुओ ! उस

१ भात पकाने का बहुत बड़ा वर्तन (तौला)—अट्टकया ।

२. उत्तम भोजन से परिपूर्ण भी बड़े तौलो का दान करे—अट्टकया ।

आठवाँ परिच्छेद

१९ औपम्य-संयुक्त

§ १ कूट सुच (१९ १)

समी अकुशल अविद्यामूलक है

पूसा गिने सुवा ।

पूठ समय भयबाद् व्यावस्ती में अनाद्यपिण्डक के आराम जेतवण में विहार करते थे ।

भगवान् बोले :—मिथुनो ! असे कूटगार के जितने घरम हैं समी कूट की ओर जाते हैं कूट पर जा करते हैं कूट में बोदे रहते हैं कूट में भाकर मिक जाते हैं ।

मिथुनो ! जैसे ही जितने अकुशल धर्म हैं समी अविद्यामूलक अविद्या में छोरे रहने वाले अविद्या में जाकर सुदने और मिकने वाले हैं ।

दसकिये रे मिथुनो ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रसन्न होकर विहार करेगा ।

§ २ नखसिख सुच (१९ २)

प्रमात् न करना

आयस्ती ।

तब अपने मजाप पर एक छोटा रज-कण रक कर भगवान् ने मिथुनों को आनन्त्रित किया—
मिथुनो ! क्या समझते हो यह छोटा रज-कण क्या है या महापृष्ठी ?

अन्त ! महापृष्ठी बरी है, यह रज-कण तो क्या अचना है । यह अचना कय महापृष्ठी के किसी भी भाग में नहीं समझा जा सकता है ।

मिथुनो ! जैसे ही ये सब बने अन्त हैं जो अयुष्य-बीजि में अन्त करते हैं । वे सत्य बहुत हैं जो दूसरी चीजि में अन्त करते हैं ।

दसकिये रे मिथुनो ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रसन्न होकर विहार करेगा ।

§ ३ कुल सुच (१९ ३)

मैत्री भाषणा

आपन्नी ।

मिथुनो ! जैसे यह कुल जिनमें बहुत दिवसों और अरुण पुरुष हैं और उग्रुओं से राहज में बीदित दिने उन्ने हैं ।

मिथुनो ! जैसे ही जिस किसी मिथु की मर्जी बेगोविमुक्ति अभावित और अन्तपरत रहती है यह अयुष्यो न मरुज में बीदित दिना अठा है ।

मिथुनो ! जैसे यह कुल जिनमें अन्त दिवसों और अयुष्य पुरुष हैं और-उग्रुओं से बीदित नहीं दिना जाता है ।

§ ९. नाग सुत्त (१९. ९)

लालच-रहित भोजन करना

श्रावस्ती* ।

उस समय कोई नया भिक्षु कुवेला करके गृहस्थ कुलों में रहा करता था । उसे दूसरे भिक्षुओं ने कहा—आयुष्मान् कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में मत रहा करें ।

इस पर वह भिक्षु बोला—ये स्थविर भिक्षु गृहस्थ-कुलों में जाया करते हैं, तो भला मुझमें क्या लगा है ?

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—भन्ते ! एक नया भिक्षु कुवेला करके ' । ' 'तो भला मुझमें क्या लगा है ?

भिक्षुओं ! बहुत पहले कोई जगल में एक सरोवर था । कुछ नाग भी वहाँ वास करते थे । वे उस सरोवर में पैठ, सूँड़ से कमल के नाल को उखाड़, अच्छी तरह धो, कीचड़ हटाकर निगल जाते थे । यह उनके वर्ण और बल के लिये होता था । उसमें न तो उनकी मृत्यु होती थी और न वे मृत्यु के समान दुःख पाते थे ।

भिक्षुओं ! उनकी देखादेखी छोटे छोटे हाथी भी उस सरोवर में पैठ, कमल के नाल को उखाड़, उसे धो, कीचड़ लगे हुए ही निगल जाते थे । वह न तो उनके वर्ण के लिये होता था और न बल के लिये । उससे वे मर भी जाते थे, और मरने के समान दुःख भी पाते थे ।

भिक्षुओं ! वैसे ही, ये स्थविर भिक्षु सुबह में पहन और पात्र-चीवर ले भिक्षाटन के लिये गाँव या कस्बे में पैठते हैं, वे वहाँ धर्म का उपदेश करते हैं । उससे गृहस्थों को बड़ी श्रद्धा होती है । जो भिक्षा मिलती है उसका वे लोभरहित हो, उसके आदीनव और निःसरणका ख्याल करते हुये, भोग करते हैं । यह उनके वर्ण और बल के लिये होता है* ।

भिक्षुओं ! उनकी देखादेखी नये भिक्षु भी कस्बे में पैठते हैं । जो भिक्षा मिलती है उसका वे ललचा हृदिया कर भोग करते हैं, उसके आदीनव और निःसरण का कुछ ख्याल नहीं करते । वह न तो उनके वर्ण के लिये होता है, और न बल के लिये ।

भिक्षुओं ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—विना ललचाये हृदिआये, तथा आदीनव और निःसरण का ख्याल रक्ष कर भिक्षा का भोग करूँगा ।

§ १०. बिलार सुत्त (१९. १०)

सयम के साथ भिक्षाटन करना

श्रावस्ती ।

उस समय कोई नया भिक्षु कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में रहा करता था । उसे दूसरे भिक्षुओं ने कहा—आयुष्मान् कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में मत रहा करें ।

भिक्षुओं से कहे जाने पर भी वह भिक्षु नहीं मानता था ।

तब कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—भन्ते ! वह भिक्षु नहीं मानता है ।

भिक्षुओं ! बहुत पहले कोई बिलार एक गद्दीरे के पास चूरे की ताक में बैठा था—जैसे ही चूड़ा बाहर निकलेगा कि ईं झट उसे पकड़ कर धा जाऊँगा ।

पुस्तक की जो टोपी है चॉद-सूरज की जो टोपी है चॉद-सूरज के आगे भागे चकन चाके देवताओं की जो टोपी है, उन सभी स लेख आनुसंस्कार खीन हो रहा है।

मिथुभो ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रमत्त होकर विहार कर्होगा।

४ ७ आणी मुत्त (१९ ७)

गम्भीर धर्मों में मन लगाना, भविष्य-वचन

भावस्ती ।

मिथुभो ! पूर्वकाक में वसाराहों को आगाक काम का एक सूरज था ।

उस आगत सूरज में जब कोई छेद हो जाता था तो वसाराह लोग उसमें एक रौंटी डोक देते थे । चीरे-चीरे एक ऐसा समय आया कि सारे सूरज की भयनी पुरानी ककड़ी डुक भी नहीं रही सारे का सारा खुरियों का एक इच्छा बन गया ।

मिथुभो ! भविष्यकाक में मिथु ऐसे ही बन जायेंगे । बुद्ध ने जो गम्भीर, गम्भीर कार्य बाकै, जोकोपर सूर्यतामसिसंयुक्त सूर्य कहे हैं उनके कहे जाने पर काम न होंगे, सुनने की इच्छा न करेंगे समझने की कोशिश नहीं करेंगे । धर्म को वे सीखने और अभ्यास करने के योग्य नहीं समझेंगे ।

जो बाहर के आचकों स कहे कविता सुन्दर अच्छर भीर सुन्दर स्पृजन चाके जो सूर्य वसिंगे कम्पी के कहे जाने पर काम होंगे सुनने की इच्छा करेंगे समझने की कोशिस करेंगे । कम्पी धर्मों को वे सीखने और अभ्यास करने के योग्य समझेंगे ।

मिथुभो ! इस तरह बुद्ध ने किन गम्भीर सूर्यों को कहा है उनका कोप हो जावगा ।

मिथुभो ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—बुद्ध ने जो गम्भीर सूर्य कहे हैं उनके कहे जाने पर काम हुआ सुनने की इच्छा कर्होगा समझने की कोशिस कर्होगा । उसी धर्म को सीखने और अभ्यास करने के योग्य समझोगा ।

४ ८ कलिङ्गर मुत्त (१५ ८)

ककड़ी के बने तच्छ पर सोता

देसा नीने मुत्ता ।

एक समय मगधराज वैशाली में महाबल की कूटागारशाखा में विहार करते थे ।

मगधराज बोले—मिथुभो ! किरणधी ककड़ी के बने तच्छ पर सोते हैं अप्रमत्त हो उत्साह के साथ अपने कर्तव्य पूरा करते हैं । मगधराज विदेहिपुत्र मन्दातारायु उनके बिरुद्ध कीर्त दौब-येंच नहीं वा रहा है ।

मिथुभो ! अनगत काक में किरणधी कोप कहे सुकुमार तथा कोमल हाथ पैर बाके होंगे ; वे गारेदार विछावण पर गुकगुक तकिये कगा दिन चद जाने तक सोते रहेंगे ; एव मगधराज को उनके बिरुद्ध दौब-येंच निक जावगा ।

मिथुभो ! इस समय मिथु लोग ककड़ी के बने तच्छ पर सोते हैं अपने उद्योग में आतापी और अप्रमत्त होकर विहार करते हैं । पापी मार इसके बिरुद्ध कीर्त दौब-येंच नहीं वा रहा है ।

मिथुभो ! अनगत काक में मिथु लोग दिन चद जाने तक सोते रहेंगे । उनके बिरुद्ध पापी मार को दौब-येंच निक जावगा ।

मिथुभो ! इसकिये तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—ककड़ी के बने तच्छ पर सोतोग, अपने उद्योग में आतापी और अप्रमत्त होकर विहार कर्होगा ।

नवाँ परिच्छेद

२०. भिक्षु-संयुक्त

§ १. कोलित सुत्त (२०. १)

आर्य मौन-भाव

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में ।

यहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—दे भिक्षुओ !

“आहुस !” कहकर भिक्षुओं ने उत्तर दिया ।

आयुष्मान् महामौद्गल्यायन बोले—आहुस ! एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में यह

वितर्क उठा—आर्य तूष्णी-भाव, आर्य तूष्णी भाव कहा जाता है, सो यह आर्य तूष्णी-भाव क्या है ?

आहुस ! तब मेरे मन में यह हुआ—भिक्षु वितर्क और विचार के शान्त हो जाने से द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है । यही आर्य तूष्णी भाव है ।

आहुस ! सो मैं द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूँ । इस प्रकार विहार करते हुये वितर्क—सदृशत सञ्चार्य मन में उठती है ।

आहुस ! तब, भगवान् ने प्रकृति से मेरे पाम आकर यह कहा—हे मौद्गल्यायन, हे ब्राह्मण ! आर्य तूष्णी-भाव में प्रमाद मत करो । आर्य तूष्णी-भाव में चित्त को स्थिर करो, चित्त को एकाम करो, चित्त को लगा दो ।

आहुस ! तब, मैं द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करने लगा । यदि कोई ठीक में कहे, “गुरु से प्रेरित होकर श्रावक ने महा अभिज्ञा को प्राप्त किया” तो वह ऐसे मेरे ही विषय में कह सकता है ।

§ २. उपतिस्स सुत्त (२० २)

सारिपुत्र को शोक नहीं

श्रावस्ती ।

सारिपुत्र बोले—आहुस ! एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा—क्या लोक में ऐसा कुछ है, जिसको विपरिणत होते जान मुझे शोकादि उपपन्न हों ?

आहुस ! तब, मेरे मन में ऐसा हुआ—लोक में ऐसा कुछ नहीं है, जिसको विपरिणत होते जान मुझे शोकादि हों ।

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले—आहुस सारिपुत्र ! क्या बुद्ध को भी विपरिणत होते जान आपको शोकादि न होंगे ?

आहुस आनन्द ! बुद्ध को भी विपरिणत होते जान मुझे शोकादि न होंगे । किन्तु, मेरे मन में ऐसा होगा—ऐसे प्रतापी, महद्विक और महत्सुभाषी, बुद्ध अन्तर्धान मत होयें । यदि भगवान् चिरकाल

मिथुना ! तब बूढ़ा बाहर निकला । बिहार झपट मार उसे सहसा बियाक गया । बूढ़े ने उस बिकार की धँतड़ी-पथीली को काट दिया । उससे वह मृत्यु को प्राप्त हुआ या मृत्यु के समान कुछ का ।

मिथुनी ! जैसे ही कितने मिथु गाँव या कस्बे में मिछारन के किये पैठे हैं—शरीर बचन और चित्त से असंयत स्मृतिहीन इन्ग्रिबों के साथ ।

वह बहाँ किमी बपर्न स्त्री को देखता है । उससे उसके चित्त में अबरदस्त राग उठता है । उससे वह मृत्यु को प्राप्त होता है या मृत्यु के समान कुछ का ।

मिथुनी ! जो शिक्षा छोड़कर गृहस्थ बन जाता है उसे इन आर्यविषय में मृत्यु ही कहते हैं । मिथुनी ! जो मनका पंसा मिला हो जाता है वह मृत्यु के समान कुछ ही है ।

मिथुनी ! इसकिये तुम्हें पैसा सीखना चाहिये—शरीर, बचन और मन से रक्षित हो स्मृति पूर्ण इन्ग्रिबों से गाँव या कस्बे में मिछारन के किये पैठेगा ।

§ ११ पठम सिगाळ सुच (१९ ११)

अप्रमाद के साथ विहरना

भावस्ती ।

मिथुनी ! रात के भिनसारे तुमन सिबारों को रोते सुता है ?

हाँ मन्ते !

मिथुनी ! यह जर मृगाळ उल्लवजक कामक रोग से पीडित होता है । वह बहाँ बहाँ जाता है खपा होता है बैठता है या सोता है बहाँ बहाँ बपी टंठी हुआ चकती है ।

मिथुनी ! कोई शाक्यपुत्र (= मिथु) जैसे आत्ममात्र प्रतिष्ठा का प्राप्त करते हैं ।

मिथुनी ! इसकिये तुम्हें पैसा सीखना चाहिये—अप्रमाद होकर विहार करूँगा ।

§ १२ दुसिय सिगाळ सुच (१९ १०)

हलच होना

भावस्ती ।

*उच सिबारों में भी हलचल है किन्तु कुछ मिथु में नहीं है ।

मिथुनी ! इसकिये तुम्हें पैसा सीखना चाहिये—मैं हलचल बर्नगा । अपने प्रति किये पये कोष से भी उपकार को बहाँ चूँगा ।

औपम्य संयुक्त समाप्त

इस तरह, इन महात्माओं ने एक दूसरे के सुभाषित का अनुमोदन किया ।

§ ४. नव सुत्त (२० ४)

शिक्षितता से निर्वाण की प्राप्ति नहीं

श्रावस्ती ।

उस समय कोई नया भिक्षु भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने पर विहार में पैठकर अल्पोत्सुक सुपचाप बंधे रहता था । भिक्षुओं को चीवर बनाने में सहायता नहीं करता था ।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

‘ भन्ते ! ’ वह भिक्षुओं को चीवर बनाने में सहायता नहीं करता है ।

तब, भगवान् ने एक भिक्षु को आमन्त्रित किया—‘ हे भिक्षु ! जाकर उस भिक्षु को मेरी ओर से कहो, “आवुस ! बुद्ध आपको बुला रहे हैं ।” ’

‘ तब, वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुये उस भिक्षु से भगवान् बोले—‘ भिक्षु ! क्या तुम सच में सहायता नहीं करते हो ?

‘ भन्ते ! मैं भी अपना काम करता हूँ ।

तब, भगवान् ने उसके चित्त को अपने चित्त से जान भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—‘ भिक्षुओ ! तुम इस भिक्षु से मत रहो । यह भिक्षु इसी जन्म में सुख पूर्वक विहार करने वाले चार आभिव्यक्तिक प्यानों को अब जैसे चाहता है प्राप्त कर लेता है । यह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम-फल को जान, साक्षात् कर, और प्राप्त पर विहार करता है, जिसके लिये कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं ।

भगवान् यह बोले । यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

शिक्षितता करने से, अल्प प्राप्ति से,

यह निर्वाण नहीं प्राप्त होता, सभी दुःखों से छुड़ा देनेवाला ।

यह नवस्रवान भिक्षु, यह उत्तम पुरुष,

अन्तिम देह धारण करता है, मार को विककुल नीत कर ।

§ ५. सुजात सुत्त (२०. ५)

बुद्ध द्वारा सुजात की प्रशंसा

श्रावस्ती ।

तब, आयुष्मान् सुजात जहाँ भगवान् थे वहाँ आये ।

भगवान् ने आयुष्मान् सुजात को दूर ही से आते देखा । देखकर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—‘ भिक्षुओ ! दोनों तरह से कुलपुत्र शोभता है । जो यह अभिरूप = दर्शनीय = प्रासादिक = अत्यन्त सौन्दर्य से युक्त है, वह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम-फल को जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करता है, जिसके लिये कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं ।

‘ यह कह बुद्ध फिर भी बोले—

यह भिक्षु शोभता है, ऋजुभूत चित्त से,

सभी धन्धनों से अलग होकर छूट गया है,

तक ठहरें तो वह बहनों के हित और सुख के किये, संसार की मनुक्या के किये तथा देवता और मनुष्यों के अर्थ हित और सुख के किये होगा।

मन्मथ में आयुष्मान् सारियुत्र से 'मर्हकार, मर्मकार, और मानाशुभाप विरकार' से उठ गया था। इसीकिये बुद्ध को भी विपरिणत होते आम आयुष्मान् सारियुत्र को शोकादि नहीं होते।

५३ घट सुघ (२० ३)

अप्रभावकों की परस्पर स्तुति, आरक्ष-धीर्य

धायस्त्री ।

उस समय आयुष्मान् सारियुत्र और आयुष्मान् महामीरुष्वापन गम्भूह के वेलुपन फलम्ब-नियाप में एक ही बगह बिहार करते थे।

तब आयुष्मान् सारियुत्र सौंसे को प्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् महामीरुष्वापन थे वहाँ गये और कृपण शेम के प्रश्न पूछ कर एक और बैठ गये।

एक और बैठ आयुष्मान् सारियुत्र आयुष्मान् महामीरुष्वापन स बोले—आनुष मीरुष्वापन ! आपकी इन्द्रियों विप्रसन्न हैं; सुख-वर्ष सतेज और परिशुद्ध है। क्या आज आयुष्मान् महामीरुष्वापन ने पान्त बिहार से बिहार किया है ?

आनुष ! आज मैंने शोसारिक बिहार से बिहार किया है; और धार्मिक कथा भी हुई है।

किसके साथ धार्मिक कथा हुई ?

आनुष ! भगवान् के साथ।

आनुष ! भगवान् तो बहुत दूर प्रावस्ती में बिहार कर रहे हैं। क्या आप भगवान् के पास क्वि से गये थे या भगवान् ही आपके पास आये थे ?

आनुष ! मैं तो क्वि स मैं भगवान् के पास गया था और मैं भगवान् से पास आये थे। किन्तु जहाँ भगवान् हैं वहाँ तक मुझे दिव्य चक्षु और श्रोत्र उत्पन्न हुये। ईसे ही जहाँ मैं हूँ वहाँ तक भगवान् को दिव्य चक्षु और श्रोत्र उत्पन्न हुये।

आयुष्मान् महामीरुष्वापन की भगवान् के साथ क्या चर्चकथा हुई ?

आनुष ! मैंने भगवान् से यह कहा—मग्ने ! आरक्षधीर्य आरक्षधीर्य कहा जाता है; तो आरक्षधीर्य कैसे होता है ?

आनुष ! ऐसा कहने पर भगवान् हमसे बोले—मीरुष्वापन ! भिक्षु इस प्रकार आरक्षधीर्य का बिहार करता है—एकका महारक और हृष्टी ही भजे बच कार्य; सरिर में मांस और सीहित भी मत हो शून्य कार्य; किन्तु, पुरुष के उत्साह धीरे और पत्राम स जो पाया जा सकता है उस किना पात्र विभाम नहीं लूँगा। मात्रुष्वापन ! इसी तरह आरक्षधीर्य होता है।

आनुष ! भगवान् के साथ मीरी यही चर्चकथा हुई।

आनुष ! जमे चर्चकथा द्विमास्य के सामने चकार कर्कशों की एक डेर अरुणी है ईसे ही आयुष्मान् महामीरुष्वापन के सामने हमारी अवस्था है। आयुष्मान् महामीरुष्वापन वही क्विवातै महानुमावी हैं; यदि कोई ती करन भर भी उठर सकने है।

आनुष ! ईमे नरक के एक वर्य वर्य के सामने बमक का एक कथा कम अरुणा है ईसे ही इस आयुष्मान् सारियुत्र के सामने है।

भगवान् ने भी आयुष्मान् सारियुत्र की अनेक प्रकार से चर्चकथा की है—

मग्ने मैं सारियुत्र की तरह शीत में और उत्पन्न है

यह भिक्षु भी चर्चकथा है यही चर्चकथा है ॥

इस तरह, इन महाभागों ने एक दूसरे के सुभाषित का अनुमोदन किया ।

§ ४. नव सुत्त (२० ४)

शिक्षिलता से निर्वाण की प्राप्ति नहीं

श्रावस्ती ।

उस समय कोई नया भिक्षु भिक्षाटन से लोट भोजन कर लेने पर विहार में पैठकर अटपटासुक रुपचाप बँध रहा था । भिक्षुओं को चीवर धनाने में सहायता नहीं करता था ।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

‘ भन्ते !’ वह भिक्षुओं को चीवर धनाने में सहायता नहीं करता है ।

तब, भगवान् ने एक भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे भिक्षु ! जाकर उस भिक्षु को मेरी ओर से कहो, “आयुस ! बुद्ध आपको तुला रहे हैं ।”

‘ तब, वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुये उस भिक्षु से भगवान् बोले—भिक्षु ! क्या तुम मच में सहायता नहीं करते हो ?

भन्ते ! मैं भी अपना काम करता हूँ ।

तब, भगवान् ने उसके चित्त को अपने चित्त से जान भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! तुम इस भिक्षु से मत रहो । यह भिक्षु इसी जन्म में सुख पूर्वक विहार करने वाले चार आभिचैतसिक ध्यानों को जब जैसे चाहता है प्राप्त कर लेता है । यह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम-फल को जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करता है, जिसके लिये कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बेघर हो प्रयत्न हो जाते हैं ।

भगवान् यह बोले । यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

शिक्षिलता करने से, अटप घाफि से,

यह निर्वाण नहीं प्राप्त होता, सभी तु सों से छुड़ा वेनेवाला ।

यह नवजवान भिक्षु, यह उत्तम पुरुष,

अन्तिम वेह धारण करता है, मार को बिल्कुल जीत कर ।

§ ५. सुजात सुत्त (२०. ५)

बुद्ध द्वारा सुजात की प्रशंसा

श्रावस्ती ।

तब, आयुष्मान् सुजात जहाँ भगवान् थे वहाँ आये ।

भगवान् ने आयुष्मान् सुजात को दूर ही से आते देखा । देखकर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया — भिक्षुओ ! दोनों तरह से कुलपुत्र शोभता है । जो यह अभिरूप = दर्शनीय = प्रासादिक = अत्यन्त सौन्दर्य से युक्त है, वह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम-फल को जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करता है, जिसके लिये कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बेघर हो प्रयत्न हो जाते हैं ।

यह कह बुद्ध फिर भी बोले—

यह भिक्षु शोभता है, अलुभूत चित्त से,

सभी घन्धनों से अलग होकर छूट गया है,

अनुपादान के छिपे जिवाँव पा किया है
अन्तिम देह धारण करता है मार को विदग्ध करीतकर ॥

§ ६ महिय सुत (२० ६)

दारीर से नहीं ज्ञान से बढ़ा

भायस्ती ।

तब भायुष्मान् लकुष्टक महिय बहाँ भगवान् से बहाँ भाये ।

भगवान् से भायुष्मान् लकुष्टक महिय को दूर ही से जाते देखा । बहकर मिश्रुओं को आमन्त्रित किया—मिश्रुओ ! इस छोटे कुक्ष्य मन मारी हुये मिश्रु को जाते देखते हो ?
हाँ मन्ते !

मिश्रुओ ! वह मिश्रु बड़ी अद्विबाका बड़ा तबखरी है । किम समापत्तियों को इस मिश्रु ने पा किया है वे सुखम नहीं हैं । वह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के इस अन्तिम फल को ।

पह कहकर पुत्र फिर भी बोले—

इस लौक धीर मयूर हामी धीर कितकबरे युग
सभी सिंह से बरते हैं धरीर में कोई दुम्बता नहीं ॥
इसी मन्मर मनुष्यों में कम उन्न का भी बधि प्रशावान् हो
तो वह बीमे ही महान् होता है शरीर से कोई बाकक नहीं होता ॥

§ ७ विसाख सुघ (२० ७)

धर्म का उपदेस कर

धैमा मीमे गुना ।

एक समय भगवान् सैदाखी में महावन की कूटागारप्राला में बिहार करते थे ।

उस समय भायुष्मान् विसाख पाण्ड्यालपुत्र ने उपजानवाक्य में मिश्रुओं को धर्मोपदेश कर शिला दिया बत्ता दिया धर्म बचनों से उचित रीति से बिना किसी बकशाता से परमार्थ को बचात हुये विषय पर ही कहते हुये ।

तब भगवान् साँस को प्यान स उठ ल्यों वह उपरधानप्राका भी बहाँ राब शीर बिठे जास्तन पर बँद गये ।

बैठकर भगवान् ने मिश्रुओं को आमन्त्रित किया—मिश्रुओ ! उपरधानप्राका में मिश्रुओं को कौन धर्मोपदेश कर रहा था ?

भला ! भायुष्मान् विसाख वात्राकपुत्र ॥

तब भगवान् ने भायुष्मान् विसाख को आमन्त्रित किया—ठीक व विसाख ! तुमने क्या उपदेश दिया कि मिश्रुओं का धर्मोपदेश कर रहे थे ।

“ वह कहकर पुत्र फिर भी बोले—

नहीं कहने से भी लोग ज्ञान कैसे हैं मूर्खों में मिल हुये पचिदत का
उमके कहने पर जान लेते हैं अमृत-वन् का उपदेश करते हुये ॥
धर्म को बड़े प्रकटितन करे, अर्थियों के प्रकृत को धारण करे
सुजापित ही अर्थियों का प्रकृत है धर्म ही उनका प्रकृत है ॥

§ ८. नन्द सुत्त (२०. ८)

नन्द को उपदेश

श्रावस्ती ।

तब, भगवान् के मांसरे भाई आयुष्मान् नन्द खाँट और सिजिल किये चीवर को पहन, आँख में अञ्जन लगा, सुन्दर पात्र लिये जाहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् नन्द से भगवान् बोले—नन्द ! श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुये तुम जैसे कुलपुत्र के लिये यह उचित नहीं कि ऐसे सीटे और सिजिल किये चीवर को पहनो, आँख में अञ्जन लगाओ, ओर सुन्दर पात्र धारण करो ।

नन्द ! तुम्हें तो उचित वा कि आरण्य में रहते, पिण्डपातिक और पासुकुलिक हो कामों में अनपेक्षित रहते ।

“यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले.—

कत्र मैं नन्द को देखूँगा,
आरण्य में रहते, पासुकुलिक,
भिक्षा से जीवन निवाहते,
कामों में अनपेक्षित ।

तब, उसके बाद आयुष्मान् नन्द आरण्य में रहने लगे, पिण्डपातिक और पासुकुलिक हो गये कामों में अनपेक्षित होकर विहार करने लगे ।

§ ९. तिस्स सुत्त (२०. ९)

नहीं विगड़ना उत्तम

श्रावस्ती ।

तब भगवान् के फुसरे भाई आयुष्मान् तिस्स जाहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये—दु खी, उदास, आँसू टघराते ।

तब, भगवान् आयुष्मान् तिस्स से बोले—तिस्स ! तुम एक ओर बैठे दु खी, उदास और आँसू क्यों टघरा रहे हो ?

भन्ते ! भिक्षुओं ने आपस में मिलकर मेरी नकल की है, और मुझे घनाया है ।

तिस्स ! तुम तो भले ही दूसरों को कहना चाहो, किन्तु उनकी सह नहीं सकते ।

तिस्स ! श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुये तुम जैसे कुलपुत्र के लिये यह उचित नहीं कि अपने तो भले दूसरों को कहना चाहो, किन्तु उनकी सह नहीं सको । यदि तुम दूसरों को कहते हो तो उनकी तुम्हें सहना भी चाहिये ।

यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले—

विगड़ते क्यों हो, भव विगड़ी,
तिस्स ! तुम्हारा नहीं विगड़ना ही अच्छा है,
क्रोध, मान, और माया को दवाने ही के लिये,
तिस्स ! तुम ब्रह्मचर्य का आचरण करते हो ॥

§ १० धरनाम सुक्त (२० १०)

अकंछा रहने वाला कौन ?

एक समय भगवान् राजसूद में ।

उस समय स्वविर धाम का कीर्त्त मिथु अकेला रहता था और अकंछा रहने का प्रशंसक था । वह अकंछा ही गाँव में मिश्रादन के किये पैठ्या था; अकेला ही कौट्या था अकंछा ही एकाग्र में बैठ्या था और अकंछा ही संक्रमण करता था ।

तब कुछ मिथु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ कर उस मिथुओं ने भगवान् को कहा—भन्ते ! यह मिथु अकंछा ही संक्रमण करता है ।

तब भगवान् ने एक मिथु को आश्चर्यित किया ।

एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् स्वविर को भगवान् बोले—क्या सच है कि तुम अकंछा ही रहते और उसकी प्रशंसा करते हो ?

हाँ भन्ते !

स्वविर ! तुम अकंछा ही कर्म रहते और उसकी प्रशंसा किया करते हो ?

भन्ते ! मैं अकंछा ही गाँव में मिश्रादन के किये पैठ्या हूँ अकंछा ही संक्रमण करता हूँ । भन्ते इस तरह मैं अकंछा रहता हूँ और अकंछे रहने की प्रशंसा करता हूँ ।

स्वविर ! इसे मैं अकंछा रहना नहीं बताता । कर्णार्थ मैं अकंछे कैदो रहा जाता है उसे तुमने अच्छी तरह मन लगायी मैं कहता हूँ ।

स्वविर ! जो पीत गया वह प्रहीण हुआ; जो अभी अनागत है उसकी बात छोड़ो; वर्तमान में जो अकंछा-शाह है उसे बलि को । स्वविर ! ऐसे ही कर्णार्थ मैं अकंछा रहा जाता है ।

-- वह कह कर कुछ फिर भी बोले:—

सर्वाभिन् सर्वाभिन् परिहृत

समी धर्मो में अनुपकित

सर्वथापी मृष्य के क्षीय हो जाने से विमुक्त;

ऐसे ही पर को मैं अकंछा रहने वाला कहता हूँ ॥

§ ११ कपिन सुक्त (२० ११)

आयुष्मान् कपिन के गुणों की प्रशंसा

भाकसी ।

उस आयुष्मान् महाकपिन जहाँ भगवान् थे वहाँ आये ।

भगवान् ने आयुष्मान् कपिन को दूर ही से जाते देखा । देख कर मिथुओं को आश्चर्यित किया—मिथुओं ! तुम इस गोरों पतके लँचे बाक बाके मिथु को जाते देखते हो ?

हाँ भन्ते !

मिथुओं ! वह मिथु नहीं कपिबन्धु बल्कि अनुप्राय काका है । जिन समावर्तियों को इन्होंने पा किया है वे सुकर्म नहीं हैं । इससे महाकपिन के उद्य अन्तिम फलको ।

वह कह कर भगवान् फिर भी बोले:—

अनुष्ठी में क्षत्रिय जेह है जो पीत का कवाक करने बाढ है;

विद्याचरण से सम्पन्न, देव-अनुष्यों में श्रेष्ठ हैं ॥
 दिनमें सूर्य तपता है, रात में चाँद शोभता है,
 सन्नद्ध हो क्षत्रिय तपता है, ब्राह्मण ध्यान से तपता है,
 और, सदा ही दिनरात, अपने तेज से बृद्ध तपते हैं ॥

§ १२. सहाय सुत्त (२० १२)

दो क्रुद्धिमान भिक्षु

श्रावस्ती ।

तब, आयुष्मान् महाकपिन के दो अनुचर मित्र भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये ।

भगवान् ने उन दोनों को दूर ही से आते देखा । टेर कर भिक्षुओं को भ्रामन्त्रित किया —

भिक्षुओ ! इन दोनों को आते देखते हो ?

हाँ भन्ते !

ये दोनों भिक्षु बड़ी क्रुद्धिवाले और बड़े अनुमान वाले हैं . ।

यह कह कर भगवान् फिर भी बोले :—

ये भिक्षु आपस में मित्र हैं, चिरकाल से साथी हैं,

सद्धर्म को उनसे पा लिया है, कपिन के द्वारा,

बुद्ध के धर्म में सिखाये गये हैं, जो भार्य प्रवेदित है,

अन्तिम देह को धारण करते हैं, मार को बिसङ्कल जीत कर ॥

भिक्षु-सयुत्त समाप्त ।

निदान वर्ग समाप्त

तीसरा खण्ड

खन्ध वर्ग

पहला परिच्छेद

२१. खन्ध-संयुक्त

मूल पण्णासक

प्रहला भाग

नकुलपिता वर्ग

§ १. नकुलपिता सुक्त (२१. १ १ १)

चिन्तन का आतुर न होना

ऐसा मैंने सुना ।

एक मगध भगवान् भर्ग (देश) में सुसुमारगिरि के भेस कला-वन मृगदाव में विहार करते थे ।

तब, गृहपति नकुलपिता जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ गृहपति नकुलपिता भगवान् से बोला—भन्ते ! मैं जीर्ण = बुद्ध = महत्क = पुरनिया = आयु-प्राप्त = हारें शरीर वाला हूँ, न जाने कब मर जाऊँ । भन्ते ! मुझे भगवान् और मनो-भावनीय भिक्षुओं के दर्शन प्राप्त करने का वरत्पर अवकाश नहीं मिलता है । भन्ते ! भगवान् मुझे उप-देश दें, जो चिरकाल तक मेरे हित और सुख के लिये हो ।

गृहपति, सच है । तुम्हारा शरीर हार गया है, तुम्हारी आयु पुर गई है, तुम जीर्ण हो गये हो । गृहपति ! जो ऐसे शरीर की धारण करते मुहूर्त भर भी आरोग्य की धारणा करता है वह मूर्ख छोड़ कर और क्या है ? गृहपति ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मेरा शरीर भले ही आतुर हो जाय, किन्तु चित्त आतुर होने नहीं पायगा ।

तब, गृहपति नकुलपिता भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, आसन से उठ, भगवान् का अभिवादन और प्रदक्षिणा कर, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गया, और उनका अभि-वादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे गृहपति नकुलपिता से आयुष्मान् सारिपुत्र बोले—गृहपति ! तुम्हारी इन्द्रियाँ प्रसन्न दीव्य रही हैं, सुखवर्ण सतेज और परिशुद्ध हैं । क्या तुम्हें आज भगवान् से धर्मकथा सुनने को मिली है ?

भला और क्या भन्ते ! अभी ही मैं भगवान् के धर्मोपदेशरूपी अमृत से अभिषिक्त किया गया हूँ ।... भगवान् ने कहा—गृहपति ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मेरा शरीर भले ही आतुर हो जाय, किन्तु चित्त आतुर होने नहीं पायगा ।

गृहपति ! इसके आगे की बात भगवान् से पूछने को तुम्हें नहीं सूझी ?—भन्ते ! कैसे शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर होता है ? भन्ते ! कैसे शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर नहीं होता है ? भन्ते ! मैं यही पूर से भी इस कहे गये के अर्थ को समझने के लिये आयुष्मान् सारिपुत्र के पास आऊँ । अच्छा हो, आयुष्मान् सारिपुत्र ही इनका अर्थ बताते ।

गृहपति ! तो सुनो अच्छी तरह मन्त्र जगाबी में बहता हूँ।

मन्त्रे ! बहुत अच्छा" कह गृहपति नकुम्पिता ने आयुष्मान् सारिपुत्र को उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्र बोले—गृहपति ! कैसे शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त भी आतुर हो जाता है ? गृहपति ! कोई पृथक्जन अविद्वान्, आर्षों को देखने बाधा आर्षधर्म को नहीं बनाने बाध्य, आर्ष-धर्म में विनीत नहीं हुआ सत्युत्त्यों को न वैद्यनैवाका सत्युत्त्यों के धर्म को नहीं जानने-बाधा सत्युत्त्यों के धर्म में विनीत नहीं हुआ रूप को अपनापन की दृष्टि से देखता है। या रूपवान् को अपना, या अपने में रूप को; या रूप में अपने को देखता है। मैं रूप हूँ; मेरा रूप है—ऐसा मन्त्र में जाता है। वह जिस रूप को अपने में और अपना समझता है वह विपरिणत हो जाता है बद्ध जाता है। उस रूप के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उसे शोक, रोना पीटना दुःख, दीर्घमरण और उपायास होते हैं।

बन्धा को अपनापन की दृष्टि से देखता है।

संज्ञार्थी ; सरकारों का ; विज्ञान को अपनापन की दृष्टि से देखता है; या विज्ञान को अपना; या अपने में विज्ञान को; या विज्ञान में अपने को देखता है। मैं विज्ञान हूँ; मेरा विज्ञान है—ऐसा मन्त्र में जाता है। वह जिस विज्ञान को अपने में और अपना समझता है वह विपरिणत हो जाता है अन्यथा हो जाता है। उस विज्ञान के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उसे शोक-रोना-पीटना दुःख दीर्घमरण और उपायास होते हैं।

गृहपति ! इसी तरह शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त भी आतुर हो जाता है।

गृहपति ! कैसे शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त आतुर नहीं होता है ?

गृहपति ! कोई विद्वान् आर्ष-भावक, आर्षों को देखने बाधा, आर्षों के धर्म का बनाने बाधा आर्षों के धर्म में सुविनीत सत्युत्त्यों के धर्म में सुविनीत होता है। वह रूप को अपनापन की दृष्टि से नहीं देखता है; या रूप को अपना; या अपने में रूप को; या रूप में अपने को नहीं देखता है। मैं रूप हूँ; मेरा रूप है—ऐसा मन्त्र में नहीं जाता है। तब उस रूप के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उस शोकदि नहीं होते।

वेदना को ; संज्ञा को ; सत्युत्त्यों को ; विज्ञान को अपनापन की दृष्टि से नहीं देखता है। तब उस विज्ञान के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उसे शोकदि नहीं होते।

गृहपति ! इसी तरह शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त आतुर नहीं होता है।

आयुष्मान् सारिपुत्र कह बोले : गृहपति नकुम्पिता ने समुद्र होकर आयुष्मान् सारिपुत्र के कह का अभिमतम्त्र किया।

४ २ देवदह सुच (२१ १ १ २)

गुह की शिक्षा छत्र-पाग का वसन्त

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् शारपों के देश में द्युवदह नामक शारपों के करने में विहार करते थे।

तब कुछ पश्चिम की ओर जाने वाले मिथुन वहाँ भगवान् के वहाँ जाये और भगवान् के अभि मतम्त्र कर दूध और दूध पाने।

एक बार दैत ने मिथु भगवान् के बाधा—मन्त्रे ! इस पश्चिम देश में क्या चाहते हैं पश्चिम देश में विद्याय करव की हमारी दृष्टा है।

१ राजाओं के मतम्त्र के पाठ यथा शुभा नगर द्वापर' कहा ज्यथा या और आतुरता वा नियम भी इसी नाम में प्रकृत या—अद्वय।

भिक्षुओ ! सारिपुत्र से तुमने छुट्टी ले ली है ?

नहीं भन्ते ! सारिपुत्र से हमने छुट्टी नहीं ली है ।

भिक्षुओ ! सारिपुत्र से छुट्टी ले लो । सारिपुत्र भिक्षुओं में पण्डित हैं, सप्तस्यचारियों का अनुग्राहक हैं ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह, उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान् के पास ही किसी पल्लगला नामक गुम्ब के नीचे बैठे थे ।

तब, वे भिक्षु भगवान् के भाषित का अनुमोदन और अभिनन्दन कर, भासन से उठ भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये । जाकर, आयुष्मान् सारिपुत्र से कृपाक्षेम के प्रश्न पूछ एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले:—भन्ते ! हम पश्चिम देश में जाना चाहते हैं, पश्चिम देश में निवास करने की हमारी इच्छा है । हमने वृद्ध से छुट्टी ले ली है ।

आहुस ! नाना देश में घूमने वाले भिक्षु को तरह तरह के प्रश्न करने वाले मिलते हैं—क्षत्रिय पण्डित भी, ब्राह्मण पण्डित भी, गृहस्थ पण्डित भी, धर्मण पण्डित भी । आहुस ! पण्डित मनुष्य पूछेंगे, “आयुष्मानों के गुरु की क्या शिक्षा है, क्या उपदेश है ?” आयुष्मानों ने क्या धर्म का अच्छी तरह अभ्यास कर लिया है, अच्छी तरह ग्रहण कर लिया है, अच्छी तरह मनन कर लिया है, अच्छी तरह धारण कर लिया है—

जिससे आप भगवान् के धर्म को ठीक-ठीक कह सकें, कुछ उलटा-पुलटा न कर दें, धर्मानुक्ल ही बोलें, वातचीत करने में किसी सदीप स्थान पर नहीं पहुँच जायें ?

आहुस ! इस कहे गये का अर्थ जानने के लिये हम दूर से भी आयुष्मान् सारिपुत्र के पास आवें । हमका अर्थ आप आयुष्मान् सारिपुत्र ही कहते तो अच्छा था ।

आहुस ! तो सुनें, अच्छी तरह मन लगावें, मैं कहता हूँ ।

“आहुस ! बहुत अच्छा” कह, भिक्षुओं ने आयुष्मान् सारिपुत्र को उत्तर दिया ।

आयुष्मान् सारिपुत्र बोले—आहुस ! पण्डित मनुष्य आप से पूछेंगे, “आयुष्मानों के गुरु की क्या शिक्षा है, क्या उपदेश है ?” आहुस ! ऐसा पूछे जाने पर आप यों उत्तर देंगे—छन्दराग को दमन करना हमारे गुरु की शिक्षा है ।

आहुस ! ऐसा उत्तर देने पर भी, ऐसे पण्डित लोग हैं जो आगे का प्रश्न पूछेंगे, “आयुष्मानों के गुरु छन्दराग को कैसे दमन करने का उपदेश देते हैं ?” आहुस ! ऐसा पूछे जाने पर आप यों उत्तर देंगे—रूप में छन्दराग का दमन करना हमारे गुरु की शिक्षा है, वेदना में , सज्ञा में , सरकारों में , विज्ञान में ।

आहुस ! ऐसा उत्तर देने पर भी ऐसे पण्डित लोग हैं जो आगे का प्रश्न पूछेंगे, “आयुष्मानों के गुरु रूप में क्या दोष देखकर उसमें छन्दराग को दमन करने का उपदेश देते हैं ?” वेदना , सज्ञा , सरकार , विज्ञान । आहुस ! ऐसा पूछे जाने पर आप यों उत्तर देंगे—जिसको रूप में मन लगा हुआ है, छन्द लगा हुआ है, प्रेम लगा हुआ है, प्यास लगी हुई है, लगन लगी हुई है, वृणा लगी हुई है, बसे रूप के विपरिणत और अर्न्थथा हो जाने से शोकादि व्यपन्न होते हैं । वेदना , सज्ञा , सरकार , विज्ञान । हमारे गुरु रूप में इसी दोष को देखकर उसमें छन्दराग को दमन करने

२ वृक्षों का मण्डप । यह मण्डप पानी वाले प्रदेश में था । उसके नीचे ईंटों का एक बगला-सा बना दिया गया था, जो बटा ही शीतल था—अट्टकथा ।

का उपदेश देते हैं। वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान में छन्दराग को हमन करने का उपदेश देते हैं।

आहुस ! ऐसा कष्टर दूधे पर भी ऐसे परिबल हैं जो ध्याने का प्रत्य सूखेंगे "आहुस्यारो के गुण ने क्या धाम देकर रूप में छन्द-राग को हमन करने का उपदेश दिया है ? वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ?" आहुस ! ऐसा बूछे धामे पर ध्याप बाँ कष्टर देंगे—रूप में जो विगतराग विगतछन्द विगतधर्म विगतपिपास विगतपरिबल और विगततुम्ह है उसे रूप के विपरिवल और अभ्याप हो धामे से शोकादि नहीं होते। वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। इसी काम को देख-कर हमारे गुण ने रूप में वेदना में संज्ञा में संस्कारों में विज्ञान में छन्दराग को हमन करने का उपदेश दिया है।

आहुस ! अकुसल धर्मों के साथ विहार करनेवाका हस्ती जन्म में यदि सुख से विहार करता उसे विधात परिकाह वा उपाधास नहीं होते; शरीर छूट कर मरने के बाद उसकी गति लष्पी होती; तो भगवान् अकुसल धर्मों का प्रहाय नहीं बताते।

आहुस ! क्योंकि अकुसल धर्मों के साथ विहार करने से हस्ती जन्म में सुख से विहार करता है उसे विधात परिकाह और उपाधास होते हैं तथा शरीर छूट कर मरने के बाद सुखति को प्राप्त होता है हस्ती से भगवान् ने अकुसल धर्मों का प्रहाय बताया है।

आहुस ! कुसल धर्मों के साथ विहार करने से यदि हस्ती जन्म में सुख से विहार करता तो भगवान् कुसल धर्मों का सख्य करना नहीं बताते।

आहुस ! क्योंकि कुसल धर्मों के साथ विहार करने से हस्ती जन्म में सुख से विहार करता है उसे विधातदि नहीं होते तथा शरीर छूट कर मरने के बाद उसकी गति लष्पी होती है हस्ती से भगवान् ने कुसल-धर्मों का सख्य करना बताया है।

आहुस्यार् सारियुध पर बोके। संयुध होकर कम मिश्रणों ने आहुस्यार् सारियुध के बने का अभिबन्धन किया।

§ ३ पठम हासिदिकानि सुत्त (२१ १ १ ३)

मागन्धिय-प्रदत्त की व्याख्या

ऐसा मीने सुना।

एक समय अयुष्मान् महाकारयापन अचरुती में सुररघर के ऊँचे पक्ष पर विहार करते थे। तब, गृहपति हासिदिकानि वहाँ आयुष्मान् महाकाल्याचन से वहाँ जाया और उनका अभिवाह्य कर एक और बैठ गया। एक और बैठ, गृहपति हासिदिकानि आयुष्मान् महाकाल्याचन से बोला-धन्ते ! भगवान् ने अदकवर्गिक मागन्धिय प्रदत्त में कहा है—

वर को योग्य देकर दूरमेवाका

सुनि गाँव में कगाव-वस्थाप न करते हुए

धर्मों से रिक्त वहाँ अयुष्मान् न छोड़

किन्ही मनुष्य से कुछ संघट नहीं कराया है ॥

धन्ते ! भगवान् ने जो यह संक्षेप से कहा है उसका विस्तार-पूर्वक कैरी जर्ब समझना चाहिये।

गृहपति ! कन्यायु विज्ञान का वर है। कन्यायु के रूप में बँबा हुआ विज्ञान वर में रहनेवाका कहा जाता है। गृहपति ! वेदवाचायु विज्ञान का वर है। वेदवाचायु के राग में बँबा हुआ विज्ञान वर में रहने वाका कहा जाता है। गृहपति ! संज्ञायायु विज्ञान का वर है। संज्ञायायु के राग में बँबा हुआ

विज्ञान घर में रहने वाला कहा जाता है। गृहपति ! संस्कारधातु विज्ञान का घर है। संस्कारधातु के राग में घँघा हुआ विज्ञान घर में रहने वाला कहा जाता है।

गृहपति ! इसी तरह कोई घर में रहने वाला कहा जाता है।

गृहपति ! कोई घेघर कैसे होता है ?

गृहपति ! जो रूपधातु के प्रति छन्द = राग = नन्दि = वृष्णा = उपादान तथा चित्त के अधिष्ठान, अभिनिवेश और अनुशय है, सभी बुद्ध में प्रहीण = उच्छिन्नमूल = शिर कटे तालवृक्ष के ऐसा = मिटे = भविष्य में कभी उठ न सकने वाले हुये रहते हैं। इसीलिये, बुद्ध घेघर कहे जाते हैं।

गृहपति ! जो वेदनाधातु के प्रति***, संज्ञाधातु के प्रति***, संस्कारधातु के प्रति***। इसी लिये बुद्ध घेघर कहे जाते हैं।

गृहपति ! ऐसे ही कोई घेघर होता है।

गृहपति ! कैसे कोई निकेतसारी होता है ?

गृहपति ! जो रूप निमित्त के निकेत में फँसकर बँध गया है वह निकेतसारी कहा जाता है। जो शब्दनिमित्त **, गन्धनिमित्त ***; रसनिमित्त *, स्पर्शननिमित्त **, धर्मनिमित्त *।

गृहपति ! कैसे कोई अनिकेतमारी होता है ?

गृहपति ! जो रूप निमित्त के निकेत में फँसकर बँध जाता है, वह बुद्ध में प्रहीण = उच्छिन्नमूल = शिर कटे तालवृक्ष के ऐसा = मिटे = भविष्य में कभी उठ न सकने वाले हुये रहते हैं। इसीलिये, बुद्ध अनिकेतसारी कहे जाते हैं। शब्द*, गन्ध**, रस***, स्पर्श*, धर्म*।

गृहपति ! गाँव में लगाव-बध्नाव करने वाला कैसे होता है ?

गृहपति ! कोई (भिक्षु) गृहस्थों से मसृष्ट होकर विहार करता है, उनके आनन्द में आनन्द मनाता है, उनके शोक में शोकित होता है, उनके सुख-दुःख में सुखी-दुःखी होता है, उनके काम-काज आ पढ़ने पर अपने भी लुट जाता है। गृहपति ! इसी तरह, गाँव में लगाव-बध्नाव करने वाला होता है।

गृहपति ! कैसे गाँव में लगाव-बध्नाव करने वाला नहीं होता है ?

गृहपति ! कोई (भिक्षु) गृहस्थों से असंलुष्ट होकर विहार करता है, उनके आनन्द में आनन्द नहीं मनाता, उनके शोक में शोकित नहीं होता, उनके सुख-दुःख में सुखी-दुःखी नहीं होता, उनके काम-काज आ पढ़ने पर अपने भी लुट नहीं जाता है। गृहपति ! इसी तरह, गाँव में लगाव-बध्नाव करने वाला नहीं होता है।

गृहपति ! कैसे कोई कामों से अरिक्त होता है ?

गृहपति ! कोई कामों में अविगतराग होता है, अविगतछन्द = अविगतप्रेम = अविगतपिपास = अविगत-परिलाह = अविगतवृष्ण होता है। गृहपति ! इसी तरह, कोई कामों से अरिक्त होता है।

गृहपति ! कैसे कोई कामों से रिक्त होता है ?

गृहपति ! कोई कामों में विगतराग होता है, विगतछन्द = विगतप्रेम = विगतपिपास = विगतपरिलाह = विगतवृष्ण होता है। गृहपति ! इसी तरह कोई कामों से रिक्त होता है।

गृहपति ! कैसे कोई कहीं अपनापन जोड़ता है ?

गृहपति ! किसी के मन में ऐसा होता है—अनागतकाल में मैं इस रूप का होऊँ, इस वेदना * विज्ञान का होऊँ। गृहपति ! इसी तरह कोई अपनापन जोड़ता है।

गृहपति ! कैसे कोई कहीं अपनापन नहीं जोड़ता है ?

गृहपति ! किसी के मन में ऐसा नहीं होता है—अनागतकाल में मैं इस रूप का होऊँ, इस वेदना** विज्ञान का होऊँ। गृहपति ! इसी तरह, कोई अपनापन नहीं जोड़ता है।

गृहपति ! कैसे कोई किसी मनुष्य से शश्ट करता है ?

गृहपति ! कोई इस प्रकार कहता है—तुम इस धर्मविनय को नहीं जानते हो मैं इस धर्मविनय को जानता हूँ तुम इस धर्मविनय को बुरा जानोगे ! तुम भिष्मा मार्ग पर भाग्य हो मैं सुमार्गपर भाग्य हूँ । जो पहले कहना चाहिये या उसे पीछे कहे, जो पीछे कहना चाहिये या उसे पहले ही कह दिया । मेरा कहना विपयानुसूक्त है तुम्हारा कहना तो विपयान्तर हो गया । जो तुमने इतना कहा सभी उबड़ गया । तुम्हारे बिन्दु लक्ष्य वे दिये गये हैं, जब छूटने की कोशिश करो । तुम तो पकड़ा गये यदि ताकत है तो निकलो । गृहपति ! इसी तरह कोई किसी मनुष्य से संशय करता है ।

गृहपति ! कैसे कोई किसी मनुष्य से संशय नहीं करता है ।

गृहपति ! कोई इस प्रकार नहीं कहता है—तुम इस धर्मविनय को नहीं जानते हो मैं इस धर्म विनय का जानता हूँ । गृहपति ! इसी तरह कोई किसी मनुष्य से संशय नहीं करता है ।

गृहपति ! यही भगवान् ने अष्टकर्मिक मागन्धिय प्रश्न में कहा है—

वर को छोड़ बेघर भूमने बाका

मुनि गाँव में अगाध-बझाव न करते हुये

कामों से रिक्त, कहीं अपनापन न छोड़

किसी मनुष्य से कुछ संशय नहीं करता है ।

गृहपति ! भगवान् ने जो यह संशय से कहा है उसका विस्तारपूर्वक एसे ही अर्थ समझना चाहिये ।

§ ४ द्वितीय हासिदिकानि सुक्त (२१ १ १ ४)

राज प्रश्न की व्याख्या

वेग मने मुना ।

एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन अश्वत्थी में सुररथर के कबे पक्ष पर विहार करते थे ।

एक " एक भार बट गृहपति हासिदिकानि आयुष्मान् महाकात्यायन से बोला—अग्ने ! भगवान् ने यह राज प्रश्न में कहा है—

'जो धर्म का साक्षात् लक्ष्य क क्षय से विमुक्त हो गये हैं

उन्हींमें अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है उन्हींमें पास—

योग-श्रेय का दिया है न ही सर्वत्र-ब्रह्मचारी हैं

उन्हींमें उच्चतम शान को पा लिया है तथा देवताओं धीर

मनुष्यों में वे ही श्रेष्ठ हैं ।

अग्ने ! भगवान् के इस संशय में बड़े गये का विस्तारपूर्वक अर्थ कमे समझना चाहिये ।

गृहपति ! स्वप्नानु के प्रति जो एतद्=राग=भयान् स्तुत्या=लुप्ता=व्यपादान तथा वित्त के अधिष्ठान अभिनिवेश और अनुभाव हैं उनके अन्तः=विराग=अतिरोध=आगा से वित्त विमुक्त कहा जाता है ।

गृहपति ! वेदना आर्तुं प्रति— । मंया धानु । मन्कार-व्यातु । विज्ञान धानु ।

गृहपति ! बड़ी भगवान् ने राज प्रश्न में कहा है जो धर्म का साक्षात् लक्ष्य क क्षयसे ।^{१०}

गृहपति ! भगवान् के इस संशय में बड़े गये का विस्तारपूर्वक अर्थ कमे ही समझना चाहिये ।

§ ५ समाधि सुक्त (२१ १ १ ५)

समाधि का अध्याय

वेग मने मुना ।

मिथुनी ! समाधि का अध्याय करो । मिथुना ! समाधि हाकर भित्तु बचार्थ को ज्ञान वेग

है। किसके यथार्थ को जान लेता है ? रूप से उगने और दूबने से। वेदना के उगने और दूबने के। सजा के। सस्कारों के...। विज्ञान के।

भिक्षुओं ! रूप का उगना क्या है ? वेदना... ; सजा... , सस्कार... , विज्ञान का उगना क्या है ?

भिक्षुओं ! (कोटि) आनन्द मनाता है, आनन्द के शब्द कहता है, उसमें दूब जाता है। किसमें आनन्द मनाता है ?

रूप में आनन्द मनाता है, आनन्द के शब्द कहता है, उसमें दूब जाता है। इसमें वह रूप में आनन्द हो जाता है। रूप में तो यह आनन्द होता है यही उपादान है। उस उपादान के प्रत्यय से भव होता है। भव के प्रत्यय से जाति होती है। जाति के प्रत्यय से जरा, मरण... होते हैं। इस तरह सारा दुःख समूह उठ खड़ा होता है।

वेदना से... ; सजा से... , सस्कारों से... , विज्ञान में आनन्द मनाता है। इस तरह सारा दुःख समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओं ! रूप, वेदना, सजा, सस्कार, विज्ञान यही उगना है।

भिक्षुओं ! रूप, वेदना, सजा, सस्कार, विज्ञान का दूब जाना क्या है ?

भिक्षुओं ! (कोटि) न तो आनन्द मनाता है, न आनन्द के शब्द कहता है, और न उसमें दूब जाता है। किससे न तो आनन्द मनाता है ?

रूप से न तो आनन्द मनाता है, न आनन्द के शब्द कहता है, और न उसमें दूब जाता है। इससे रूप में, उसकी जो आसक्ति है वह निरुद्ध हो जाती है। आसक्ति के निरुद्ध हो जाने से उपादान नहीं होता। उपादान के निरुद्ध हो जाने से भव नहीं होता। इस तरह, सारा दुःख समूह रुक जाता है।

वेदना से... , सजा से... , सस्कारों से... , विज्ञान में... इस तरह, सारा दुःख समूह रुक जाता है।

भिक्षुओं ! यही रूप का दूब जाना है, वेदना का दूब जाना है, सजा का दूब जाना है, सस्कारों का दूब जाना है, विज्ञान का दूब जाना है।

§ ६. पटिसञ्चान सुत्त (२१ १ १. ६)

ध्यान का अभ्यास

धावस्ती ।

भिक्षुओं ! ध्यान के अभ्यास में लग जाओ। भिक्षुओं ! ध्यानस्थ हो भिक्षु यथार्थ को जान लेता है। किसके यथार्थ को जान लेता है ?

रूपके उगने और दूबने के यथार्थ को। वेदना... , सजा... , सस्कार... , विज्ञान... ।

[ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ ७. पठम उपादान परितस्सना सुत्त (२१ १ १. ७)

उपादान और परितस्सना

धावस्ती... ।

भिक्षुओं ! उपादान और परितस्सना के विषय में उपदेश करूँगा। अनुपादान और अपरितस्सना के विषय में उपदेश करूँगा। उल्टे सुनो, अच्छी तरह मनमें लाओ, मैं कहता हूँ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कह भिक्षुओं ने भगवान को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—मिथुनो ! उपादान और परितस्सना कैसे होती है ?

मिथुनो ! कोई अविद्वान् पृथक्पृथक् रूप को अपना समझता है, अपने को रूपवाक्य समझता है, अपने में रूप या कर्म में अपने को समझता है । तब वह रूप विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाता है । रूप के विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाने से रूपविपरिणामानुवर्ती विज्ञान होता है । उसे रूपविपरिणामानुपरिवर्तका परितस्सना के होने से चित्त उसमें बस जाता है । चित्त के बस जाने से उस उपास हुआ, अपनेका और परितस्सना होती है ।

मिथुनो ! वेदना को अपना समझता है । संज्ञा को अपना समझता है । मत्कारों को अपना समझता है । विज्ञान को अपना समझता है ।

मिथुनो ! इसी तरह उपादान और परितस्सना होती है ।

मिथुनो ! अनुपादान और अपरितस्सना कैसे होती है ?

मिथुनो ! कोई विद्वान् पार्थक्यरूप रूपको अपना नहीं समझता है, अपने को रूपवाक्य नहीं समझता है, अपने में कर्म या कर्म में अपने को नहीं समझता है । तब, वह रूप विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाता है । रूप के विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाने से रूपविपरिणामानुवर्ती विज्ञान नहीं होता है । रूपविपरिणामानुपरिवर्तका कर्म की उत्पत्ति से उसका चित्त परितस्सना में नहीं बसता है । चित्त के नहीं बसने से उस उपास हुआ, अपनेका परितस्सना नहीं होती है ।

मिथुनो ! "वेदना" , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान को अपना नहीं समझता है ।

मिथुनो ! इसी तरह अनुपादान और अपरितस्सना होती है ।

§ ८ द्वितीय उपादान परितस्सना मुच (१२ १ १ ८)

उपादान और परितस्सना

भावस्ती ।

मिथुनो ! उपादान और परितस्सना कैसे होती है ?

मिथुनो ! कोई अविद्वान् पृथक्पृथक् रूप को "पह मेरा है, वह मैं हूँ, पह मेरा आत्मा है" समझता है । उसका वह रूप विपरिणत तथा अन्यथा हो जाता है । रूप के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से उसे शोक परिदेव हुआ कीर्तनरूप और उपावास होते हैं ।

मिथुनो ! वेदना को , संज्ञा को , संस्कार को , विज्ञान को ।

मिथुनो ! इसी तरह, उपादान और परितस्सना होती है ।

मिथुनो ! अनुपादान और अपरितस्सना कैसे होती है ?

मिथुनो ! कोई विद्वान् पार्थक्यरूप रूपको "वह मेरा है, वह मैं हूँ, पह मेरा आत्मा है" नहीं समझता है । उसका वह रूप विपरिणत तथा अन्यथा हो जाता है । रूप के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से उसे शोक परिदेव हुआ कीर्तनरूप और उपावास नहीं होते हैं ।

---वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

मिथुनो ! इसी तरह अनुपादान और अपरितस्सना होती है ।

§ १० षष्ठम मतीदानागत मुच (२१ १ १ ९)

भूत और मत्पिप्यत्

भावस्ती---।

"भगवान् बोले—मिथुनो ! भूत कठीन और अनागत में अन्तित्व है, वर्तमान का कल्पना बना।

भिष्णुओ । इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक अतीत के रूप में अनपेक्ष रहता है, अनागत रूपका अभि-
नन्दन नहीं करता, वर्तमान रूप के निर्वेद, विराग और निरोध के लिये यत्नवान् रहता है ।

• वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान ।

§ १०. दुत्तिय अतीतानागत सुत्त (२१ १. १. १०)

भूत और भविष्यत्

श्रावस्ती ।

• भगवान् बोले—भिष्णुओ । रूप अतीत और अनागत में दुःख है, वर्तमान का कहना क्या ?
भिष्णुओ । इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक अतीत के रूप में अनपेक्ष रहता है, अनागत रूप का अभि-
नन्दन नहीं करता, वर्तमान रूप के निर्वेद, विराग और निरोध के लिये यत्नवान् रहता है ।

वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान ।

§ ११. ततिय अतीतानागत सुत्त (२१ १. १. ११)

भूत और भविष्यत्

श्रावस्ती ।

भगवान् बोले—भिष्णुओ । रूप अतीत और अनागत में अनात्म है, वर्तमान का कहना
क्या ? [पूर्ववत्]

नकुळपितावर्ग समाप्त

दूसरा भाग

अनित्य वर्ग

§ १ अनिष्ट सुप्त (०१ १ २ १)

अनिरयता

पेसा मीने सुपा ।

***भावस्ती ।

***मगवान् बोले :—मिथुनो ! कय अनित्य है वेदना अनित्य है संज्ञा अनित्य है विज्ञान अनित्य है ।

मिथुनो ! इस ज्ञानकर विज्ञान् ज्ञानभावक को रूप से भी निर्बेद होता है, वेदना से भी निर्बेद होता है संज्ञा से भी निर्बेद होता है संस्कारों से भी निर्बेद होता है विज्ञान से भी निर्बेद होता है । निर्बेद होने से विरक्त हो जाता है वैराग्य से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जाने से निमुक्त हो गया पंसा ज्ञान होता है । निमुक्त हो जाने से पूरा हो गया जो करना भा छा कर किया गया अब कुछ बाकी नहीं बचा—पंसा ज्ञान होता है ।

§ २ दुक्ख सुप्त (२१ १ २ २)

दुःख

भावस्ती ।

मिथुनो ! कय दुःख है वेदना दुःख है संज्ञा दुःख है संस्कार दुःख है विज्ञान दुःख है ।

मिथुनो ! इसे जान कर --।

§ ३ अनन्त सुप्त (२१ १ २ ३)

अनात्मता

भावस्ती ।

मिथुनो ! कय अनात्म है -- ।

मिथुनो ! इसे जान कर ।

§ ४ षष्ठम यदनिष्ट सुप्त (२१ १ २ ४)

अनिरयता के गुण्य

भावस्ती ।

मिथुनो ! कय अनित्य है । जो अनित्य है वह दुःख है । जो दुःख है वह अनात्म है । जो अनात्म है वह न तो मेरा न ही न मेरा आत्मा है । इसे बर्णनता महात्त्वक रूपता कहिये ।

वेदना***, सज्ञा***, सम्कार **; विज्ञान अनित्य है***।

भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यभ्रावक जाति क्षीण हुई **ऐसा जान लेता है।

§ ५. दुत्तिय यदनिच्च सुत्त (२१ १ २. ५)

दुःख के गुण

श्रावस्ती ।

***भिक्षुओ ! रूप दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है।

* [शेष पूर्ववत्]

§ ६. ततिय यदनिच्च सुत्त (२१ १. २. ६)

अनात्म के गुण

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप अनात्म है।

[शेष पूर्ववत्]

§ ७. पठम हेतु सुत्त (२१ १. २. ७)

हेतु भी अनित्य है

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप अनित्य है। रूप की उत्पत्ति के जो हेतु और प्रत्यय हैं वे भी अनित्य हैं भिक्षुओ ! अनित्य से उत्पन्न होकर रूप निश्च कैसे हो सकता है।

[इसी तरह वेदना, सज्ञा, सम्कार और विज्ञान के विषय में]

भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यभ्रावक जाति क्षीण हुई **ऐसा जान लेता है।

§ ८. दुत्तिय हेतु सुत्त (२१ १ २. ८)

हेतु भी दुःख है

श्रावस्ती ।

* भिक्षुओ ! रूप दुःख है। रूप की उत्पत्ति के जो हेतु और प्रत्यय हैं वे भी दुःख हैं। भिक्षुओ ! दुःख से उत्पन्न होकर रूप सुख कैसे हो सकता है।

[इसी तरह वेदना, सज्ञा, सम्कार, और विज्ञान के विषय में]

भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यभ्रावक जाति क्षीण हुई **ऐसा जान लेता है।

§ ९. ततिय हेतु सुत्त (२१ १ २. ९)

हेतु भी अनात्म है

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप अनात्म है। रूप की उत्पत्ति के जो हेतु और प्रत्यय हैं वे भी अनात्म हैं। भिक्षुओ ! अनात्म से उत्पन्न हो कर रूप आत्म कैसे हो सकता है।

[पूर्ववत्]

§ १० आनन्द सुप्त (२१ १ २ १०)

निरोध किसका ?

आघस्ती ।

तब, आसुप्तान् आनन्द् इहो भगवान् मे इहो आये श्रीर भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ आसुप्तान् आनन्द् भगवान् से बोले :—मस्ते ! लोग 'निरोध निरोध' कहा करते हैं । मन्ते ! किम धर्मोऽयं निरोध निरोध कहा जाता है ?

आनन्द ! रूप अमित्त्वं है संस्कृत है प्रतीत्यसमुत्पन्न है, अक्षयमो है, अक्षयमो है निरोधधर्मो है । असी के निरोध से निरोध कहा जाता है ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार" ; विशाया , असीक निरोध से निरोध कहा जाता है ।

आनन्द ! इन्हीं धर्मों के निरोध से निरोध कहा जाता है ।

अमित्त्वं धर्मो समाप्त ।



तीसरा भाग

भार वर्ग

§ १. भार सुक्त (२१ १. ३. १)

भार को उतार फेंकना

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! भार के विषय में उपदेश करूँगा भारहार के विषय में, भार उठाने के विषय में और भार उतार देने के विषय में । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! भार क्या है ?

इन पाँच उपादान-स्कन्धों को कहना चाहिये । किन पाँच ? जो यह, रूप-उपादान-स्कन्ध, वेदना-उपादान-स्कन्ध, सज्ञा-उपादान स्कन्ध, सस्कार-उपादान-स्कन्ध, और विज्ञान-उपादान स्कन्ध हैं । भिक्षुओ ! इसी को भार कहते हैं ।

भिक्षुओ ! भारहार क्या है ? पुरुष को ही कहना चाहिये । जो यह आयुध्मान् इस नाम और इस गोत्र के हैं । भिक्षुओ ! उसी को भारहार कहते हैं ।

भिक्षुओ ! भार का उठाना क्या है ? जो यह तृष्णा, पुर्नजन्म करानेवाली, आसक्ति और राग-वाली, वहाँ वहाँ लग जानेवाली है । जो यह काम तृष्णा, भव तृष्णा, विभव-तृष्णा है । भिक्षुओ ! इसी को भार का उठाना कहते हैं ।

भिक्षुओ ! भार का उतार देना क्या है ? उसी तृष्णा का जो बिपक्व विराग=निरोध=त्याग=प्रतिनिधि सगं=मुक्ति=अनालय है । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं भार का उतार देना ।

मगधान् यह बोले । यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले —

ये पाँच स्कन्ध भार हैं,

पुरुष भारहार है,

भार का उठाना लोक में दुःख है,

भार का उतार देना सुख है ॥ १ ॥

भार के बोझ को उतार,

बृत्तरा भार नहीं लेता है,

तृष्णा को जड़ से उखाड़,

दुःखमुक्त निर्वाण पा लेता है ॥ २ ॥

§ २. परिञ्जा सुक्त (२१ १ ३ २)

परिज्ञेय और परिज्ञा की व्याख्या

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! परिज्ञेय धर्म और परिज्ञान के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ॥

भिक्षुओ ! परिज्ञेय धर्म क्या है ? भिक्षुओ ! रूप परिज्ञेय धर्म है, वेदना परिज्ञेय धर्म है, सज्ञा

परिशेष धर्म है संस्कार परिशेष धर्म है विज्ञान परिशेष धर्म है। मिथुनो! इन्हीं को परिशेष धर्म कहते हैं।

मिथुनो! परिशा क्या है? मिथुनो! जो राग क्षय भीर मोह द्वेष है उसी को परिशा कहते हैं।

§ ३ अभिज्ञान मुक्त (२१ १ ३ ३)

रूप को समझे बिना दुःख का क्षय नहीं

भाषस्ती ।

मिथुनो! रूप को बिना समझे जाने, त्याग किये तथा उससे विरक्त हुये कोई दुःखों का क्षय नहीं कर सकता है।

'वेदना', संज्ञा, संस्कार, विज्ञान को बिना समझे जाने त्याग किये तथा उससे विरक्त हुये कोई दुःखों का क्षय नहीं कर सकता है।

मिथुनो! रूप को समझ जान त्याग उससे विरक्त हो कोई दुःखों का क्षय कर सकता है।

'वेदना', संज्ञा, संस्कार, विज्ञान को समझ जान त्याग कर तथा उससे विरक्त हो कोई दुःखों का क्षय कर सकता है।

§ ४ छन्दराग मुक्त (२१ १ ३ ४)

छन्दराग का त्याग

भाषस्ती ।

मिथुनो! रूपमें जो छन्दराग है उसे छोड़ दो। इस तरह वह रूप प्रहीण हो जायगा अविच्छेद रूप किये हुये फिर बाक्ये तादृश के समान अवभाष किया हुआ फिर भी कमी न उग सकने बाधा।

'वेदना', संज्ञा, संस्कार, विज्ञान में जो छन्दराग है उसे छोड़ दो' ।

§ ५ षष्ठम अस्साद मुक्त (२१ १ ३ ५)

रूपादि का आस्वाद

भाषस्ती ।

मिथुनो! सुख प्राप्त करने को पहले बोधिसत्त्व रहते ही भरे मनमें वह हुआ।—रूपका आस्वाद क्या है शब्द क्या है सुन्दरता क्या है? 'वेदना संज्ञा' 'संस्कार' 'विज्ञान' ?

मिथुनो! तब मेरे मनमें यह हुआ।—रूप के प्रत्यक्ष से जो सुख भीर सीमन्तल होता है वही रूप का आस्वाद है। रूप को अस्मित सुख विपरिणामधर्म है वह रूप का शोच (= आशीष) है। जो रूप के प्रति छन्दराग को त्याग देना प्रहीण करना है वही रूप से सुन्दरता है।

['वेदना' संज्ञा संस्कार और विज्ञान के साथ भी ऐसे ही]

मिथुनो! जब तक मैंने रूप पाँच अपादान-रक्षणों के आस्वाद को आस्वाद के तीर पर शोच को शोच के तीर और सुन्दरता को सुन्दरता के तीर पर बन्धता नहीं क्या किया था तब तक इस लोक में अनुत्तर सम्यक् सम्युद्भव प्राप्त करने का रास्ता नहीं किया।

मिथुनो! जब मैंने 'अवार्थता' जान किया तभी इस लोक में अनुत्तर सम्यक् सम्युद्भव प्राप्त करने का रास्ता किया।

मुझे ऐसा ज्ञान = दर्शन उत्पन्न हुआ—मेरा कित् टीक में विमुक्त हो गया वही अन्तिम ज्ञान है अब पुनर्जन्म होने का नहीं।

§ ६. दुतिय अस्साद सुक्त (२१ १ ३. ६)

आस्वाद की खोज

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! मैंने रूप के आस्वाद की खोज की । रूप का जो आस्वाद है उसे समझ लिया । जहाँ तक रूप का आस्वाद है उम्ने प्रज्ञा से अच्छी तरह देख लिया ।

भिक्षुओ ! मैंने रूप के दोष की खोज की । रूप का जो दोष है उसे समझ लिया । जहाँ तक रूप का दोष है उसे प्रज्ञा से अच्छी तरह देख लिया ।

भिक्षुओ ! मैंने रूप के छुटकारे की खोज की । रूप का जो छुटकारा है उसे समझ लिया । जहाँ तक रूप का छुटकारा है उसे प्रज्ञा से अच्छी तरह देख लिया ।

[वेदना, सज्ञा, संस्कार, और विज्ञान के साथ भी ऐसे ही]

भिक्षुओ ! जब तक मैंने इन पाँच उपादान-स्कन्धों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर

यही अन्तिम जाति है, अब पुनर्जन्म होने का नहीं ।

§ ७. ततिय अस्साद सुक्त (२१ १. ३. ७)

आस्वाद से ही आसक्ति

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! यदि रूप में आस्वाद नहीं होता तो सब रूप में आसक्त नहीं होते । भिक्षुओ ! क्योंकि रूप में आस्वाद है इसीलिये सब रूप में आसक्त होते हैं ।

भिक्षुओ ! यदि रूप में दोष नहीं होता तो सब रूप से निर्वेद (= विराग) को प्राप्त नहीं होते । भिक्षुओ ! क्योंकि रूप में दोष है, इसलिये सब से निर्वेद को प्राप्त होते हैं ।

भिक्षुओ ! यदि रूप से छुटकारा नहीं होता तो सब रूप से मुक्त नहीं होते । भिक्षुओ ! क्योंकि रूप से छुटकारा होना है, इसलिये सब रूप से मुक्त होते हैं ।

[वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान के साथ भी ऐसे ही]

भिक्षुओ ! जब तक सबों ने इन पाँच उपादान-स्कन्धों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर, दोष को दोष के तौर पर, और छुटकारे को छुटकारे के तौर पर यथार्थतः नहीं जान लिया तब तक *वे नहीं निकले=छूटे=मुक्त हुये तथा मर्यादा रहित चित्त से विहार किये ।

भिक्षुओ ! जब सबों ने *यथार्थतः जान लिया तब *वे निकल गये=छूट गये=मुक्त हुये तथा मर्यादा रहित चित्त से विहार किये ।

§ ८. अभिनन्दन सुक्त (२१ १ ३ ८)

अभिनन्दन से दुःख की उत्पत्ति

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो रूप का अभिनन्दन करता है वह दुःख का ही अभिनन्दन करता है । जो दुःख का अभिनन्दन करता है वह दुःख से मुक्त नहीं हुआ है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , जो विज्ञान का अभिनन्दन करता है ।

भिक्षुओ ! और, जो रूप का अभिनन्दन नहीं करता है वह दुःख का अभिनन्दन नहीं करता है । जो दुःख का अभिनन्दन नहीं करता है वह दुःख से मुक्त हो गया—ऐसा मैं कहता हूँ ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , जो विज्ञान का अभिनन्दन नहीं करता है ।

§ ९ उच्चाद सुप्त (२१ १ ३ ९)

रूप की उत्पत्ति हुःक का उत्पाद है

आवस्ती ।

मिथुनी । हुःक के जो उत्पाद स्थिति पुनश्चम्, और प्रादुर्भाव हैं वे हुःक के उत्पाद रोगों की स्थिति और अरामरण के प्रादुर्भाव हैं ।

वेदना ; संज्ञा ; संस्कार* विज्ञान के जो उत्पाद स्थिति** ।

मिथुनी ! जो रूप का विरोध स्तुपसम तथा अरामरण का अस्त हो जाता है ।

वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

§ १० अघमूल सुप्त (२१ १ ३ १०)

हुःक का मूल

आवस्ती ।

मिथुनी ! हुःक के विषय में उपदेश कहेगा तथा हुःक के मूल के विषय में । उसे सुनो ।

मिथुनी ! हुःक क्या है ?

मिथुनी ! रूप हुःक है । वेदना हुःक है । संज्ञा हुःक है । संस्कार हुःक हैं । विज्ञान हुःक है ।

मिथुनी ! इसी को हुःक कहते हैं ।

मिथुनी ! हुःक का मूल क्या है ?

जो यह एवमा पुनर्भव कराने वाली जासक्ति और राग से युक्त बहो बहो धामन्व कोकले वाली ।

जो वह, काम-गुणा भव-गुणा विभव-गुणा । मिथुनी ! इसी को हुःक का मूल कहते हैं ।

§ ११ पमंशु सुप्त (२१ १ ३ ११)

अपमंशुरता

आवस्ती ।

मिथुनी ! अमुर के विषय में उपदेश कहेगा और अपमुर के विषय में ।

मिथुनी ! क्या अमुर है और क्या अपमुर ? मिथुनी ! रूप अमुर है । जो असाक विरोध =

स्तुपसम = अस्त हो जाता है वह अपमुर है ।

** वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

आर वर्ग समाप्त ।

चौथा भाग

न तुम्हाक वर्ग

§ १. पठम न तुम्हाक सुत्त (२१. १. ४. १)

जो अपना नहीं है, उसका त्याग

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो तुम्हारा नहीं है उसे छोड़ दो । उसका प्रहीण हो जाना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा ।

भिक्षुओ ! तुम्हारा क्या नहीं है ?

भिक्षुओ ! रूप तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो । उसका प्रहीणमे हो जाना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई आदमी इस जेतवन के वृण, काष्ठ, शाखा और पत्ते को ले जाय, या जला दे, या जो मरजी करे । तो क्या तुम्हारे मन में ऐसा होगा—यह आदमी हमें ले जा रहा है । या जला रहा है, या जो मरजी कर रहा है ?

नहीं मन्ते ।

सो क्यों ?

मन्ते ! क्योंकि यह हमारा आत्मा, आत्मनीय नहीं है ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, रूप तुम्हारा नहीं है । उसे छोड़ दो । उसका प्रहीण हो जाना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो ।

§ २. दुत्तिय न तुम्हाक सुत्त (२१. १. ४. २)

जो अपना नहीं है, उसका त्याग

श्रावस्ती ।

[टीक ऊपरवाले के जैसा, जेतवन का दट्टान्त नहीं]

§ ३. पठम भिक्खु सुत्त (२१. १. ४. ३)

अनुशय के अनुसार समझा जाना

श्रावस्ती ।

क

तब, कोई भिक्खु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ कर वह भिक्खु भगवान् से बोला—

मन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें, कि मैं भगवान् के धर्म को सुनकर अनेका, पुत्रात् में अममत्त संयमशील तथा प्रहितार्थ होकर विहार करूँ ।

हे मिश्र ! जिसका जैसा अनुसृत रहता है वह वैसा ही समझा जाता है; वैसा अनुसृत नहीं रहता है वैसा नहीं समझा जाता है ।

भगवान् ! समझ गया । सुगत ! समझ गया ।

हे मिश्र ! मेरे इस संक्षेप से कहे गये का तुमसे विस्तार से धर्म कैसे समझा ?

मन्ते ! यदि क्य का अनुसृत होता है तो वह वैसा ही समझा जाता है । यदि वैदना का ; संज्ञा का ; संस्कारों का ; विज्ञान का ।

मन्ते ! यदि (किमी को) क्य का अनुसृत नहीं होता है तो वह वैसा नहीं समझा जाता है । यदि वैदना का ; संज्ञा का ; संस्कारों का ; विज्ञान का । भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का मैं ऐसे ही विस्तार से धर्म समझता हूँ ।

ठीक है मिश्र ठीक है ! मेरे इस संक्षेप से कहे गये का तुमसे ठीक में विस्तार से धर्म समझ किया । मेरे इस संक्षेप से कहे गये का ऐसे ही विस्तार से धर्म समझना चाहिये ।

तब वह मिश्र भगवान् के कहे का अभिमान्द और अनुमोदन कर आसन से उठ भगवान् को अभिवादन और प्रणमना कर चला गया ।

स

तब उस मिश्र ने अनेका पुत्रात् में अममत्त संयमशील तथा प्रहितार्थ हो विहार करते हुए सीमा ही महाधर्म के उस अनुसृत अन्तिम कर को इसी क्षण में स्वर्ण वाय वैक और पा किया जिसके किने कुछकुछ अद्या से सम्पत्क वर से बेधर हो कर प्रसन्न हो गये हैं । जाति क्षीण दुर्ग, महाधर्म सम्पत्क हो गया को करना का सो कर किया जब और कुछ बाकी नहीं रहा—येका वाय किया ।

वह मिश्र अर्हत्तों में एक हुआ ।

३ ४ दुविय भिक्षु सुच (२१ १ ४ ४)

अनुदाय के अनुसार मायता

आवस्ती ।

कोई मिश्र नहीं भगवान् ने नहीं अया और मद्यवाक् का अभिवादन कर एक और बैठ गया । एक और बैठ कर वह मिश्र मद्यवाक् से बोला —

मन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें कि मैं भगवान् के धर्म को सुच कर अनेका पुत्रात् में अममत्त संयमशील तथा प्रहितार्थ होकर विहार करूँ ।

हे मिश्र ! जिसका जैसा अनुसृत रहता है वह वैसा ही मायता है । जो वैसा मायता है वह वैसा ही समझा जाता है ।

[ऊपर वाले सूत्र के समान ही]

वह मिश्र अर्हत्तों में एक हुआ ।

३ ५ पठम मानन्द सुच (२१ १ ४ ५)

कितका उत्तराव धपय और विपरिव्याम ?

आवस्ती ।

"एक और बैठे अनुसृत आनन्द से भगवान् बोले "आनन्द ! यदि तुमसे कोई पूछे अनुसृत

आनन्द ! किन धर्मों का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, तथा स्थित हुओं का अन्यथात्व जाना जाता है ?" आनन्द ! ऐसा पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! ऐसा पूछे जाने पर मैं यों उत्तर दूँगा —

आवुस ! रूप का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, तथा स्थिर हुये का अन्यथात्व जाना जाता है । वेदना का , सज्ञा का , संस्कारों का , विज्ञान का । आवुस ! इन्हीं धर्मों का उत्पाद जाना जाता है । भन्ते ! ऐसा पूछे जाने पर मैं यों ही उत्तर दूँगा ।

ठीक है, आनन्द, ठीक है । ऐसा पूछे जाने पर तुम यों ही उत्तर दोगे ।

§ ६. दुतिय आनन्द सुत्त (२१. १. ४. ६)

किनका उत्पाद, व्यय और विपरिणाम ?

श्रावस्ती' ।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्द से भगवान् बोले, "आनन्द ! यदि तुमसे कोई पूछे, आवुस आनन्द ! किन धर्मों का उत्पाद जाना गया है, व्यय जाना गया है तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना गया है ? किनका जाना जायगा ? किनका जाना जाता है ?" आनन्द ! ऐसा पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे ?"

भन्ते ! ऐसा पूछा जाने पर मैं यों उत्तर दूँगा —

आवुस ! जो रूप अतीत हो गया = निरुद्ध हो गया = विपरिणत हो गया, उसका उत्पाद जाना गया, व्यय जाना गया, स्थित हुये का अन्यथात्व जाना गया । वेदना , सज्ञा , संस्कार, जो विज्ञान अतीत हो गया ।

आवुस ? इन्हीं धर्मों का उत्पाद जाना गया है, व्यय जाना गया है, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना गया है ।

आवुस ! जो रूप अभी उत्पन्न नहीं हुआ है, प्रगट नहीं हुआ है, उसी का उत्पाद जाना जायगा, व्यय जाना जायगा, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जायगा । वेदना , सज्ञा , संस्कार , जो विज्ञान अभी उत्पन्न नहीं हुआ है ।

आवुस ! इन्हीं धर्मों का उत्पाद जाना जायगा, व्यय जाना जायगा, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जायगा ।

आवुस ! जो रूप अभी उत्पन्न हुआ है, प्रादुर्भूत हुआ है, उसी का उत्पाद जाना जाता है व्यय जाना जाता है, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जाता है । वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

आवुस ! धर्मों का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जाता है ।

भन्ते ! ऐसा पूछा जाने पर मैं यों ही उत्तर दूँगा ।

ठीक है आनन्द, ठीक है । [सारे की पुनरुक्ति] ऐसा पूछे जाने पर तुम यों ही उत्तर दोगे ।

§ ७ पठम अनुधम्म सुत्त (२१. १. ४. ७)

विरक्त होकर विहरना

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु धर्मानुधर्म प्रतिपन्न है उसका यह धर्मानुकूल होता है, कि रूप के प्रति विरक्त होकर विहार करे, वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान के प्रति विरक्त होकर विहार करे ।

इस प्रकार विरक्त होकर विहार करते हुए वह रूप को जान लेता है वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान को जान लेता है ।

वह रूप विज्ञान को जानकर रूप से मुक्त हो जाता है वेदना से मुक्त हो जाता है, संज्ञा से मुक्त हो जाता है संस्कारों से मुक्त हो जाता है विज्ञान से मुक्त हो जाता है । जाति बरा मरण शोक, परिवेष दुःख क्षीर्णवत्त्व उपापाद से मुक्त हो जाता है । दुःख से मुक्त होता है—वेदा में करता है ।

§ ८ तृतीय अनुषम्भ सूत्र (२१ १ ४ ८)

अमित्य समझना

भावस्ती ।

मिथुनो ! जो मिथुन धर्मात्रुषर्ष प्रतिपन्न है अस्तव्य यह धर्मात्रुषर्ष होता है कि रूप को अमित्य समझे [पूर्ववत्] ।

दुःख से मुक्त होता है—वेदा में करता है ।

§ ९ तृतीय अनुषम्भ सूत्र (२१ १ ४ ९)

दुःख समझना

भावस्ती ।

मिथुनो ! कि रूप को दुःख समझे ।

§ १० चतुर्थ अनुषम्भ सूत्र (२१ १ ४ १०)

अमारम समझना

भावस्ती ।

मिथुनो ! कि रूप को अमारम समझे

न तुम्हाक वर्ग समझत ।

पाँचवाँ भाग आत्मद्वीप वर्ग

§ १. अक्षदीप सुक्त (२१. १. ५. १)

अपना आधार आप बनना

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! अपना आधार आप बनो, अपना धरण आप बनो, किसी दूसरे का धरणागत मत बनो, धर्म ही तुम्हारा आधार है, धर्म ही तुम्हारा धरण है, कुछ दूसरा तुम्हारा धरण नहीं है ।

इस प्रकार विहार करते हुए तुम्हें ठीक से इसकी परीक्षा करनी चाहिये—शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास का जन्म = प्रभव क्या है ।

भिक्षुओ ! इनका जन्म=प्रभव क्या है ?

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन्म रूपको अपना करके समझता है, अपने को रूपवान् समझता है, रूप में अपने को समझता है । उसका वह रूप विपरिणत=अन्यथा हो जाता है । रूप को विपरिणत तथा अन्यथा हो जानेसे शोकादि उत्पन्न होते हैं ।

वेदना को , सज्ञा को , सस्कारों को , विज्ञानको अपना करके समझता है ।

भिक्षुओ ! रूप के अनित्यत्व, विपरिणाम, विराग, निरोध को जान कर, जो पहले के रूप थे, और जो अभी रूप हैं सभी अनित्य, दुःख और विपरिणाम-धर्मा हैं, इसे यथार्थत प्रज्ञापूर्वक देख लेने से जो शोकादि हैं सभी प्रहीण हो जाते हैं । उनके प्रहीण हो जाने से त्रास नहीं होता । त्रास नहीं होने से सुखपूर्वक विहार करता है । सुखपूर्वक विहार करते हुये वह भिक्षु उस अश में मुक्त कहा जाता है ।

वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान , सुखपूर्वक विहार करते हुये वह भिक्षु उस अश में मुक्त कहा जाता है ।

§ २. पटिपदा सुक्त (२१. १. ५. २)

सत्काय की उत्पत्ति और निरोध का मार्ग

श्रावस्ती ।

•• भिक्षुओ ! सत्काय की उत्पत्ति तथा सत्काय के निरोध के मार्ग के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! सत्काय की उत्पत्ति का मार्ग क्या है ?

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन्म रूपको अपना करके समझता है, अपने को रूपवान् समझता है, अपने में रूपको समझता है, रूप में अपने को समझता है ।

वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान • ।

भिक्षुओ ! इसी को सत्काय की उत्पत्ति का मार्ग कहते हैं । भिक्षुओ ! यही दुःख की उत्पत्ति का मार्ग कहा जाता है, यही समझना चाहिये ।

भिक्षुओ ! सत्काय के निरोध का मार्ग क्या है ?

मिथुनो ! कोई विहाय आर्यभट्टक रूप को अपना करके नहीं समझता है अपने को रूपवार् समझता है अपने में रूप को नहीं समझता है रूप में अपने को नहीं समझता है ।

वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मिथुनो ! इसी को सत्काम के विरोध का मार्ग कहते हैं । मिथुनो ! यही दुःख के विरोध का मार्ग कहा जाता है—नहीं समझना चाहिये ।

§ ३ षष्ठम अनिश्चता सुच (२१ १ ५ ३)

अनित्यता

आवस्ती १

मिथुनो ! रूप अनित्य है । जो अनित्य है वह दुःख है जो दुःख है वह अनात्म है । जो अनात्म है तो न मेरा है न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है । इसे पञ्चार्थता महापूर्वक देख लेना चाहिये । चित उपादान-रहित हो आत्मों से विरक्त और विमुक्त हो जाता है ।

वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मिथुनो ! यदि मिथु का चित रूप के प्रति उपादान-रहित हो आत्मों से विरक्त और विमुक्त हो जाता है । वेदना ; संस्कार ; विज्ञान के प्रति ; तो स्थिर हो जाता है ; स्थिर होने से शान्त हो जाता है ; शान्त होने से प्रास नहीं होता ; प्रास नहीं होने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है । चाँचि छीज हुई ऐसा काम होता है ।

§ ४ द्वितीय अनिश्चता सुच (२१ १ ५ ४)

अनित्यता

आवस्ती ।

मिथुनो ! रूप अनात्म है [ऊपर जैसा] इसे पञ्चार्थता महापूर्वक देख लेना चाहिये ।

वेदना अनित्य है संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

इसे पञ्चार्थता महापूर्वक देख लेने से वह पञ्चान्त की सिध्दा-रहि में नहीं पड़ता है । पञ्चान्त की सिध्दा-रहियों में न पड़ने से उसे अपरान्त की भी सिध्दा-रहियों नहीं होती है । अपरान्त की रहि नहीं होने से वह कहीं नहीं सुकया है । वह रूप विज्ञान के प्रति आत्मोंसे विरक्त, विमुक्त तथा उपादान-रहित हो जाता है । उसका चित विमुक्त हो जाने से स्थिर हो जाता है । स्थिर हो जाने से शान्त हो जाता है । शान्त हो जाने से प्रास नहीं होता है । प्रास नहीं होने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है । चाँचि छीज हुई ऐसा काम होता है ।

§ ५ सप्तम उपस्सना सुच (२१ १ ५ ५)

आरामा नामने से ही मस्ति की अविद्या

आवस्ती ।

मिथुनो ! कितने अमन्य का आह्वान कनेक प्रकार से आत्मा की आरामे और समझते हैं, वे सभी इन्हीं पाँच उपादान स्कन्धों को जानते और समझते हैं या उनमें से किसी को ।

चित्त पाँच ।

मिथुनो ! कोई अविहाय पञ्चस्कन्ध रूपको अपना करके समझता है अपने को रूपवार् समझता है अपने में रूप को समझता है, रूप में अपने को समझता है ।

• वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान । ऐसा समझने से उन्हे "अस्मि" की अविद्या होती है ।

भिक्षुओ ! "अस्मि" की अविद्या होने से पाँच इन्द्रियाँ चली आती हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, और काया ।

भिक्षुओ ! मन है, धर्म है, और अविद्या है । भिक्षुओ ! अविद्या संस्पृशोऽपत्र वेदना होने से अविद्वान् पृथक्जनको 'अस्मिता' होती है । 'यह मैं हूँ'—ऐसा होता है । 'होऊँगा'—ऐसा भी होता है । 'नहीं होऊँगा'—ऐसा भी होता है । 'रूपवान्' , 'अरूपवान्' , 'सञ्जी' , 'असञ्जी' , 'न सञ्जी और न असञ्जी होऊँगा'—ऐसा भी होता है ।

भिक्षुओ ! वहाँ पाँच इन्द्रियाँ ठहरी रहती हैं । वही विद्वान् आर्यश्रावक की अविद्या प्रहीण हो जाती है, विद्या उत्पन्न होती है । उसको अविद्या के हट जाने और विद्या के उत्पन्न होने से 'अस्मिता' नहीं होती है । 'होऊँगा'—ऐसा भी नहीं होता है । 'रूपवान्' , 'अरूपवान्' , 'सञ्जी' , 'असञ्जी' , 'न सञ्जी और न असञ्जी होऊँगा'—ऐसा भी नहीं होता है ।

§ ६. खन्ध सुत्त (२१. १. ५. ६)

पाँच स्कन्ध

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! पाँच स्कन्ध तथा पाँच उपादान स्कन्ध के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! पाँच स्कन्ध कौन से हैं ?

भिक्षुओ ! जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान् , आध्यात्म, बाह्य , स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर का, या निकट का—है वह रूपस्कन्ध कहा जाता है ।

जो वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान • ।

भिक्षुओ ! वही पाँच स्कन्ध कहे जाते हैं ।

भिक्षुओ ! पाँच उपादान स्कन्ध कौन से हैं ?

भिक्षुओ ! जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान, आध्यात्म, बहि, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर का, या निकट का आश्रय के साथ उपादानीय है वह रूपोपादानस्कन्ध कहा जाता है ।

जो वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! इन्हीं को पञ्च-उपादानस्कन्ध कहते हैं ।

§ ७. षष्ठम सोण सुत्त (२१. १. ५. ७)

यथार्थ का ज्ञान

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में बेलुवन कलन्दक निघाप में विहार करते थे ।

तब, गृहपतिपुत्र सोण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुये गृहपतिपुत्र सोण को भगवान् बोले —सोण ! जो धम्मण या द्राक्षण इस अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्मा रूप से अपने को बड़ा समझते हैं, सदस्य समझते हैं, या हीन समझते हैं, वह यथार्थ का अज्ञान छोड़ कर दूसरा क्या है ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

सोण ! जो भ्रमण वा ब्राह्मण रूप अतित्य दुःख विपरिणामधर्मा रूप रत अगने की बड़ा भी नहीं समझते हैं सदा भी नहीं समझते हैं या हीन भी नहीं समझते हैं यह बभार्थ का ज्ञान छोड़ कर और क्या है ?

बेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

सोण ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है वा अनित्य ?

अन्ते ! अनित्य ।

जो अनित्य है वह दुःख है वा सुख ?

अन्ते ! दुःख है ।

जो अनित्य है दुःख है विपरिणामधर्मा है उसे क्या गमा समझना ठीक है कि यह मेरा है यह मैं हूँ; यह मेरा आत्मा है ?

नहीं अन्ते !

सोण ! बेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान अभिय है वा नित्य ।

सोण ! इसलिये जो रूप—अतीत अनागत वतमान् आप्यायम वाद्य रूप्य एतन् हीन प्रणीत हू कर या निन्द्य का—है उस बभार्थतः प्रज्ञापूर्वक वेद लेना चाहिये कि न यह मेरा है न यह मैं हूँ, और न यह मेरा आत्मा है ।

जो बेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

सोण ! ऐसा वैखनेशका विज्ञान् आर्यभाषक रूप से निर्बोध करता है बेदना स निर्बोध करता है संज्ञा से संस्कारों से , विज्ञान से । निर्बोध स बिरक्त हो जाता है । वैराग्य से मुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जाने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान उपपन्न होता है । जाति हीन हुई महात्मा पूरा हो गया, जो करता या छो कर किया सब और कुछ बाकी नहीं यथा—पूरा जान सेता है ।

§ ८ द्वितीय सोण सुच (२१ १ ५ ८)

भ्रमण और ब्राह्मण कीन ?

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में बेलुबन कच्छम्बक निवास में विहार करते थे ।

तब पृथपतिपुत्र सोण वहाँ भगवान् के वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक और बैठ गया :

एक ओर बैठे हुये पृथपतिपुत्र सोण की भगवान् बोले :—

सोण ! जो भ्रमण वा ब्राह्मण रूप को नहीं जानते हैं रूप के समुच्च को नहीं जानते हैं, रूप के निरोध को नहीं जानते हैं, रूप के निरोधवासी मार्ग को नहीं जानते हैं; बेदना , संज्ञा , संस्कार विज्ञान को नहीं जानते हैं ; वे न तो भ्रमणों में भ्रमण समझ जाते हैं और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण ! वे आपुष्पान् इसी अन्त में भ्रमण वा ब्राह्मण के परमार्थ को जान देख और पाकर विहार नहीं करते हैं ।

सोण ! जो भ्रमण वा ब्राह्मण रूप को जानते हैं विज्ञान को जानते हैं वे ही भ्रमणों में भ्रमण समझ जाते हैं, और ब्राह्मणों में ब्राह्मण । वे अपुष्पान् इसी अन्त में भ्रमण वा ब्राह्मण के परमार्थ को जान देख और पाकर विहार करते हैं ।

§ ९ पठम नन्दिशब्द सुच (२१ १ ५ ९)

भानम् का रूप कीसे ?

आवस्ती ।

मिथुनी ! मिथु जो रूप को अनित्य के तौर पर देख लेता है, उसे सन्नम् प्रति कहते हैं ।

इसे अच्छी तरह समझ कर वह निर्वेद को प्राप्त होता है। आनन्द लेने की इच्छा मिट जाने से राग मिट जाता है, राग मिट जाने से आनन्द लेने की इच्छा मिट जाती है। आनन्द लेने की इच्छा और राग के मिट जाने से चित्त बिल्कुल मुक्त कहा जाता है।

भिक्षु जो वेदना को , संज्ञाकी , संस्कारों को , विज्ञान को अनित्य के तौर पर देखता है उसे सम्यक् दृष्टि कहते हैं। आनन्द लेने की इच्छा और राग के मिट जाने से चित्त बिल्कुल मुक्त कहा जाता है।

§ १०. दुतिय नन्दिक्खय सुत्त (२१. १. ५. १०)

रूप का यथार्थ मनन

धावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप का ठीक से मनन करो, रूप की अनित्यता को यथार्थ देखो। रूप का ठीक से मनन करने, तथा रूप की अनित्यता को यथार्थ देखने से रूप के प्रति निर्वेद को प्राप्त होता है। आनन्द लेने की इच्छा मिट जाने से राग मिट जाता है, राग मिट जाने से आनन्द लेने की इच्छा मिट जाती है। आनन्द लेने की इच्छा और राग के मिट जाने से चित्त बिल्कुल मुक्त कहा जाता है।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान का ठीक से मनन करो ।

आत्मद्वीप वर्ग समाप्त ।

मूल पण्णासक समाप्त

दूसरा परिच्छेद

मज्झिम पण्णासक

पहला भाग

उपय वर्ग

§ १ उपय सुच (२१ २ १ १)

भनासक विमुक्त है

आपस्ती ।

मिच्छुओ ! भनासक अविमुक्त है भनासक विमुक्त है ।

मिच्छुओ ! रूप में भनासक होने से विज्ञान बना रहता है— रूप पर आकम्बित रूप पर प्रतिष्ठित आत्मन् उद्यमे बाका और उगता बढ़ता तथा फैलता है ।

संस्कारों पर आकम्बित संस्कारों पर प्रतिष्ठित आत्मन् उद्यमे बाका उगता बढ़ता तथा फैलता है ।

मिच्छुओ ! जो कोई ऐसा कहे कि मैं बिना रूप बिना वेदना बिना संज्ञा बिना संस्कार बिना विज्ञान के आवागमन करना जीना या उगना बढ़ना तथा फैलना सिद्ध कर लूँगा यह सम्भव नहीं है ।

मिच्छुओ ! यदि मिच्छु का रूप-धातु में राग प्रदीप्त हो जाता है, तो विज्ञान का आकम्बन प्रतिष्ठा प्रदीप्त हो जाता है । यदि मिच्छु का वेदना-धातु में ; संज्ञा-धातु में संस्कार-धातु में— विज्ञान-धातु में राग प्रदीप्त हो जाता है तो विज्ञान का आकम्बन—प्रतिष्ठा प्रदीप्त हो जाता है ।

यह अप्रतिष्ठित विज्ञान उगने नहीं पाता संस्कारों से रहित हो विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने से रिक्त हो जाता है स्थित होने से धाम्त हो जाता है । धाम्त होने से प्राप्त नहीं होने पाता । प्राप्त नहीं होने से अपने मीतर ही मीतर निर्वाच को प्राप्त कर लेता है । प्राप्ति क्षीय हुई अक्षय्य पूरा हो गया जो करना या तो कर लिया अब और कुछ बाकी नहीं है—ऐसा धाम्त होता है ।

§ २ बीज सुच (२१ २ १ २)

पाँच प्रकार के बीज

आपस्ती ।

-- मिच्छुओ ! बीज पाँच प्रकार के होते हैं । बीज सं पाँच ? सूक्ष्म-बीज, स्पन्द-बीज अन्न-बीज कृम-बीज और बीज-बीज ।

मिच्छुओ ! ये पाँच प्रकार के बीज अप्रतिष्ठित हैं सब वाले नहीं हैं इका या रूप से गह नहीं हो गये हैं मार वाले हैं और अस्वामी से रोये जा सकते वाले हैं; किन्तु मिट्टी न हो और एक न हो ।

मिच्छुओ ! तो क्या वे धात्र कहेंगे नहीं और फैलेंगे ?

नहीं भन्ते ।

भिक्षुओ ! ये पाँच बीज खण्डित हों, सदे-गले हों, हवा या धूप से नष्ट हों, नि.सार हों, और आसानी से रोपे जा सकनेवाले नहीं हों, किन्तु मिट्टी भी हो और जल भी हो । भिक्षुओ ! तो क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे, और फैलेंगे ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! ये पाँच बीज अखण्डित हों , और मिट्टी और जल भी हो । भिक्षुओ ! तो क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे ?

हाँ भन्ते । यहाँ जैसे पृथ्वी-धातु है वैसे विज्ञान की स्थितियाँ समझनी चाहिये । यहाँ जैसे जल-धातु है वैसे नन्दिराग समझना चाहिये । यहाँ जैसे पाँच प्रकार के बीज हैं वैसे आहार के साथ विज्ञान को समझना चाहिये ।

भिक्षुओ ! रूप में आसक्त होने से विज्ञान बना रहता है—रूप पर आलम्बित, रूप पर प्रति-ष्ठित आनन्द उठानेवाला, और उगता, यदता तथा फैलता है । [शेष ऊपर वाले सूत्र के समान ही ।]

३. उदान सुक्त (२१. २. १. ३)

आश्रवों का क्षय कैसे ?

श्रावस्ती...।

यहाँ भगवान् ने उदान के यह शब्द कहे, “यदि यह नहीं होवे तो मेरा नहीं होवे, नहीं होगा, वह मेरा नहीं होगा—ऐसा कहनेवाला भिक्षु नीचे के बन्धन (=औरम्भागीय सञ्जोवन) को काट देता है ।”

ऐसा कहने पर कोई भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! यह कैसे ?”

भिक्षुओ ! कोई भविष्यत्काल रूप को अपना करके समझता है, अपने रूपवान् समझता है, अपने में रूप को समझता है, या रूप में अपने को समझता है ।

वेदना , सज्ञा , सस्कार विज्ञान को अपना समझता है, अपने को विज्ञानवान् समझता है ।

वह अनित्य रूप की अनित्यता को यथार्थत नहीं जानता है, अनित्य वेदना की , संज्ञा की ; सस्कारों की , विज्ञान की अनित्यता को नहीं समझता है ।

वह दुःखमय रूप के दुःख को यथार्थत नहीं जानता है, दुःखमय वेदना के , सज्ञा के , सस्कारों के , विज्ञान के दुःख को नहीं जानता है ।

वह अनात्म रूप के अनात्मत्व को यथार्थत नहीं जानता है, अनात्म वेदना के , संज्ञा के , सस्कारों के , विज्ञान, के अनात्म को नहीं जानता है ।

वह संस्कृत रूप को संस्कृत के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है । संस्कृत वेदना को , संज्ञा को , सस्कारों को , विज्ञान को संस्कृत के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है ।

रूप नहीं रहेगा वह यथार्थत नहीं जानता ।

वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान नहीं रहेगा वह यथार्थत नहीं जानता है ।

भिक्षुओ ! कोई विद्वान् आर्षश्रावक रूप को अपना करके नहीं समझता है ।

वह अनित्य रूप की अनित्यता को यथार्थत जानता है ।

वह दुःखमय रूपके दुःख को यथार्थत जानता है ।

वह अनात्म रूप के अनात्मत्व को यथार्थत जानता है ।

वह संस्कृत रूप को संस्कृत के तौर पर यथार्थत जानता है ।

रूप नहीं रहेगा वह वयार्थतः यागता है ।

रूप बेचना संज्ञा संस्कार चार विज्ञान के नहीं होने से जो मिथु 'यदि यह नहीं होवे तो मेरा नहीं होवे नहीं होगा वह मेरा नहीं होगा — ऐसा कहे वह नीचेके बन्धन को काट देता है ।

मन्ते ! ऐसा कहनेवाला मिथु नीचे के बन्धन को काट देता है ।

मन्त ! क्या जान और वृष केन के बाद भाग्यों का खन हो जाता है ?

मिथु ! कोई अविद्वान् पृथक्त्व प्राप्त नहीं करने के स्थान पर प्राप्त को प्राप्त होता है । मिथु ! अविद्वान् पृथक्त्वों को यह प्राप्त होता है कि—'यदि यह नहीं होवे तो मेरा नहीं होवे, नहीं होगा वह मेरा नहीं होगा ।

मिथु ! विद्वान् आर्षभाषक प्राप्त नहीं करने के स्थान पर प्राप्त को नहीं प्राप्त होता है । मिथु ! विद्वान् आर्षभाषक का यह प्राप्त नहीं होता है कि—'यदि यह नहीं होवे ।

मिथु ! रूप में व्यसक्त होने से विज्ञान क्या रहता है—रूप पर आकम्बित रूप पर प्रतिष्ठित [सेप २१ २ १ १ सूत्र के समान] ।

मिथु ! वह जान भीर देख देने के बाद उसके भाग्यों का खन हो जाता है ।

६४ उपादान परिवध मुच (२१ २ १ ४)

उपादान स्कन्धों की व्याख्या

धायस्ती ।

'मिथुओ ! पाँच उपादान-स्कन्ध हैं । क्या मैं पाँच ? जो यह व्योपादान स्कन्ध बेचने-पादान स्कन्ध, मंशोपादान स्कन्ध संस्कारोपादान स्कन्ध और विज्ञानोपादान स्कन्ध ।

मिथुओ ! अब तक मैंने इन पाँच उपादान स्कन्धों को चारों सिद्धसिद्धों में बधार्थतः नहीं समझा था अब तक हम लोक में 'अनुत्तर सम्बन्ध सम्बन्ध प्राप्त करने का दावा नहीं किया था ।

मिथुओ ! अब मैंने पदार्थतः समझ लिया उसी दावा किया ।

ब चार सिद्धसिद्ध करते ? रूप को जान लिया । रूप के समुत्पन्न को जान लिया । रूप के विरोध को जान लिया । रूप के निरोपगामी मार्ग को जान लिया । बन्धा को ; संज्ञा को ; संस्कारों को ; विज्ञान को ।

मिथुओ ! रूप क्या है ? चार महाभूत और चार महाभूत से बनने वाले रूप । यही रूप है । आहार के समुत्पन्न में रूप का समुत्पन्न होता है । आहार के विरोध से रूप का विरोध होता है । यही आर्ष अर्थार्थिक मार्ग रूप का विरोध का मार्ग है । जो यह सम्बन्ध सिद्ध सम्बन्ध समायि ।

मिथुओ ! जो धर्मन या प्राज्ञान हमें जान कर रूप के निर्बन्ध क किये विराग के किये विरोध के निच प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं । जो सुप्रतिपन्न हैं वे हम धर्म विनय में प्रतिष्ठित होते हैं ।

मिथुओ ! जो धर्मन या प्राज्ञान हमें जान कर रूप का निर्बन्ध से विराग से, विराग से अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही बधार्थ में विमुक्त हुए हैं । जो बधार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे ही बधार्थ हैं । जो बधार्थ हैं उनके निच भँवर नहीं है ।

मिथुओ ! बेचना क्या है ? मिथुओ ! बेचना-काय का है । अनुत्तरपर्याया बेचना । आर्षार्थपर्याया बेचना । प्राणपर्याया बेचना । जिज्ञासपर्याया बेचना । कायपर्याया बेचना । धर्मपर्याया बेचना । मिथुओ ! हमें बेचना कहते हैं । बन्धा के समुत्पन्न से बेचना का समुत्पन्न होता है । बन्धा के विरोध से बेचना का विरोध होता है । यही आर्ष अर्थार्थिक मार्ग बेचना के विरोध का मार्ग है ।

मिथुओ ! जो धर्मन या प्राज्ञान हमें जान -- ।

मिथुओ ! क्या क्या है ?

भिक्षुओ ! संज्ञाकाय छ हैं । रूप-संज्ञा, शब्द-संज्ञा, गन्ध-संज्ञा, रस-संज्ञा, स्पर्श-संज्ञा, धर्म-संज्ञा । यही संज्ञा है । स्पर्श के समुदय से मज्ञा का समुदय होता है । स्पर्श के निरोध से संज्ञा का निरोध होता है । यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग सज्ञा के निरोध का मार्ग है ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'इसे जान' ।

भिक्षुओ ! संस्कार क्या है ?

भिक्षुओ ! चेतना-काय छ हैं । रूप-संचेतना, शब्द-संचेतना, गन्ध-संचेतना, रस-संचेतना, स्पर्श-संचेतना, धर्म-संचेतना । भिक्षुओ ! इन्हीं को संस्कार कहते हैं । स्पर्श के समुदय से संस्कारों का समुदय होता है । स्पर्श के निरोध से संस्कारों का निरोध होता है । यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग संस्कारों के निरोध का मार्ग है ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'इसे जान ।

भिक्षुओ ! विज्ञान क्या है ?

भिक्षुओ ! विज्ञान-काय छ हैं । चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, काय-विज्ञान, मनोविज्ञान । भिक्षुओ ! इसी को विज्ञान कहते हैं । नामरूप के समुदय से विज्ञान का समुदय होता है । नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है । यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग विज्ञान के निरोध का मार्ग है ।

भिक्षु ! जो श्रमण या ब्राह्मण इसे जान कर रूप के निर्वेद के लिये, विराग के लिये, निरोध के लिये प्रतिपन्न होते है वे ही सुप्रतिपन्न है । जो सुप्रतिपन्न है वे इस धर्म विनय में प्रतिष्ठित होते हैं ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'इसे जान कर रूप के निर्वेद से, अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त हुये हैं । जो यथार्थ में विमुक्त हो गये है वे ही केवली हैं । जो केवली उनके लिये भँवर नहीं है ।

§ ५. सत्तद्दान सुक्त (२१. २. १. ५)

सात स्थानों में कुशल ही उत्तम पुरुष है

थावस्ती ।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु सात स्थानों में कुशल तथा तीन प्रकार से परीक्षा करनेवाला होता है, वह इस धर्मविनय में केवली, सफल ब्रह्मचर्यवाला, और उत्तम पुरुष कहा जाता है ।

भिक्षुओ ! भिक्षु सात स्थानों में कुशल कैसे होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु रूप को जानता है । रूप के समुदय को जानता है । रूप के निरोध को जानता है । रूप के निरोधगामी मार्ग को जानता है । रूप के आस्वाद को जानता है । रूप के दोष को जानता है । रूप के वृट्कारे (=मुक्ति) को जानता है ।

• वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! रूप क्या है ? चार महाभूत और उनसे होनेवाले रूप । भिक्षुओ ! इसी को रूप कहते हैं । आहार के समुदय से रूप का समुदय होता है । आहार के निरोध से रूप का निरोध होता है । यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग रूप के निरोध का मार्ग है ।

जो रूप के प्रत्यय से सुख और सौमनस्य होता है वही रूप का आस्वाद है । रूप जो अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्म है वह रूप का दोष है । जो रूप से छन्दराग का प्रहीण हो जाता है वह रूप की मुक्ति है ।

भिक्षुओ जो श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार रूप को जान, रूप के समुदय को जान, रूप के निरोध को जान, रूप के निरोध के मार्ग को जान, रूप के आस्वाद को जान, रूप के दोष को जान, रूप की

रूप नहीं रहेगा वह बयार्थता जानता है ।

रूप वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान के नहीं होने से जो मिथु 'यदि वह नहीं होते तो मेरा नहीं होते नहीं होगा वह मेरा नहीं होगा — पूसा कहे वह नीचेके बन्धन का फाट देता है ।

मन्ते ! वेदा कहनेवाका मिथु नीचे के बन्धन को फाट देता है ।

मन्ते ! क्या जान और देख करने के वायु आग्रहों का क्षय हो जाता है ?

मिथु ! कोई अविद्वान् पूयकल्प प्राप्त नहीं करने के स्वान पर प्राप्त को प्राप्त हाता है । मिथु ! अविद्वान् पूयकल्पों को यह प्राप्त होता है कि—'यदि वह नहीं होते तो मेरा नहीं होते; नहीं होगा वह मेरा नहीं होता ।

मिथु ! विद्वान् आर्यभट्टक प्राप्त नहीं करने के स्वान पर प्राप्त को नहीं प्राप्त हाता है । मिथु ! विद्वान् आर्यभट्टक को यह प्राप्त नहीं होता है कि—'यदि वह नहीं होते ।'

मिथु ! रूप में आसक्त होने से विज्ञान बना रहता है—रूप पर आत्मिक रूप पर प्रतिष्ठित [सेप २१ २ १ १ सूत्र के समाप्त] ।

मिथु ! वह जान और देख करने के बाद उसके आग्रहों का क्षय हो जाता है ।

५ ४ उपादान परिवरा सुप्त (२१ २ १ ४)

उपादान स्कन्धों की व्याख्या

प्रायस्ती ।

मिथुनी ! पाँच उपादान-स्कन्ध हैं । कौन से पाँच ? जो वह कर्मोपादान स्कन्ध वेदोपादान स्कन्ध, संशीपादान स्कन्ध संस्कारोपादान स्कन्ध और विज्ञानोपादान स्कन्ध ।

मिथुनी ! जब तक मैंने इन पाँच उपादान स्कन्धों को चारों सिकसिके में बयार्थता नहीं समझा था तब तक इस लोक में अनुत्तर सम्यक् सम्यक्त्व प्राप्त करने का शक्य नहीं किया था ।

मिथुनी ! जब मैंने बयार्थता समझ लिया तभी 'दाया किया ।

वे चार सिकसिके कैसे ? रूप को जान किया । रूप के समुद्रय को जान किया । रूप के निरोध को जान किया । रूप के विरोधगामी मार्ग को जान किया । वेदना को ; संज्ञा को ; संस्कारों को ; विज्ञान को ।

मिथुनी ! रूप क्या है ? चार महाभूत और चार महाभूत से बनने वाले रूप । वही रूप है । आहार के समुद्रय से रूप का समुद्रय होता है । आहार के निरोध से रूप का निरोध होता है । वही आर्य अष्टादिक मार्ग रूप के निरोध का मार्ग है । जो वह सम्यक् इति सम्यक् समाधि ।

मिथुनी ! जो अमन या माह्यन इसे जान कर रूप के निर्बन्ध के किने, विराग के किने निरोध के किने प्रतिपन्न होते हैं वे ही समुद्रय हैं । जो समुद्रय हैं वे इस वर्ग विषय में प्रतिष्ठित होते हैं ।

मिथुनी ! जो अमन या माह्यन इसे जान कर रूप के निर्बन्ध से, विराग से निरोध से अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही बयार्थ में विमुक्त हुए हैं । जो बयार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे ही केवली हैं । जो केवली हैं उनके किने संस्कार नहीं हैं ।

मिथुनी ! वेदना क्या है ? मिथुनी ! वेदना-कारण का है । अनुसंस्पर्शका वेदना । प्रोत्संस्पर्शका वेदना । प्राण-संस्पर्शका वेदना । विज्ञानसंस्पर्शका वेदना । अयसंस्पर्शका वेदना । मनसंस्पर्शका वेदना । मिथुनी ! इन वेदना कहते हैं । स्वर्ग के समुद्रय से वेदना का समुद्रय होता है । स्वर्ग के निरोध से वेदना का निरोध होता है । वही आर्य अष्टादिक मार्ग वेदना के निरोध का मार्ग है ।

मिथुनी ! जो अमन या माह्यन इसे जान ।

मिथुनी ! वंश क्या है ?

§ ६. बुद्ध सुक्त (२१. २. १. ६)

बुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में भेद

श्रावस्ती***।

भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध रूप के निर्वेद, विराग तथा विरोध से उपादान-रहित हो विमुक्त सम्यक्-सम्बुद्ध कहे जाते हैं, भिक्षुओ ! प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु भी रूप के निर्वेद, विराग, निरोध तथा अनुपादान से विमुक्त हो प्रज्ञाविमुक्त कहा जाता है ।

भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान के निर्वेद, विराग, तथा निरोध से उपादान-रहित हो विमुक्त सम्यक्-सम्बुद्ध कहे जाते हैं । भिक्षुओ ! प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु भी वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान के निर्वेद, विराग, निरोध, तथा अनुपादान से विमुक्त हो प्रज्ञाविमुक्त कहा जाता है ।

भिक्षुओ ! तो, तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में क्या भेद है ?

भन्ते ! भगवान् ही हमारे धर्म के अधिष्ठाता हैं, भगवान् ही नेता हैं, भगवान् ही प्रतिशरण हैं । अच्छा होता कि भगवान् ही इसे बताते । भगवान् से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे ।

भिक्षुओ ! तो सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ मैं कहता हूँ ।

“भन्ते ! बहुत अच्छा” कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध अनुत्पन्न मार्ग के उत्पन्न करनेवाले होते हैं, अज्ञात मार्ग के जनाने वाले होते हैं, नहीं बताये गये मार्ग के बताने वाले होते हैं, मार्ग-विद् और मार्ग-कोविद होते हैं । भिक्षुओ ! इस समय के जो श्रावक हैं वे वाद में मार्ग का अनुगमन करने वाले हैं ।

भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में यही भेद है ।

§ ७ पञ्चवर्गिय सुक्त (२१. २. १. ७)

अनित्य, दुःख, अनात्म का उपदेश

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् धाराणस्ती के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान् ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को आमन्त्रित किया ।

भिक्षुओ ! रूप अनात्म है । भिक्षुओ ! यदि रूप आत्मा होता तो यह दुःख का कारण नहीं बनता, और तब कोई ऐसा कह सकता, ‘मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा नहीं होवे ।’

भिक्षुओ ! क्योंकि रूप अनात्म है इसीलिये यह दुःख का कारण होता है, और कोई ऐसा नहीं कह सकता है, ‘मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा नहीं होवे ।’

भिक्षुओ ! वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान अनात्म है

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप अनित्य है या नित्य ?

अनित्य, भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख, और विपरिणामधर्मा है क्या उसे ऐसा समझना ठीक है कि ‘यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?’

नहीं भन्ते !

वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान नित्य है या अनित्य ?

मुक्ति को जान निर्बद्ध के किये विराग के किये तथा निर्बाण के किये प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं। जो सुप्रतिपन्न हैं वे इस विषय में प्रतिष्ठित होते हैं।

भिक्षुओ! जो भ्रमण या माह्वय इस प्रकार रूप को जान रूप की मुक्ति को जान रूप के निर्बद्ध स विराग से निरोध से तथा अनुपादान स विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त हुए हैं। जो यथार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे केवली हैं। जो केवली हो गये हैं उनके किये भँवर नहीं है।

भिक्षुओ! वेदना क्या है ?

भिक्षुओ! वेदना-काय छ हैं। बहुसंस्पर्शा वेदना मनःसंस्पर्शा वेदना। भिक्षुओ! इसे बदना करते हैं। स्पर्श के समुत्पन्न स वेदना का समुत्पन्न होता है। स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है। वही आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना के निरोध का मार्ग है।

जो बदना के प्रत्यय स सुख सीमन्तव्य होता है वह वेदना का आत्मा है। वेदना जो अल्प बुद्ध विपरिणामधर्मा है वह वेदना का दोष है। जो वेदना के प्रति उन्मत्तराग का प्रतीक हो जाना है वह बदना की मुक्ति है।

भिक्षुओ! जो भ्रमण या माह्वय इस प्रकार वेदना को जान।

भिक्षुओ! सजा क्या है ?

भिक्षुओ! संज्ञाकाय छ हैं। रूपसंज्ञा धर्मसंज्ञा। भिक्षुओ! इसी को संज्ञा करते हैं।

भिक्षुओ! जो भ्रमण या माह्वय इस प्रकार संज्ञा को जान।

भिक्षुओ! संस्कार क्या हैं ? भिक्षुओ! चेतनाकाय छ हैं। रूपसंभूतना धर्मसंभूतना। भिक्षुओ! इसी का संस्कार करते हैं। स्पर्श के समुत्पन्न से संस्कार का समुत्पन्न होता है।

भिक्षुओ! जो भ्रमण या माह्वय इस प्रकार संस्कारों को जान।

भिक्षुओ! विज्ञान क्या है ?

भिक्षुओ! विज्ञानकाय छ हैं। बहुविज्ञान सधोविज्ञान। भिक्षुओ! इसी को विज्ञान करते हैं। नामरूप के समुत्पन्न स विज्ञान का समुत्पन्न होता है। नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है। आर्य अष्टांगिक मार्ग विज्ञान के निरोध का मार्ग है।

विज्ञान के प्रत्यय से जो सुख सीमन्तव्य होता है वह विज्ञान का आत्मा है। विज्ञान जो अल्प बुद्ध विपरिणामधर्मा है वह विज्ञान का दोष है। जो विज्ञान के प्रति उन्मत्तराग का प्रतीक हो जाना है वह विज्ञान की मुक्ति है।

भिक्षुओ! जो भ्रमण या माह्वय विज्ञान को इस प्रकार जान निर्बद्ध के किये तथा निर्बाण के किये प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं। जो सुप्रतिपन्न हैं वे इस विषय में प्रतिष्ठित होते हैं।

भिक्षुओ! जो भ्रमण या माह्वय इस प्रकार विज्ञान को जान विज्ञान के निर्बद्ध स विज्ञान के निरोध से तथा अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त हुए हैं। जो यथार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे केवली हैं। जो केवली हो गये हैं उनके किये भँवर नहीं है।

भिक्षुओ! इसी प्रकार भिक्षु गाल वचनों में बुद्धक होता है।

भिक्षुओ! भिक्षु कर्म तीव्र प्रकार स परीक्षा करने बाका होता है ?

भिक्षुओ! भिक्षु धानु स परीक्षा करने बाका होता है। आपत्तन स परीक्षा करने बाका होता है। इतीवसमुत्पन्न स परीक्षा करने बाका होता है।

भिक्षुओ! वे ही ही भिक्षु तीव्र प्रकार स परीक्षा करन बाका होगा है।

भिक्षुओ! जो भिक्षु गाल वचनों में बुद्धक तथा तीव्र प्रकार स परीक्षा करने बाका होता है वह इस धर्म विषय में केवली सत्त्व सत्त्व करने बाका और अल्प बुद्धक कहा जाता है।

निर्वेद नहीं करते। महालि ! क्योंकि रूप में बड़ा दुःख और सुख का अभाव है, इसलिये सब रूप से निर्वेद को प्राप्त होते हैं, निर्वेद से विरक्त हो जाते हैं; विराग से विशुद्ध हो जाते हैं।

महालि ! सबों की विशुद्धि का यही हेतु=प्रत्यय है। इस तरह, हेतु=प्रत्यय से सब विशुद्ध हो जाते हैं।

[वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान के साथ भी ऐसा ही]

§ ९ आदित्त सुक्त (२१. २. १. ९)

रूपादि जल रहा है

श्रावस्ती ।

भिष्णुओ ! रूप जल रहा (=भादीस) है। वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान जल रहा है।

भिष्णुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक इसे समझ कर रूप से निर्वेद करता है, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान से निर्वेद करता है। निर्वेद से विरक्त हो जाता है, विराग से मुक्त हो जाता है, मुक्त होने से मुक्त हो गया—ऐसा जान होता है।

जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, भय और कुछ चाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है।

§ १०. निरुक्तिपथ सुक्त (२१. २. १. १०)

तीन निरुक्ति-पथ सदा एक-सा रहते हैं

श्रावस्ती ।

भिष्णुओ ! तीन निरुक्ति-पथ = अधिवचन पथ = प्रज्ञप्ति पथ बढ़ले नहीं हैं, पहले भी कभी नहीं बढ़ले थे और न आगे चलकर बढ़लेंगे। श्रमण, ब्राह्मण या विज्ञ पुरुष उसे उलट नहीं सकते हैं। कौन से तीन ?

भिष्णुओ ! जो रूप अतीत = निरुद्ध = विपरिणत हो गया, वह 'हुआ था' ऐसा जाना जाता है। वह 'अभी है' ऐसा जाना नहीं जाता। वह 'होगा' ऐसा भी नहीं जाना जाता।

जो वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

भिष्णुओ ! जो रूप अभी उत्पन्न = प्रादुर्भूत नहीं हुआ है, वह 'होगा' ऐसा जाना जाता है। 'वह है' ऐसा जाना नहीं जाता। 'वह था' ऐसा जाना जाता।

जो वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

भिष्णुओ ! जो रूप अभी उत्पन्न = प्रादुर्भूत हुआ है, वह 'है' ऐसा जाना जाता है। 'वह होगा' ऐसा जाना नहीं जाता। 'वह था' ऐसा जाना नहीं जाता है।

जो वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

भिष्णुओ ! परी तीन निरुक्ति पथ = अधिवचन-पथ = प्रज्ञप्ति-पथ बढ़ले नहीं हैं, पहले भी कभी नहीं बढ़ले थे और आगे चलकर भी नहीं बढ़लेंगे। श्रमण, ब्राह्मण या विज्ञ पुरुष उसे उलट नहीं सकते हैं।

भिष्णुओ ! जो उरफल (प्राण के रहने वाले) चरस और भ्रम्य अहेतुवादी, अक्रियवादी, नास्तिक जादी हैं, वे भी इन तीन निरुक्ति पथ = अधिवचन पथ = प्रज्ञप्ति-पथ को मान्य और अनिन्ध समझते हैं।

सो क्यों ? निन्दा और तिरस्कार के भय से।

उपय-चर्म समाप्त

अतिस्य मन्त्रे ।

ओ अतिस्य ई बह दुःख ई वा सुख ?

दुःख मन्त्रे !

ओ अतिस्य दुःख और विपरिधामधमो इ क्या उस वंसा समझना ठीक है कि यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

वहीं मन्त्रे !

मिथुभो ! इसमिय आ भी रूप—भर्तात बनागत बर्तमान् करपात्म भाव स्पृह सूक्ष्म हीन, प्रणीत दूर में वा निकट में—ई सभी यथापेता प्रजापूर्वक वंसा समझना चाहिये कि 'यह मेरा नहीं है यह मैं नहीं हूँ यह मेरा आत्मा नहीं है ।

ओ भी वेदना ; संका ; संस्कार --; विज्ञान ।

मिथुभा ! वंसा समझने वाला विद्वान् कार्यमात्रक रूप में निर्बेद करता है वेदना संका संस्कार विज्ञान में निर्बेद करता है । निर्बेद करने से बिरक्त हो जाता है । बिरक्त होने से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जान से विमुक्त हो गया—येमा शान होता है । अति क्षीय दुःख —येसा शान होता है ।

भगवान् यह बात । संगुह हो पंचवर्णीय मिथुभो ने भगवान् के कह कर अभितम्युन किया । इस चर्मोपदेश के किय जाने पर पंचवर्णीय मिथुभो का चित्त उपादान रहित हो भाभवों से मुक्त हो गया ।

ई ८ महालि सुत (२१ २ १ ८)

सत्यो की मुद्रि का हनु पूज कादयप का अहेतुन्याद

एक समय भगवान् सैनाली में महायम की कृत्वागार-धाळा में विहार करते थे ।

एक प्रजाति लिप्यति यहाँ भगवान् से बर्ही थापा और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बह गया ।

एक और बंद कर महालि लिप्यति भगवान् से बोला "मन्त्रे ! पुराण कादयप वंसा कहता है गणों के संस्कार के लिये कोई हेतु प्रायश्च नहीं है । बिना हेतुप्रायश्च के साथ संस्कार में पकते हैं । गणों की विमुक्ति के लिये कोई हेतु प्रायश्च नहीं है । बिना हेतुप्रायश्च के साथ विमुक्त होत हैं । हममें भगवान् का क्या कहना है ?

महालि ! गणों के संस्कार के लिये हेतुप्रायश्च है । हेतुप्रायश्च से ही गण संस्कार में पकत हैं । गणों की विमुक्ति के लिये हेतुप्रायश्च है । हेतुप्रायश्च से ही गण विमुक्त होते हैं ।

महा ! गणों के संस्कार के लिये क्या हेतुप्रायश्च है ? अर्ध हेतुप्रायश्च संस्कार में बह जन है ।

महालि ! यदि वह वेदक दुःख ही दुःख और सुख से सर्वदा रहित होता तो मन्त्र रूप में रचना नहीं होत । महालि ! सर्वोद रूप में बहा सुख ही तथा दुःख नहीं है ; इतलिये मन्त्र रूप में रचना होती है रत्न ही जन्मे से रत्नका संयोग करने है, संयोग से क्लेश में बह जनते हैं ।

महालि ! गणों के संस्कार का बह हेतुप्रायश्च है । हम तरह भी हेतुप्रायश्च से ल व संस्कार में पकते हैं ।

[वेदना संका संस्कार विज्ञान के साथ भी किया ही]

मन्त्रे गणों की विमुक्त का हेतुप्रायश्च क्या है ? हेतुप्रायश्च से गण कैसे विमुक्त होते हैं ?

महालि ! यदि वह वेदक सुख ही सुख और दुःख से सर्वदा रहित होता तो मन्त्र रूप में

निर्वेद नहीं करते। महालि ! क्योंकि रूप में वधा दुःख और सुख का अभाव है, इसलिये सत्य रूप से निर्वेद को प्राप्त होते हैं, निर्वेद से विरक्त हो जाते हैं, विराग से विशुद्ध हो जाते हैं।

महालि ! सर्वों की विशुद्धि का यही हेतु=प्रत्यय है। इस तरह, हेतु=प्रत्यय से सत्य विशुद्ध हो जाते हैं।

• [वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान के साथ भी ऐसा ही]

§ ९. आदिच सुक्त (२१. २. १. ९)

रूपादि जल रहा है

श्रावस्ती ।

• भिक्षुओ ! रूप जल रहा (=आदीप्त) है। वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान जल रहा है।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक इसे समझ कर रूप से निर्वेद करता है, वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान से निर्वेद करता है। निर्वेद से विरक्त हो जाता है, विराग से मुक्त हो जाता है, मुक्त होने से मुक्त हो गया—ऐसा ज्ञान होता है।

जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, भय और कुछ चाकी नहीं बचा—ऐसा ज्ञान लेता है।

§ १०. निरुक्तिपथ सुक्त (२१. २. १. १०)

तीन निरुक्ति-पथ सदा एक-सा रहते हैं

श्रावस्ती ।

• भिक्षुओ ! तीन निरुक्ति-पथ = अधिवचन पथ = प्रज्ञप्ति पथ बदले नहीं हैं, पहले भी कभी नहीं बदले थे और न आगे चलकर बदलेंगे। श्रमण, ब्राह्मण या विज्ञ पुरुष उसे उलट नहीं सकते हैं। कौन से तीन ?

भिक्षुओ ! जो रूप अतीत = निरुद्ध = विपरिणत हो गया, वह 'हुआ था' ऐसा जाना जाता है। वह 'अभी है' ऐसा जाना नहीं जाता। वह 'होगा' ऐसा भी नहीं जाना जाता।

जो वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

भिक्षुओ ! जो रूप अभी उत्पन्न = प्रादुर्भूत नहीं हुआ है, वह 'होगा' ऐसा जाना जाता है। 'वह है' ऐसा जाना नहीं जाता। 'वह था' ऐसा जाना जाता है।

जो वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

भिक्षुओ ! जो रूप अभी उत्पन्न = प्रादुर्भूत हुआ है, वह 'है' ऐसा जाना जाता है। 'वह होगा' ऐसा जाना नहीं जाता। 'वह था' ऐसा जाना नहीं जाता है।

जो वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

भिक्षुओ ! यही तीन निरुक्ति पथ = अधिवचन-पथ=प्रज्ञप्ति-पथ बदले नहीं हैं, पहले भी कभी नहीं बदले थे और आगे चलकर भी नहीं बदलेंगे। श्रमण, ब्राह्मण या विज्ञ पुरुष उसे उलट नहीं सकते हैं।

भिक्षुओ ! जो उत्कल (मानस के रहने वाले) वस्स और भज्ज अहेतुवादी, अक्रियवादी, नास्तिक-वादी हैं, वे भी इन तीन निरुक्ति-पथ=अधिवचन पथ=प्रज्ञप्ति-पथ को मान्य और अनिन्द्य समझते हैं।

तो क्यों ? निन्दा और तिरस्कार के भय से।

उपय-वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

अर्हत वर्ग

§ १ उपादिय सुच (०१ ० २ १)

उपादान के त्याग से मुक्ति

भावस्ती ।

तब कोई भिक्षु वहाँ भगवान् के वहाँ ध्याना और भगवान् का अभिवादन कर एक और बैठ गया ।

एक और बैठ वह भिक्षु भगवान् से बोला 'मन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप में धर्मोपदेश करें जिसे सुनकर मैं एकान्त में अच्छे धममत्त आतापी और प्रहितारम हो बिहार करूँ ।

भिक्षु ! उपादान में पचा हुआ मार के कण्ठन से बँधा रहता है, उपादान को छोड़ देनावाला उस पापी से मुक्त हो जाता है ।

भगवान् ! जान किया । सुगत ! जान किया ।

भिक्षु ! मरे संक्षेप से बताये राब का तुमने बिस्तार से कर्ष क्या समझा ?

मन्ते ! कप के उपादान में पचा हुआ मार के कण्ठन से बँधा रहता है, कप के उपादान को छोड़ देनावाला उस पापी से मुक्त हो जाता है ।

बैधना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मन्ते ! भगवान् के संक्षेप से बताये राब का हमने बिस्तार से पढ़ी कर्ष समझा ह ।

भिक्षु ! ठीक है । तुम्हें वही समझना चाहिये ।

तब वह भिक्षु भगवान् के कहे का अभिमन्त्रण कर भगवान् को प्रणाम कर खड़ा गया ।

तब उस भिक्षु ने एकान्त में अच्छे धममत्त आतापी और प्रहितारम हो बिहार करते हुए धर्म ही मध्यमार्थ के उस अन्तिम फल को प्राप्त कर बिहार करने लगा जिसके किये कुरुपुत्र मर्कामाँति घर में बेधर हो प्रकजित हो जाते हैं । जाति क्षीण हुई — देया जान देता है ।

वह भिक्षु अर्हता में एक हुआ ।

§ २ मन्त्रमान सुच (०१ २ ० २)

मार से मुक्ति कैसे ?

भावस्ती ।

एक और बैठ वह भिक्षु भगवान् से बोला "मन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप में धर्मोपदेश करें ।

भिक्षु ! मानते हुये वहाँ मार के कण्ठन में बँधा रहता है । मानना छोड़ देना स पापी के कण्ठन से मुक्त हो जाता है ।

मन्ते ! कप का मानते हुये वहाँ मार के कण्ठन में बँधा रहता है । [शीघ्र कण्ठनवाले घर के ममान ही ।]

§ ३. अभिनन्दन सुत्त (२१. २. २. ३)

अभिनन्दन करते हुए मार के बन्धन में

श्रावस्ती ।

भिक्षु ! अभिनन्दन करते हुये कोई मार के बन्धन में बंधा रहता है ।

[श्रेय ऊपर वाले सूत्र के ममान]

§ ४. अनिच्च सुत्त (२१. २. २. ४)

छन्द का त्याग

श्रावस्ती ।

भिक्षु ! जो अनिच्य है उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये ।

भगवान् । समझ लिया । सुगत । समझ लिया ।

भिक्षु ! मेरे इस सक्षेप से कहे गये का तुमने विस्तार से अर्थ कैसे समझा ?

भन्ते ! रूप अनिच्य है । उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये । वेदना , सज्जा ,

सस्कार , विज्ञान ।

वह भिक्षु अर्हंतों में एक हुआ ।

§ ५. दुक्ख सुत्त (२१. २. २. ५)

छन्द का त्याग

श्रावस्ती ।

भिक्षु ! जो दुःख है उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये ।

वह भिक्षु अर्हंतों में एक हुआ ।

§ ६. अनत्त सुत्त (२१. २. २. ६)

छन्द का त्याग

श्रावस्ती ।

भिक्षु ! जो अनात्म है उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये ।

वह भिक्षु अर्हंतों में एक हुआ ।

§ ७. अनत्तनेय्य सुत्त (२१. २. २. ७)

छन्द का त्याग

श्रावस्ती ।

भिक्षु ! जो अनात्मनीय है उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये ।

वह भिक्षु अर्हंतों में एक हुआ ।

§ ८. रजनीयसण्डित सुत्त (२१. २. २. ८)

छन्द का त्याग

श्रावस्ती ।

भिक्षु ! जो राग उत्पन्न करनेवाली चीज है उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर दो ।

§ ९ राघ सुप्त (२१ २ ० ९)

अहंकार का नाश कैसे ?

आपस्ती ।

तब आयुष्मान् राघ जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन करते एक और बैठ राघ ।

एक और बैठ आयुष्मान् राघ भगवान् से थाल भक्त ! क्या जान और देखकर हम विज्ञान-युक्त शरीर में तथा बाहर सभी निमित्तों में अहङ्कार ममङ्कार और मानानुगत नहीं होते हैं ?

राघ ! जो रूप है—अतीत अनागत वर्तमान भीतर बाहर स्थूल सूक्ष्म हीन प्रकीर्ण वृ में था निरुद्ध में—सभी 'मेरा नहीं है मैं नहीं हूँ, मग आत्मा नहीं है—यथा यथापेक्षः प्रत्यक्षक रेखा है ।

देवता ; रम्या ; भङ्गकर ; विनाश ।

राघ ! इसे जान और देखकर हम विज्ञान-युक्त शरीर में तथा बाहर सभी निमित्तों में अहङ्कार ममङ्कार और मान-युक्त नहीं होते हैं ।

आयुष्मान् राघ अहंकारों में एक हुए ।

§ १० सुराघ सुप्त (२१ ० ० १०)

अहंकार से चित्त की विमुक्ति कैसे ?

आपस्ती ।

तब आयुष्मान् सुराघ भगवान् से बोके 'मन्ते ! क्या जान और देखकर हम विज्ञान-युक्त शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहङ्कार ममङ्कार और मान से रहित हो चित्त विमुक्त होता है ?

सुराघ ! जो रूप है सभी 'मेरा नहीं है —यथा ज्ञान और देवदत्त अनादान रहित हो कोई विमुक्त होता है ।

बद्धता ; संज्ञा ; सस्मर ; विज्ञान ।

सुराघ ! इसे जान और देखकर हम विज्ञान-युक्त शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहङ्कार ममङ्कार और मान से रहित हो चित्त विमुक्त होता है ।

आयुष्मान् सुराघ अहंकारों में एक हुए ।

अहंत्तु धर्म स्वमात

तीसरा भाग

स्वज्जनीय वर्ग

§ १. अस्ताद सुत्त (२१. २ ३. १)

आस्वाद का यथार्थ गान

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! अविद्वान् पृथक्जन रूप के आस्वाद, अलीनव (=द्रोप) और मोक्ष को यथार्थत नहीं जानता है ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक रूप के आस्वाद, द्रोप और मोक्ष को यथार्थत जानता है ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

§ २. पठम समुदय सुत्त (२१ २ ३ २)

उत्पत्ति का ज्ञान

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! अविद्वान् पृथक्जन रूप के समुदय, अस्त, आस्वाद, द्रोप और मोक्ष को यथार्थत नहीं जानता है ।

विद्वान् आर्यश्रावक यथार्थत जानता है ।

§ ३. दुतिय समुदय सुत्त (२१. २ ३. ३)

उत्पत्ति का ज्ञान

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक रूप के समुदय, अस्त, आस्वाद, द्रोप और मोक्ष को यथार्थत जानता है ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

§ ४. पठम अरहन्त सुत्त (२१ २ ३ ४)

अर्हत् सर्वश्रेष्ठ

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! रूप अनित्य है । जो अनित्य है वह दुःख है । जो दुःख है वह अनात्म है । जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्म है । इसे यथार्थत प्रज्ञापूर्वक समझना चाहिये ।

वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

मिथुभो ! विद्वान् आर्यभाषक रूप में निर्वेद करता है । वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञाप ।

निर्वेद से विरक्त हो जाता है । विराग से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जाने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान होता है । अति क्षीण हुई यह ज्ञान कृता है ।

मिथुभो ! जितने सत्यापायन मन्त्राग्र हैं उनमें अर्हत् ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम है ।

मगबाहू यह बोले । यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले :—

अर्हत् बने मुझी हैं उन्हे तृप्या नहीं है ।

अस्मि-मात्र समुपिच्छ हो गया है मोह-बाहू कट गया है ॥१॥

ज्ञान परमार्थ-प्राप्त महामुक्त भगवान् ।

कोक में अनुपकित स्वप्न चित्तवाले ॥२॥

पाँच दृग्मूर्तियों को जान सात धर्मों में विचरनेवाले ।

परमसतीव सत्यरूप बुद्ध के प्यारे पुत्र ॥३॥

सात रथों से सम्यक् तीन शिक्षाओं में सिद्धित ।

महावीर विचरते हैं जिनके मय भेरव प्रहील हो गये हैं ॥४॥

बुरा बदलों से सम्यक् महा-भाग समाहित ।

ब कोक में छोड़ है उन्हे तृप्या नहीं है ॥५॥

अशौच्य नष्ट प्राप्त अस्मितम जन्म बाहू ।

प्रह्वपथ का घो सात है उसे अपना देने वाले ॥६॥

हैत में अकर्मित पुनर्जन्म से विमुक्त ।

ज्ञान भूमिको प्राप्त वे कोक के विजयी हैं ॥७॥

ऊपर नीचे ठेके कहीं भी उन्हे आसक्ति नहीं है ।

वे सिंह नाद करते हैं कोक के अनुत्तर बुद्ध ॥८॥

ॐ ५ दुसिय अरहन्त सुप्त (२१ २ ३ ५)

अर्हत् सर्वश्रेष्ठ

आपस्ती ।

मिथुभो ! रूप अतित्व है । जो अतित्व है वह दुःख है । जो दुःख है वह अकारण है । जो अकारण है वह न तो मेरा है न मैं हूँ, न मेरा कारण है । इसे अपार्षता प्रज्ञा पूर्वक देख लेना चाहिये ।

वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मिथुभो ! विद्वान् आर्यभाषक रूप में निर्वेद करता है । वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान में निर्वेद करता है ।

निर्वेद करत हुए विरक्त हो जाता है । विरक्त हो विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान होता है । अति क्षीण हुई — ज्ञान कृता है ।

मिथुभो ! जितने सत्यापायन मन्त्राग्र हैं उनमें अर्हत् ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम है ।

ॐ ६ पठम सीह सुप्त (२१ २ ३ ६)

बुद्ध का उपपन्न सुप्त बंधता भी भयभीत हो जाते हैं

आपस्ती ।

मिथुभो ! जगताय सिंह गर्ज को अपनी गर्ज ने विजयता है । गर्ज से विरक्त पर ज्ञान

लेता है। जंभाई लेकर अपने चारों ओर देखता है। अपने चारों ओर देखकर तीन बार गर्जना करता है। तीन बार गर्जना कर शिकार के लिये निकल जाता है।

भिक्षुओं ! जितने जानवर सिंह की गरजना सुनते हैं सभी भय = संवंग = संत्रास को प्राप्त होते हैं। बिल में रहनेवाले अपने बिल में छुस जाते हैं। जल में रहनेवाले जल में पैठ जाते हैं। जंगल-झाड़ में रहनेवाले जंगल-झाड़ में पठ जाते हैं। पक्षी आकाश में उड़ जाते हैं।

भिक्षुओं ! राजा के हाथी जो गाँव, कस्बे या राजधानी में बंधे रहते हैं वे भी अपने बड़ बन्धन को तोड़-ताड़, दर से पेशाब-पाखाना करते जिघर-तिघर भाग खड़े होते हैं।

भिक्षुओं ! जानवरों में मृगराज सिंह का ऐसा तेज और प्रताप है।

भिक्षुओं ! इसी तरह, अर्हत्, सम्मक्-सम्बुद्ध, विद्या-चरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, पुरुषों को व्रमन करने में सारथी के समान, देवताओं और मनुष्यों के गुरु भगवान् बुद्ध लोक में जन्म लेकर धर्म का उपदेश करते हैं। यह रूप है। यह रूप का समुदय है। यह रूप का अस्त हो जाना है। यह वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान।

भिक्षुओं ! जो दीर्घायु, वर्णवान्, सुख-सम्पन्न और ऊपर के विसागं में चिरकाल तक बने रहने वाले देव हैं वे भी बुद्ध के धर्मोपदेश सुनकर भय को प्राप्त होते हैं। अरे ! हम अनित्य होते हुए भी अपने को नित्य समझे बैठे थे। अरे ! हम अधुव होते हुए भी अपने को ध्रुव समझे बैठे थे। अरे ! हम अशाश्वत होते हुए भी अपने को शाश्वत समझे बैठे थे। अरे ! हम अनित्य = अधुव = अशाश्वत हो सत्काय के चौर अविद्या-मोह में पड़े थे।

भिक्षुओं ! देवताओं के साथ इस लोक में बुद्ध ऐसे तेजस्वी और प्रतापी हैं।

भगवान् यह बोले। यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले —

जब बुद्ध अपने ज्ञान-बल से धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हैं,

देवताओं के साथ इस लोक के सर्वश्रेष्ठ गुरु ॥१॥

सत्काय का निरोध और सत्काय की उत्पत्ति,

और आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, दुःखों को शान्त करनेवाला ॥२॥

जो भी दीर्घायु देव हैं, वर्णवान्, यशस्वी,

वे डर जाते हैं, जैसे सिंह से दूसरे जानवर ॥३॥

क्योंकि ये सत्काय के फेर में पड़े हैं।

अरे ! हम अनित्य हैं।

बसो विमुक्त अर्हत् के उपदेश को सुनकर ॥४॥

§ ७. दुतिय सीह सुत्त (२१ २. ३ ७)

देवता दूर ही से प्रणाम करते हैं

श्रावस्ती **।

भिक्षुओं ! जो धमण या प्राहण अपने अनेक पूर्व जन्मों की बातें याद करते हैं, वे सभी पाँच उपादान स्कन्धों को या उनमें किसी एक को याद करते हैं।

भूतकाल में मैं ऐसा रूपवाला था—यह याद करते हुये भिक्षुओं ! वह रूप ही को याद करता है। भूतकाल में मैं ऐसी वेदना वाला था—यह याद करते हुये भिक्षुओं ! वह वेदना ही को याद करता है। ऐसी सज्ञा वाला। ऐसे सस्कारों वाला, ऐसे विज्ञान वाला।

भिक्षुओं ! रूप क्यों कहा जाता है ? भिक्षुओं ! क्योंकि यह प्रभावित होता है, इसी से 'रूप' कहा जाता है। किससे प्रभावित होता है ? शक्ति से प्रभावित होता है। उष्ण से प्रभावित होता है।

मिथुनो ! विहाय् धार्यधातक रूप में निर्बेद करता है । वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

निर्बेद से बिरक्त हो जाता है । विराग स विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो जाने से विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है । धाति क्षीय हुई 'बह जान सेता है ।

मिथुनो ! कितने सत्त्वाभास भवात्त है उनमें बर्हत् ही सर्वभेद बीर सार्वात्त है ।

भगवाद् यह बाके । यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले —

बर्हत् बने सुखी है उम्हें तुल्या नहीं है ।

अस्मि-भास समुत्पिच्छ हो गया है मोह-जाळ बट गया है ॥३॥

दान्त परमार्थ प्राप्त मङ्गभूत जनाध्वज ।

कोक में अयुपकित स्वच्छ चित्तवाके ॥२॥

पाँच सङ्गों को जान सात धर्मों में विचरनेवाके ।

परासर्गाव सत्युत्प बुद्ध के प्यारे पुत्र ॥१॥

सात रत्नों से सम्यक् तीन सिद्धांतों में सिद्धित ।

महावीर विचरते हैं बिबके भय भेरव प्राहीण हो गये हैं ॥४॥

बस बर्हो स सम्यक् महा भाग समाहित ।

ये लोक में भेद है उम्हें तुल्या नहीं है ॥५॥

असीव्य यह मास अस्मिन् अस्मिन् बाके ।

मङ्गलार्थ कर जो सार है उस भयना खेने बाके ॥६॥

द्वैत में अङ्गमित पुनर्नव से विमुक्त ।

दान्त भूमिको प्राप्त वे लोक के विक्रपी हैं ॥७॥

करर बीबे रेरे कही भी उम्हें आसक्ति नहीं है ।

वे सिंह-माद् करते हैं लोक के अनुत्तर बुद्ध ॥८॥

§ ५ दुविय अरहन्त सुत्त (२१ २ ३ ५)

बर्हत् सर्वभेद

धावस्ती ।

मिथुनो ! रूप अवित्य है । जो अनित्य है वह दुःख है । जो सुख है वह ज्ञातव्य है । जो अज्ञातव्य है वह न जो भेदा है न में हैं, न भेदा अज्ञात है । इसे सत्त्वार्थता महा-दूर्तक देय सेना आदिने । वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ।

मिथुनो ! विहाय् धार्यधातक इसे देक रूप में निर्बेद करता है । वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान में निर्बेद करता है ।

निर्बेद करते हुए बिरक्त हो जाता है । बिरक्त हो विमुक्त हो जाता है । विमुक्त हो विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है । धाति क्षीय हुई —जान सेता है ।

मिथुनो ! कितने सत्त्वाभास भवात्त है उनमें बर्हत् ही सर्वभेद बीर सार्वात्त है ।

§ ६ पठम सीह सुत्त (२१ २ ३ ६)

सुत्त का अपवाद सुग वेधता भी मयमीत हो माते है

धावस्ती ।

-- मिथुनो ! अगस्त्य सिंह सार्थ को अपनी मूर्ध से निकरता है । मूर्ध से निकल कर जैभाई

किस्को छोड़ना है, बदोरता नहीं, दुष्ठा देता है, सुलगाता नहीं ?

रूप को, वेदना को, संज्ञा को, संस्कारों को; विज्ञान को ।

भिक्षुओ ! यह समझ कर, विद्वान् आर्यश्रावक रूप से भी निर्वेद करता है; वेदना से भी, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान । निर्वेद करने में विरक्त हो जाता है । विरक्त हो विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने पर 'विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है । जाति क्षीण हुई —ज्ञान होता है ।

भिक्षुओ ! इन्हीं को कहते हैं कि न छोड़ता है और न बदोरता है, न दुष्ठाता है, न सुलगाता है । किस्को न छोड़ता है आर न बदोरता है, न दुष्ठाता है, न सुलगाता है ? रूप को, वेदना को, संज्ञा को, संस्कारों को, विज्ञान को ।

भिक्षुओ ! इस तरह विट्कल बुलाकर विमुक्तचित्त हो गये भिक्षु को इन्द्र, ब्रह्मा, प्रजापति आदि सभी देव दूर ही से प्रणाम करते हैं ।

हे पुरुष-श्रेष्ठ ! आपने नमस्कार हे,

हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ।

जिसने हम भी उसे जाने,

जिसके लिये आप ध्यान करते हैं ॥

§ ८. पिण्डोल सुत्त (२१ २ ३, ८)

लोभी की मुर्दाई से तुलना

एक समय भगवान् शाक्य जनपद में कपिलवस्तु के निशोधाराम में विहार करते थे ।

तब, भगवान् किसी कारणवश भिक्षु-सभ को अपने पास से हटा सुवह में पहन और पात्र-जीवर ले कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये पड़े ।

भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के उपरान्त दिन के विहार के लिये जहाँ महाजन है वहाँ गये, और एक तरुण विद्य वृक्ष के नीचे बैठ गये ।

तब, पृक्कान्त में ध्यान करते समय भगवान् के चित्त में यह चित्तक उठा —मैंने भिक्षुसभ को स्थापित किया है । यहाँ कितने नव-प्रव्रजित भिक्षु भी हैं जो इस धर्मविनय में अभी तुरत ही आये हैं । मुझे न देखने से शायद उनके मन में कुछ अन्यथात्व हो, जैसे माता को नहीं देखने से तरुण वस्त्र के मन में अन्यथात्व होता है, जैसे पानी नहीं मिलने से अभी तुरत का लगाया वीज अन्यथात्व को प्राप्त होता है । तो क्यों तू मैं भिक्षु-सभ को स्वीकार लूँ जैसे मैं पहले से कर रहा हूँ ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा अपने चित्त से भगवान् के चित्त को जान—जैसे बलवान् पुरुष समेटी धोड़ को फैला वे और फैलाई बाँह को समेट ले वैसे—ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सम्मुख प्रगट हुये ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा उपरनी की धृक् कन्धे पर सन्हाल भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर बोले—भगवान् ! ऐसी ही बात है । सुगत ! ऐसी ही बात है । भन्ते ! भगवान् ने ही भिक्षु-सभ को स्थापित किया है ।

यहाँ कितने नव-प्रव्रजित भिक्षु भी हैं जो इस धर्मविनय में अभी तुरत ही आये हैं । भगवान् को न देखने से शायद उनके मन में अन्यथात्व हो, जैसे माता को नहीं देखने से तरुण वस्त्र के मन में अन्यथात्व होता है, जैसे पानी नहीं मिलने से अभी तुरत का लगाया वीज अन्यथात्व को प्राप्त होता है ।

भन्ते ! भगवान् भिक्षुसभ का अभिनन्दन करें । भन्ते ! भगवान् भिक्षुसभ का अभिनन्दन करें । जैसे भगवान् भिक्षुसभ को पहले से स्वीकार कर रहे हैं, वैसे ही अभी भी स्वीकार कर लें ।

भगवान् ने लुप रह कर स्वीकार कर लिया ।

वित्तको प्रीउता है, वटोरता नहीं , बुझा देता है, सुलगाता नहीं ?

रूप को , वेदना को , सज्ञा को , संस्कारों को , विज्ञान को... ।

भिक्षुओ ! यह समझ कर, विद्वान् आर्यभ्रायक रूप में भी निर्देह करता है, वेदना से भी ; सज्ञा , सम्कार , विज्ञान । निर्देह करने से विरक्त हो जाता है । विरक्त हो विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने पर 'विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है । जाति क्षीण हुई —ज्ञान लेता है ।

भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं कि न प्रीउता है और न वटोरता है , न बुझाता है, न सुलगाता है । वित्तको न प्रीउता है और न वटोरता है , न बुझाता है, न सुलगाता है ? रूप को , वेदना को , सज्ञा को , संस्कारों को , विज्ञान को ।

भिक्षुओ ! इस तरह वित्तकूल बुझाकर विमुक्तचित्त हो गये भिक्षु को इन्द्र, ब्रह्मा, प्रजापति आदि सभी देव वृह ही से प्रणाम करते हैं ।

हे पुरुष-श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार हैं,

हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार हैं ।

जिये हम भी उसे जाने ,

जिसके लिये आप ध्यान करते हैं ॥

§ ८. पिण्डोल सुत्त (२१. २ ३. ८)

लोभी की मुर्दाई से तुलना

एक समय भगवान् शाक्य जनपद में कपिलवस्तु के निग्रोधारास में विहार करते थे ।

तब, भगवान् किसी कारणवश भिक्षु-सघ को अपने पास से हटा सुगत में पहन और पात्र-चीवर ले कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये पड़े ।

भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के उपर नव दिन के विहार के लिये जहाँ महावन है वहाँ गये, और एक तरुण विल्व वृक्ष के नाँचे बैठ गये ।

तब, एकान्त में ध्यान करते समय भगवान् के चित्त में यह वितर्क लठा —जैसे भिक्षुसघ को स्थापित किया है । यहाँ कितने नव-प्रव्रजित भिक्षु भी हैं जो इस धर्मधिनय में अभी तुरत ही आये हैं । मुझे न देखने से शायद उनके मन में कुछ अन्यथात्व हो, जैसे माता को नहीं देखने से तरुण वत्स के मन में अन्यथात्व होता है, जैसे पानी नहीं मिलने से अभी तुरत का लगाया बीज अन्यथात्व को प्राप्त होता है । तो क्यों न मैं भिक्षु-सघ को स्वीकार लूँ जैसे मैं पहले से कर रहा हूँ ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा अपने चित्त से भगवान् के चित्त को जान—जैसे बलवान् पुरुष समेटे बोहो को फेला दे और फेलाई बोहो को समेट ले वैसे—ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सम्मुख प्रगट हुये ।

तब, सहस्रपति ब्रह्मा उपरनी को एक कन्धे पर सम्हाल भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर बोले —भगवान् ! ऐसी ही बात है । सुगत ! ऐसी ही बात है । भन्ते ! भगवान् ने ही भिक्षु-सघ को स्थापित किया है ।

यहाँ कितने नव-प्रव्रजित भिक्षु भी हैं जो इस धर्मधिनय में अभी तुरत ही आये हैं । भगवान् को न देखने से शायद उनके मन में अन्यथात्व हो, जैसे माता को नहीं देखने से तरुण वत्स के मन में अन्यथात्व होता है, जैसे पानी नहीं मिलने से अभी तुरत का लगाया बीज अन्यथात्व को प्राप्त होता है ।

भन्ते ! भगवान् भिक्षुसघ का अभिनन्दन करें । भन्ते ! भगवान् भिक्षुसघ का अभिनन्दन करें ।

जैसे भगवान् भिक्षुसघ को पहले से स्वीकार कर रहे हैं, वैसे ही अभी भी स्वीकार कर लें ।

भगवान् ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया ।

भिक्षुओं ! दुर्मा से ऐसा समझने वाला .. फिर जन्म को नहीं प्राण करता है ।

§ ९. पारिलेख्य सुत्त (२१ २ ३. ९)

आश्रवों का क्षय कैसे ?

एक समय भगवान् कौशाग्र्यी के घोषिताराम ने विहार करने थे ।

तब, भगवान् पूर्वार्द्ध समय पात्र और पात्र-चीवर ले कौशाग्र्यी में भिक्षाटन के लिये पड़े । कौशाग्र्यी में भिक्षाटन करके लौट, भोजन कर लेने के बाद स्वयं अपने आसन लपेट, पात्र और चीवर ले, किसी सहायक को बिना कुछ कहे और भिक्षु-सघ से भी बिना मिले बिल्कुल अकेले रमत के लिये चल पड़े ।

तब, भगवान् के चले जाने के कुछ ही वर बाद कोई भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आया । आकर आयुष्मान् आनन्द से बोला—आयुस आनन्द ! अभी तुरत भगवान् स्वयं अपने आसन लपेट, पात्र और चीवर ले, किसी सहायक को बिना कुछ न रहे और भिक्षु-सघ से भी बिना मिले बिल्कुल अकेले रमत के लिये निकल गये हैं । आयुस ! ऐसे समय भगवान् अकेल्या विहार करना चाहते हैं, अतः किसी को उनके पीछे-पीछे हो लेना अच्छा नहीं ।

तब, भगवान् रमत (= चारिण) लगाते हुये क्रमशः वहाँ पहुँचे जहाँ पारिलेख्यक है । वहाँ भगवान् पारिलेख्यक में भद्रशाल वृक्ष के नीचे विहार करने लगे ।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ पहुँचे, और कुण्ड-समाचार पूछ कर एक ओर बैठ गये । गुरु ओर बैठ, ये भिक्षु आयुष्मान् आनन्द से बोले—आयुस आनन्द ! भगवान् के मुँह से धर्म सुने बहुत दिन बीत गये । यही इच्छा हो रही है कि फिर भी भगवान् के मुँह से धर्म सुनें ।

तब, आयुष्मान् आनन्द उन भिक्षुओं को साथ ले पारिलेख्यक में भद्रशाल वृक्ष के नीचे वहाँ भगवान् विहार कर रहे थे वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओं को भगवान् ने धर्मोपदेश कर दिखा दिया, चतला दिया, उल्साह से भर दिया और पुलकित कर दिया ।

उस समय किसी भिक्षु के चित्त में ऐसा वितर्क उठा—क्या जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है ?

तब, भगवान् ने अपने चित्त से उस भिक्षु के चित्त के वितर्क को जान भिक्षुओं को आत्मनिवृत्त किया—भिक्षुओं ! मैंने विश्लेषण करके चतला दिया कि धर्म क्या है, चार स्मृति-प्रस्थान क्या हैं, चार सम्यक प्रधान क्या हैं, चार ब्रह्मि-पाव क्या हैं, पाँच इन्द्रियों क्या हैं, पाँच बल क्या हैं, सात बोधयज्ञ क्या हैं, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग क्या है । भिक्षुओं ! मैंने इस प्रकार विश्लेषण कर धर्म समझा दिया है । भिक्षुओं ! तो भी, एक भिक्षु के चित्त में ऐसा वितर्क उठा है—क्या जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है ?

भिक्षुओं ! क्या जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है ?

भिक्षुओं ! कोई अज्ञ = पृथक्जन = आर्य सत्त्वों को न समझने वाला सत्पुरुषों के धर्म में अविनीत रूप को आत्मा करके जानता है । भिक्षुओं ! ऐसा जो जानना है वह सस्कार कहलाता है । उस सस्कार का क्या निदान = समुदय = जाति = प्रभव है ?

भिक्षुओं ! अधिष्ठा-पूर्वक सत्पर्श से जो वेदना होती है उससे अज्ञ=पृथक्जन को तृष्णा उत्पन्न होती है । उसी से सस्कार पैदा होता है । भिक्षुओं ! इस तरह, वह सस्कार भी अनित्य, सरकृत और किसी कारण से उपपन्न होने वाला है । वह तृष्णा भी अनित्य, सस्कृत और किसी कारणसे उत्पन्न होने

तब यह स्पष्टि प्रज्ञा भगवान् की स्वीकृति को जान भगवान् का अभिवादन और प्रवृत्ति का कर बड़ी अन्तर्धान हो गये ।

तब साँझ को प्यार से उठ भगवान् बहों निमोधाराम या बहों गये और बिछे शासन पर बैठ गये । तब भगवान् ने अपने अङ्घ्रि-बन्ध से पूना किया कि मारा भिक्षुसंघ एक साथ बड़े प्रेम से भगवान् के सम्मुख जा उपस्थित हुआ । वे भिक्षु भगवान् के पास आ अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक बार बैठ हुये उन भिक्षुओं से भगवान् बोले—

भिक्षुओ ! यह जो मिष्टान्त करके बीजा है सो सभी बीजिकाओं में हीन है ; किन्तु, तुम अपने हाथ में पात्र से सारे मात का छाँड़ मिष्टान्त करके फिरते हो । भिक्षुओ ! यह कुत्तुपुत्र अपने किसी उद्देश्य के कारण ही पूना करते हैं । वे किसी राजा या किसी ओर से इच्छित हाकर पैना नहीं करते व तो किसी और मय से और न किसी दूसरी बीजिका न मिष्ठाने के कारण ही । बल्कि खम्म जरा मृदु, सोक रागा पीदगा हु पा वामनस्य और उपाचार्य (नरोशामी) से मुक्त हो जान के लिए ही वे पूना प्रताचरण करते हैं जिसमें हमें इस विद्याक कुन्दरासि का अन्त निक बाप । भिक्षुओ ! कुत्तुपुत्र पत्नी महायात्रीका को संकर प्रकृतित होता है ।

यदि वह (कुत्तुपुत्र) कामी भोग बिकास में तीव्र राग करमेबाका गिर हुए चित्तबाका होपपूर्ण संस्पर्शबाका मृदु स्मृतिबाका अस्पृश्य अममाहित विद्यान्त चित्तबाका और अस्तमेत्स्मिन् हो तो वे भिक्षुओ ! वह हमराज में चँको हुई उस बच्ची कउपी के समान है जो दोनों ओर से जकी हुई और बीच में मन्गरी सगी हुई है या न गौं में भार न तो जगक ही में कउपी के नाम में आ सकती है । वह मृदस्य के माग से भी बंधित रहता है और अपने अमन भाव को भी नहीं बुर कर सकता है ।

भिक्षुओ ! तीव्र अनुदास (अपात्र) चितक है—(१) काम चितक (२) उपाचार्य चितक और (३) विहिमा-चितक । भिक्षुओ ! यह तीन चितक बहों विस्तृत मिष्ट हो जते हैं ? पार स्पृति प्रस्थाओं में सुप्रतिष्ठित या अतिमिष्ट समाधि के अस्पृश्य चित में ।

भिक्षुओ ! अतः तुम्हें हम अतिमिष्ट समाधि की भावना करनी चाहिए । भिक्षुओ ! हम समाधि की धानना तथा अनुदास का कर्म महात् है ।

भिक्षुओ ! हो (मिष्टान्त) दृष्टिओ है; (१) भव दृष्टि और (२) विमल दृष्टि । भिक्षुओ ! सो कई पण्डित आर्यबाक पूना बिचारता है—क्या हम साक में मृगी काई थीज है जिस पाकर मैं हीन से क्या रह सकूँ ?

वह पूना जान संजा है—हम साक में मी बोई चँज नहीं है जिसे पाकर मैं हीन से क्या रह सकूँ ? मैं पात्र की वाशिना करूँगा ता रूप ही को बेरता ही का संजा ही को संरगर ही को वा विज्ञान ही का काईगा । उन पाने की वाशिना (अनुपाचार्य) से भव होगा भव न जाति जाति से जगमरन होगा । हम प्रकर गारा दुल्य मसूक उद परका हागा ।

भिक्षुओ ! ता क्या समझने हा रूप मिश्र है वा न नव ?

भवन ! अमिष्ठ ।

यदि अमिष्ठ है ता वह दुल्य है वा मृग ?

न ने ! दुल्य है ।

यह अमिष्ठ दुल्य बरिबर्तन सीस है उस क्या संजा समझना सीक है जि—वह मेरा है वह

मिष्टु बह मेरा जानता है ।

अन्ते ! पूना समझना सीक नहीं ।

भिक्षुओ ! ता क्या समझने हा बेरुव संजा संरगर विज्ञान ।

§ १०. पुष्पमा सुत्त (२१. २. ३. १०)

पञ्चस्कन्धों की व्याख्या

एक समय भगवान् वड़े भिक्षु-संघ के साथ श्रावस्ती में [मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद में विहार करते थे।

उस समय, भगवान् उपोसथ को पूर्णिमा की चाँदनी रात में भिक्षु-संघ के बीच खुली जगह में बैठे थे।

तब, कोई भिक्षु अपने आसन से उठ, उपरनी को एक बन्धे पर सम्हाल, भगवान् की ओर हाव जोड़कर बोला—यदि भगवान् की अनुमति हो तो मैं भगवान् से कोई प्रश्न पूछूँ ?

भिक्षु ! तो, तुम अपने आसन पर बैठकर जो पूछना चाहते हो पूछो।

‘भन्ते ! बहुत अच्छा’ कह वह भिक्षु अपने आसन पर बैठ गया और बोला—भन्ते ! वही पाँच उपादान-स्कन्ध हैं न, जो (१) रूप-उपादान स्कन्ध, (२) वेदना-उपादान स्कन्ध, (३) संज्ञा-उपादान स्कन्ध, (४) सस्कार-उपादान स्कन्ध और (५) विज्ञान-उपादान स्कन्ध ?

हाँ भिक्षु ! वही पाँच उपादान-स्कन्ध हैं, जो रूप-उपादान स्कन्ध।

साधुकार दे, वह भिक्षु भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर उसके आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! इन पाँच उपादान-स्कन्धों का मूल क्या है ?

भिक्षु ! इन पाँच उपादान-स्कन्धों का मूल इच्छा (= चन्द) है।

साधुकार दे प्रश्न पूछा—भन्ते ! जो उपादान है क्या वही पच-उपादान-स्कन्ध है, या पच-उपादान स्कन्ध दूसरा है और उपादान दूसरा ?

भिक्षु ! न तो जो उपादान है वही पच-उपादान-स्कन्ध है, और न पच-उपादान-स्कन्ध से भिन्न ही कोई उपादान है। वरिष्ठ, जो जहाँ चन्द्रराग है वही वहाँ उपादान है।

साधुकार दे प्रश्न पूछा—भन्ते ! पाँच उपादान स्कन्धों में चन्द्रराग का नानात्व होता है या नहीं ?

भगवान् बोले, “होता है। भिक्षु ! किसी के मन में ऐसा होता है—मैं आगे चलकर ऐसा रूप-वाला हूँगा, ऐसी वेदनावाला हूँगा, ऐसी संज्ञावाला हूँगा, ऐसे सस्कारवाला हूँगा, ऐसा विज्ञान वाला हूँगा। भिक्षु, इस तरह पाँच उपादान स्कन्धों में चन्द्र राग का नानात्व होता है।

साधुकार दे फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! इन स्कन्धों का नाम “स्कन्ध” ऐसा क्यों पड़ा ?

भिक्षुओ ! जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान, अध्यात्म, धाद्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर, निकट है—वह रूप-स्कन्ध कहा जाता है। जो वेदना । जो सज्ञा । जो सस्कार । जो विज्ञान—अतीत —है वह विज्ञान-स्कन्ध कहा जाता है। भिक्षु ! इसी से स्कन्धों का नाम स्कन्ध पड़ा है।

साधुकार दे फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! रूप-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का क्या हेतु = प्रत्यय है ? वेदना-स्कन्ध की ? सज्ञा-स्कन्ध की ? सस्कार-स्कन्ध की ? विज्ञान-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का क्या हेतु = प्रत्यय है ?

भिक्षु ! रूप-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय यही चार महाभूत हैं। वेदना-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय स्पर्श है। सज्ञा-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय स्पर्श है। सस्कार-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय स्पर्श है। विज्ञान-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय ताम-रूप है।

साधुकार दे फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! सत्काय-दृष्टि कैसे होती है ?

भिक्षु ! कोई जज्ञ = पृथक्जन रूप को आत्मा करके जानता है, या अत्मा को रूपवाला,

वासी है। वह वेदना भी । वह स्पर्श भी । वह अविद्या भी । मिथुनो ! इसे भी ज्ञान भार देण करने से आधमों का क्षय होता है ।

वह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है किन्तु आत्मा को रूप खासा जानता है । मिथुनो ! उसका जो ऐसा जानना है वह संस्कार है । उस संस्कार का क्या निदान = समुद्रय = जाति = प्रमाव है ? मिथुनो ! अविद्या-पूर्वक संस्पर्श से जो वेदना होती है उससे अज्ञ = पृथक्करण को लूणा उत्पन्न होती है । उसी से संस्कार पैदा होता है । मिथुनो ! इस तरह वह संस्कार भी अनित्य लूणा भी पदना भी । स्वर्ग भी अविद्या भी अनित्य संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाली है । मिथुनो ! इस भी ज्ञान और देण करने से आधमों का क्षय होता है ।

वह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है और न आत्मा को रूपबाका जानता है किन्तु आत्मा में रूप है ऐसा जानता है । मिथुनो ! उसका जो ऐसा जानना है वह संस्कार है । उस संस्कार का क्या निदान । मिथुनो ! इसे भी ज्ञान और देण करने से आधमों का क्षय होता है ।

वह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, न आत्मा को रूपबाका जानता है न आत्मा में रूप है ऐसा जानता है किन्तु रूप में आत्मा है, ऐसा जानता है । मिथुनो ! उसका जो ऐसा जानना है वह संस्कार है । उस संस्कार का क्या निदान = समुद्रय = जाति = प्रमाव है ? मिथुनो ! अविद्या-पूर्वक संस्पर्श से जो वेदना होती है उससे अज्ञ = पृथक्करण को लूणा उत्पन्न होती है । उसी से संस्कार पैदा होता है । मिथुनो ! इस तरह वह संस्कार भी अनित्य लूणा भी वेदना भी स्वर्ग भी अविद्या भी अनित्य संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाली है । मिथुनो ! इस भी ज्ञान और देण करने से आधमों का क्षय होता है ।

वह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है न आत्मा को रूपबाका जानता है न आत्मा में रूप है ऐसा जानता है और न रूप में आत्मा है ऐसा जानता है किन्तु वह वेदना को आत्मा करके जानता है आत्मा को अज्ञा वासा जानता है आत्मा में वेदना है ऐसा जानता है वेदना में आत्मा है ऐसा जानता है । संज्ञा को । संस्कार को । विज्ञान को ।

वह न ता रूप को न वेदना का न संज्ञा को न संस्कार को ज्ञान न विज्ञान को आत्मा करने जानता है, किन्तु ऐसा मत मानता है—जो आत्मा है वही लोक है । सा में मरने के बाद विन्य भुव चादरन और परिवर्तन-रहित है ।

मिथुनो ! उसकी जो यह धारणा रहि है यह संस्कार है । उस संस्कार का क्या निदान है । मिथुनो ! इस भी ज्ञान भार देण कर आधमों का क्षय होता है ।

किन्तु यह ऐसा मत मानता है—जो मैं हुआ हूँ और न मरा कुछ होने न मैं हूँगा और न मरा कुछ होगा ।

मिथुनो ! उसकी जो यह धारणा रहि है यह संस्कार है । मिथुनो ! इसे भी ज्ञान और देण कर आधमों का क्षय होता है ।

किन्तु वह मरने वाला होता है बिचिदित्वा करने वाला और मरने में उसकी निद्रा नहीं होती है ।

मिथुनो ! उसका जो यह धारणा रहि है यह संस्कार है । उस संस्कार का क्या निदान = समुद्रय = जाति = प्रमाव है ? मिथुनो ! अविद्या-पूर्वक संस्पर्श से जो वेदना होती है उससे अज्ञ = पृथक्करण को लूणा उत्पन्न होती है । उसी से संस्कार पैदा होता है । मिथुनो ! इस तरह वह संस्कार भी अनित्य लूणा भी वेदना भी स्वर्ग भी अविद्या भी अनित्य संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाली है । मिथुनो ! इसे भी ज्ञान और देण करने से आधमों का क्षय होता है ।

चौथा भाग

स्थविर वर्ग

§ १. आनन्द सुत्त (२१ २ ४ १)

उपादान से ही अहंभाव

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे ।

वहाँ आयुष्मान् आनन्द ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—आबुस भिक्षुओ !

“आबुस !” कहकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया ।

आयुष्मान् आनन्द बोले—आबुस ! यह आयुष्मान् मन्तानिपुत्र पूर्ण हम नये भिक्षुओं के वदे उपकार करने वाले हैं । वे हमें ऐसा उपदेश देते हैं, “आबुस आनन्द ! उपादान के कारण ही ‘अस्मि’ होता है, अनुपादान के कारण नहीं ।

“किसके उपादान से ‘अस्मि’ (=मैं हूँ) होता है ।

“रूप के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं । वेदना के । सज्ञा के । सस्कार के । विज्ञान के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं ।

“आबुस आनन्द ! जैसे कोई स्त्री, पुरुष, लड़का या युवक अपने को सज-धज कर दर्पण या परिशुद्ध निर्मल जलपात्र में अपने चेहरे को देखते हुए उपादान के साथ देखे, अनुपादान के साथ नहीं । आबुस आनन्द ! इसी तरह रूप के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं । वेदना । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं ।

“आबुस आनन्द ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

आबुस ! अनित्य है ।

“वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान ।

आबुस ! अनित्य है ।

“इसलिये , यह जान और देख कर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है ।”

अबुस ! आयुष्मान् मन्तानिपुत्र पूर्ण हम नये भिक्षुओं के वदे उपकार करने वाले हैं । वे हमें ऐसा उपदेश देते हैं । उनके हम धर्मोपदेश को सुन मैं क्षीतापन्न हो गया ।

§ २. तिस्त सुत्त (२१. २. ४. २)

राग-रहित को शोक नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

उस समय भगवान् के चचेरे भाई आयुष्मान् तिष्य कुछ भिक्षुओं के बीच ऐसा कह रहे थे—
वातुन ! मुझे कुछ उल्लाह नहीं हो रहा है, मुझे दिनार्ये भी नहीं छीव रही हैं; धर्म भी मुझे नहीं ग्याह

या आत्मा में रूप या रूप में आत्मा जानता है। वेदना को । संज्ञा को । संस्कार को । विज्ञान को आत्मा करके । मिथु ! इन्ही तरह सत्काम-पृथि होती है।

साधुकार ने फिर आगे का प्रश्न पूछा—मन्ते ! रूप के क्या आस्वाद होय और मोक्ष है ? वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान के क्या आस्वाद होय और मोक्ष है ?

मिथु ! रूप के कारण जो सुख और भाराम उत्पन्न होता है वह रूप का आस्वाद है। रूप का अभित्य सुख और परिवर्तनशील है वह रूप का होय है। रूप के प्रति जो छन्दराग का प्रहाय है वह रूप सं मोक्ष है। वेदना के । संज्ञा के । संस्कारों के । विज्ञान के कारण जो सुख और भाराम उत्पन्न होता है वह विज्ञान का आस्वाद है। विज्ञान को अभित्य सुख और परिवर्तनशील है वह विज्ञान का होय है। विज्ञान के प्रति जो छन्दराग का प्रहाय है वह विज्ञान से मोक्ष है।

साधुकार ने फिर आगे का प्रश्न पूछा—मन्ते ! क्या ज्ञान और देखकर इस विज्ञान बाहेर शरीर में तथा बाहर के सभी विमिषा में अहंकार ममंकार मान और अनुशास नहीं होते हैं ?

मिथु ! जो रूप—अतीठ अन्याय वर्तमान अज्ञान्य बाह्य रूपों का हीम प्रणीत तूर, मिश्र—है सभी न मेरा है न 'मैं' हूँ, और न मेरा आत्मा है। इसे ब्यार्थता प्रज्ञा-पूर्वक जान लेता है। जो वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान न मेरा है न 'मैं' हूँ और न मेरा आत्मा है। इस ब्यार्थता प्रज्ञा-पूर्वक जान लेता है। मिथु ! इसे ही जान और देखकर इस विज्ञानबाह्य शरीर में तथा बाहर के सभी विमिषा में अहंकार ममंकार, मान और अनुशास नहीं होते हैं।

उस समय किसी मिथु के चित्त में ऐसा चित्तक उद—यदि रूप जनात्म है वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान सभी जनात्म है तो जनात्म से किये गये कर्म कैसे किसी को कर्मों ?

तब महाबाह ने अपने चित्त से उस मिथु के चित्त के चित्तक को जान मिथुओं को आसंगित किया—मिथुओं ! हो सकता है कि वहाँ कोई बेसमझ अविज्ञान् तुम्हा सं अभिमूल हो अपने चित्त से कुछ के धर्म को छोड़ जाये योग्य समझ बैठे—कि यदि रूप जनात्म है तो जनात्म से किये गये कर्म कैसे किसी को कर्मों ? मिथुओं ! धर्म में ऐसी-ऐसी जगहों पर तुम्हें पूछ कर समझ लेना चाहिये। मिथुओं ! तो क्या समझते हो रूप मित्य है वा अभित्य ?

अभित्य मन्ते !

वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान !

जो अभित्य है वह सुख होगा या दुःख !

मन्ते ! दुःख होगा।

जो अभित्य सुख और परिवर्तनशील है उस क्या ऐसा समझना कथित है—वह मेरा है वह मैं हूँ, वह मेरा आत्मा है !

नहीं मन्ते !

इयत्किने । वह ज्ञान और देख वह पुनर्जन्म में नहीं पकता।

राजनीय धर्म समाप्त

चौथा भाग

स्थविर वर्ग

§ १. आनन्द सुत्त (२१ २ ४ १)

उपादान से ही अहंभाव

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के अराम जेतवन में विहार करते थे ।

वहाँ आयुष्मान् आनन्द ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—आवुस भिक्षुओ ।

“आवुस !” कहकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया ।

आयुष्मान् आनन्द बोले—आवुस ! यह आयुष्मान् मन्तानिपुत्र पूर्ण हम नये भिक्षुओं के वडे उपकार करने वाले हैं । वे हमें ऐसा उपदेश देते हैं, “आवुस आनन्द ! उपादान के कारण ही ‘अस्मि’ होता है, अनुपादान के कारण नहीं ।

“किसके उपादान से ‘अस्मि’ (=मैं हूँ) होता है ।

“रूप के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं । वेदना के । सज्ञा के । सस्कार के । विज्ञान के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं ।

“आवुस आनन्द ! जैसे कोई स्त्री, पुरुष, लड़का या शुक अपने को सज-धज कर दर्पण या परिशुद्ध निर्मल जलपात्र में अपने चेहरे को देखते हुए उपादान के साथ देखे, अनुपादान के साथ नहीं । आवुस आनन्द ! इसी तरह रूप के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं । वेदना । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान के उपादान से ‘अस्मि’ होता है, उसके अनुपादान से नहीं ।

“आवुस आनन्द ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनिरथ ?

आवुस ! अनित्य है ।

“वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान ।

आवुस ! अनित्य है ।

“इसलिये , यह जान और देख कर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है ।”

आवुस ! आयुष्मान् मन्तानिपुत्र पूर्ण हम नये भिक्षुओं के वडे उपकार करने वाले हैं । वे हमें ऐसा उपदेश देते हैं । उनके इय धर्मोपदेश को सुन मैं जोतापन्न हो गया ।

§ २. तिस्स सुत्त (२१. २. ४ २)

राग-रहित को शोक नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

उम समय भगवान् के चचेरे भाई आयुष्मान् तिप्प कूठ भिक्षुओं के बीच ऐसा कह रहे थे—आवुस ! मुझे कूठ उल्लाह नहीं हो रहा है, मुझे विशयें भी नहीं देख रही हैं, धर्म भी मुझे नहीं रुपाळ

हा रहा है; मरे विद्य में क्या आकल्प हो रहा है; बेमन से मैं प्रश्नार्थक का पाठन कर रहा हूँ; धर्म में मुझे विश्विक्रिया उत्पन्न हो रही है।

तब कुछ मित्रु वहाँ भगवान् पे वहाँ जाये और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ उन मित्रुओं ने भगवान् से कहा "मन्ते ! भगवान् के चबेरे माई आयुष्मान् तिप्य कुछ मित्रुओं के बीच ऐसा कह रहे थे— धर्म में मुझे विश्विक्रिया उत्पन्न हो रही है।"

तब भगवान् ने किसी मित्रु को आमन्त्रित किया 'मित्रु ! तुमो मेरी ओर से जाकर तिप्य मित्रु को कहो—भ पुस तिप्य ! आपको कुछ हुआ रहे है।"

'मन्ते बहुत अण्डा' कह वह मित्रु भगवान् को उत्तर दे वहाँ आयुष्मान् तिप्य पे वहाँ गया भार बोका—आयुष्मान् तिप्य ! कुछ आपको हुआ रहे है।

अनुम ! बहुत अण्डा" कह आयुष्मान् तिप्य उस मित्रु को उत्तर दे वहाँ भगवान् पे वहाँ आया और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् तिप्य से भगवान् बोके "तिप्य ! क्या तुमने राक्षसुच कुछ मित्रुओं के बीच पूसा कहा है— धर्म में मुझे विश्विक्रिया उत्पन्न हो रही है।

मन्ते ! हौं।

तिप्य ! ठी तुम क्या समझते हो जिसे रूप के प्रति राग = छन्द = प्रेम = विपासा = परि टह = नृणा वने है उसे उस रूप के विपरिणत तथा अण्डा हो जाने से क्या शोक रोगा पीडना दुःख दर्शनन्य और उपावास (उपरोक्षार्थी) नहीं होते है ?

हौं मन्ते ! हाते है।

शोक है तिप्य ! येनी ही बात है। रूप के प्रति ; वदना के प्रति ; सजा के प्रति ; संस्कार के प्रति ; रागादि ने शोक परिवेश उत्पन्न होते है ?

हौं मन्ते !

शोक है तिप्य ! परी ही बात है। विज्ञान के प्रति जिसे राग = छन्द = प्रेम = विपासा = परिछह = नृणा वने है उसे उस विज्ञान के विपरिणत तथा अण्डा हो जाने से शोक रोगा पीडना दुःख दर्शनन्य और उपावास हात ही है।

हौं मन्ते !

तिप्य ! हा क्या समझते हा जिसे रूप के प्रति सभी रागादि नष्ट हो गये है उसे उस रूप के विपरिणत तथा अण्डा हा जाने से शाकादि होंगे ?

नहीं मन्ते !

शोक है तिप्य ! परी ही बात है। जिसे रूप के प्रति ; वेदना के प्रति ; संज्ञा के प्रति ; संस्कार के प्रति ; विज्ञान के प्रति सभी रागादि नष्ट हा गये है उसे उस विज्ञान के विपरिणत तथा अण्डा हो जाने से शाकादि नहीं होंगे।

तिप्य ! हा तुम क्या समझते हा राक्ष तिप्य है का अनिच्छ !

अनिच्छ मन्ते !

वेदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान !

अनिच्छ मन्ते !

दुःखतिप्य यह जन्म भार देना लेने में भी पुकारन्य नहीं होता है।

तिप्य जगे ही पुदर है। एक पुदर जगो वृत्तान ही और वृत्तान नहीं। तब वह मनुष्य जो जगो-वृत्तान नहीं है वह जगो-वृत्तान मनुष्य ने मार्ग वृत्त। वह जगो वृत्त—ही पुदर ! यह मार्ग है। इस का जग वृत्त नहीं। वृत्त वृत्त जगो वृत्त जग वृत्त जगो वृत्त। वहाँ जगो वृत्त वृत्त वृत्त वृत्त वृत्त।

उस रास्ते पर भी कुछ दूर जाओ। कुछ दूर जाकर तुम्हें एक घना जंगल मिलेगा। उस पर भी कुछ दूर जाओ। कुछ दूर जाकर तुम्हें एक नीचा गढ़ा मिलेगा। उस पर भी कुछ दूर जाओ। कुछ दूर जाकर तुम्हें एक खाई और प्रपात मिलेगा। उस पर भी कुछ दूर जाओ। कुछ दूर जाकर तुम एक समतल रमणीय प्रदेश में पहुँचोगे।

तिष्य ! वात को समझाने के लिये मैंने यह उपमा कही है। उसका मतलब यह है। तिष्य ! यहाँ मार्ग में अकुशल मनुष्य में पृथक्जन समझना चाहिये, और मार्ग में कुशल मनुष्य से अर्हत् सम्यक् मन्बुद्ध तथागत को।

तिष्य ! दो रास्ता विचिकित्सा का द्योतक है, धार्यो रास्ता अष्टादिक मिथ्यामार्ग का, दाहिना रास्ता आर्य अष्टादिक मार्ग का—जैसे सम्यक दृष्टि सम्यक समाधि।

घना जंगल अविद्या का द्योतक है। घटा नीचा गढ़ा कामो का, खाई और प्रपात क्रोध तथा उपायास का, और समतल रमणीय प्रदेश निर्वाण का द्योतक है।

तिष्य ! इसे समझ कर श्रद्धा से रहो, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ।

भगवान् यह बोले ! सतुष्ट हो आद्युष्मान् तिष्य ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया।

§ ३. यमक सुत्त (२१. २ ४ ३)

मृत्यु के बाद अर्हत् क्या होता है ?

एक समय आद्युष्मान् सारिपुत्र आबस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

उस समय यमक नामक भिक्षुको इस प्रकार की पापयुक्त मिथ्या धारणा हो गई थी—मैं भगवान् के बतलये धर्म को हम प्रकार जानता हूँ कि क्षीणाश्रव भिक्षु शरीर के गिर जाने पर (=मृत्यु के बाद) उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते हैं।

कुछ भिक्षुओं ने यमक भिक्षु की यह पापयुक्त मिथ्या धारणा को सुना। तब, वे भिक्षु जहाँ आद्युष्मान् यमक थे वहाँ गये, और कुशल-क्षेम पूछने के बाद एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने आद्युष्मान् यमक को कहा, 'आबुस यमक ! क्या सचमुच मैं आप को ऐसी पापमय मिथ्या-धारणा ठरपन्न हुई है ?'

आबुस ! मैं भगवान् के बतलये धर्म को इसी प्रकार जानता हूँ कि क्षीणाश्रव भिक्षु शरीर के गिर जाने पर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते हैं।

आबुस यमक ! ऐसा मत कहें। भगवान् पर झूठी बात मत बरपें। यह अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते हैं कि, क्षीणाश्रव भिक्षु शरीर के गिर जाने पर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते हैं।'

उन भिक्षुओं से ऐसा कहे जाने पर भी आद्युष्मान् यमक अपने आग्रह को पकड़े कहने लगे, "आबुस ! मैं भगवान् के बतलये धर्म को इस प्रकार जानता हूँ।"

जब वे भिक्षु आद्युष्मान् यमक को इस पापमय मिथ्या धारणा से नहीं अलग कर सके, तब आसम से उठ जहाँ आद्युष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ चले गये। जाकर आद्युष्मान् सारिपुत्र से बोले, "आबुस सारिपुत्र ! यमक भिक्षु को ऐसी पापमय मिथ्या धारणा हो गई है। अच्छा होता यदि आप कृपा करके जहाँ आद्युष्मान् यमक हैं वहाँ चलते।

आद्युष्मान् सारिपुत्र ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया।

तब आद्युष्मान् सारिपुत्र ने सत्पा सम्म ध्यान से उठ जहाँ आद्युष्मान् यमक थे वहाँ गये, और

हा रहा है, मेरे चित्त में बड़ा जादूचमक हो रहा है, बेमन से मैं ब्रह्मचर्य का पावन कर रहा हूँ धर्म में मुझ विचिकित्सा उत्पन्न हो रही है।

तब कुछ मित्रु जहाँ भगवान् से वहाँ अपने भीर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक बर बैठ उस मित्रुओं ने भगवान् से कहा "मन्ते ! भगवान् के कबरे भाई आधुप्यान् तिव्य कुछ मित्रुओं के बीच ऐसा कह रहे थे— धर्म में मुझ विचिकित्सा उत्पन्न हो रही है।"

तब भगवान् ने किसी मित्रु को आमन्त्रित किया मित्रु ! तुमो मेरी धार से जाकर तिव्य मित्रु को कहो—म हुय तिव्य ! जापको बुद्ध मुसा रहे हैं।

'मन्त बहुत मन्त्रा कर वह मित्रु भगवान् को उत्तर दे जहाँ आधुप्यान् तिव्य से वहाँ गया और बोका—आहुस तिव्य ! बुद्ध जापको मुसा रहे हैं।

अबुस ! बहुत मन्त्रा कर आधुप्यान् तिव्य उस मित्रु को उत्तर दे जहाँ भगवान् से वहाँ आया भीर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुये आधुप्यान् तिव्य ने भगवान् वाले "तिव्य ! क्या तुमने पाचयुज कुछ मित्रुओं के बीच ऐसा कहा है— धर्म में मुझे विचिकित्सा उत्पन्न हो रही है।

मन्ते ! हौं !

तिव्य ! तो तुम क्या समझते हो जिसे रूप के प्रति राग = उन्म = प्रेम = पिपासा = परि पाह = तुम्हा बने हैं उसे उस रूप के विपरिणत तथा अन्वया हो जाने से क्या शोक रोना पीटना दुःख होमनस्य और उपावास (=परोशाही) नहीं होते हैं ?

हौं मन्ते ! होते हैं।

ठीक है, तिव्य ! ऐसी ही बात है। रूप के प्रति ; ब्रह्मा के प्रति ; संज्ञा के प्रति ; संस्कार के प्रति ; रागादि से शोक परिदेव उत्पन्न होते हैं ?

हौं मन्ते !

ठीक है, तिव्य ! ऐसी ही बात है। विज्ञान के प्रति जिसे राग = उन्म = प्रेम = पिपासा = परिपाह = तुम्हा बने हैं उसे उस विज्ञान के विपरिणत तथा अन्वया हो जाने से शोक रोना पीटना दुःख होमनस्य और उपावास होती ही है।

हौं मन्ते !

तिव्य ! तो क्या समझते हो जिसे रूप के प्रति सत्मी रागादि मद्य हो गये हैं उसे उस रूप के विपरिणत तथा अन्वया हो जाने से शोकादि होंगे ?

नहीं मन्ते !

ठीक है तिव्य ! ऐसी ही बात है। जिसे रूप के प्रति ; ब्रह्मा के प्रति ; संज्ञा के प्रति ; संस्कार के प्रति ; विज्ञान के प्रति सत्मी रागादि मद्य हो गये हैं उस उस विज्ञान के विपरिणत तथा अन्वया हो जाने से शोकादि नहीं होंगे।

तिव्य ! तो तुम क्या समझते हो रूप मित्य है वा अनित्य ?

अमित्य मन्ते !

ब्रह्मा ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ?

अमित्य मन्ते !

इत्यस्य । यह बात भीर ब्रह्म केने से भी पुनर्जन्य नहीं होता है।

तिव्य ! जैसे ही तुम हो। एक पुनर् मार्ग-कुञ्ज हो भीर दूसरा नहीं। तब यह मनुष्य को मार्गज्ञान नहीं है उस मार्गज्ञान मनुष्य से मार्ग नष्ट। वह ऐसा नहीं—ही पुनर् ; यह मार्ग है। इस पर कुछ नूर आधी। कुछ नूर जाकर तुम एक पोराला ऐसी। वहाँ कबों को हीर दारिद्रे को बकदमा।

मन में ऐसा हो, ".....इसके साथ स्वदा आरक्षक तैयार रहते हैं, इन्में पटक कर जान में मार देना सहज नहीं है। तो क्या न मैं चाल से भीतर पैठ कर अपना काम निकालूँ।" वह उस गृहपति या गृहपति-पुत्र के पास जा कर ऐसा कहें—देव ! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ। तब, उसे वह अपनी सेवा में नियुक्त कर ले। वह सेवा करे, स्वामी के उठने के पहले ही उठ जाय, स्वामी के सोने के बाद सोये, आज्ञा सुनने में स्वदा तत्पर रहे, मनोहर आचार-विचार का वनके रहे, और बड़ा प्रिय बोले। वह गृहपति या गृहपति-पुत्र उसे अपना अन्तरंग मित्र समझ कर उसमें बड़ा विश्वास करने लगे। जब उस मनुष्य को यह मालूम हो जाय कि मैंने इस गृहपति या गृहपति-पुत्र के विश्वास को जीत लिया है, तब कहीं एकान्त में उसे अकेला पा कर नेत्र तलवार से जान से मार डे।

आजुस यमक ! तो आप क्या समझते हैं—जब उस मनुष्य ने उस गृहपति या गृहपति-पुत्र से कहा था—देव ! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ—उस समय भी वह उसका बधक ही था। बधक होते हुये भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा बधक है।

जब वह सेवा कर रहा था, स्वामी के उठने के पहले ही उठ जाया करता था, स्वामी के सोने के बाद सोता था, आज्ञा सुनने में सदा तत्पर रहता था, मनोहर आचार-विचार वाला होके रहता था, और बड़ा प्रिय बोलता था, उस समय भी वह बधक ही था। बधक होते हुए भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा बधक है।

जब उसने एकान्त में उसे अकेला पा जान में मार दिया, उस समय भी वह बधक ही था। बधक होते हुये भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा बधक है।

आजुस ! ठीक है।

आजुस ! इसी तरह, अज्ञ पृथक्जन रूप को आत्मा करके जानता है, या आत्मा को रूप वाला, या आत्मा में रूप, या रूप में आत्मा, वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान। वह अनित्य रूप को अनित्य रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनित्य वेदना को अनित्य वेदना के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनित्य सज्ञा को, अनित्य संस्कार को, अनित्य विज्ञान को। वह दुःख रूप को दुःख रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, दुःख वेदना को, दुःख सज्ञा को, दुःख संस्कार को, दुःख विज्ञान को। वह अनात्म रूप को अनात्म रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनात्म वेदना को, अनात्म सज्ञा को, अनात्म संस्कार को, अनात्म विज्ञान को। संस्कृत रूप को संस्कृत रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है। बधक रूप को बधक के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है।

वह रूप को प्राप्त होता है, रूप का उपादान करता है, और समझता है कि रूप मेरा आत्मा है। वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान। पंच-उपादान रत्न्य को प्राप्त हो, उनका उपादान कर उसे दीर्घकाल तक अपना अहित और दुःख होता है।

आजुस ! ज्ञानी आर्यश्रावक रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, न आत्मा को रूप वाला, न आत्मा में रूप, न रूप में आत्मा, न वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान।

वह अनित्य रूप को अनित्य रूप के तौर पर यथार्थत जानता है। अनित्य वेदना को, अनित्य सज्ञा को, अनित्य संस्कार को, अनित्य विज्ञान को।

वह दुःख रूप को दुःख रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह अनात्म रूप को अनात्म रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह संस्कृत रूप को संस्कृत रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह बधक रूप को बधक रूप के तौर पर यथार्थत जानता है।

वह रूप को नहीं प्राप्त होता है, रूप का उपादान नहीं करता है, न ऐसा समझता है कि रूप

कुसल-श्रेय पूछ कर पूछ भोर बैठ गया । एक भोर बैठ आशुपुत्र न् सारियुत्र व पुण्यात्त पमक से बोझ
 'आशुपुत्र ! क्या मन्त्र में आपको ऐसी पापमय सिप्या धारणा हो गई है ?

आशुपुत्र ! मैं भगवान् के वताये धर्म को इसी प्रकार जानता हूँ ।

आशुपुत्र पमक ! तो क्या समझते हैं रूप निरय है या अनय ?

आशुपुत्र ! अनय है ।

बद्धता , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान !

आशुपुत्र ! सन्धेय है ।

इसलिये यह जन्म कर देण कर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता ।

आशुपुत्र पमक ! तो क्या समझते हैं जो यह रूप है बही जीव (= तपयात्त) है ?

नहीं आशुपुत्र !

बेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान है बही जीव है !

नहीं आशुपुत्र !

आशुपुत्र पमक ! तो क्या समझते हैं रूप में जीव है ?

नहीं आशुपुत्र !

तो क्या जीव रूप से भिन्न कहीं है ?

नहीं आशुपुत्र !

बेदना , बेदना से भिन्न ?

संज्ञा , संज्ञा से भिन्न ?

संस्कार , संस्कार से भिन्न !

विज्ञान , विज्ञान से भिन्न ?

नहीं आशुपुत्र !

आशुपुत्र पमक ! तो क्या समझते हैं रूप बेदना-संज्ञा-संस्कार और विज्ञान जीव है ?

नहीं आशुपुत्र !

आशुपुत्र पमक ! तो क्या समझते हैं जीव कोई रूप-रहित बद्धता-रहित संज्ञा-रहित संस्कार
 रहित और विज्ञान रहित है ?

नहीं आशुपुत्र !

आशुपुत्र पमक ! जब पंचार्थ में संभवतः कोई जीव उपलब्ध नहीं होता है तो क्या आपका ऐसा
 कहना ठीक है "समाजन्म क वताय धर्म का मैं हूँ प्रकृत जानता हूँ कि क्षीणाश्रय भिक्षु शरीर के
 गिर जान पर उपस्थित हो जाते हैं बिना ही जाते हैं मरने के बाद वे नहीं रहते हैं" ?

आशुपुत्र सारियुत्र ! मुझ श्रुति का टीका में पापमय सिप्या धारणा हो गई थी किन्तु आपके इस
 भर्त्सनापदेश का गुण सीधे बह सिप्या धारणा मिट गई और धर्म में समझ में आ गया ।

आशुपुत्र पमक ! यदि आपका कोई ऐसा वृत्त—हे भिक्षु पमक क्षीणाश्रय बर्त्सना भिक्षु मरण के
 बाद क्या होगा है ?—तो आप क्या उत्तर देंगे ?

आशुपुत्र सारियुत्र ! यदि मुझे कोई जगत् वृत्तों तो मैं बह उत्तर दूँगा—भिक्षु रूप अनिय है ।
 जो जन्म है बह दुःख है । जो दुःख है बह निन्द्य व अग्न हो गया । बद्धता । संज्ञा । संस्कार ।
 विज्ञान ।

आशुपुत्र पमक ! आपने टीका बहा । मैं बह उपमा देना हूँ श्रिगमने काग और भी शाक हो जावगी ।

आशुपुत्र पमक ! मैं कोई गुरुवति का गुरुवति पुत्र मदाधर्मों के भवशास्त्री हो जिनके साथ साथ
 आशुपुत्र गिरा रहते हैं । तब उपमा कोई जानू बह जन्म जो जन्म जन्म म मार बहकना बने । उनके

मन में ऐसा हो, " ... इसके साथ सदा आरक्षक तैयार रहते हैं, इसे पटक कर जान से मार देना सहज नहीं है। तो क्यों न मैं चाल से भीतर पंठ कर अपना काम निकालूँ ।" वह उस गृहपति या गृहपति-पुत्र के पास जा कर ऐसा कहे—देव । मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ । तब, उसे वह अपनी सेवा में नियुक्त कर ले । वह सेवा करे, स्वामी के उठने के परले ही उठ जाय, स्वामी के सोने के घाट सोये, आज्ञा सुनने में सदा तत्पर रहे, मनोहर आचार-विचार का बन्धे रहे, और बड़ा प्रिय बोले । वह गृहपति या गृहपति-पुत्र उसे अपना अन्तरंग मित्र समझ कर उसमें बड़ा विश्वास करने लगे । जब उस मनुष्य को यह मालूम हो जाय कि मैंने इन गृहपति या गृहपति-पुत्र के विश्वास को जीत लिया है, तब कहीं एकान्त में उगे अकेला पा कर नेत्र तलवार से जान से मार दे ।

आतुस यमक । तो आप क्या समझते हैं—जब उन मनुष्य ने उस गृहपति या गृहपति-पुत्र से कहा था—देव । मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ—उस समय भी वह उसका बंधक ही था । बंधक होते हुये भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा बंधक है ।

जब वह सेवा कर रहा था, स्वामी के उठने के पहले ही उठ जाता करता था, स्वामी के सोने के घाट सोता था, आज्ञा सुनने में सदा तत्पर रहता था, मनोहर आचार-विचार वाला होके रहता था, और बड़ा प्रिय बोलता था, उस समय भी वह बंधक ही था । बंधक होते हुए भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा बंधक है ।

जब उसने एकान्त में उसे अकेला पा जान से मार दिया, उस समय भी वह बंधक ही था । बंधक होते हुये भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा बंधक है ।

आतुस । ठीक है ।

आतुस । इसी तरह, अज्ञ पृथक्जन रूप को आत्मा करके जानता है, या आत्मा को रूप वाला, या आत्मा में रूप, या रूप में आत्मा, वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान । वह अनित्य रूप को अनित्य रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनित्य वेदना को अनित्य वेदना के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनित्य सज्ञा को , अनित्य संस्कार को , अनित्य विज्ञान को । वह दुःख रूप को दुःख रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, दुःख वेदना को , दुःख सज्ञा को , दुःख संस्कार को , दुःख विज्ञान को । वह अनात्म रूप को अनात्म रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है, अनात्म वेदना को , अनात्म सज्ञा को , अनात्म संस्कार को , अनात्म विज्ञान को । संस्कृत रूप को संस्कृत रूप के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है । बंधक रूप को बंधक के तौर पर यथार्थत नहीं जानता है ।

वह रूप को प्राप्त होता है, रूप का उपादान करता है, और समझता है कि रूप मेरा आत्मा है । वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान । पंच-उपादान स्वप्न को प्राप्त ही, उनका उपादान कर उसे दीर्घकाल तक अपना अहित और दुःख होता है ।

आतुस । प्राणी आर्षेभ्रावक रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, न आत्मा को रूप वाला, न आत्मा में रूप, न रूप में आत्मा, न वेदना , सज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

वह अनित्य रूप को अनित्य रूप के तौर पर यथार्थत जानता है । अनित्य वेदना को । अनित्य सज्ञा को । अनित्य संस्कार को । अनित्य विज्ञान को ।

वह दुःख रूप को दुःख रूप के तौर पर यथार्थत जानता है ।

वह अनात्म रूप को अनात्म रूप के तौर पर यथार्थत जानता है ।

वह संस्कृत रूप को संस्कृत रूप के तौर पर यथार्थत जानता है ।

वह बंधक रूप को बंधक रूप के तौर पर यथार्थत जानता है ।

वह रूप को नहीं प्राप्त होता है, रूप का उपादान नहीं करता है, न ऐसा समझता है कि रूप

मेरा आत्मा है। बेचना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । न ऐसा समझता है कि बिना मेरा आत्मा है। उपादान स्वप्नों को न प्राप्त हो उनका उपादान न करते हुए उसे वीर्यकाण्ड तक अपना हित भी न सुख होता है।

अबुस सारिपुत्र ! वे ऐसा ही होते हैं जिन आधुप्यामों के जैसे कल्पासीक परमार्थी भीर उपादान देने वाले गुण-भाई होते हैं। यह आधुप्याम् सारिपुत्र के धर्मोपदेश को सुन मेरा चित्त उपादान-रहित हो आध्यामे सुख हो गया।

आधुप्याम् सारिपुत्र यह बाके। संतुष्ट हो आधुप्याम् बमक ने आधुप्याम् सारिपुत्र के कहे का अभिप्राय किया।

§ ४ अनुराध सुत (२१ २ ४ ४)

दुःख का निरोध

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् वैशाली में महाघन की कूटागारशाळा में निहार करते थे।

उस समय अयुप्याम् अनुराध भगवान् के पास ही आरण्य में झूठी झगाकर बिहार करते थे।

तब कुछ तैयिक परित्रजक वहाँ अयुप्याम् अनुराध से वहाँ जाने भीर कुसक-सेन एक कर एक बार बैठ गये। एक ओर बस उन तैयिक परित्रजकों ने अयुप्याम् अनुराध को कहा—अ.पुस ! जो उपागत उपादान पुरुष = परमपुरुष परम प्राप्ति प्राप्त हैं वे पूछे जाने पर जीव के विषय में बार स्वार्थों में से किसी एक को बतलते हैं—(१) मरने के बाद जीव रहता है (२) या मरने के बाद जीव नहीं रहता है (३) या मरने के बाद जीव शीघ्र रहता ही है और नहीं भी रहता है (४) या मरने के बाद जीव न रहता है और न नहीं रहता है।

उनके ऐसा कहने पर अनुराध ने उन तैयिक परित्रजकों को कहा—अ.पुस ! मैं उपागत पार स्वार्थों में से किसी एक को बतलते हैं।

इस पर उन तैयिक परित्रजकों ने कहा—अबश्य यह कोई मया जन्मी तरुत का बना मिथु-होगा या कोई मूर्ख बेसमझ स्वभिर ही होगा। इस तरह अयुप्याम् अनुराध की जवाबदारी कर आपन से उठ चके गये।

तब उन परित्रजकों के जाने के बाद ही अयुप्याम् अनुराध के मन में यह हुआ—बहि मे परित्रजक मुझे उनके आगे का प्रश्न पूछें तो मैंने किस प्रकार कहने से भगवान् के सिद्धान्त का डीक-डीक प्रतिपादन होगा। भगवान् पर झूठी बात का आपना नहीं होगा। जर्मोशुद्ध बात होगी और कोई अपने धर्म का बाद के सिद्धिमें से विभिन्न स्वार्थ को नहीं प्राप्त होगा ?

तब अयुप्याम् अनुराध वहाँ भगवान् से वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बस अयुप्याम् अनुराध भगवान् से बोले—अम्मे ! मैं भगवान् के पास ही आरण्य में झूठी झगाकर बिहार करता था। उन परित्रजकों के जाने के बाद ही मैंने मन में यह हुआ 'बहि व परित्रजक मुझे उनके आगे का प्रश्न पूछें तो मैंने किस प्रकार कहने से कोई अपने धर्म का बाद के सिद्धिमें से विभिन्न स्वार्थ का नहीं प्राप्त होगा ?

अनुराध ! तो तुम क्या समझते हो। क्या सिद्ध है या अभिप्राय ?
अभिप्राय अम्मे !

इसविषय में क्या उन आर देर लेने से पुनर्बन्ध में नहीं पड़ता।

अनुराध ! तो तुम क्या समझते हो। क्या जीव है ?

नहीं भन्ते ।

वेचना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान ?

नहीं भन्ते ।

अनुराध ! तो तुम क्या समझते हो, रूप में जीव है ?

नहीं भन्ते ।

क्या रूप से भिन्न कहीं जीव है ?

नहीं भन्ते ।

वेचना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान से भिन्न कहीं जीव है ?

नहीं भन्ते ।

अनुराध ! तो तुम क्या समझते हो, रूप-वेचन-संज्ञा-सस्कार और विज्ञान के बिना कोई जीव है ?

नहीं भन्ते ।

अनुराध ! तुमने स्वयं देना लिया कि यथार्थ में मृत्युत किन्सी जीव की उपलब्धि नहीं होती है, तो क्या तुम्हारा ऐसा कहना ठीक था कि—“आहुस । हाँ, जो तथागत उज्जमपुररूप = परमपुरुष परम-प्राप्ति-प्राप्त है वे पूछे जाने पर जीव के विषय में चार स्थानों में से किसी एक को बताते हैं —(१) मरने के बाद जीव रहता है, (२) या, मरने के बाद जीव नहीं रहता है, (३) या, मरने के बाद जीव रहता भी है और नहीं भी रहता है, (४) या मरने के बाद जीव न रहता है और न नहीं रहता है ?”

नहीं भन्ते !

ठीक है अनुराध , मैं पहले ओर अत्र भी दुःख और दुःख के निरोध को बता रहा हूँ ।

§ ५. वक्कलि सुत्त (२१ २. ४. ५)

जो धर्म देखता है, वह बुद्ध को देखता है, वक्कलि द्वारा आत्म-दृष्ट्या

ऐसा प्रेने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में वेल्लुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् वक्कलि एक कुम्हार के घर में रोगी, दुःखी और बड़े बीमार पड़े थे ।

तब, आयुष्मान् वक्कलि ने अपने टहल करनेवालों को आमन्त्रित किया, “आहुस ! सुनो, जहाँ भगवान् हैं वहाँ जायें, ओर मेरी ओर से भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करें, और कहें—भन्ते । वक्कलि भिक्षु रोगी, दुःखी और बड़े बीमार हैं, वे आपके चरणों पर शिर से प्रणाम करते हैं । और ऐसा प्रार्थना करें—भन्ते ! यदि भगवान् जहाँ वक्कलि भिक्षु हैं वहाँ चलते तो बड़ी कृपा होती ।”

“आहुस ! बहुत अच्छा !” कह कर वे भिक्षु आयुष्मान् वक्कलि को उत्तर दे जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, “भन्ते ! वक्कलि भिक्षु रोगी , वहाँ चलते तो बड़ी कृपा होती ।”

भगवान् ने खुप रहकर स्वीकार कर लिया ।

तब, भगवान् पहन और पात्र-चीवर ले जहाँ आयुष्मान् वक्कलि थे वहाँ आये ।

आयुष्मान् वक्कलि ने भगवान् को दूर ही से आते देखा, देखकर खाद ठीक करने लगे ।

तब, भगवान् आयुष्मान् वक्कलि से बोले, “वक्कलि ! रहने लो, खाद ठीक मत करो, ये आत्मन धिष्ठे हैं, मैं इन पर बैठ जाऊँगा ।” भगवान् धिष्ठे आसन पर बैठ गये । बैठकर, भगवान् वक्कलि भिक्षु से बोले, “वक्कलि ! कहो, सर्वायत कैसी है, बीमारी घट तो रही है ?”

भन्ते ! मेरी सर्वायत अच्छी नहीं है, थकी पीडा हो रही है, बीमारी बढ़ती ही मालूम होती है ।

बहकि ! तुम्हें कोई मकसद का पछतावा तो नहीं रह गया है ?

मन्ते ! मुझे बहुत मलाल और पछतावा हो रहा है ।

क्या तुम्हें सीक नहीं पाकन करने का पश्चात्ताप है ?

नहीं मन्ते ! मुझे यह पश्चात्ताप नहीं है ।

बहकि ! जब तुम्हें सीक नहीं पाकन करने का पश्चात्ताप नहीं है तो तुम्हें किस बात का मकसद और पछतावा हो रहा है ?

मन्ते ! बहुत दिनों से भगवान् के दर्शन करने को आगे की इच्छा थी किन्तु शरीर में इतना बल ही नहीं था कि भा सक्ता ।

बहकि ! जरे इत गम्भीर से मेरे शरीर के दर्शन से क्या होगा ! बहकि ! जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है जो मुझे देखता है वह धर्म को देखता है ।

बहकि ! तो तुम क्या समझते हो क्या नित्य है या अनित्य ?

अनित्य मन्ते !

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ?

अनित्य मन्ते !

इसीछिन्ने यह आज और देखकर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है ।

तब भगवान् आनुष्मान् बहकि को इस तरह उपदेश दे आसन से उठ चढ़ाँ गुरुकुट पर्यंत ही चढ़ाँ चले गये ।

तब भगवान् के चले जाने के बाद ही आनुष्मान् बहकि ने अपने दृष्ट करमेवालों को आमन्त्रित किया आनुष्म ! तुमने मुझे आज पर क्या चढ़ाँ अपिगिच्छि सिखाया है चढ़ाँ छे चढ़ाँ । तुम जैसे का घर के भीतर सरवा अप्पन नहीं छ्पता है ।

“आनुष्म ! बहुत अप्पन कद ने आनुष्मान् बहकि को उत्तर दे चढ़ाँ जाट पर क्या चढ़ाँ अपिगिच्छि सिखाया है चढ़ाँ छे गये ।

तब भगवान् उस रात को और दिन के अवसरेप तक गुरुकुट पर्यंत पर बिहार करत रहे ।

तब रात बीतने पर ही अत्यन्त सुन्दर देवता अपनी कमक से सारे गुरुकुट पर्यंत को कमकले हुने चढ़ाँ भगवान् ने चढ़ाँ जाके और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर चढ़ाँ हो गये । एक ओर चढ़ाँ ही एक देवता भगवान् से बोली : “मन्ते ! बहकि मिष्ठु विमोक्ष में चित्त कया रहा है ।” दूसरा देवता भगवान् से बोली ‘मन्ते ! बहकि मिष्ठु अवश्य विमुक्त हो निर्वाण को प्राप्त होगा । इतना कद ने देवता भगवान् को अभिवादन जाट प्रदक्षिणा कर चढ़ाँ अन्तर्धान हो गये ।

तब उस रात के बीच जाके पर भगवान् ने मिष्ठुओं को आमन्त्रित किया “मिष्ठुओ ! तुमने चढ़ाँ बहकि मिष्ठु है चढ़ाँ जाओ और उपदेशे चढ़ाँ—आनुष्म बहकि ! भगवान् ने और जो दो देवताओ ने कहा है उसे तुमने ।

एक ओर चढ़ाँ हो एक देवता भगवान् से बोली ‘मन्ते ! बहकि मिष्ठु विमोक्ष में चित्त कया रहा है । दूसरा देवता । आनुष्म बहकि ! और भगवान् आपसे कहते हैं—बहकि ! मत उरो मत करो तुम्हारी क्षण्यु नित्यत्व होगी ।

“मन्ते ! बहुत अप्पन” कद ने मिष्ठु भगवान् को उत्तर दे चढ़ाँ आनुष्मान् बहकि ने चढ़ाँ गये । जाकर आनुष्मान् बहकि से बोले—आनुष्म बहकि ! तुमने भगवान् ने और जो देवताओ ने क्या कहा है ।

तब आनुष्मान् बहकि ने अपने दृष्ट करमे वाच्यों को आमन्त्रित किया आनुष्म ! तुमने मुझे बहुत कर पाट से बीचे उत्तर दे । तुम जैसे को हम जैसे नामन पर बैठ भगवान् का उपदेश सुनना अप्पन नहीं ।

'अनुस ! बहुत अच्छा' कह, उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् चक्रलि को उत्तर दे, उन्हें पकड़ कर वाट में उतार दिया ।

आनुस ! आज की रात को अत्यन्त सुन्दर देवता । आयुस ! आर भगवान् भी आपसे कहते हैं—चक्रलि ! मन डरो, मन डरो, तुम्हारी मृत्यु निश्चाय होती।

आनुस ! तब, जग लोम मंत्री और ये भगवान् के चरणों पर प्रणाम करें—भन्ते ! चक्रलि भिक्षु रोगी, पीड़ित और बहुत बीमार हैं, जो यह भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करता है और कहता है, "भन्ते ! रूप अनिष्ट है, मैं उसकी आकांक्षा नहीं करता । जो अनिष्ट है वह दुःख है, इसमें मुझे सम्प्रेम नहीं । जो अनिष्ट, दुःख, और परिवर्तनशील है उसके प्रति मुझे छन्द=राग=प्रेम नहीं, इसमें मुझे कुछ सम्प्रेम नहीं ।

वेदना ; सज्ज , संस्कार , विज्ञान अनिष्ट ।"

"आनुस ! बहुत अच्छा" कह, ये भिक्षु आयुष्मान् चक्रलि को उत्तर दे चले गये ।

तब, उन भिक्षुओं के जाने के बाद ही आयुष्मान् चक्रलि ने आत्म-हत्या कर ली ।

तब, ये भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! चक्रलि भिक्षु रोगी, पीड़ित और बहुत बीमार हैं, जो भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करता है और कहता है—भन्ते रूप अनिष्ट है मैं उसकी आकांक्षा नहीं करता । जो अनिष्ट है वह दुःख है, इसमें मुझे सम्प्रेम नहीं । जो अनिष्ट, दुःख और परिवर्तनशील है उसके प्रति मुझे छन्द=राग=प्रेम नहीं है, इसमें मुझे कुछ सम्प्रेम नहीं । वेदना , सज्ज संस्कार , विज्ञान ।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, 'भिक्षुओं ! चलो, जहाँ ऋषिमिलि शिला है वहाँ चल चले, जहाँ चक्रलि कुलपुत्र ने आत्म-हत्या करली है ।'

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

तब, कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान् जहाँ ऋषिमिलि शिला है वहाँ गये । भगवान् ने आयुष्मान् चक्रलि को दूर ही से वाट पर गला कटे सोये देखा । उस समय, कुछ भुँवाती हुई छाया के समान पूर्य की ओर उड़ रही थी, पच्छिम की ओर उड़ रही थी, ऊपर की ओर उड़ रही थी, नाचे की ओर उड़ रही थी, सभी ओर उड़ रही थी ।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओं ! इस कुछ भुँवाती हुई छाया के समान पूर्य की ओर उड़ रही है हमें देखते हो न ?"

भन्ते ! हाँ ।

भिक्षुओं ! धष्ट पापी सार है, जो कुलपुत्र चक्रलि के विज्ञान को खोज रहा है—चक्रलि कुलपुत्र का विज्ञान कहाँ लगा है ।

भिक्षुओं ! चक्रलि कुलपुत्र का विज्ञान कहीं नहीं लगा है । उसने तो परिनिर्वाण पा लिया ।

§ ६ अस्सजि सुत्त (२१ २. ४ ६)

वेदनाओं के प्रति आसक्ति नहीं रहती

एक समय भगवान् राजशुद्ध के वेल्लुधन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् अस्सजि काश्यपकाराम में रोगी, पीड़ित और बहुत बीमार थे ।

तब, आयुष्मान् अस्सजि ने अपने ढहल करने वालों को आमन्त्रित किया, "आनुस ! आप जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जायें, और मेरी ओर से भगव के चरणों पर शिर से प्रणाम करें—भन्ते ! अस्सजि भिक्षु रोगी

पीड़ित और बहुत बीमार हैं तो भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करते हैं। धार कहें—भग्ने ! यदि कृपा कर वहाँ भस्मजि मिथु हैं वहाँ चकते तो बड़ी अच्छी बात होती।

“आहुत । बहुत अच्छा” कह के मिथु आयुष्मान् भस्मजि को उठर दे वहाँ भगवान् के वहाँ जाये और भगवान् का अभिवादन कर पूज और बैठ गये। पूज और बठ उन मिथुओं ने भगवान् को कहा भग्ने ! भस्मजि मिथु रागी । वहाँ चकते तो बड़ी अच्छी बात होती।

भगवान् ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया।

तब भगवान् ने संध्या समय प्वात स बठ वहाँ आयुष्मान् भस्मजि के वहाँ गये।

अ युष्मान् भस्मजि ने भगवान् को दूर ही स आते देखा देप कर खाट ठीक करने लगे।

तब भगवान् आयुष्मान् भस्मजि स बोल रहने दो भस्मजि ! खाट ठीक मत करो। ये भामन बिटे हैं मैं हूब पर बैठ जाऊँगा।

भगवान् बिटे आसन पर बैठ गये और आयुष्मान् भस्मजि स बोले ‘भस्मजि ! कही तर्बावत कनी है ?’

भग्ने ! मेरी तर्बावत जगड़ी नहीं है।

भस्मजि ! तुम्हें कोई मझक या पछल बा तो नहीं रह गया है ?

भग्ने ! हमें तो बहुत बड़ा मझक रह गया है।

भस्मजि ! कहीं तुम्हें शीक न पाकन करने का पझात्ताप ता नहीं रह गया है ?

भग्ने ! नहीं मुझ शीक न पाकन करने का पझात्ताप नहीं रह गया है।

भस्मजि ! यदि तुम्हें शीक न पाकन करने का पझात्ताप नहीं रह गया है तो किस बात का मझक या पछलाबा है ?

भग्ने ! इस रोग के पहक मैं अपने आबाम-अधाम पर प्वात लगान का अजय स किबा करता था सा मुने उम समाधि का काम नहीं हुआ। अता भरे मन में पह यत आई—कहीं मैं आसन से गिर ता नहीं जाऊँगा ?

भस्मजि ! तिम अजय आर आहल का पूसा मत है कि समाधि ही असल चीज है (स्विसके बिना मुक्ति नहीं हो सकती है) ने भले ही देना समझते हैं कि समाधि के बिना कहीं मैं श्रुत न हो जाऊँ।

भस्मजि ! ता बधा समझते हो रूप गिन्य है या अनिरय ?

अनिरय भग्ने।

वेदना, मंजा, गरंकार, विज्ञान ?

अनिरय भग्ने !

दुर्माकिय, बह ज्ञान और देव पुनर्जन्म में नहीं पपता है।

यदि उमे सुन्दर वेदना होती है तो जानता है कि बह वेदना अनिरय है। बह जानता है कि हममें जगता नहीं चाहिये। बह जानता है कि हमका अभिनन्दन नहीं करना चाहिये। यदि उमे दुन्दर वेदना होती है तो जानता है कि बह वेदना अनिरय है। बह जानता है कि हममें जगता नहीं चाहिये। बह जानता है कि हमका अभिनन्दन नहीं करना चाहिये। यदि उमे न सुन्दर न दुन्दर वाली वेदना होती है।

यदि उम सुन्दर वेदना होती है तो बह अकारक हो उमे अनुभव करता है। यदि उमे दुन्दर...। यदि उम न सुन्दर न दुन्दरवाली वेदना।

बह वाक्यावैग वेदना का अनुभव करने जानता है कि बह अकारक वेदना है। अविनयवैग

वेदना का अनुभव करते जागता है कि यह जीवितपर्यन्त वेदना है। वेह छूटने, मरने के पहले, यहीं सभी वेदनायें ठंडी हो जायँगी और उनके प्रति कोई आसक्ति नहीं रहेगी।

अस्सजि ! जैसे तेल और बत्ती के प्रत्यय से प्रदीप जलता है, तथा उसी तेल और बत्ती के न होने से प्रदीप बुझ जाता है, वैसे ही भिक्षु कायपर्यन्त वेदना का अनुभव करते जानता है कि कायपर्यन्त वेदना का अनुभव कर रहा हूँ, जीवितपर्यन्त, वेह छूटने तथा मरने के पहले यहीं सभी वेदनायें ठंडी हो जायँगी और उनके प्रति कोई आसक्ति नहीं रहेगी।

§ ७. खेमक सुत्त (२१ २. ४. ७)

उदय-व्यय के मनन से मुक्ति

एक समय कुछ स्थविर भिक्षु कौशाश्रमी के घोपिताराम में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् खेमक वदरिक्काराम में रोगी, पीड़ित और बीमार थे।

तब, संख्या समय ध्यान से उठ उन स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् दासक को आमन्त्रित किया, “आबुस दासक ! सुन, जहाँ खेमक भिक्षु हैं वहाँ जाय और उनमें कहें—आबुस ! स्थविर भिक्षुओं ने पूछा है कि आपकी तबीयत कैसी है ?”

“आबुस ! बहुत अच्छा” कह, दासक भिक्षु उन स्थविर भिक्षुओंको उत्तर दे जहाँ खेमक भिक्षु थे वहाँ आये, और बोले—अबुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने पूछा है कि आपकी तबीयत कैसी है ?

आबुस ! मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

तब, आयुष्मान् दासक जहाँ स्थविर भिक्षु थे वहाँ आये और बोले—आबुस ! खेमक भिक्षु ने कहा कि मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

आबुस दासक ! सुन, जहाँ खेमक भिक्षु हैं वहाँ जायँ। जाकर खेमक भिक्षु से कहें, “आबुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने आपको कहा है—भगवान् ने पाँच उपादान स्कन्ध बताये हैं, जैसे—रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार और विज्ञान-उपादान-स्कन्ध। इन पाँच में क्या आयुष्मान् खेमक किसी को आत्मा या आत्मीय करके देखते हैं ?

“आबुस ! बहुत अच्छा” कह । इन पाँच में क्या आयुष्मान् खेमक किसी को आत्मा या आत्मीय करके देखते हैं ?

आबुस ! भगवान् ने पाँच उपादान स्कन्ध बताये हैं । इन पाँच में मैं किसी को आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता हूँ।

तब, आयुष्मान् दासक जहाँ स्थविर भिक्षु थे वहाँ आये और बोले, “आबुस ! खेमक भिक्षु कहता है कि— इन पाँच स्कन्धों में मैं किसी को आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता हूँ।

आबुस दासक ! सुन, जहाँ खेमक भिक्षु हैं वहाँ जायँ। जाकर खेमक भिक्षु से कहें, “आबुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने आपको कहा है— यदि आयुष्मान् खेमक इन पाँच स्कन्धों में से किसी को भी आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखते हैं तो अवश्य क्षीणाश्रय अर्हंत हैं।

“आबुस ! बहुत अच्छा” कह, आयुष्मान् दासक स्थविर भिक्षुओंको उत्तर दे, जहाँ खेमक भिक्षु थे वहाँ आये, और बोले, “आबुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने कहा है— यदि आयुष्मान् खेमक इन पाँच स्कन्धों में से किसी को भी आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखते हैं तो अवश्य क्षीणाश्रय अर्हंत हैं।

आबुस ! इन पाँच उपादान स्कन्धों में मैं किसी को आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता, किन्तु मैं क्षीणाश्रय अर्हंत नहीं हूँ। आबुस ! किन्तु, मुझे पाँच उपादान स्कन्धों में ‘अस्मि’ (मैं हूँ) की बुद्धि है ही, यद्यपि मैं नहीं जानता कि मैं ‘यह’ हूँ।

तब, आयुष्मान् दासक जहाँ स्थविर भिक्षु थे ।

पीड़ित और बहुत बीमार है। सो भगवान् के चरणों पर चारों से प्रणाम् करत हैं। बार कहें—मन्ने ! यदि कृपा कर जाहें अस्सजि मिथु है जाहें चरते तो बड़ी अच्छी बात होती।

भाबुम ! बहुत अच्छा" कह के मिथु भाबुप्मान् अस्सजि को उत्तर दे जाहें भगवान् व जाहें जाये और भगवान् का धर्मिवाचन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ उन मिथुओं न भगवान् को कहा 'मन्ने ! अस्सजि मिथु रोगी । जाहें चरते तो बड़ी अच्छी बात होती।

भगवान् नै चुप रह कर स्वीकार कर लिया।

तब भगवान् संन्यासमय ध्यान से उठ जाहें भाबुप्मान् अस्सजि के जाहें गये।

अ बुप्मान् अस्सजि न भगवान् को दूर ही से आते हुआ देख कर लाट डीक करने लगे।

तब भगवान् भाबुप्मान् अस्सजि से बोके "रहने वा अस्सजि ! लाट डीक मत करो। ये आत्मन बिछे है मैं इन पर बैठ जाऊँगा।

भगवान् बिछे आत्मन पर बैठ गये और भाबुप्मान् अस्सजि से बोके अस्सजि ! कहे लबीबत कैसी है ?

मन्ने ! मेरी लबीबत अच्छी नहीं है।

अस्सजि ! तुम्हें कोई मसक वा पछतावा ली नहीं रह गया है ?

मन्ने ! हमें तो बहुत बड़ा मसक रह गया है।

अस्सजि ! कहीं तुम्हें शीक न पाकन करने का पञ्चात्पाय तो नहीं रह गया है ?

भन्ते ! नहीं मुझ शीक न पाकन करने का पञ्चात्पाय नहीं रह गया है।

अस्सजि ! यदि तुम्हें शीक न पाकन करने का पञ्चात्पाय नहीं रह गया है तो किस बात का मसक वा पछतावा है ?

मन्ने ! इस रोग के पहलू मैं अपने जाबाब-मजास पर ध्यान लगाने का जन्म स निभा करता था तो मुझे उल समाधि का काम नहीं हुआ। अतः मेरे मन में बड़ बात आई—कहीं मैं जासम से गिर तो नहीं जाऊँगा ?

अस्सजि ! बिच जन्म और माइल का पूरा मत है कि समाधि ही असक चीज है (बिचलके बिना मुक्ति नहीं हो सकती है) वे भके ही पूना समझते हैं कि समाधि के बिना कहीं मैं खुत न हो जाऊँ।

अस्सजि ! तो क्या समझते ही रूप बिल्य है वा अमित्य ?

अमित्य भन्ते !

बदना ; संज्ञा ; संस्कार ; विज्ञान ?

अमित्य भन्ते !

हमीकियु बड़ ज्ञान और देख पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है।

यदि उसे पुनर्बुद बेदना होती है तो जानता है कि वह बेदना अमित्य है। वह जानता है कि हममें सगवा नहीं आदिपु। वह जानता है कि हमका अमित्यनद नहीं करना आदिपु। यदि उसे पुनर्बुद बेदना होती है तो जानता है कि वह बेदना अमित्य है। वह जानता है कि इसमें सगवा नहीं आदिपु। वह जानता है कि हमका अमित्यनद नहीं करना आदिपु। यदि उसे न सुख न दुःख बरखी बेदना होती है।

यदि उसे पुनर्बुद बेदना होती है तो वह अतसक ही उसे अनुभव करता है। यदि उसे पुनर्बुद । यदि उसे न सुख न दुःखबार्थी बेदना ।

बड़ जाबाबैत बदना का अनुभव करते जानता है कि वह अतसक बेदना है। जीवितपर्वण

उपादान-स्कन्धों में उदय और व्यय देखते हुये विहार करने से उसके पाँच उपादान स्कन्धों के साथ होने वाले "मै हूँ" का मान, छन्द और अनुशय छूट जाता है।

इस पर, वे स्थविर भिक्षु आयुष्मान् खेमक से बोले, "हमने आयुष्मान् खेमक को कुछ नीचा दिखलाने के लिए नहीं पूछा था, किन्तु आप आयुष्मान् यथार्थ में भगवान् के धर्म को विस्तार-पूर्वक बता सकते हैं, समझा सकते हैं, जना सकते हैं, सिद्ध कर सकते हैं, खोल सकते हैं, और विश्लेषण करके साफ साफ कर सकते हैं। सो आपने वैसा ही किया।

आयुष्मान् खेमक यह बोले। सतुष्ट हो स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् खेमक के कहे का अभि-नन्दन किया।

इस धर्माहाप के अनन्तर उन साठ स्थविर भिक्षुओं के तथा आयुष्मान् खेमक के चित्त उपा-दान-रहित हो आश्रमों से मुक्त हो गये।

§ ८. छन्न सुत्त (२१. २ ४ ८)

बुद्ध का मध्यम मार्ग

एक समय कुछ स्थविर भिक्षु चाराणसी के पास ऋषिपत्तन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् छन्न संघा समय ध्यान से उठ, चाभी ले एक विहार से दूसरे विहार जा स्थविर भिक्षुओं से बोले, "आप स्थविर लोग मुझे उपदेश दें, सिखावें और धर्म की बात कहें जिससे मैं धर्म को जान सकूँ।

इस पर, उन स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् छन्न को कहा, "आयुस छन्न! रूप अनित्य है, वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान अनित्य है। रूप अनात्म है, वेदना, सज्ञा, संस्कार, विज्ञान अनात्म है। सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं।

तब, आयुष्मान् छन्न के मन में ऐसा हुआ, "मैं भी इसे ऐसा ही समझता हूँ—रूप अनित्य अनात्म है। सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं। किन्तु, मेरे सभी सन्धारों के शान्त हो जाने, सभी उपाधियों के अन्त हो जाने, तृष्णा के क्षय हो जाने, विराग, निरोध, निर्वाण से चित्त शान्त, शुद्ध, स्थिर तथा परित्रास से विमुक्त नहीं हो जाता है। उपादान उत्पन्न होता है और मन को आच्छा-दित कर देता है। तब, मेरा कौन आत्मा है। इय तरह धर्म को जना नहीं जाता है। भला, मुझे कौन धर्मापदेश करे कि मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूँ।

तब आयुष्मान् छन्न के मन में यह हुआ, "यह आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषित-राम में विहार करते हैं। भगवान् स्वयं उनकी प्रशंसा करते हैं, तथा भिक्षु भिक्षुओं में भी उनका बड़ा सम्मान है। अतः, आयुष्मान् आनन्द मुझे वैसा धर्मापदेश कर सकते हैं जिससे मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूँ। मुझे आयुष्मान् आनन्द में पूरा-पूरा विश्वास भी है। तो, मैं चलों जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं।

तब, आयुष्मान् छन्न अपना विछावन समेट, पात्र और चीवर ले, जहाँ कौशाम्बी के घोषित-राम में आयुष्मान् आनन्द विहार कर रहे थे वहाँ पहुँचे, और कुशल-स्रेम पूछने के बाद एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् छन्न ने आयुष्मान् आनन्द को कहा, "आयुस आनन्द! एक समय में चाराणसी के पास ऋषिपत्तन मृगदाय में मुझे आयुष्मान् आनन्द में पूरा विश्वास भी है। तो, मैं चलों जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं।

"आयुष्मान् आनन्द मुझे उपदेश दें समझावें, धर्म की बात बतावें जिससे मैं धर्म को जान लूँ। इतने भर से हम लोग आयुष्मान् छन्न से सतुष्ट हैं। उसे आयुष्मान् छन्न ने प्रकट कर दिया, खोल दिया। आयुष्मान् छन्न! आप श्रोतव्य-काल का लाभ करें। आप धर्म अन्ती तरह जान सकते हैं।

आयुष्मत् दासक ! तुमने जहाँ रोमक मिथु हैं वहाँ भापें भीर कहें, आयुष्मत् रोमक ! स्वविर मिथुओं ने कहा है—आयुष्मत् ! आ भाप कहते हैं "मैं हूँ, वह 'मैं हूँ' क्या है ?

क्या रूप को 'मैं हूँ' कहते हैं या 'मैं हूँ' रूप से कहीं बाहर है ? बेदना , संज्ञा ; संस्कार विज्ञान !

"आयुष्मत् ! बहुत अच्छा" कह आयुष्मान् दासक स्वविर मिथुओं को उत्तर दे ।

आयुष्मत् दासक ! यह वाच-रूप बस रहे । मेरी छाठी छापें मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा जहाँ ने स्वविर मिथु हैं ।

तब आयुष्मान् रोमक छाठी देखते जहाँ ने स्वविर मिथु से वहाँ पहुँचे भीर कुमल समाचार छप कर एक ओर बैठ गये ।

एक भीर बैठ हुये आयुष्मान् रोमक को उन स्वविर मिथुओं ने कहा "आयुष्मत् ! जो भाप कहते हैं "मैं हूँ," वह "मैं हूँ" क्या है ? क्या रूप को 'मैं हूँ' कहते हैं या 'मैं हूँ' रूप से कहीं बाहर है ? बेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान !

आयुष्मत् ! मैं रूप बेदना संज्ञा संस्कार भीर विज्ञान को 'मैं हूँ' नहीं कहता और न 'मैं हूँ' इनसे कहीं बाहर है । किन्तु पाँच उपादान स्कन्धों में "मैं हूँ" ऐसी मेरी बुद्धि है, यद्यपि यह नहीं जानता यह 'मैं हूँ' क्या है ।

आयुष्मत् ! जैसे उ पक्ष का पा पक्ष का पा पुष्करिक का गन्ध है । यदि कोई कहे, "पक्ष का गन्ध है या इसके रंग का गन्ध है या इसके पराग का गन्ध है" तो क्या वह ठीक समझा जायगा ?

वहीं आयुष्मत् !

आयुष्मत् ! तो भाप बतावें कि किस प्रकार कहने से ठीक समझा जायगा ।

आयुष्मत् ! "रूप का गन्ध है" ऐसा कहने से वह ठीक समझा जायगा ।

आयुष्मत् ! इसी तरह मैं रूप को 'मैं हूँ' नहीं कहता और न "मैं हूँ" को रूप से बाहर की चीज बताता । न बेदना को । न संज्ञा को । न संस्कार को । न विज्ञान को । आयुष्मत् ! यद्यपि पाँच उपादान स्कन्धों में मुझे "मैं हूँ" की बुद्धि छापी है, तथापि मैं नहीं जानता कि मैं यह हूँ ।

आयुष्मत् ! आर्यभाषक के पाँच बीजे के बन्धन कर जाने पर भी उसे पाँच उपादानस्कन्धों के साथ होने वाले "मैं हूँ" का भाव छन्द (अन्धकार) और अनुसंधान क्या ही रहता है । वह जागे बक कर पाँच उपादानस्कन्धों में उद्वेग और व्यय (अव्ययि और विपास) देखते हुए बिहार करता है — यह रूप है, वह रूप की उपपत्ति है यह रूप का अस्त हो जाना है । यह बेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

इस प्रकार पाँच उपादानस्कन्धों में उद्वेग और व्यय देखते हुये बिहार करने से उसके पाँच उपादान स्कन्धों के साथ होने वाले "मैं हूँ" का भाव छन्द भीर अनुसंधान छूट जाता है ।

आयुष्मत् ! जैसे कोई बहुत मीठा गन्ध कापवा हो । उसे कसकर माझिक बोधी को दे दे । जोशी राख या खार या गोबर में कस कपने को मक-मक कर लूच पीने और साथ पापी में खँबार दे । कपवा पूर साक उद्वेग हो भाप किन्तु उसमें राख या खार या गोबर का गन्ध क्या ही रहे । उसे पीवी माझिक को दे दे । माझिक बने सुगन्धित बक से पी के । तब कपने में क्या हुआ राख या खार पीकर का गन्ध विकसुक्त दूर हो जाय ।

आयुष्मत् ! इसी तरह आर्यभाषक के पाँच बीजे के बन्धन कर जाने पर भी उसे पाँच उपादान स्कन्धों के साथ होने वाले "मैं हूँ" का भाव छन्द भीर अनुसंधान क्या ही रहता है । वह जागे बक कर पाँच उपादान स्कन्धों में उद्वेग और व्यय देखते हुये बिहार करता है — यह रूप है, यह रूप की उपपत्ति है यह रूप का अस्त हो जाना है । यह बेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान । इस प्रकार पाँच

उपादान-स्वन्धो में उद्वेग और व्यथ देखते हुये विहार करने से उसके पाँच उपादान स्वन्धों के साथ होने वाले "मैं हूँ" का मान, छन्द और अनुशय छूट जाता है।

इस पर, वे स्थविर भिक्षु आयुष्मान् खेमक से बोले, "हमने आयुष्मान् रोमक को कुछ नीचा दिखलाने के लिए नहीं पूछा था, किन्तु आप आयुष्मान् यथार्थ में भगवान् के धर्म को विस्तार-पूर्वक बता सकते हैं, सनथा सकते हैं, जना सकते हैं, सिद्ध कर सकते हैं, खोल सकते हैं, और विश्लेषण करके साफ साफ कर सकते हैं। तो आपने वैसा ही किया।

आयुष्मान् खेमक यह बोले। सतुष्ट हो स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् खेमक के कहे का अभि-नन्दन किया।

इस धर्मादाय के अनन्तर उन साठ स्थविर भिक्षुओं के तथा आयुष्मान् खेमक के चित्त उपादान-रहित हो आश्रयों से मुक्त हो गये।

§ ८. छत्र सुत्त (२१. २ ४ ८)

बुद्ध का मध्यम मार्ग

एक समय कुछ स्थविर भिक्षु वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् छत्र सध्या समय ध्यान से उठ, चाभी ले एक विहार से दूसरे विहार जा स्थविर भिक्षुओं से बोले, "आप स्थविर लोग मुझे उपदेश दें, सिखायें और धर्म की बात कहे जिससे मैं धर्म को जान सकूँ।

इस पर, उन स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् छत्र को कहा, "आयुस छत्र! रूप अनित्य है, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान अनित्य है। रूप अनात्म है, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान अनात्म है। सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं।

तब, आयुष्मान् छत्र के मन में ऐसा हुआ, "मैं भी इसे ऐसा ही समझता हूँ—रूप अनित्य अनात्म है। सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं। किन्तु, मेरे सभी संस्कारों के शान्त हो जाने, सभी उपाश्रयों के अन्त हो जाने, तुण्या के क्षय हो जाने, विराग, निरोध, निर्वाण में चित्त शान्त, शुद्ध, स्थिर तथा परित्रास से विमुक्त नहीं हो जाता है। उपादान उत्पन्न होता है और मन को आच्छादित कर देता है। तब, मेरा कोन आव्या है। इन्व तरह धर्म को जाना नहीं जाता है। भला, मुझे कौन धर्मोपदेश करे कि मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूँ !

तब आयुष्मान् छत्र के मन में यह हुआ, "यह आयुष्मान् आनन्द कौशाभ्वी के घोषिताराम में विहार करते हैं। भगवान् स्वयं उनकी प्रशंसा करते हैं, तथा विज्ञ भिक्षुओं में भी उनका बड़ा सम्मान है। अतः, आयुष्मान् आनन्द मुझे वैसा धर्मोपदेश कर सकते हैं जिससे मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूँ। मुझे आयुष्मान् आनन्द में पूरा-पूरा विश्वास भी है। तो, मैं चलेँ जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं।

तब, आयुष्मान् छत्र अपना पिछावन समेट, पात्र और पीवर ले, जहाँ कौशाभ्वी के घोषिताराम में आयुष्मान् आनन्द विहार कर रहे थे वहाँ पहुँचे, और कुशल-खेम पूछने के बाद एक ओर बँठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् छत्र ने आयुष्मान् आनन्द को कहा, "आहुस आनन्द ! एक समय मैं वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में मुझे आयुष्मान् आनन्द में पूरा विश्वास भी है। तो, मैं चलेँ जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं।

"अयुष्मान् आनन्द मुझे उपदेश दें समझाएँ, धर्म की बात बतायें जिससे मैं धर्म को जान लूँ। इतने भर से हम लोग आयुष्मान् छत्र से सतुष्ट हैं। उसे आयुष्मान् छत्र ने प्रकट कर दिया, खोल दिया। आहुस छत्र ! आप चौथापत्ति-फल का लाभ करें। आप धर्म अच्छी तरह जान सकते हैं।

इसे सुन आयुष्मान् उरु के मन में बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई—यै धर्म अच्छी तरह जान सकता है।
 आयुष उरु । मैंने स्वयं भगवान् की कात्यायनगोत्र भिक्षु को उपदेश देते सुनकर जाना है—
 कात्यायन । यह संसार ही ध्यान में पड़ा है जिनके कारण अस्तित्व और नास्तित्व की प्राम्ति होती है।
 कात्यायन । संसार के समुद्र को पयार्थता जान लेने से संसार के प्रति जो नास्तित्व-बुद्धि है वह नहीं
 होती है। कात्यायन । संसार के विरोध को पयार्थता जान लेने से संसार के प्रति जो अस्तित्व की बुद्धि है
 वह नहीं होती है। कात्यायन । यह संसार उपाय उपायान और अभिनिवेश से बेतरह बनना है। इस
 जान लेने से विश्व में अभिघ्नन अभिनिवेश और अनुसय नहीं कगते हैं और व उसी 'आत्मा' की
 प्राम्ति होती है। उत्पन्न हो कर हुआ ही उत्पन्न होता है, और विरुद्ध हो कर हुआ ही निरुद्ध होता
 है—इसमें किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रह जाता। प्रतीत्य-समुत्पाद् का परा-परा जान ही जाता है।
 कात्यायन । इसी को सम्बन्ध-रहित करते हैं।

कात्यायन । "समी कुठ है" (असर्व अरित) यह एक शब्द है। "कुठ नहीं है" (असर्व नास्तित्व)
 यह दूसरा शब्द है। कात्यायन । इन ही शब्दों में न का कुछ धर्म को मध्य से उपदेश करते हैं।
 अधिका के मध्य से संस्कार होते हैं, संस्कार के मध्य से विज्ञान होता है इस प्रकार सारा
 दुःख-समूह उठ पड़ा होता है। जमी अधिका के विरुद्ध विरोध हो जाने में संस्कार नहीं होते इस
 प्रकार सारा दुःख-समूह शून्य ही जाता है।

आयुष आनन्द । जिस आयुष्मान् के इस प्रकार कृपालु, परमार्थी और उपदेश देने वाले गुरुनाई
 होते हैं उनका देसा ही होता है। आयुष्मान् आनन्द के इस उपदेश को सुन सुने परा-परा धर्म-ज्ञान हो
 गया।

३ ९ पठम राहुल सुध (२१ २ ४ ९)

पञ्चमकण्ड के प्राग से मईकार से मुक्ति

धायस्ती जैठपत्त ।

तब आयुष्मान् राहुल जहाँ भगवान् ने जहाँ जाने और भगवान् का अभिधान कर एक
 धोर ही गये।

एक और धर्म, आयुष्मान् राहुल भगवान् से बोले शब्दों । क्या जान और देण कर मनुष्य को
 विज्ञानवाले इन शरीर में और बाहर के सभी निमित्तों में अद्वार, ममद्वार, माव और अनुसय
 नहीं होते हैं ?

राहुल । ज्ञा कुठ रूप—अतीत अनागत वर्तमान अध्यात्म बादा स्पृक शून्य हीन प्रतीत
 दूर या निकट—ई सभी न ता मरा है व मैं हूँ और व मेरा आत्मा है। इसी को पयार्थता परा-परा
 जान लेने से।

जो कुठ बर्दा । जो कुठ संज्ञा । जो कुठ संस्कार । जो कुठ विज्ञान ।

राहुल । इने जान और देण कर मनुष्य को विज्ञानवाले इन शरीर में और बाहर के सभी
 निमित्तों से अद्वार, ममद्वार, माव और अनुसय नहीं होते हैं।

३ १० द्वितीय राहुल सुध (२१ २ ४ १०)

द्वितीय प्राग व मुक्ति ।

अन्त । क्या जान और देण कर मनुष्य विज्ञानवाले इन शरीर में तथा पादर के सभी
 निमित्तों में अद्वार, ममद्वार और माव व इदित मव बाया इन्द्र के बरे प्राग और विमुक्त होता है।
 राहुल । जो कुठ रूप । इन जान और देण कर ।

अध्यात्म धर्म व ममान ।

पाँचवाँ भाग

पुष्प वर्ग

§ १. नदी सुत्त (२१. २ ५. १)

अनित्यता के पान से पुनर्जन्म नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! जैसे पर्वत से निकल कर गिराती-भराती बहनेवाली वेगधर्ती नदी हो । उसके दोनों तट पर कास उगे हों, जो नदी की ओर झुके हों । बुदा भी उगे हों, जो नदी की ओर झुके हों । यद्वज (= भावद) भी । दीरण (= दण्ड) भी । वृक्ष भी उगे हों जो नदी की ओर झुके हों ।

नदी की धारा में बहता हुआ कोई मनुष्य यदि कामों को पकड़े तो वे उतराद जायें । इसमें मनुष्य और भी उतरे में पड़ जाय । यदि कुतों को पकड़े । यदि यद्वजों को पकड़े । यदि दीरण को पकड़े । यदि वृक्षों को पकड़े ।

भिक्षुओ ! इसी तरह, अज्ञ=धुवपूजन=आर्यमलों को न जानने वाला=आर्यधर्म में अज्ञान=आर्यधर्म में अविनीत रूप को आत्मा करके जानता है, या रूप में आत्मा को जानता है । उसका वह रूप उच्छेद जाता है, उससे पद और विपत्ति में पड़ जाता है । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ?

अनित्य भन्ते !

भिक्षुओ ! इसलिए इसे जान और देख वह पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है ।

§ २. पुष्प सुत्त (२१ २ ५ २)

बुद्ध संसार से अनुपलित रहते हैं

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! मैं संसार में विवाद नहीं करता, संसार ही मुझसे विवाद करता है । भिक्षुओ ! धर्म-वादी संसार में कुछ विवाद नहीं करता ।

भिक्षुओ ! संसार में पण्डित लोग जिसे "नहीं है" कहते हैं उसे मैं भी "नहीं है" कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! जिसे पण्डित लोग "है" कहते हैं उसे मैं भी "है" कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! संसार में किसी पण्डित लोग "नहीं है" कहते हैं जिसे मैं भी "नहीं है" कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! संसार में पण्डित लोग रूप को नित्य=धुव=शाश्वत=अविपरिणामधर्मा नहीं बताने हैं, मैं भी उसे 'ऐसा नहीं है' कहता हूँ । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । भिक्षुओ ! संसार में इसी को पण्डित लोग "नहीं है" कहते हैं जिसे मैं भी "नहीं है" कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! किसी पण्डित लोग "है" कहते हैं, जिसे मैं भी "है" कहता हूँ ?

इसे सुन आधुप्यान् छत्र के मन में बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई—मैं जर्म अच्छी तरह जान सकता हूँ।
आधुस छत्र ! मैंने स्वयं भगवान् की कार्यायनयोगिभिः को उपदेश देते सुनकर जाना है—
कार्यायन ! यह संसार ही ज्ञान में पड़ा है, जिसके कारण अस्तित्व और अस्तित्व की प्राप्ति होती है।
कार्यायन ! संसार के समुद्र को पर्यायतः जान लेने से संसार के प्रति जो अस्तित्व-बुद्धि है वह नहीं
होती है। कार्यायन ! संसार के विरोध को पर्यायतः जान लेने से संसार के प्रति जो अस्तित्व की बुद्धि है
वह नहीं होती है। कार्यायन ! यह संसार उपाय उपादाय और अभिविषेध से भेदरह बना है। इस
जान लेने से चित्त में अधिष्ठान अभिविषेध और अनुसय नहीं करते हैं और व उसे 'आध्या' की
प्राप्ति होती है। उत्पन्न हो कर बुद्ध ही उत्पन्न होता है, और विद्यह हो कर बुद्ध ही भिन्न होता
है—इसमें किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रह जाता। प्रतीत्य-समुत्पाद का पुरा-पुरा ज्ञान ही जाता है।
कार्यायन ! इसी को सम्प्रक-वधि कहते हैं।

कार्यायन ! "समी कुछ है" (—सर्व अस्तित्व) वह एक अन्त है। "कुछ नहीं है" (—सर्व अस्तित्व)
यह दूसरा अन्त है। कार्यायन ! इन दो अन्तों में व जा कुछ जर्म को मध्य से उपवेश करते हैं।
अधिष्ठा के प्रथम से संस्कार होते हैं; संस्कार के प्रथम से विज्ञान होता है इस प्रकार सारा
दुःख-समूह वर प्रका होता है। उसी अधिष्ठा के विस्तृत विरोध हो जाने से संस्कार नहीं होते इस
प्रकार सारा दुःख-समूह वन्द हो जाता है।

आधुस ज्ञानम् ! जिस आधुप्यान् की इस प्रकार हृषण्ड, परमार्थों और उपवेश देन वाले गुणमार्ग
होते हैं उनका ऐसा ही होता है। आधुप्यान् ज्ञानम् के इस उपवेश को शुभ सुभे पुरा-पुरा धर्म-ज्ञान हो
गया।

§ ९ प्रथम राहुल सुच (२१ २ ४ ९)

परम-स्वभाव के ज्ञान से अहंकार से मुक्ति

भावस्वी जेतपन ।

यह आधुप्यान् राहुल जहाँ भगवान् ने जहाँ अपने और भगवान् का अभिवादन कर एक
जोर बँध गये।

एक और बँध, आधुप्यान् राहुल समयान से बोके अन्त ! क्या जान और देख कर मनुष्य को
विज्ञानवाले इस शरीर में और बाहर के सभी विमियों में अहंकार, समझार मान और अनुसय
नहीं होते हैं ?

राहुल ! जो कुछ रूप—अतीत अनागत वर्तमान अज्याय बाध स्पृक स्वयं हीन प्रवीत,
पूर, वा विन्द—ही सभी व ता मेरा है व मैं हूँ और व मेरा आध्या है। इसी को पर्यायतः पुरा-पुरा
जान लेने से।

जो कुछ वेदना । जो कुछ संज्ञा । जो कुछ संस्कार । जो कुछ विज्ञान ।

राहुल ! इसे जान और देख कर मनुष्य को विज्ञानवाले इस शरीर में और बाहर के सभी
विमियों से परहृण्ड समझार मान और अनुसय नहीं होते हैं।

§ १० द्वितीय राहुल सुच (२१ २ ४ १०)

किसको ज्ञान से मुक्ति ?

...जन्मे ! क्या जान और देख कर मनुष्य विज्ञानवाले इस शरीर में तथा बाहर के सभी
विमियों में अहंकार समझार और मान से रहित मन पाळा इन्द्र के परे धाम्य और विमुक्त होता है ?
राहुल ! जो कुछ रूप । इस जान और देख कर ।

अधिर पर्य समाप्त ।

भिक्षुओ ! जैसे कोई जादूगर या जादूगर का श्रागिर्द बीच सड़क पर खेल दिखाये । उसे कोई चतुर मनुष्य देखे । भिक्षुओ ! भला जादू में क्या सार रहेगा ?

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो कुछ विज्ञान ।

भिक्षुओ ! इसे देख, पण्डित आर्यश्रावक रूपसे विरक्त होता है, वेदना से भी विरक्त होता है, संज्ञा , सस्कार , विज्ञान से भी विरक्त होता है । विरक्त रहने से बह राग-रहित हो जाता है, राग-रहित होने से विमुक्त हो जाता है, विमुक्त हो जाने से उसे "मैं विमुक्त हो गया" ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है ।

भगवान् यह बोले । यह बोल कर बुद्ध ने फिर भी कहा .—

रूप फेनपिण्डोपम है,

वेदना की उपमा जलके बुलबुले से है,

संज्ञा मरीचि की तरह है,

सस्कार केले के पेड़ की तरह,

जादू के खेल के समान विज्ञान है—

सूर्य वंशोत्पन्न गौतम बुद्ध ने बताया है ॥

जैसे-जैसे गौर से देखता भालता है,

और अच्छी तरह परीक्षा करता है,

उसे रिक्त और तुच्छ पाता है,

वह, जो ठीक से देखता है ॥

इस निन्दित शरीर के विषय में जो महाज्ञानी ने उपदेश दिया है,

उस प्रहीण धर्मों को पार किये हुये छोड़े रूप को देखो ॥

आयु, ऊष्मा (=गर्मी) और विज्ञान जब इस शरीर को छोड़ देते हैं,

तब यह बेकार भेतनाहीन होकर गिर जाता है ॥

इसका सिलसिला ऐसा ही है, बच्चों की माया की तरह,

यह बंधक कहा गया है, यहाँ कोई सार नहीं ॥

स्कन्धों को ऐसा ही समझे, उल्लाही भिक्षु,

सदा दिन और रात सप्रजन्ध और स्मृतिमान् होकर रहे ॥

सभी सयोग को छोड़ दे, अपना शरण आप धर्म

मानो शिर जल रहा हो ऐसा खयाल रख कर विचरे,

निर्वाण-पद की प्रार्थना करते हुये ।

§ ४. गोमय सुत्त (२१. २. ५. ४)

सभी संस्कार अनित्य हैं

श्राघस्ती जेतवन ।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिषादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, उस भिक्षु ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! क्या कोई रूप है जो नित्य = ध्रुव = शाश्वत = परिवर्तनरहित है ? भन्ते ! क्या कोई वेदना है जो नित्य ? संज्ञा , सस्कार , विज्ञान ?

भिक्षु ! कोई रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार या विज्ञान नहीं है जो नित्य = ध्रुव = शाश्वत = परिवर्तनरहित . है ।

मिथुनो ! रूप अतिय सुन्दर आर परिवर्तनशील है ऐसा परिचित लोग कहते हैं और मैं भी ऐसा ही कहता हूँ। वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । मिथुनो ! संसार में इसी को परिचित लोग 'दे' कहते हैं और मैं भी यथा ही कहता हूँ।

मिथुनो ! संसार का जो पदार्थ धर्म है उस कुछ भण्डी तरह आगते और समझते हैं। जान और समझ कर वे उमड़ो कहते हैं उपदेश करते हैं आगते हैं सिद्ध करते हैं छोड़ देते हैं, और विस्मयेय्य करते साक कर दते हैं।

मिथुनो ! रूप संसार का पदार्थ धर्म है जिस कुछ भण्डी तरह आगते और समझते हैं। जान और समझ कर । मिथुनो ! कुछ के इस प्रकार साक कर देने पर भी जो लोग नहीं आगते और दृश्यते हैं उन बाह्य-अनुपस्थित-अंश-विना आँद के-अज्ञ मनुष्य का मैं क्या कर सकता हूँ ! वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुनो ! जैसे जलस या पुण्डरीक या पत्र पानी में देना होता है और पानी में बड़ता है वी भी पानी स वह अन्व अनुपस्थित ही रहता ह। मिथुनो ! इसी तरह कुछ संसार में रह कर भी संसार का जिन संसार स अनुपस्थित रहते हैं।

३३ फेम्स सुच (२१ २. ५. ३)

शरीर में कोई सार नहीं

एक समय भगवान् भयोण्या में गंगा नदी के तट पर बिहार करते थे।

वहाँ भगवान् स मिथुनों को आमन्त्रित किया।

मिथुनो ! जैसे पद गंगा नदी बहुत फेन का बहा कर ले जाती है। इसे कोई भीत बाका मनुष्य देना भाव और डीक स परीक्षा कर दना साक और डीक से परीक्षा कर देने पर उस बह रिक्त तुष्ट आर अकार प्रतीत ह। मिथुनो ! अन्व फेन के विष्ट में क्या सार रहेगा ?

मिथुनो ! कम ही जो कुछ रूप—अतीत अनागत — है उसे मिथु देखता है भावता है और डीक स परीक्षा करता है। रूप भाव और डीक स परीक्षा कर देने पर उस बह रिक्त, तुष्ट और अकार प्रतीत होगा है। मिथुनो ! अन्व रूप में क्या सार रहेगा ?

मिथुनो ! जग शब्द आल में कुछ कूदी पद प्राप्ति पर जल में बुलबुल उठने और लीन होत रहते हैं। उस कोई भीत बाका मनुष्य देखे । मिथुनो ! अन्व जल के बुलबुले में क्या सार रहेगा ?

मिथुनो ! कम ही जो कुछ शैरवा—अतीत अनागत — है उसे मिथु देखता । मिथुनो ! अन्व वेदना में क्या सार रहेगा ?

मिथुनो ! जैसे प्रीत क विष्णु महीने में शेषहर के मन्त्रप मरिचिका हाता है। उस कोई भीत बाका मनुष्य दना । मिथुनो ! अन्व मरिचिका में क्या सार रहेगा ?

मिथुनो ! जग ही का कुछ संज्ञा ।

मिथुनो ! जग कोई मनुष्य हीर (जगत) की गात्र में कुछ तीरण तुहार को लेकर प्रीतक में पैर अन्व । वह वहाँ एक बह लीये मय कोमल जेन के पैर का देन । जग बह बह से शार कर गिरा है फिर भी क-रना अन्व आर शार कर उलक-उलक अन्व कर दे । इस तरह आर कभी लकड़ी भी नहीं पिके हीर की ता अन्व ही क्या ?

जग कोई भीत अन्व मनुष्य देन आक और डीक स परीक्षा करे, रूप भाव और डीक से परीक्षा कर देने पर उस बह रिक्त तुष्ट और अकार प्रतीत ह। मिथुनो ! अन्व देखे के लने में क्या सार रहेगा ?

मिथुनो ! यो ही का कुछ संस्कार ।

अनित्य भन्ते ।

वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान ?

अनित्य भन्ते ।

भिक्षु ! इसलिये , ऐसा जान और देखकर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता ।

§ ६. सामुद्दक सुत्त (२१ २ ५ ६)

सभी संस्कार अनित्य हैं

श्रावस्ती जेतवन ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! क्या कोई रूप है जो नित्य , वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान है जो नित्य = ध्रुव हो ? नहीं भिक्षु ! ऐसा नहीं है ।

§ ७. पठम गद्दुल सुत्त (२१ २. ५ ७)

अविद्या में पड़े प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! यह ससार अनन्त है । अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बंधे तथा आवागमन में भटकते रहने वाले इस ससार के आदि का पता नहीं लगता है ।

भिक्षुओ ! एक समय आता है जब महासागर सूख साख कर नहीं रहता है । भिक्षुओ ! तब भी, अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बंधे तथा आवागमन में भटकते रहने वाले प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं होता ।

भिक्षुओ ! एक समय होता है जब पर्वतराज सुमेरु जल जाता है, नष्ट हो जाता है, नहीं रहता है । भिक्षुओ ! तब भी अविद्या के अन्धकार में पड़े ।

भिक्षुओ ! एक समय होता है जब यह महापृथ्वी जल जाती है, नष्ट हो जाती है, नहीं रहती है । भिक्षुओ ! तब भी अविद्या के अन्धकार में पड़े ।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई कुत्ता किसी गड़े खूँटे में बँधा हो । वह उसी खूँटे के चारों ओर घूमता है । भिक्षुओ ! वैसे ही, अज्ञ = पृथक्जन रूप को आत्मा करके जानता है, वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान को आत्मा करके जानता है ।

आत्मा को विज्ञानवान्, या विज्ञान में आत्मा, या आत्मा में विज्ञान ।

वह रूप ही के चारों ओर घूमता है, वेदना , संज्ञा , सस्कार , विज्ञान ही के चारों ओर घूमता है । इस तरह, वह रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार और विज्ञान से मुक्त नहीं होता है । जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दीर्घनस्त्र और उपायास से मुक्त नहीं होता है । वह दुःख से मुक्त नहीं होता है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को आत्मा करके नहीं जानता है । वह रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार और विज्ञान के चारों ओर नहीं घूमता है । इस तरह, वह रूप से मुक्त हो जाता है । जाति, जरा से मुक्त हो जाता है । वह दुःख से मुक्त हो जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

तब मगधान् हाथ में बहुत थोड़ा गाजर लेकर उस मिथु से बोले “मिथु ! इतना भी आत्म-
भाव का प्रतिफल नहीं है जो मिल्य = भुव हो । मिथु ! यदि इतना भी आत्म-भाव का प्रतिफल
मिल्य=भुव हाथा तो महाचर्च-पावन दुःख-क्षय के किये नहीं जाना जाता । मिथु ! क्योंकि इतना भी
आत्म-भाव का प्रतिफल मिल्य=भुव नहीं है इसीलिये महाचर्च-पावन दुःख-क्षय के किये सार्थक जाना
जाता है ।

“मिथु ! पूर्वकाक में मैं मूर्खामिथिब क्षयिब राजा था । उस समय कुशापती राजधानी प्रमुख
मेरे चौरासी हज़ार नगर थे । उस समय धर्म प्राप्तव प्रमुख चौरासी हज़ार प्रासाद थे । उस समय
महाभूद क्षयगार प्रमुख मेरे चौरासी हज़ार कूटगार (=watch tower) थे । उस समय मेरे चौरासी
हज़ार पत्ता थे—इसी के रूत के हीरे के सोना के चाँदी के; काकीन क्मो हुये उक्के कम्क क्मो हुये,
कूटगार कम्क क्मो हुये, क्किकिपुग के कीमती धर्म क्मो हुये रैतवा क्मो हुये दोनों ओर कास तकिये
क्मो । उस समय उपोमव इस्तिराव प्रमुख मेरे चौरासी हज़ार हाथी थे—सोने के भकडार से भकडव
सोने की प्रवा क्मो हुये सोने के पास से हैंके । उस समय बकाहक मइबराव प्रमुख मेरे चौरासी हज़ार
पीढ़े थे—सोने के भकडार से भकडव सोने की धवा क्मो हुए, सोने के कास से हैंके । उस समय
बजपन्त रथ प्रमुख मेरे चौरासी हज़ार रथ थे—सोने के ।.. मभिरल प्रमुख मेरे चौरासी हज़ार मथि
थे । सुमद्रा देवी प्रमुख चौरासी हज़ार जियाँ थी । परितापकर व प्रमुख चौरासी हज़ार धनीब
राजा थे । चौरासी हज़ार रूप देने वाली गौर्बे थीं । चौरासी हज़ार कपड़े थे—रेशम के पट के ऊनी
धीर सूती । चौरासी हज़ार पाकिर्बो थीं किन्हेँ सूफकर दोनों बेम परोस कर के भाठा था ।

मिथु ! उस समय मैं उन चौरासी हज़ार नगरों में एक कुशापती राजधानी ही मैं रहता था ।
धर्म प्राप्तव ही मैं रहता था । [इसी तरह सभी के साथ समाप्त केना]

मिथु ! वे सभी संस्कार अतीत हो गये विरह हो गये विपरिपत्त हो गये । मिथु ! संस्कार
एवम् भुव = अकिल्य धार आधास सं रहित हैं ।

मिथु ! तो सभी संस्कारों से विरह हो जाना यका है तात्परहित हो जाना भका है विरुध
हो जाना भका है ।

§ ५ नखसिख युच (२१ ० ५ ५)

सभी संस्कार अकिल्य हैं

धायस्ती जेतवन ।

एक ओर बैठ वह मिथु मगधान् से बोला “भारते ! क्या कोई कम है जो मिल्य = भुव =
प्राप्तव = परिचर्च-रहित हो ? कोई देवता ? कोई संज्ञा ? कोई संस्कार ? कोई विज्ञान ?

नहीं मिथु ! ऐसा कोई कम देवता संज्ञा संस्कार वा विज्ञान नहीं है जो मिल्य = भुव हो ।

तब मगधान् अपने मक के ऊपर एक रूप के कम को रखकर बोले ‘मिथु ! इतना भी रूप
नहीं है जो मिल्य = भुव हो । मिथु ! यदि इतना भी रूप मिल्य = भुव हाथा तो महाचर्च दुःख-क्षय
का साधक नहीं जाना जाता । मिथु ! क्योंकि इतना भी रूप मिल्य = भुव नहीं है इसी से महाचर्च दुःख-
क्षय के किये सार्थक समझा जाता है ।

“मिथु ! इतनी भी देवता । इतनी भी संज्ञा । इतना भी संस्कार । इतना भी विज्ञान
मिल्य = भुव नहीं है । मिथु ! क्योंकि इतना भी विज्ञान मिल्य = भुव नहीं है इसी से महाचर्च दुःख-
क्षय के किये सार्थक समझा जाता है ।”

मिथु ! तो क्या समझने का रूप मिल्य है वा अकिल्य ?

अनित्य भन्ते ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ?

अनित्य भन्ते ।

भिक्षु ! इसलिये , ऐसा जान और देखकर पुनर्जन्म में नहीं पडता ।

§ ६. सामुद्दक सुत्त (२१ २. ५ ६)

सभी संस्कार अनित्य हैं

श्रावस्ती जेतवन ।

एक ओर बठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या कोई रूप है जो नित्य , वेदना , संज्ञा , संस्कार विज्ञान है जो नित्य = ध्रुव हो ? नहीं भिक्षु ! ऐसा नहीं है ।

§ ७. पठम गद्दुल सुत्त (२१ २. ५ ७)

अविद्या में पड़े प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओं ! यह ससार अनन्त है । अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बंधे तथा आवागमन में भटकते रहने वाले इस नसार के आदि का पता नहीं लगता है ।

भिक्षुओं ! एक समय आता है जब महासागर सूख साख कर नहीं रहता है । भिक्षुओं ! तब भी, अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बंधे तथा आवागमन में भटकते रहने वाले प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं होता ।

भिक्षुओं ! एक समय होता है जब पर्वतराज सुमेरु जल जाता है, नष्ट हो जाता है, नहीं रहता है । भिक्षुओं ! तब भी अविद्या के अन्धकार में पड़े ।

भिक्षुओं ! एक समय होता है जब यह महापृथ्वी जल जाती है, नष्ट हो जाती है, नहीं रहती है । भिक्षुओं ! तब भी अविद्या के अन्धकार में पड़े ।

भिक्षुओं ! जैसे, कोई कुरा किसी गढे खूँटे में धँसा हो । वह उम्मी खूँटे के चारों ओर घूमता है । भिक्षुओं ! वैसे ही, अज्ञ = पृथक्जन रूप को आत्मा करके जानता है, वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान को आत्मा करके जानता है ।

आत्मा को विज्ञानवान्, या विज्ञान में आत्मा, या आत्मा में विज्ञान ।

वह रूप ही के चारों ओर घूमता है, वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ही के चारों ओर घूमता है । इस तरह, वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान से मुक्त नहीं होता है । जाति, जरा, मरण, शोक, परिश्रम, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास से मुक्त नहीं होता है । वह दुःख में मुक्त नहीं होता है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओं ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को आत्मा करके नहीं जानता है । वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के चारों ओर नहीं घूमता है । इस तरह, वह रूप से मुक्त हो जाता है । जाति, जरा से मुक्त हो जाता है । वह दुःख से मुक्त हो जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ ।

§ ८ दुतिय गद्दुल मुत्त (२१ ० ५ ८)

निरन्तर आत्मचिन्तन करो

धावस्ती जेतवत्त ।

मिथुओ ! यह संसार जगत्त है । अविद्या के अण्डकार में पड़े तृष्णा के बन्धन से बँधे तथा आधागमन में मग्न रहे रहनेवाके इस संसार के भादि का पना मड़ी लगता है ।

मिथुओ ! जैसे कोई कुत्ता पक गये लँदे में बँधा है । यदि वह चलाता है तो उसी लँदे के इर्द गिर्द । यदि वह खाता होता है तो उसी लँदे के इर्दगिर्द । यदि वह बैठता है । यदि वह खेरता है तो उसी लँदे के इर्दगिर्द ।

मिथुओ ! जैसे ही अज्ञ पूजकजल रूप का समझता है कि वह मरा है यह मैं हूँ वह मेरा आत्मा है । वेदना को । संज्ञा को । संस्कार को । विज्ञान को । यदि वह चलाता है तो इन्हीं पाँच उपादान स्वरूपों के इर्दगिर्द । यदि वह खाता होता है बैठता है खेरता है तो इन्हीं पाँच उपादान स्वरूपों के इर्दगिर्द ।

मिथुओ ! इसकिये निरन्तर आत्म-चिन्तन करते रहना चाहिये । यह चित्त बहुत कास से राग द्वेष और मोह से गम्हा बना है । मिथुओ ! चित्त की गम्हारी स माणी गम्हे होते हैं और चित्त की छुदि से प्राणी विछुद होते हैं ।

मिथुओ ! पट्टहरियोंके के पट का देखा है ?

हाँ मन्ते !

मिथुओ ! पट्टहरियों के वे चित्र भी चित्त ही स चित्रित किये जात हैं । पट्टहरी अपने चित्त स ही विचार-विचार कर उन चित्रों को चित्रित करते हैं ।

मिथुओ ! इसकिये निरन्तर आत्म चिन्तन करते रहना चाहिये । यह चित्त बहुत कास से ।

मिथुओ ! चित्त की तरह दूसरी कोई चीज नहीं है । तिरश्चीन प्राणी अपने चित्त के कारण ही ऐसे हुए हैं । तिरश्चीन प्राणियों का भी चित्त ही प्रधान है ।

मिथुओ ! इसकिये निरन्तर आत्म चिन्तन करते रहना चाहिये । यह चित्त बहुत कास से ।

मिथुओ ! जैसे कोई रंगरेज वा चित्रकार रंग से वा क्लककर वा इकरी से वा भीस से वा मंडीस से अथवा तरह तरह किये गंध छरते पर वा हीबाक पर की वा पुक के सर्वाङ्गपूर्ण चित्र उतार है । मिथुओ ! जैसे ही अज्ञ पूजकजल रूप में जगा रह रूप ही को मास होता है । वेदना में जगा रह । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुओ ! तो क्या समझते हो रूप निरा है वा अस्तित्व ?

अस्तित्व भन्ते !

इसकिये यह ज्ञान और वैक पुनर्जन्म को नहीं मास होता ।

§ ९ नाव मुत्त (२१ ० ५ ९)

भावना से आभयों का क्षय

आवस्ती जेतवत्त ।

मिथुओ ! ज्ञान और वैक कर में आभयों के क्षय का उपदेश करता हूँ बिना जाने देख नहीं ।

* आभयों नाम चित्त :— [एक व्यक्ति के लोग] जो अपने पर नाना प्रकार के अज्ञान-दुर्गति के अज्ञान-दुर्गति विषय के चित्र विषय, यह कम करने से यह पाता है यह कम करने से यह, देता दिखाते हुये चित्त को किये दिखाते हैं ।"

—अज्ञकथा ।

भिक्षुओं ! ज्ञान और देव्यकर आश्रयों का क्षय होता है ?—यह रूप है, या रूप की उत्पत्ति है, यह रूप का अस्त हो जाना है। या 'वेदना', 'सजा', 'सम्कार', 'विज्ञान' ।

भिक्षुओं ! हमें ही जनि और देव्यकर आश्रयों का क्षय होता है ।

भिक्षुओं ! भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है—अरे ! मेरा चित्त उपादान में रहित हो आश्रयों से मुक्त हो जाय, किन्तु ऐसा नहीं होता है ।

सो क्यों ? कहना चाहिये कि उसका अभ्यास नहीं जमा है । किसका अभ्यास ? चार स्मृति प्रस्थानों का अभ्यास, चार मन्त्रों का अभ्यास, चार ऋद्धिपाठों का अभ्यास, पाँच इन्द्रियों का अभ्यास, पाँच बलों का, सात बोधधर्मों का, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का ।

भिक्षुओं ! जैसे, मुर्गी को आठ, दस या बारह अण्डे हैं । मुर्गी उन अण्डों को न तो ठीक से देखे भाले करे और न ठीक से सेवे ।

उस मुर्गी के मन में ऐसी इच्छा हो, "मेरे बच्चे अपने चगुल में या चोंच में अण्डे को फोड़ कर कुशलता से बाहर चले आये । तब, ऐसी बात नहीं हो ।

सो क्यों ? क्योंकि मुर्गी ने उन अण्डों को न तो ठीक से देखा भाला और न ठीक से सेवा ।

भिक्षुओं ! वैसे ही, भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसी इच्छा उत्पन्न हो - अरे ! मेरा चित्त उपादान से रहित हो आश्रयों से मुक्त हो जाय, किन्तु ऐसा नहीं हो ।

सो क्यों ? कहना चाहिये कि उसका अभ्यास नहीं जमा है । किसका अभ्यास ? चार स्मृति प्रस्थानों का ।

भिक्षुओं ! भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसी इच्छा उत्पन्न हो , और यथार्थ में उसका चित्त उपादान से रहित हो आश्रयों से मुक्त हो जाय ।

सो क्यों ? कहना चाहिये कि उसके अभ्यास मिट्ट हो गया है । किसका अभ्यास ? चार स्मृति-प्रस्थानों का ।

भिक्षुओं ! जैसे, मुर्गी को आठ, दस, या बारह अण्डे हो । मुर्गी उन अण्डों को ठीक से देखे भाले और ठीक से सेवे ।

उस मुर्गी के मनमें ऐसी इच्छा हो, "मेरे बच्चे अपने चगुल से या चोंच से अण्डे को फोड़ कर कुशलता से बाहर चले आये, और यथार्थ में ऐसी ही बात हो ।

भिक्षुओं ! जैसे, बड़ई या बड़ई के घागिठ के बसुले के हृष्यङ्क (=बैट) में देखने से अगुलियों और अँगुठे के दाग पड़े मालूम होते हैं । उसे ऐसा ज्ञान नहीं रहता है कि बसुले का हृष्यङ्क आज इतना घिसा और कल इतना घिसेगा । किन्तु, उसके धिक्क जाने पर मालूम होता है कि घिस गया ।

भिक्षुओं ! वैसे ही, भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसा ज्ञान नहीं होता है कि आज तो मेरे आश्रय इतना क्षीण हुये और कल इतना क्षीण होंगे । किन्तु, जब क्षीण हो जाते हैं तभी मालूम होता है कि क्षीण हो गये ।

भिक्षुओं ! जैसे, समुद्र में चलने वाली बेंत से धँधी हुई नाव छ महीने पानी में चलाने के बाद हेमन्त में जमीन पर चढ़ा दी जाय । उसके वनवन धूप हवा में सूख और वर्षा में भीग सड़ गल कर नष्ट हो जाते हैं ।

भिक्षुओं ! वैसे ही, भावना में लगे हुये भिक्षु के सभी वनवन (=१० मयोजन) नष्ट हो जाते हैं ।

§ १० सञ्जग मुच (२१ २ ५ १०)

अभित्य-संज्ञा की भावना

भावस्ती जेतवता ।

मिथुभो ! अभित्य संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग रूपराग भवराग और अभिघा हट जाती है; सभी अहङ्कार और अभिमान समूह नष्ट हो जाते हैं ।

मिथुभो ! जैसे शरत्काल में कृपक अण्डे होंके से ओतते हुये सभी बड़ मूक को छिन्न-मिन्न करते हुये जोतता है वैसे ही मिथुभो ! अभित्य संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग रूपराग भवराग अभिघा तथा अहङ्कार और अभिमान छिन्न-मिन्न हो जाते हैं ।

मिथुभो ! जैसे घमण्डना घास को गड़ ऊपर पकड़ डूबर ऊपर डोका कर फेंक देता है । मिथुभा ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग छिन्न मिन्न हो जाते हैं ।

मिथुभो ! जैसे किसी नाम के गुच्छे की उइकी कट जाने से उसमें छोटे सभी नाम गिर पड़ते हैं । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग छिन्न मिन्न हो जाते हैं ।

मिथुभो ! जैसे कूट-गार के सभी धरल कूट की ओर ही जाते हैं कूट की ओर ही लुके होते हैं धोर कूट ही उगल प्रदान होता है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे सभी मूल गन्धों में काष्ठानुसारी उचम समझी जाती है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे सभी सार गन्धा में स्यालवन्धुन उचम समझा जाता है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे सभी पुण्य-गन्धा में कूडी उचम समझी जाती है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे छोटे मोटे राजा सभी अश्वरथी राजा के अधीन रहते हैं और बलवर्ती राजा उमका प्रधान समझा जाता है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना ।

मिथुभो ! जैसे सभी ताराओं का प्रकास चन्द्रमा के प्रकास का मोकडहर्षी हिस्सा भी नहीं होता है और चन्द्रमा ताराओं में प्रधान माना जाता है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भावना -- ।

मिथुभो ! जैसे शरत्काल में बापुओं के हट जाने से आकाश के निर्मल हो जाने पर धूर्ध उगल आकाश के सभी अन्वन्तर की हवा चमकता है तपता है और सौमित होता है । मिथुभो ! वैसे ही अभित्य संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग रूपराग भवराग और अभिघा हट जाती है; सभी अहङ्कार और अभिमान समूह नष्ट हो जाते हैं ।

मिथुभो ! अभित्य संज्ञा की वैसे भावना और अन्वत्स करने से सभी कामराग समूह नष्ट हो जाते हैं ?

"बह रूप ई बह रूप की उत्पत्ति है बह रूप का अल हो जाना है । बह वेदना । बह संज्ञा । बह संस्कार । बह विज्ञान ।"—मिथुभो ! इस तरह अभित्य-संज्ञा की भावना और अन्वत्स करने से सभी कामराग समूह नष्ट हो जाते हैं ।

पुण्यवर्त सम्राट

मन्त्रिमण्डलात्मक सम्राट ।

तीसरा परिच्छेद

चूळ पण्णासक

पहला भाग

अन्त वर्ग

§ १. अन्त सुत्त (२१ ३ १ १)

चार अन्त

श्रावस्ती जेतवन... ।

भिक्षुओ ! चार अन्त है । कौन से चार ? (१) सत्काय-अन्त, (२) सत्कायसमुदय-अन्त, (३) सत्कायनिरोध-अन्त, और (४) सत्कायनिरोधगामिनी-प्रतिपदा-अन्त ।

भिक्षुओ ! सत्काय-अन्त क्या है ? कहना चाहिये कि यही पाँच उपादान-स्कन्ध । कौन से पाँच ? यह जो रूप उपादान-स्कन्ध । भिक्षुओ ! इन्से कहते हैं 'सत्काय-अन्त' ।

भिक्षुओ ! सत्कायसमुदय-अन्त क्या है ? जो यह तृष्णा, पुनर्जन्म करा लेवाली, आनन्द और राग के साथवाली, वहाँ वहाँ स्वाद लेनेवाली । जो यह, काम-तृष्णा, भय-तृष्णा, विभव-तृष्णा । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'सत्कायसमुदय-अन्त' ।

भिक्षुओ ! सत्काय-निरोध-अन्त क्या है ? जो उसी तृष्णा से वैराग्य-पूर्वक निरोध = त्याग = प्रति-नि सर्ग = मुक्ति = अनालय । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'सत्काय निरोध-अन्त' ।

भिक्षुओ ! सत्काय-निरोधगामिनी प्रतिपदा-अन्त क्या है ? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, सम्यक् दृष्टि सम्यक् समाधि । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं सत्काय-निरोधगामिनी प्रतिपदा-अन्त ।

भिक्षुओ ! यही चार अन्त हैं ।

§ २. दुक्ख सुत्त (२१ ३. १ २)

चार आर्यसत्य

श्रावस्ती... जेतवन... ।

भिक्षुओ ! मैं तुम्हें दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध और दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा का उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! दुःख क्या है ? यही पाँच उपादान स्कन्ध ।

भिक्षुओ ! दुःखसमुदय क्या है ? जो यह तृष्णा ।

भिक्षुओ ! दुःखनिरोध क्या है ? जो उसी तृष्णा से वैराग्य-पूर्वक निरोध ।

भिक्षुओ ! दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा क्या है ? यही आर्य-अष्टाङ्गिक मार्ग ।

§ १० सङ्घ सुच (२१ २ ५ १०)

अभित्य-संज्ञा की भाषणा

श्रावस्ती जेतयम ।

मिथुओ ! अभित्य संज्ञा की भाषणा करने से सभी कामराग रूपराग, भवराग और अविद्या इह जाती है। सभी अहङ्कार और अमिमांश समूक नष्ट हो जाते हैं ।

मिथुओ ! जैसे शरत्काल में हल्क बच्छे होल से जोतते हुये सभी बड़ मूम को छिन्न-भिन्न करते हुए जोतता है वैसे ही मिथुओ ! अभित्य संज्ञा की भाषणा करने से सभी कामराग रूपराग मपराग अविद्या तथा अहङ्कार और अमिमांश छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

मिथुओ ! जैसे प्रमगाइया भास को गड़ छपर पकड़ छपर उबर होका कर फेंक देता है। मिथुओ ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भाषणा करने से सभी कामराग छिन्न भिन्न हो जाते हैं ।

मिथुओ ! जैसे किसी काम के गुच्छ की इनी कट जाने से उसमें सजे सभी काम गिर पड़ते हैं । मिथुओ ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भाषणा करने से सभी कामराग छिन्न भिन्न हो जाते हैं ।

मिथुओ ! जैसे कूटगार के सभी धरण कूट की ओर ही जाती हैं कूट की ओर ही सुके होते हैं ओर कूट ही उन्का प्रयाण होता है । मिथुओ ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भाषणा ।

मिथुओ ! वैसे सभी मूक-गणों में काष्ठानुसारी उत्तम समझी जाती है । मिथुओ ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भाषणा ।

मिथुओ ! वैसे सभी धार गणों में छालबन्धन उत्तम समझा जाता है । मिथुओ ! वैसे ही अभित्य संज्ञा की भाषणा ।

मिथुओ ! वैसे सभी पुण्य-गणों में बूढ़ी उत्तम समझी जाती है । मिथुओ ! वैसे ही अभित्य संज्ञा की भाषणा ।

मिथुओ ! वैसे छोटे मोटे राजा सभी बड़बर्ती राजा के आधीन रहते हैं और बड़बर्ती राजा उनका प्रबान समझा जाता है । मिथुओ ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भाषणा ।

मिथुओ ! जैसे सभी ताराका का प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश-क्य सोकहर्षो हिस्सा भी नहीं होता है और चन्द्रमा ताराओं में प्रबान माना जाता है । मिथुओ ! वैसे ही अभित्य-संज्ञा की भाषणा ।

मिथुओ ! जैसे शरत्काल में वायुओं के इह बने से आकाश के निर्मक हो जाने पर सूर्य उगकर आनाथ के सभी भन्वकर को इहा बमकता है तपता है और आमित होता है । मिथुओ ! वैसे ही अभित्य संज्ञा की भाषणा करने से सभी कामराग रूपराग भवराग और अविद्या इह जाती है। सभी अहङ्कार और अमिमांश समूक नष्ट हो जाते हैं ।

मिथुओ ! अभित्य-संज्ञा की वैसे भाषणा और जम्बास करने से सभी कामराग समूक नष्ट हो जाते हैं ?

‘बह क्य है बह क्य की उत्पत्ति है बह क्य का भस्त हो काया है। बह वेदना । बह संज्ञा । बह संस्कार । बह विज्ञान । —मिथुओ ! इस तरह अभित्य-संज्ञा की भाषणा और जम्बास करने से सभी कामराग समूक नष्ट हो जाते हैं ।

पुण्यवर्ग समस्त

मन्त्रिमण्यवासक भ्रमास ।

दोष और छुटकारा को यथार्थतः जानता है, इसी से वह स्रोतापन्न होता है, वह मार्ग से च्युत नहीं हो सकता, वह परमज्ञान को अवश्य प्राप्त करेगा ।

§ ८. अरहा सुक्त (२१. ३. १. ८)

अर्हत्

श्रावस्ती ' जेतवन ' ।

भिक्षुओ ! क्योंकि भिक्षु इन पाँच उपादान-स्वभावों के समुदय, अस्त होने, भास्वाद, दोष और छुटकारा को यथार्थतः जान उपादानरहित हो विमुक्त हो जाता है, इसी से वह अर्हत् = क्षीणाश्रव = ब्रह्मचर्यवास समाप्त कर लेनेवाला = कृतकृत्य = भारमुक्त = अनुप्राप्तसदर्थ = भवबन्धन जिसके क्षीण हो गये हैं = परमज्ञान से विमुक्त कहा जाता है ।

§ ९. पठम छन्दराग सुक्त (२१. ३. १. ९)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती ' जेतवन ' ।

भिक्षुओ ! रूप के प्रति जो तुम्हारा छन्द=राग=नन्दि=वृष्णा है उसे छोड़ दो । इस तरह वह रूप प्रहीण हो जायगा, उच्छिन्नमूल, शिर कटे ताड़ के ऐसा, मिटाया हुआ, भविष्य में जो उग नहीं सकता ।
वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान के प्रति ।

§ १०. द्वितीय छन्दराग सुक्त (२१. ३. १. १०)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती ' जेतवन ' ।

भिक्षुओ ! रूप के प्रति जो तुम्हारे छन्द=राग=नन्दि=वृष्णा, उपाय, उपादान, चित्त का अधिष्ठान अभिनिवेश, अनुदाय हैं उन्हें छोड़ दो । इस तरह वह रूप प्रहीण ।
वेदना , सज्ञा , सस्कार , विज्ञान ।

अन्न वर्ग समाप्त

§ ३ सप्तकाय सुत्त (२१ अ १ ३)

सप्तकाय

भाषस्ती जेतयन ।

मिच्छुभो ! मैं तुम्हें सप्तकाय सत्त्वप्रथमसुत्त सप्तकाय-निरोध और सत्त्वप्रतिरोधगामिनी प्रतिपत्ता का उपदेश करूँगा ।

[पृथक्]

§ ४ परिच्छेप्य सुत्त (२१ अ १ ४)

परिच्छेप्य घम

भाषस्ती जेतयन ।

मिच्छुभो ! मैं तुम्हें परिच्छेप्य घमों का उपदेश करूँगा परिज्ञा का और परिज्ञाता का । सुभो ।
मिच्छुभो ! परिशेष्य घमों का क्या परिशेष्य घमों है ? क्या परिशेष्य घमों है वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान परिशेष्य घमों है । मिच्छुभो ! इन्हीं को परिशेष्य घमों कहते हैं ।
मिच्छुभो ! परिज्ञा क्या है ? राग-क्षय द्वेष-क्षय मोह-क्षय । मिच्छुभो ! इमी का परिज्ञा कहते हैं ।
मिच्छुभो ! परिज्ञाता पुत्रक क्या है ? जर्हण, का भायुप्मात् इम नाम और गोत्र के हैं—
मिच्छुभो ! इसे कहते हैं परिज्ञाता पुत्रक ।

§ ५ षष्ठम समण सुत्त (२१ अ १ ५)

षष्ठम उपादान स्कन्ध

भाषस्ती जेतयन ।

मिच्छुभो ! षष्ठम उपादान-स्कन्ध है । कील से षष्ठम ? जो वह रूप-उपादान-स्कन्ध ।
मिच्छुभो ! जो असत्य वा आच्छन्न इन षष्ठम उपादान-स्कन्धों के आत्मात् शेष और सुदुष्करा को पर्यायता नहीं जानते हैं ; जानते हैं वे स्वयं ज्ञान का साक्षात्कार कर ज्ञान को प्राप्त हो विहार करते हैं ।

§ ६ दुत्तिय समण सुत्त (२१ अ १ ६)

षष्ठम उपादान स्कन्ध

भाषस्ती जेतयन ।

मिच्छुभो ! जो असत्य वा आच्छन्न इन षष्ठम उपादान-स्कन्धों के समुत्पन्न, जलत होने, आत्मात् शेष और सुदुष्करा की पर्यायता नहीं जानते हैं ; जानते हैं, वे स्वयं ज्ञान का साक्षात्कार कर ।

§ ७ सोत्तापन्न सुत्त (२१ अ १ ७)

सोत्तापन्न को परमजान की प्राप्ति

भाषस्ती जेतयन ।

मिच्छुभो ! क्योंकि आर्ष-आपन्न इन षष्ठम उपादान-स्कन्धों के समुत्पन्न जलत होने, आत्मात्

द्रोप और घुटकारा को यथार्थतः जानता है, इसी से वह मोनापत्र होता है, वह मार्ग से च्युत नहीं हो सकता, वह परमज्ञान को अत्रश्य प्राप्त करेगा।

§ ८. अरहा सुत्त (२१. ३. १. ८)

अर्हन्

श्रावस्ती * जेतवन * ।

भिक्षुओ ! क्योंकि भिक्षु इन पाँच उपादान-स्कन्धों के समुदय, अस्त होने, भग्न्याद, द्रोप और घुटकारा को यथार्थतः जान उपादानरहित हो विमुक्त हो जाता है, इसी से वह अर्हन् = क्षीणाश्रव = ब्रह्मचर्यवास समाप्त कर लैनेवाला = कृतकृत्य = भारमुक्त = अनुप्राप्तसदर्थ = भवबन्धन जिसके क्षीण हो गये हैं = परमज्ञान से विमुक्त कहा जाता है।

§ ९. पठम छन्दराग सुत्त (२१. ३. १. ९)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती * जेतवन * ।

भिक्षुओ ! रूप के प्रति जो तुम्हारे छन्द=राग=नन्दि=तृष्णा है उसे छोड़ दो। इस तरह वह रूप प्रहीण हो जायगा, उच्छिन्नमूल, शिर कटे तद् के ऐसा, मिटाया हुआ, भविष्य में जो उग नहीं सकता।
वेदना, सज्ञा, स्कार, विज्ञान के प्रति ।

§ १०. दुतिय छन्दराग सुत्त (२१. ३. १. १०)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती जेतवन * ।

भिक्षुओ ! रूप के प्रति जो तुम्हारे छन्द=राग=नन्दि=तृष्णा, उपाय, उपादान, चित्त का अधिष्ठान अभिनिवेश, अनुशय हैं उन्हें छोड़ दो। इस तरह वह रूप प्रहीण ।

वेदना, सज्ञा, स्कार, विज्ञान ।

अन्न वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

धर्मकथिक वर्ग

§ १ पठम भिक्खु सुत्त (२१ ३ २ १)

अविद्या क्या है ?

भाषस्ती जेतघम ।

एक और बेट उस भिक्खु ने भगवान् को कहा "भस्ते ! लोग अविद्या अविद्या' कहा करते हैं । भस्ते ! अविद्या क्या है ? अविद्या कैसे होती है ?

भिक्खु ! कोई अज्ञानवृत्तव्य रूप को नहीं जानता है रूप के समुद्ब को नहीं जानता है रूप के विरोध को नहीं जानता है, रूप की विरोधग मिमी प्रतिपदा (२२ भाग) का नहीं जानता है ।

वेदना को , संज्ञा को , संस्कार को ; विज्ञान को ।

भिक्खु ! इन्ही को कहते हैं अविद्या' । इन्ही से अविद्या होती है ।

§ २ दुत्थिय भिक्खु सुत्त (२१ ३ २ २)

विद्या क्या है ?

भाषस्ती जेतघम ।

एक और बेट उस भिक्खु ने भगवान् को कहा "भस्ते ! लोग विद्या विद्या कहा करते हैं ।

भस्ते ! विद्या क्या है ? विद्या किमस होती है ?

भिक्खु ! कोई पवित्रत आर्षेयावृत्त रूप को जानता है रूप के समुद्ब का । रूप के विरोध का रूप की विरोधगामिमी प्रतिपदा का जानता है ।

वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

भिक्खु ! इन्ही को विद्या कहते हैं इन्ही से विद्या होती है ।

§ ३ पठम कथिक सुत्त (२१ ३ २ ३)

काइ धमकथिक किस होता ?

भाषस्ती जेतघम ।

एक और बेट उस भिक्खु ने भगवान् का कहा 'भस्ते ! लोग धमकथिक धमकथिक कहा करते हैं । भस्ते ! काइ धमकथिक किस होता है ?

भिक्खु ! यदि कोई रूप से निर्देवर्षाण्य बनन आर उनसे विरोध का विषय में उपदेश करे तो इनन भा में वह धमकथिक कहा जा सकता है । भिक्खु ! यदि कोई रूप का निर्देवर्षाण्य और विरोध के विषय में उपदेश करे तो उनन में वह धमकथिक कहा जा सकता है । भिक्खु ! यदि कोई रूप का

निर्वेद=वैराग्य और निरोध से उपादानरहित हो विमुक्त हो गया हो तो कहा जायगा कि उसने अपने देखते ही देखते निर्वाण पा लिया ।

वेदना •• संज्ञा •• । संस्कार •• । विज्ञान •• ।

§ ४. दुतिय कथिक सुत्त (२१ ३ २ ४)

कोई धर्मकथिक कैसे होता ?

श्रावस्ती •• जेतवन ।

मन्ते ! कोई धर्मकथिक कैसे होता है ? कोई धर्मानुधर्मप्रतिपन्न कैसे होता है ? कोई अपने देखते ही देखते निर्वाण कैसे प्राप्त कर लेता है ?

[ऊपर जैसा]

§ ५. बन्धन सुत्त (२१ ३. २. ५) -

बन्धन

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! अज्ञ = पृथक्जन रूप को आत्मा समझता है, रूपवान् आत्मा है ऐसा समझता है, आत्मा रूप है, या रूप में आत्मा है ऐसा समझता है । भिक्षुओ ! कहा जाता है कि यह अज्ञ = पृथक्जन रूप के बन्धन से बँधा है, बाहर और भीतर गोंड से जकड़ा है, तीर को नहीं देख पाता, पार को नहीं देख पाता, चढ़ ही उत्पन्न होता है, बढ़ ही मरता है और बढ़ ही इस लोक से परलोक को जाता है ।

वेदना •• । संज्ञा •• । संस्कार •• । विज्ञान •• ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को आत्मा नहीं समझता है, रूपवान् आत्मा है ऐसा नहीं समझता है, आत्मा में रूप है या रूप में आत्मा है ऐसा नहीं समझता है । भिक्षुओ ! कहा जाता है कि यह पण्डित आर्यश्रावक रूप के बन्धन से नहीं बँधा है, बाहर और भीतर गोंड से नहीं जकड़ा है, तीर को देखनेवाला है, पार को देखनेवाला है । वह दुःख से मुक्त हो गया है ऐसा मैं कहता हूँ ।

वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

§ ६ पठम परिमुच्चित सुत्त (२१ ३ २. ६)

रूप के यथार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! क्या तुम रूप को 'यह मेरा है, यह मैं हूँ', यह मेरा आत्मा है' ऐसा समझते हो ? नहीं मन्ते !

ठीक है, भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक समझ लेना चाहिये ।

वेदना , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

इस प्रकार देख और जान पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ ७. दुतिय परिमुच्चित सुत्त (२१ ३ २. ७)

रूप के यथार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं

श्रावस्ती जेतवन ।

[ठीक ऊपर जैसा]

§ ८ सम्प्रोजन सुच (२१ ३ २ ८)

संयोजन

भावस्ती जेतयत् ।

मिथुभो ! संयोजनीय धर्म भीर संयोजन के विषय में उपदेश करेगा । उसे सुनो ।

मिथुभो ! संयोजनीय धर्म कीव से है और संयोजन क्या है ?

मिथुभो ! रूप संयोजनीय धर्म है, जो उसके प्रति उन्मत्त-राग है वह संयोजन है ।

बैदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुभो ! यही संयोजनीय धर्म भीर संयोजन कहलाते हैं ।

§ ९ उपादान सुच (२१ ३ २ ९)

उपादान

भावस्ती जेतयत् ।

मिथुभो ! उपादानीय धर्म भीर उपादान के विषय में उपदेश करेगा । उसे सुनो ।

मिथुभो ! रूप उपादानीय धर्म है, और उसके प्रति भी उन्मत्त-राग है वह उपादान है ।

बैदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

§ १० सील सुच (२१ ३ २ १०)

शीलवान् के मनन-योग्य धर्म

एक समय आयुष्मान् सारियुज् भीर आयुष्मान् महाकोटिज् धारापत्नी के पास अरुपिपत्तम् सुगदाय में विहार करते थे ।

तत्र आयुष्मान् महाकोटिज् संख्या समय प्यान से उठ बहो आयुष्मान् सारियुज् से बहो गये ।

वह बोले "अनुस सारियुज् ! शीलवान् मिथु को किन धर्मों का शीक से मनन करना चाहिये ?"

अनुस कोटिज् ! शीलवान् मिथु को शीक से मनन करना चाहिये । कि—ये पाँच उपादान स्वरूप अनित्य हुआ शेष दुर्गन्ध बाध पाप पीडा पराया क्लम, दुःख और अवारम हैं ।

शीक से पाँच ! जो वह रूप उपादान स्वरूप ।

अनुस ! ऐसा ही सनता है, कि शीलवान् मिथु पाँच उपादान-स्वरूपों का ऐसा मनन कर जोतापत्ति के फल का साक्षात्कार कर के ।

अनुस सारियुज् ! जोतापत्त मिथु को किन धर्मों का शीक से मनन करना चाहिये ?

अनुस कोटिज् ! जोतापत्त मिथु को भी यही शीक से मनन करना चाहिये कि ये पाँच उपादान-स्वरूप अनित्य । अनुस ! हाँ सनता है कि जोतापत्त मिथु ऐसा मनन कर सङ्कल्पनामी- अनामासी

अर्हत् के फल का साक्षात्कार कर के ।

अनुस सारियुज् ! अर्हत् को किन धर्मों का शीक से मनन करना चाहिये ?

अनुस कोटिज् ! अर्हत् को भी यही सनन करना चाहिये कि—ये पाँच उपादान स्वरूप अनित्य हुआ शेष दुर्गन्ध बाध पाप पीडा अवारम है । अनुस ! अर्हत् को क्लम और करमा का किने का नास करना नहीं रहता है इन धर्मों की भावना का अन्वयस यहाँ सुख-पर्यक विहार करने तथा स्वर्णिमात् और संयत्त रहने के किये होता है ।

§ ११. सुतया सुत्त (२१ ३. २ ११)

श्रुतवान् के मनन योग्य धर्म

घाराणसी * ।

['शीलवान्' के चदले 'श्रुतवान्' कण्पके ऊपर पैया ज्यों का ल्यो]

§ १२. पठम कण्प सुत्त (२१ ३ २ १२)

अहंकार का त्याग

श्रावस्ती**जेतवन * ।

तय, आयुष्मान् कण्प * एक ओर बैठ, भगवान् से बोले, "भन्ते ! क्या जान और देख इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार, मान और अनुशय नहीं होते हैं ?

कण्प ! जो कुठ रूप—अतीत, अनागत —दे सभी न मेरा है, न मैं हूँ और न मेरा आत्मा है । हमे जो यथार्थत प्रज्ञापूर्वक देखता है । वेदना । सज्जा * । सस्कार * । विशान ** ।

कण्प ! इसे ही जान और देखकर हम विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार** नहीं होते हैं ।

§ १३. दुतिय कण्प सुत्त (२१. ३. २ १३)

अहंकार के त्याग से मुक्ति

* भन्ते ! क्या जान और देख इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार, मान और अनुशय से रहित मन, इन्द्र से परे हो शान्त और सुविमुक्त होता है ।

कण्प ! जो रूप—अतीत, अनागत —दे सभी न मेरा है, न मैं हूँ और न मेरा आत्मा है । इसी को यथार्थत प्रज्ञापूर्वक देख लेने से कोई उपाद्वनरहित ही विमुक्त हो जाता है ।

वेदना * । सज्जा । सस्कार । विशान ।

कण्प ! इसे ही जान और देख इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार ममकार, मान और अनुशय से रहित मन, मन इन्द्र से परे हो, शान्त और सुविमुक्त होता है ।

धर्मकथिक वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

अविद्या वर्ग

४१ प्रथम समुद्रयज्ञम् सुप्त (२१ ३ ३ १)

अविद्या क्या है ?

आधस्ताी अेतयत् ।

तब कोई मिथु बहाँ मगबात् से वहाँ आया थीर मगबात् का अविद्यावत् कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ उस मिथु ने मगबात् को कहा "मन्ते ! ओग 'अविद्या अविद्या' कहा करते हैं । मन्ते ! अविद्या क्या है ? कोई अविद्या में कैसे पड़ता है ?"

मिथु ! अज्ञानजन समुद्रयज्ञमां (=उरग्न हीना जिसका स्वभाव है) रूप की समुद्रयज्ञमां के ऐसा तत्त्वतः नहीं जानता है । अविद्यामां रूप की अविद्यामां के ऐसा तत्त्वतः नहीं जानता है । समुद्रयज्ञमां रूप की समुद्रयज्ञमां रूप के ऐसा तत्त्वतः नहीं जानता है ।

समुद्रयज्ञमां वेदा को , संज्ञा को , संस्कार को , विज्ञान को ।

मिथु ! इसी को 'अविद्या' कहते हैं । इसी से कोई अविद्या में पड़ता है ।

इस पर, उस मिथु ने मगबात् को कहा "मन्ते ! ओग 'विद्या विद्या' कहा करते हैं । मन्ते ! विद्या क्या है ? किसी को विद्या कैसे होती है ?"

मिथु ! पवित्रत आर्षेयानक समुद्रयज्ञमां रूप की समुद्रयज्ञमां के ऐसा तत्त्वतः जानता है । अविद्यामां रूप की अविद्यामां के ऐसा तत्त्वतः जानता है । समुद्रयज्ञमां रूप की समुद्रयज्ञमां के ऐसा तत्त्वतः जानता है ।

वेदा , संज्ञा , संस्कार , विज्ञान ।

मिथु ! यही विद्या है । किसी को विद्या कैसे ही होती है ।

४२ द्वितीय समुद्रयज्ञम् सुप्त (२१ ३ ३ २)

अविद्या क्या है ?

एक समय आयुष्मान् सारियुक् और आयुष्मान् महाकीर्ति धारापत्नी के पास आपिपत्तल मृगादाय में विहार करते थे ।

एक वीर्य समय आयुष्मान् महाकीर्ति आयुष्मान् सारियुक् से बोले "अनुस सारियुक् ! ओग 'अविद्या अविद्या' कहा करते हैं । अनुस ! अविद्या क्या है ? कोई अविद्या में कैसे पड़ता है ?"

आयुष्मान् ! अज्ञानजन समुद्रयज्ञमां रूप की । [ऊपर वीर्य]

४३ तृतीय समुद्रयज्ञम् सुप्त (२१ ३ ३ ३)

विद्या क्या है ?

आपिपत्तल मृगादाय ॥

आयुष्मान् ! ओग 'विद्या विद्या' कहा करते हैं । अनुस ! विद्या क्या है ? कोई विद्या कैसे जान पड़ता है ?

आहुस ! पण्डित आर्यश्रावक समुदयधर्मा रूपको ...

[ऊपर जैसा]

§ ४. पठम अस्साद सुत्त (२१. ३. ३. ४)

अविद्या क्या है ?

अपिपत्तन मृगदाय ।

'आहुस सारिपुत्र ! लोग 'अविद्या, अविद्या' कहा करते हैं। आहुस ! अविद्या क्या है ? कोई अविद्या में कैसे पड़ता है ?

आहुस ! अज्ञ-पृथक्जन रूप के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है।

वेदना के, संज्ञा के, संस्कार के, विज्ञान के ।

आहुस ! यही अविद्या है। ऐसे ही कोई अविद्या में पड़ता है।

§ ५. द्वुतिय अस्साद सुत्त (२१. ३. ३. ५)

विद्या क्या है ?

अपिपत्तन मृगदाय ।

आहुस सारिपुत्र ! लोग 'विद्या, विद्या' कहा करते हैं। आहुस ! विद्या क्या है...?

आहुस ! पण्डित आर्यश्रावक रूप के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है।

वेदना के, संज्ञा के, संस्कार के, विज्ञान के ।

आहुस ! यही विद्या है।

§ ६ पठम समुदय सुत्त (२१ ३ ३ ६)

अविद्या

अपिपत्तन मृगदाय ।

आहुस ! अज्ञ = पृथक्जन रूप के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है।

वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

आहुस ! यही अविद्या है।

§ ७. द्वुतिय समुदय सुत्त (२१ ३. ३ ७)

विद्या

अपिपत्तन मृगदाय ।

आहुस ! पण्डित आर्यश्रावक रूप के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है।

वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

आहुस ! यही विद्या है।

§ ८. पठम कोट्टित सुत्त (२१ ३. ३. ८)

अविद्या क्या है ?

अपिपत्तन मृगदाय ।

तव, सारिपुत्र संध्या समय ।

एक ओर घंठ आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकोटित्त सं बोले 'आयुस महाकोटित्त ! लोग 'अविद्या अविद्या' कहा करते हैं । आयुस ! अविद्या क्या है ?'

आयुस ! अज्ञ = दृग्जन रूप के आस्वाद शेष और मोक्ष को पर्यायता नहीं जानता है ।
वेदया विज्ञान ।

आयुस ! यही अविद्या है ।

इस पर आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् कोटित्त सं बोले " आयुस ! विद्या क्या है ?"

आयुस ! आस्वाद रूप और मोक्ष को पर्यायता जानता है । यही विद्या है ।

§ ९ द्वितीय कोटित्त सूत्र (२१ ३ ३ ९)

विद्या

श्रुतिपठन श्रुगदाय ।

आयुस कोटित्त ! अविद्या क्या है ?

आयुस ! अज्ञ = दृग्जन रूप के समुद्र नष्ट होने आस्वाद, शेष और मोक्ष को पर्यायता नहीं जानता है ।

आयुस ! यही अविद्या है ।

इस पर, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकोटित्त से बोले आयुस कोटित्त !
विद्या क्या है ?

आयुस ! पवित्र आर्षभाषक रूप के समुद्र नष्ट होने, आस्वाद शेष और मोक्ष को पर्यायता जानता है ।

आयुस ! यही विद्या है ।

§ १० तृतीय कोटित्त सूत्र (२१ ३ ३ १०)

विद्या और अविद्या

श्रुतिपठन श्रुगदाय ।

आयुस ! अज्ञ = दृग्जन रूप को नहीं जानता है रूप के समुद्र को नहीं जानता है, रूप के विरोध को नहीं जानता है रूप के विरोधगामी मार्ग को नहीं जानता है ।

वेदया विज्ञान ।

आयुस ! यही अविद्या है ।

आयुस ! पवित्र आर्षभाषक रूप को जानता है, रूप के समुद्र को जानता है, रूप के विरोध को जानता है, रूप के विरोधगामी मार्ग को जानता है ।

वेदया विज्ञान ।

आयुस ! यही विद्या है ।

अविद्या अर्थ समाप्त

चौथा भाग

कुक्कुल वर्ग

§ १. कुक्कुल सुक्त (२१. ३. ४ १)

रूप धधक रहा है

श्रावस्ती * जेतवन * ।

भिक्षुओं ! रूप धधक रहा है । वेदना * । सज्ञा * । सस्कार * । विज्ञान धधक रहा है ।

भिक्षुओं ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को ऐसा जान, रूप में निर्वेद करता है, वेदना से * , संज्ञा से * , सस्कार से * , विज्ञान से * ।

निर्वेद करने से राग-रहित हो जाता है पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता ।

§ २. पठम अनिच्च सुक्त (२१ ३. ४. २)

अनित्य से इच्छा हटाओ

श्रावस्ती जेतवन * ।

भिक्षुओं ! जो अनित्य है उससे तुम्हें अपनी इच्छा हटा लेनी चाहिये । भिक्षुओं ! क्या अनित्य है ?

रूप अनित्य है, उससे तुम्हें अपनी इच्छा हटा लेनी चाहिये । वेदना * । सज्ञा * । सस्कार * । विज्ञान * ।

भिक्षुओं ! जो अनित्य है उससे तुम्हें अपनी इच्छा हटा लेनी चाहिये ।

§ ३-४. दुतिय-ततिय-अनिच्च सुक्त (२१ ३. ४ ३-४)

अनित्य से छन्दराग-हटाओ

श्रावस्ती * जेतवन * ।

भिक्षुओं ! जो अनित्य है उससे तुम्हें अपना राग छन्दराग हटा लेना चाहिये ।

§ ५-७. पठम-दुतिय-ततिय दुक्ख सुक्त (२१ ३ ४ ५-७)

दुःख से राग हटाओ

श्रावस्ती * जेतवन * ।

भिक्षुओं ! जो दुःख है उससे तुम्हें अपना छन्द (= इच्छा) , राग * , इच्छाराग हटा लेना चाहिये ।

एक ओर बैठ आमुष्मान् सारियुत्र आमुष्मान् महाकोट्टित से बोले "आमुस महाकोट्टित !
जोय 'अविद्या अविद्या' कहा करते हैं । आमुस ! अविद्या क्या है ।

आमुस ! अज्ञ = प्रयत्नरूप के आस्वाद, शोच और मोक्ष को पर्यायतः नहीं जानता है ।
वेदना विज्ञान ।

आमुस ! यही अविद्या है ।

इस पर आमुष्मान् सारियुत्र आमुष्मान् कोट्टित से बोले " आमुस ! विद्या क्या है ?"

आमुस ! आस्वाद शोच और मोक्ष को पर्यायतः जानता है । यही विद्या है ।

§ ९ द्वितीय कोट्टित सुत्र (२१ ३ ३ ९)

विद्या

श्रुतिपतन मुग्धाया ।

आमुस कोट्टित ! अविद्या क्या है ?

आमुस ! अज्ञ = प्रयत्नरूप के समुद्रय अस्त होने आस्वाद शोच और मोक्ष को पर्याय
नहीं जानता है ।

आमुस ! यही अविद्या है ।

इस पर, आमुष्मान् सारियुत्र आमुष्मान् महाकोट्टित से बोले " आमुस !
विद्या क्या है ?

आमुस ! परिशुद्ध आर्यभावक रूप के समुद्रय अस्त होने, आस्वाद, शोच और शोः
जानता है ।

आमुस ! यही विद्या है ।

§ १० तृतीय कोट्टित सुत्र (२१ ३ ३ १)

विद्या और अविद्या

श्रुतिपतन मुग्धाया ।

आमुस ! अज्ञ = प्रयत्नरूप को नहीं जानता है रूप
के विरोध को नहीं जानता है रूप के विरोधयत्नी मार्ग को नहीं -

वेदना, विज्ञान ।

आमुस ! यही अविद्या है ।

आमुस ! परिशुद्ध आर्यभावक रूप को जानता
विरोध को जानता है, रूप के विरोधयत्नी मार्ग को जान

वेदना, विज्ञान ।

आमुस ! यही विद्या है ।

अविद्या :

पाँचवाँ भाग

दृष्टि वर्ग

§ १. अज्जत्तिक सुत्त (२१. ३ ५ १)

अध्यात्मिक सुख-दुःख

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं ?

भन्ते ! हमारे धर्म के मूल तो भगवान् ही हैं ।

भिक्षुओ ! रूप के होने से, रूप के उपादान से आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

भन्ते ! अनित्य है ।

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

भन्ते ! दुःख है ।

जो अनित्य, दुःख और परिधर्तनशील है उसका उपादान नहीं करने में क्या आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होंगे ?

नहीं भन्ते !

वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

इसे जान और देख, पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ २. एतं मम सुत्त (२१. ३ ५. २)

‘यह मेरा है’ की समझ क्यों ?

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से, किसके अभिनिवेश से कोई ऐसा समझने लगता है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, और यह मेरा आत्मा है ?

धर्म के मूल भगवान् ही हैं ।

भिक्षुओ ! रूप के होने से, रूप के उपादान से, रूप के अभिनिवेश से कोई ऐसा समझने लगता है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, और यह मेरा आत्मा है । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

इसे जान और देख, पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ ८-१० पठम-दुष्टिम-तृतीय अनन्त सुप्त (२१ ३ ४ ८-१०)

अनारम से राग हटाओ

भावस्ती जेतवन ।

मिथुओ ! जो अवाप्त है उससे तुम्हें भवना छन्द राग , छन्दराग इस सेवा प्यदिने ।

§ ११ पठम कुलपुत्र सुप्त (२१ ३ ४ ११)

वैराग्य-पूर्वक विहरना

भावस्ती जेतवन ।

मिथुओ ! भद्रा से प्रकथित कुकपुत्र का यह धर्म है कि सदा रूप के प्रति वैराग्य-पूर्वक विहार करे । वैराग्य के प्रति । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

इस प्रकार वैराग्य-पूर्वक विहार करते हुये वह रूप को जान लेता है वैराग्य को जान लेता है विज्ञान को जान लेता है ।

वह रूप को जान कर वैराग्य को विज्ञान को काम कर, रूप से मुक्त हो जाता है विज्ञान से मुक्त हो जाता है । कथि बरा मरम लोक परिदेव दुःख, हीमनस्य और अयावास से मुक्त हो जाता है । अथवा दुःख से मुक्त हो जाता है—येसा में कहता हूँ ।

§ १२ दुष्टिय कुलपुत्र सुप्त (२१ ३ ४ १२)

अमित्य-दुष्टि से विहरना

भावस्ती जेतवन ।

मिथुओ ! भद्रा से प्रकथित हुये कुकपुत्र का यह धर्म है कि रूप के प्रति अमित्य-दुष्टि से विहार करे । वैराग्य के प्रति । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान के प्रति ।

दुःख से मुक्त हो जाता है—येसा में कहता हूँ ।

§ १३ दुःख सुप्त (२१ ३ ४ १३)

अनारम-दुष्टि से विहरना

भावस्ती जेतवन ।

“रूप के प्रति अनारम-दुष्टि से विहार करे ।

दुःख से मुक्त हो जाता है—येसा में कहता हूँ ।

कुकपुत्र बने समाप्त

पाँचवों भाग

दृष्टि वर्ग

§ १. अजस्रचित्तक सुप्त (२१. ३ ५. १)

अध्यात्मिक सुप्त दृ.म

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओं ! किसके होने से, किसके उपादान से अध्यात्मिक सुप्त-दृ.म उत्पन्न होते हैं ?

भन्ते ! हमारे धर्म के मूल से भगवान् ही हैं ।

भिक्षुओं ! रूप के होने से, रूप के उपादान से अध्यात्मिक सुप्त-दृ.म उत्पन्न होते हैं । वेदना के होने से "। सञ्जा" । संस्कार" । विज्ञान" ।

भिक्षुओं ! तो क्या समझने हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

भन्ते ! अनित्य है ।

तो अनित्य है, यह दृ.म का सुप्त ?

भन्ते ! दृ.म है ।

तो अनित्य, दृ.म और परिपर्यवर्तनीय है उनका उपादान नहीं करने से क्या अध्यात्मिक सुप्त-दृ.म उत्पन्न होंगे ?

नहीं भन्ते ।

वेदना । सञ्जा । संस्कार । विज्ञान ।

इसे जान और देख, पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ २. एतं मम सुत्तं (२१. ३ ५. २)

'यह मेरा है' की समझ क्यों ?

श्रावस्ती जेतवन ।

भिक्षुओं ! किसके होने से, किसके उपादान से, किसके अभिनिवेश से कोई ऐसा समझने लगाता है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, और यह मेरा आत्मा है ?

धर्म के मूल भगवान् ही हैं ।

भिक्षुओं ! रूप के होने से, रूप के उपादान से, रूप के अभिनिवेश से कोई ऐसा समझने लगाता है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, और यह मेरा आत्मा है । वेदना के होने से । सञ्जा । संस्कार ।

विज्ञान" ।

भिक्षुओं ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ।

इसे जान और देख, पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

३३ एसी अत्ता सुध (२१ अ. ५. ३)

‘भारता लोक ह’ की मिथ्या-वृत्ति क्यों ?

भाषस्त्री अंतधन ।

मिथुनो ! किसके होने से जिसके उपादान स जिससे अभिमिषेय से ऐसी मिथ्या-वृत्ति (मिथ्या धारणा) उत्पन्न होती है—को भ्रामा है वह छात्र है जो भी मरकर गत्य = ध्रुव = साक्षर = अक्षिप विद्या-वर्मा हो जाऊँगा !

धर्म के मूल भाग्यात् ही ।

मिथुनो ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-वृत्ति उत्पन्न होती है । वेदना के हान से । संज्ञा । संस्कार । विद्या के होने से ।

मिथुनो ! तो क्या समझते हो रूप मित्य है वा अमित्य ?

इसे जान और देख पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

३४ नो न मे सिमा सुत्त (२१ अ. ५. ४)

‘न मे हाता’ की मिथ्या-वृत्ति क्यों ?

भाषस्त्री ‘अंतधन’ ।

मिथुनो ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-वृत्ति उत्पन्न होती है—‘न मे हाता’ न मेरा हाथ, न मैं हूँगा न मेरा होगा ।

धर्म के मूल भाग्यात् ही ।

मिथुनो ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-वृत्ति उत्पन्न होती है । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विद्या के होने से ।

मिथुनो ! रूप मित्य है वा अमित्य ?

इसे जान और देख पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

३५ मिच्छा सुत्त (२१ अ. ५. ५)

मिथ्या-वृत्ति क्यों उत्पन्न होती है ?

भाषस्त्री अंतधन ।

मिथुनो ! किसके होने से मिथ्या-वृत्ति उत्पन्न होती है ?

धर्म ! धर्म के मूल भाग्यात् ही ।

मिथुनो ! रूप के होने से मिथ्या-वृत्ति उत्पन्न होती है । वेदना के । संज्ञा । संस्कार । विद्या ।

मिथुनो ! रूप मित्य है वा अमित्य ?

इसे जान और देख पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

३६ सक्काय सुत्त (२१ अ. ५. ६)

सक्काय-वृत्ति क्यों होती है ?

भाषस्त्री ‘अंतधन’ ।

मिथुनो ! किसके होने से मिथ्या-वृत्ति होती है ?

भिद्युओ । रूप के होने से सत्काय-दृष्टि होती है । वेदना के... संज्ञा... संस्कार...
विज्ञान...

भिद्युओ । रूप नित्य है या अनित्य ?

जो अनित्य है । क्या उसके उपादान नहीं करने से सत्काय-दृष्टि उत्पन्न होगी ?

नहीं भन्ते !

वेदना... संज्ञा... संस्कार । विज्ञान ।

§ ७. अन्तालु सूत्र (२१. ३. ५. ७)

आत्म दृष्टि क्यों होती है ?

भिद्युओ । किसके होने से आत्म-दृष्टि होती है ?

• भिद्युओ । रूप के होने से आत्म-दृष्टि होती है । वेदना... संज्ञा... संस्कार... विज्ञान...

भिद्युओ । रूप नित्य है या अनित्य ?

जो अनित्य है । क्या उसके उपादान नहीं करने से आत्म-दृष्टि उत्पन्न होगी ?

नहीं भन्ते !

वेदना... संज्ञा... संस्कार । विज्ञान ।

§ ८. पठम अभिनिवेश सूत्र (२१. ३. ५. ८)

संयोजन क्यों होते हैं ?

श्रावस्ती जेतवन ।

भिद्युओ । किस के होने से संयोजन, अभिनिवेश, विनिबन्ध उत्पन्न होते हैं ?

रूप के होने से । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान के होने से ।

भिद्युओ । रूप नित्य है या अनित्य ?

जो अनित्य है । क्या उसके उपादान नहीं करने से संयोजन उत्पन्न होगा ?

नहीं भन्ते ।

§ ९. द्वितिय अभिनिवेश सूत्र (२१. ३. ५. ९)

संयोजन क्यों होते हैं ?

श्रावस्ती जेतवन ।

['विनिबन्ध' के बदले 'विनिबन्धाध्यवसान' करके सारा सूत्र ठीक ऊपर जैसा]

§ १०. आनन्द सूत्र (२१. ३. ५. १०)

सभी संस्कार अनित्य और दुःख हैं

श्रावस्ती... जेतवन ।

तद्य, धातुष्मान् आनन्दं जहाँ भगवान् ये वहाँ जायें और भगवान् से बोले, "भन्ते ! मुझे भगवान् सक्षेप से धर्म का उपदेश करें, जिसे सुन कर मैं अकेला एकान्त में अग्रमत्त समय-पूर्वक पश्चात्त हो विहार करूँ ।"

§ ३ एसो अत्ता सुच (२१ ३ ५ ३)

मात्मा लोक इ की मिथ्या-दृष्टि क्यों ?

भाषस्ती जतयन ।

मिथुओ ! किसके होने से किसके अपादान स^१ किससे अभिलिषा से ऐसी मिथ्या-दृष्टि (अमिथ्या धारणा) उत्पन्न होती है—जो आत्मा है वह लोक है सो मैं मरकर मित्य = भुव = साक्ष्य = अभिय रिणामयमा हो जाईगा ?

धर्म के मूळ भगवान् ही ।

मिथुओ ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान के होने से ।

मिथुओ ! तो क्या समझते हो रूप मित्य है या अभित्य ?

इसे जान नार देख पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ ४ नो च मे सिया सुच (२१ ३ ५ ४)

न मैं होता' की मिथ्या-दृष्टि क्यों ?

भाषस्ती जतयन***।

मिथुओ ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—न मैं होता न मेरा हाथे, न मैं हूँगा न मेरा हागा ।

धर्म के मूळ भगवान् ही ।

मिथुओ ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार***। विज्ञान के होने से ।

मिथुओ ! रूप मित्य है या अभित्य ।

इसे जान और देख***पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ ५ मिथ्या सुच (२१ ३ ५ ५)

मिथ्या-दृष्टि क्यों उत्पन्न होती है ?

भाषस्ती जतयन ।

मिथुओ ! किसके होने से मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है ?

धर्म ! धर्म के मूळ भगवान् ही ।

मिथुओ ! रूप के होने से मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । वेदना के । संज्ञा । संस्कार**। विज्ञान ।

मिथुओ ! रूप मित्य है या अभित्य ?

इसे जान और देख पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है ।

§ ६ सकाप सुच (२१ ३ ५ ६)

सकाम-दृष्टि क्यों होती है ?

भाषस्ती जतयन ।

मिथुओ ! जिसके होने से सकाम-दृष्टि होती है ?

दूसरा परिच्छेद

२२. राध संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२. १. १)

मार क्या है ?

श्रावस्ती' जेतवन' ।

तत्र, आयुष्मान् राध जहाँ भगवान् वे ब्रह्मों जाये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'मार, मार' कहा करते हैं । भन्ते ! मार क्या है ?

राध ! रूप के होने से मार होता है, या मारनेवाला, या वह जो मरता है । राध ! इसलिये, तुम रूप ही को मार समझो, मारनेवाला समझो, मरता है ऐसा समझो, रोग समझो, फोड़ा समझो, घाव समझो, पीड़ा समझो । जो रूप को ऐसा समझते हैं वे ठीक समझते हैं ।

वेदना । मज्जा । सस्कार । विज्ञान ।

भन्ते ! ठीक समझने से क्या होता है ?

राध ! ठीक समझने में वैराग्य होता है ।

भन्ते ! वैराग्य से क्या होता है ?

राध ! वैराग्य से राग-रहित होता है ।

भन्ते ! राग-रहित होने से क्या होता है ?

राध ! राग-रहित होने से विमुक्त होता है ।

भन्ते ! विमुक्ति से क्या होता है ?

राध ! विमुक्ति से निर्वाण लाभ होता है ।

भन्ते ! निर्वाण से क्या होता है ?

राध ! अह, तुम बूझ नहीं सकते । ब्रह्मचर्य का अन्तिम उद्देश्य निर्वाण ही है ।

§ २. सक्त सुत्त (२२. १. २)

आसक्त कैसे होता है ?

श्रावस्ती' जेतवन' ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'सक्त, सक्त' कहा करते हैं । भन्ते ! कोई सक्त कैसे होता है ?

आवम्भ ! तो क्या समझते हो रूप मिल्य है वा अमित्य ?
अमित्य भन्ते ।

तो अमित्य है वह दुःख है वा सुख ?
दुःख भन्ते ।

तो अमित्य दुःख आर परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा धनसत्ता ठीक है कि—यह मेरा है यह
मेरे हैं, यह मेरा अत्मा है ?

नहीं भन्ते !

वेदना । संज्ञा । संस्कार । विकार ।

महीं भन्ते !

आवम्भ ! इसकिये जो कुछ रूप—अर्थात् अनागत ।
इसे देख और ज्ञान पुनर्ब्रह्म को नहीं प्राप्त होता है ।

इति षण्ण समाप्त
बृह पञ्चासक समाप्त
स्कन्ध संयुक्त समाप्त ।

दूसरा परिच्छेद

२२. राध संयुक्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२. १. १)

मार क्या है ?

श्रावस्ती जेतवन . ।

तब, आयुष्मान् राध जहाँ भगवान् श्रे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, “मन्ते ! लोग ‘मार, मार’ कहा करते हैं । मन्ते ! मार क्या है ?

राध ! रूप के होने से मार होता है, या मारनेवाला, या वह जो मरता है । राध ! इसलिये, तुम रूप ही को मार नमस्को, मारनेवाला नमस्को, मरता है ऐसा समझो, रोग समझो, फौड़ा समझो, घाव समझो, पीड़ा समझो । जो रूप को ऐसा समझते हैं वे ठीक समझते हैं ।

वेदना । सज्ञा . । सस्कार । विज्ञान ।

मन्ते ! ठीक समझने से क्या होता है ?

राध ! ठीक समझने से वैराग्य होता है ।

मन्ते ! वैराग्य से क्या होता है ?

राध ! वैराग्य से राग-रहित होता है ।

मन्ते ! राग-रहित होने से क्या होता है ?

राध ! राग-रहित होने से विमुक्त होता है ।

मन्ते ! विमुक्ति से क्या होता है ?

राध ! विमुक्ति से निर्वाण लाभ होता है ।

मन्ते ! निर्वाण से क्या होता है ?

राध ! अब, तुम पूछ नहीं सकते । महापर्य का अन्तिम उद्देश्य निर्वाण ही है ।

§ २. सक्त सुत्त (२२. १. २)

आसक्त कैसे होता है ?

श्रावस्ती . जेतवन ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, “मन्ते ! लोग ‘सक्त, सक्त’ कहा करते हैं । मन्ते ! कोई सक्त कैसे होता है ?

राज्य रूप में जो अन्धकार-अभिज्ञान-व्याप्त है और जो वहाँ अन्ध है, वेगदह अन्ध है इसी से वह 'सकल कदा जाता है। वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

राज्य । जैसे कबूतरे या उड़िन्मर्गों का लक्ष्य के पर से उड़ते हैं। "अथ एक बालक के घरों में कल्पराज
राज्य = अन्ध = भ्रम = पिपासा = परिरुद्ध = गुण्या बन्नी रहती है-राज्य तक वे उनमें बसे रहते हैं उनसे
उड़ते हैं उन पर क्याकर रखते हैं उनको जगता: समझते हैं ।

राज्य । अथ बालक के घरों में उनका राजा नहीं रहता है वह न हाथ-पैर से उन घरों को
ठीक-ठीक कर लक्ष्य कर बैठे हैं और बिखेर बैठे हैं ।

राज्य । इस इसी तरह रूप को तोड़-फोड़कर लक्ष्य कर जो और बिखेर दो । गुण्या को क्षय करने
में क्या बन्नी ।

वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

राज्य । गुण्या का क्षय होना ही निर्वाण है ।

§ ३ मयनेति सुष्ठ (२२ १ ३)

संसार की डोरी

भाष्यस्ती ।

एक और बँदे, आयुष्मान् राज्य भगवान् स बोध "अन्ते कोण 'मयनेति' और मयनेति
मिथिल कहा करते हैं । अन्ते । यह "मयनेति और मयनेतिमिथिल" क्या है ?

राज्य । रूप में जो अन्ध = राजा = मयिन् = गुण्या = कपाय = उपादान = चित्त का अधिपति,
अभिनिवेश अनुष्ठान है उसे कहते हैं 'मयनेति' । धर्मके निरुद्ध हो जाने को कहते हैं 'मयनेतिमिथिल' ।
वेदना में जो । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

§ ४ परिच्छेद्य सुष्ठ (२२ १ ४)

परिच्छेद्य परिक्षा और परिक्षाता

भाष्यस्ती ।

एक और बँदे आयुष्मान् राज्य से भगवान् बोधे "राज्य । मैं तुम्हें परिच्छेद्य धर्म परिक्षा और
परिक्षाता पुत्रक के विषय में उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

भगवान् बोधे "राज्य । परिच्छेद्य धर्म फीन स हैं ? राज्य । रूप परिच्छेद्य धर्म है । वेदना ।
संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । राज्य । इन्हें कहते हैं परिच्छेद्य धर्म ।

राज्य । परिक्षा क्या है ? राज्य । जो राज-रूप होयस्य और मोहस्य है वही परिक्षा कही जाती है ।

राज्य । परिक्षाता पुत्रक क्या है ? अर्थात् जो आयुष्मान् हस नाम और शोध के हैं—वही परि
क्षाता पुत्रक कहे जाते हैं ।

§ ५ पठम समण सुष्ठ (२२ १ ५)

उपादान दहन्यों के दाता ही अमय-प्राप्तय

भाष्यस्ती ।

एक और बँदे आयुष्मान् राज्य से भगवान् बोधे "राज्य । अथ पौत्र उपादानदहन्य है । फीन से
पौत्र ? जो यह रूप उपादानदहन्य" (अथाथ उपादानदहन्य) ।

१ मयनेति—'मयनेति' अर्थात्कथा । = संसार की डोरी ।

राध ! जो भ्रमण या ब्रह्मण इन पाँच उपादान-स्कन्धों के आस्वाद, द्रोप और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानते हैं वे भ्रमण या ब्रह्मण उपादानों के योग्य हैं, और न वे उपादान-स्कन्धों के । वे आयुष्मान् भ्रमण या ब्रह्मण के परमार्थों को अपने देखते हैं। देना और प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं ।

राध ! जो यथार्थतः जानते हैं वे आयुष्मान् भ्रमण या ब्रह्मण के परमार्थों को अपने देखते हैं। देना और प्राप्त कर विहार करते हैं ।

§ ६. दुतिय सप्तम सुक्त (२० १ ६)

उपादान-स्कन्धों के ज्ञान ही भ्रमण ब्रह्मण

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, 'राध ! यह पाँच उपादान-स्कन्ध हैं ।'

राध ! जो भ्रमण या ब्रह्मण इन पाँच उपादान-स्कन्धों के समुत्पन्न, अस्त होने, आस्वाद, द्रोप, और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानते हैं जानते हैं ।

§ ७. सोतापन्न सुक्त (२२ १ ७)

स्रोतापन्न निश्चय ही ज्ञान प्राप्त करेगा

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, 'राध ! यह पाँच उपादान-स्कन्ध हैं । राध ! क्योंकि आर्यश्रावक इन पाँच उपादान-स्कन्धों के समुत्पन्न, अस्त होने, आस्वाद, द्रोप और मोक्ष को यथार्थतः जानते हैं इसीसे घट स्रोतापन्न कहा जाता है । वह मार्ग में च्युत नहीं हो सकता, निर्वाण की ओर जा रहा है, निश्चयपूर्वक परम ज्ञान प्राप्त करेगा ।

§ ८. अरहा सुक्त (२२. १. ८)

उपादान-स्कन्धों के यथार्थ ज्ञान से अर्हत्व की प्राप्ति

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, 'राध ! क्योंकि निश्चय ही इन पाँच उपादान-स्कन्धों के समुत्पन्न, अस्त होने, आस्वाद, द्रोप और मोक्ष को यथार्थतः जान उपादान-रहित हो विमुक्त हो जाता है, इसीसे वह अर्हत्व=श्रीणाश्रव=जिसने ब्रह्मचर्यवान् पूरा कर लिया है=कृतकृत्य=जिसने भार रक्ष दिया है=अनुप्रासतर्द्र=परिक्षीण-भवस्तयोजन=परम ज्ञान से विमुक्त कहा जाता है ।

§ ९. षष्ठम छन्दराग सुक्त (२२ १ ९)

रूप के छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, 'राध ! रूप में जो छन्द = राग . है उसे छोड़ दो । इस तरह, रूप प्रहीण हो जायगा = उच्छिन्नमूल = शिर कटे ताल के समान = मिटा हुआ = फिर कभी उत्पन्न होने में असमर्थ ।

वेदना में जो । सजा । सस्कार । विज्ञान ।

§ १० द्वितीय छन्दराग मूच (२२ १ १०)

रूप के छन्दराग का त्याग

भावस्ती ।

एक ओर बड़े आयुष्मान् एतन्म ते भगवाद् वाके राज । रूप में जो छन्द = राग = मन्दि
 = तुष्णा = उपाय = उपादान = विषय का अभिधान अभिविधेः अनुसब है उसे छोड़ दो । इस तरह
 यह रूप प्रहीण हो जायगा ।

वैदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

प्रथम बर्ग समाप्त

—————

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२ २ १)

मार क्या है ?

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राक्ष भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग "मार, मार" कहा करते हैं । भन्ते ! सो वह मार क्या है ?"

राध ! रूप मार है, वेदना मार है, मज्जा , सम्कार , विज्ञान मार है ।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक रूप में भी निर्बेद (=वैराग्य) करता है । पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता ।

§ २. मारधर्म सुत्त (२२ २ २)

मारधर्म क्या है ?

श्रावस्ती ।

भन्ते ! लोग "मार-धर्म, मार-धर्म" कहा करते हैं । भन्ते ! सो वह मार-धर्म क्या है ?

राध ! रूप मार-धर्म है । वेदना विज्ञान ।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक ।

§ ३. पठम अनिच्च सुत्त (२२ २ ३)

अनित्य क्या है ?

भन्ते ! लोग "अनित्य, अनित्य" कहा करते हैं । भन्ते ! सो वह अनित्य क्या है ?

राध ! रूप अनित्य है । वेदना अनित्य है । मज्जा । सम्कार " । विज्ञान अनित्य है ।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक ।

§ ४. दुत्तिय अनिच्च सुत्त (२२ २ ४)

अनित्य-धर्म क्या है ?

भन्ते ! सो वह अनित्य-धर्म क्या है ?

राध ! रूप अनित्य-धर्म है । वेदना । मज्जा । सम्कार । विज्ञान ।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक ।

§ ५-६. पठम-दुत्तिय दुक्ख सुत्त (२२ २, ५-६)

रूप दुक्ख है

राध ! रूप दुक्ख है । वेदना । विज्ञान ।

राघ ! रूप दुःखधर्म है । वेदना विज्ञान ।
राघ ! इसे ज्ञान परिहृत आर्य-आवक ।

§ ७-८ पठम दुःखिण मनस सुत्त (२० २ ७-८)

रूप भनातम है

राघ ! रूप भनातम है । वेदना विज्ञान ।
राघ ! रूप भनातम धर्म है । वेदना विज्ञान ।
राघ ! इसे ज्ञान परिहृत आर्य-आवक ।

§ ९ क्षयधम्म सुत्त (२० २ ९)

क्षयधर्म क्या है ?

आवस्ती ।

एक ओर बैठ आसुप्मान् राघ मगवान् से बोले "मन्ते ! छोड़ क्षयधर्म क्षयधर्म" कहा करते हैं । मन्ते ! सो वह क्षयधर्म क्या है ?

राघ ! रूप क्षयधर्म है । वेदना विज्ञान ।
राघ ! इसे ज्ञान परिहृत आर्य-आवक ।

§ १० वयधम्म सुत्त (२२ २ १)

वयधर्म क्या है ?

आवस्ती ।

एक ओर बैठ आसुप्मान् राघ मगवान् से बोले "मन्ते ! छोड़ वयधर्म वयधर्म" कहा करते हैं । मन्ते ! सो वह वयधर्म क्या है ?

राघ ! रूप वयधर्म है । वेदना विज्ञान ।

§ ११ समुदयधम्म सुत्त (२० २ ११)

समुदयधर्म क्या है ?

आवस्ती ।

-- मन्ते ! सो वह समुदयधर्म क्या है ?
राघ ! रूप समुदयधर्म है । वेदना विज्ञान -- ।
राघ ! इसे ज्ञान परिहृत आर्य-आवक ।

§ १२ निरोधधम्म सुत्त (२० २ १२)

निरोधधर्म क्या है ?

आवस्ती ।

-- मन्ते ! सो वह निरोधधर्म क्या है ?
राघ ! रूप निरोधधर्म है । वेदना -- विज्ञान ।
राघ ! इसे ज्ञान परिहृत आर्य-आवक -- ।

द्वितीय सर्ग समाप्त

तीसरा भाग

आयाचन वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२. ३. १)

मार के प्रति इच्छा का त्याग

श्रावस्ती. ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, “भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप में धर्म का उपदेश दें, जिसे सुन मैं भङ्गेला एकान्त में प्रहितात्म होकर विहार करूँ ।”

राध ! जो मार है उसके प्रति अपनी इच्छा का प्रहाण करो । राध ! मार क्या है ? राध ! रूप मार है, उसके प्रति अपनी इच्छा का प्रहाण करो । वेदना । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान ।

§ २. मारधम्म सुत्त (२२ ३ २)

मार-धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग

राध ! जो मार-धर्म हैं उसके प्रति छन्द, राग, छन्दराग का प्रहाण करो ।

§ ३-४. पठम-दुत्तिय अनिच्च सुत्त (२२. ३ ३-४)

अनिस्थ और अनिस्थ-धर्म

राध ! जो अनिस्थ है ।

राध ! जो अनिस्थ-धर्म है ।

§ ५-६. पठम-दुत्तिय दुक्ख सुत्त (२२ ३ ५-६)

दु.ख और दुःख धर्म

राध ! जो दु.ख है ।

राध ! जो दु.ख-धर्म है ।

§ ७-८. पठम-दुत्तिय अनत्त सुत्त (२२. ३ ७-८)

अनात्म और अनात्म धर्म

राध ! जो अनात्म है ।

राध ! जो अनात्म-धर्म है ।

§ ९-१०. स्वयधम्म-वयधम्म सुत्त (२२ ३. ९-१०)

स्वय धर्म और वयय धर्म

राध ! जो स्वय-धर्म है ।

राध ! जो वयय-धर्म है ।

§ ११ समुद्रघम्म सुक्त (३ ११)

समुद्र घर्म के प्रति छन्दराग का त्याग

राग ! जो समुद्र घर्म है उसके प्रति छन्द राग छन्दराग का प्रहाण करो ।

§ १२ निरोधघम्म सुक्त (२० ३ १०)

निरोध घर्म के प्रति छन्दराग का त्याग

भाषस्ती ।

एक ओर ईद थायुप्मान् राध भगवान् से बोले मम्मे ! भगवान् मुझे संक्षेप से जर्मोंपरैत करे किम सुत मी प्रहिताय हो कर विहार करे ।

राग ! जो निरोध घर्म है उसके प्रति छन्द, र ग छन्दराग का प्रहाण करो । राध ! निरोध-घर्म क्या है ? राध ! रूप निरोध घर्म है उसके प्रति छन्द का प्रहाण करो । वेन्ना । मंशा । सम्भार । विनात ।

भाषायन घर्म स्वमात

—————

चौथा भाग

उपनिषिन्न वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२ ४ १)

मार से इच्छा हटाओ

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, “राध ! जो मार है उसके प्रति इच्छा को हटाओ । राध ! मार क्या है ? राध ! रूप मार है, उसके प्रति इच्छा को हटाओ । वेदना । संज्ञा... । संस्कार । विज्ञान ।

§ २. मारधम्म सुत्त (२२. ४ २)

मारधर्म से इच्छा हटाओ

• राध ! जो मार-धर्म है उसके प्रति इच्छा को हटाओ ।

§ ३-४ पठम-द्वितीय अनित्य सुत्त (२०. ४ ३-४)

अनित्य और अनित्य-धर्म

राध ! जो अनित्य है ।

• राध ! जो अनित्य-धर्म है ।

§ ५-६. पठम-द्वितीय दुःख सुत्त (२२ ४ ५-६)

दुःख और दुःख-धर्म

राध ! जो दुःख है ।

राध ! जो दुःख-धर्म है ।

§ ७-८. पठम-द्वितीय अनत्त सुत्त (२२ ४ ७-८)

अनात्म और अनात्म-धर्म

राध ! जो अनात्म है ।

राध ! जो अनात्म-धर्म है ।

§ ९-११. स्वयय-समुदय सुत्त (२० ४. ९-११)

क्षय, व्यय और समुदय

राध ! जो क्षय-धर्म है ।

राघ ! जो स्वयं धर्म है ।

राघ ! जो समुद्रमन्धर्म है ।

§ १२ निरोधधम्म सूत्र (२२. ४. १०)

निरोध धर्म से इच्छा हटानो

भाषस्ती ।

एक ओर बड़े आयुष्मान् राघ से मगवान् बाळ 'राघ ! जो निरोधधर्म है उसके प्रति इच्छा को हटाओ । राघ ! निरोधधर्म क्या है ? राघ ! रूप निरोध धर्म है उसके प्रति इच्छा को हटाओ । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

उपनिमित्त वर्ग समाप्त

राघ संयुक्त समाप्त

तीसरा परिच्छेद

२३. दृष्टि-संयुक्त

पहला भाग

स्रोतापत्ति वर्ग

§ १. वात सुक्त (२३ १. १)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

श्रावस्ती***।

भिक्षुओ । किसके होने से, किसके उपदान से, किसके अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—हवा नहीं जाती है, नदियाँ प्रवाहित नहीं होती, गर्भाणियाँ बच्चा नहीं जनती, चाँद-सूरज उगते हैं और न डूबते हैं, किन्तु बिल्कुल उड़-बचल हैं ।

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

भिक्षुओ । रूप के होने से, रूप के उपादान से, रूप के अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—हवा नहीं बहती है । वेदना के होने से । नज्ञा । सस्कार । विज्ञान के होने से ।

भिक्षुओ । तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते ।

‘जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसके उपादान नहीं करने से क्या ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—हवा नहीं बहती है ?

नहीं भन्ते ।

वेदना । सज्ञा । सस्कार । विज्ञान ।

जो यह देखा, सुना, सूँघा, चखा, हुआ, जाना गया, पाया गया, खोजा गया, या मन से विचारा गया है वह नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते ।

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसके उपादान नहीं करने से क्या ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—हवा नहीं बहती ?

नहीं भन्ते ।

भिक्षुओ ! इन छ स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शकाय मिटी होती है । दुःख में भी उसकी शका मिटी होती है । दुःख-समुदय में भी । दुःख-निरोध में भी । दुःख-निरोधगामिनी—प्रतिपदा में भी ।

भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक स्रोतापन्न कहा जाता है ।

§ २ एष मम मुक्त (२ १)

मिथ्या-दृष्टि का मूढ

भाषस्ती ।

मिथुभो ! किसके हान से पूर्ण मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—बह मरा है यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ।

मन्ते ! धर्म के मूढ भगवाण् ही ।

मिथुभो ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । बेदना के हान से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

जो अतिथि दुःख और परिवर्तनशील है उसका उपादान नहीं करन से क्या ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—यह मरा है यह मैं हूँ ?

नहीं मन्ते !

मिथुभो ! इन छः स्थाणा में आर्यभ्रातृक की सभी संकायें मिथी होती हैं । मिथुभा ! यह आर्यभ्रातृक ज्ञातापन्न ।

§ ३ सो अक्ष मुक्त (३ १ ३)

मिथ्या-दृष्टि का मूढ

भाषस्ती ।

मिथुभो ! किसके होने से पूर्ण मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जा आत्मा है या सोक है सो मैं मर कर मिथ्य=मुक्त=तादृश=अविपरिणामधर्मा हूँगा ?

मन्ते ! धर्म के मूढ भगवाण् ही ।

मिथुभो ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जो आत्मा । बेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुभो ! इन छः स्थाणा में आर्यभ्रातृक की सभी संकायें मिथी होती हैं । मिथुभो ! यह आर्यभ्रातृक ज्ञातापन्न ।

§ ४ नो च म सिन्धा मुक्त (०३ १ ४)

मिथ्या-दृष्टि का मूढ

भाषस्ती ।

मिथुभो ! किसके होने से पूर्ण मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—मैं होता न मेरा होब, न मैं हूँगा न मेरा होगा ।

मन्ते ! धर्म के मूढ भगवाण् ही ।

मिथुभा ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि । बेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुभा ! इन छः स्थाणा में आर्यभ्रातृक की सभी संकायें मिथी होती हैं । मिथुभो ! यह आर्यभ्रातृक ज्ञातापन्न ।

§ ५ नरिथ मुक्त (०३ १ ५)

उच्छब्दध्याय

भाषस्ती ॥

मिथुभो ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—'हाथ बग्न हाथ (या कोई कन्) नहीं है अन्ते भार बुरे बमों के अपने हृत् कन् नहीं होने यह जान नहीं है परमोक्त नहीं है

§ २ एत मम सुप्त (२ १ २)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

भायस्ती ।

मिथुमा ! किसके हान म म्मी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—वह मरा है वह मैं हूँ, वह मेरा भाव्या है !

मन्ते ! धर्म के मूल मगवान् ही ।

मिथुमा ! रूप के होने से म्मी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है ! ब्रह्मा के हान से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

जो धर्मिय बुद्धि धार परिवर्तनकारी है उसके अपादान नहीं करन स कहा म्मी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—वह मेरा है वह मैं हूँ ?

महीं मन्ते !

मिथुमा ! इन छः स्थानों में कार्यभाषक की सभी संकायें मिटी जाती हैं । मिथुमा ! वह कार्यभाषक जातापन्न ।

§ ३ सो अष्ट सुप्त (३ १ ३)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

भायस्ती ।

मिथुमा ! किसके होने से म्मी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जो भाव्या है या काक है सो मैं मर कर निरपभुब-सादकत-अविपरिचामधमो हूँगा ?

मन्ते ! धर्म के मूल मगवान् ही ।

मिथुमा ! रूप के होने से म्मी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जो भाव्या । ब्रह्मा के होने से । संज्ञा संस्कार विज्ञान ।

मिथुमा ! इन छः स्थानों में कार्यभाषक की सभी संकायें मिटी जाती हैं । मिथुमा ! वह कार्यभाषक जातापन्न ।

§ ४ नो च म सिया सुप्त (२३ १ ४)

मिथ्या दृष्टि का मूल

भायस्ती ।

मिथुमा ! किसके हाने से म्मी मिथ्या दृष्टि उत्पन्न होती है—व मैं होता व मेरा होने, व मैं हूँगा व मेरा होगा ।

मन्ते ! धर्म के मूल मगवान् ही ।

मिथुमा ! रूपके होने से म्मी मिथ्या-दृष्टि । ब्रह्मा के हाने से । संज्ञा । संस्कार विज्ञान ।

मिथुमा ! इन छः स्थानों में कार्यभाषक की सभी संकायें मिटी जाती हैं । मिथुमा ! वह कार्यभाषक जातापन्न ।

§ ५ नरिय सुप्त (२३ १ ५)

उच्छिद्यवान्

भायस्ती***।

मिथुमा ! किसके हाने से म्मी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“हान वद हान (वा कोई चय) नहीं है अष्ट और पुं कर्मों के अपने कुछ कुछ नहीं होते यह साक नहीं है परमोक्त नहीं है

माना नहीं है, पिता नहीं है, अंतर्धानिह स्वयं (अर्थात् से उत्पन्न होने वाला नहीं, किंतु रचयोजन), लोक में धर्म या प्रजापति नहीं है जो स्वयं प्रविष्ट हो, लोक परलोक का स्वयं जान और साक्षात्कार कर उपदेश करेगा। धर्म महाभूतों में मिलकर प्रकृत है। मृत्यु के उपरान्त धर्म-धातु धृती में मिलकर लीन हो जाती है, धर्म धातु, तंत्रो धातु, धातु धातु। इन्द्रियों अन्तर्गत में लीन हो जाती है। पाँच मूल्य मिल मुझे को ले जाकर जन्म देते हैं। पृथ्वी जैसी उजली इन्द्रियों केवल ध्वज जाती है। उनका दिया जन्म प्रकृत जन्म है। आत्मिकता प्रविष्टान् करके वाले सूर्य और पण्डित सभी उच्छिन्न हो जाते हैं, मृत हो जाते हैं, मरने के बाद नहीं रहने ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

वेदना । मजा । सस्कार । विज्ञान ।

मिथुओं ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

“मिथुओं ! इन छ स्थानों में आर्य-ब्राह्मण की सभी शक्तयें मिटी होती हैं। मिथुओं ! यह आर्य-ब्राह्मण श्रोतापत्र” ।

§ ६ करोता सुक्त (२३. १ ६)

अक्रियवाद

श्रावस्ती ।

मिथुओं ! किसके होने से “ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“करते हुये, कराते हुये, काटते हुये, कटारते हुये, मारते हुये, मारारते हुये, मोचते हुये, मोचारेते हुये, यकते हुये, यकाने हुये, यज्यते हुये, यज्यारेते हुये, हिम्मा करते हुये, चींग करते, मेघ मारते, डाका मारते, मृक घर को लटते, राहजनी करते, पर-पत्नी का मेहन करते, लूट पीलते, वह कुछ पाप नहीं करता। यदि कोई लूटे जैसे तेज चक्र से पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणियों को मार कर मांस का मृक चक्र टेर लगा दे तो भी उससे उगे कोई पाप नहीं लगता। यदि कोई गंगा के दक्षिण तीर पर मारते, मरवाते, काटते, कटवाते, पकाते, पकवाते । तो भी उससे उगे कोई पाप नहीं लगता। गंगा के उत्तर तीर पर भी । दान, दम, सयम और सत्यवादिता से कोई पुण्य नहीं होता ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

मिथुओं ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि । वेदना के होने से । मजा । सस्कार । विज्ञान ।

मिथुओं ! इन छ स्थानों में आर्य-ब्राह्मण की सभी शक्तयें मिटी होती है। मिथुओं ! यह आर्य-ब्राह्मण श्रोतापत्र ।

§ ७. हेतु सुक्त (२३ १ ७)

द्वैतवाद

श्रावस्ती ।

मिथुओं ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“सर्वों के सन्लेष के कोई हेतु = प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु = प्रत्यय के सत्व सन्निवृत्त होते हैं। सर्वों की विच्छिन्निके कोई हेतु = प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु = प्रत्यय के सत्व विच्छिन्न होते हैं। बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम कुछ भी नहीं है। सभी सत्व = प्राणी = भूत = जीव अवस्था, अथल, अवीर्य, भाग्य के अधीन, सयोग के अधीन, स्वभाव के अधीन छ अभिजातियों में सुख-दुःख का अनुभव करते हैं” ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही ।

मिथुनो ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । बेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुन ! इन छः स्वर्यों में कार्य-आवक की सभी शक्तियाँ मिली रहती हैं ।

§ ८ महादिष्ट सुच (२३ १ ८)

अमृततावाद

भावस्ती ।

मिथुन ! किसके होने से पूर्वी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“वे सात कर्मा अमृत हैं अकारित हैं अविमित हैं अविनाशित हैं अक्षया हैं अक्षय्य हैं अक्षय हैं । वे दृष्टिसे डोकते नहीं व विपरिणत होते हैं और न अ-वाण्य प्रमायित करत हैं । एक दूसरे का न सुप्त वे सक्तते हैं और न दुःख ।

“और सात ? पूर्वी कर्मा आप कर्मा तेज कर्मा बाहु कर्मा सुख सुख बीच । परी सात कर्मा ।

“जो तेज हथियार से शिर काटता है सो कोई किसी की जान नहीं मारता । सात कर्मा के बीच में हथियार केबल एक छेद कर देता है ।

“द्वीद्व कर्मा छालत यानियाँ हैं । पाँच सौ कर्मा हैं आर पाँच कर्मा हैं और तीन कर्मा हैं कर्मा में और अर्ध-कर्मा में कामठ प्रतिपदायें हैं वासठ अन्तर करत हैं छः अविनाशियाँ आठ पुण्य भूमियाँ उनकस छां आजीबक उनकास सी परित्रजक उनकास सी नागकास बीस छां इन्द्रियाँ तीस सी नरक छत्तीस एकोपास सात संहती-गर्मा सात अर्ध-गर्मा सात निर्गन्धि-गर्मा सात विष सात मानुष सात पैशाच सात सर सात प्रभुष सात प्रधात और सात ही प्रधात सात स्वप्न और सात ग्री स्वप्न भस्ती से कम महाकल्प सात इन्द्र मूर्त और परिश्रुत कर्म कर्मान्तर में पड़ते हुये दुःख का अन्त करेंगे ।

“जहाँ बात नहीं है कि हम शील से या इस मत से या इस तप से या इस यज्ञधर्म से अतिपक्व कर्मा का परिपक्व बना नूँगा या परिपक्व कर्मा को उपभोग कर धीरे-धीरे समाप्त कर नूँगा संसार में न तो मरे तुम सुप्त-दुःख हैं और न जननी निश्चय अक्षयि है । कर्मता अधिक होता = परता बढ़ता भी नहीं है ।

“जैसे मृत की गोर्ध कोँची जने पर चुपकी हुई जाती है वैसे ही मूर्त आर परिश्रुत सुप्तते हुये सुप्त-दुःख का अन्त करेंगे ?

अन्ते ! धर्म के मूढ भगवान् ही ।

मिथुनो ! रूप के होने से । बेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुनो ! इन छः स्वर्यों में कार्य-आवक की ।

§ ९ सस्सतो सोफो सुच (२३ १ ९)

शाश्वतवाद

भावस्ती ।

मिथुन ! किसके होने से ? पूर्वी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“यद लोक शाश्वत है” ?

अन्ते ! धर्म के मूढ भगवान् ही ।

मिथुन ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“यद लोक शाश्वत है” ?

बेदना के होने से ? संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुनो ! इन छः स्वर्यों में कार्य-आवक की ।

मिथुनो ! इन छः स्वर्यों में कार्य-आवक की ।

§ १० असरसतो सुत्त (२३ १. १०)

अशाश्वतवाट

श्रावस्ती...।

भिक्षुओ ! किसके होने से मेरी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“लोक अशाश्वत है” ?

मन्ने ! मर्म वे मत्त भगवान् वि ।

भिक्षुओ ! रूप के होने से ।

भिक्षुओ ! इन छ. स्थानों में आर्यश्रावक ।

§ ११. अन्तवा सुत्त (२३ १. ११)

अन्तवान्-वाट

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! किसके होने से मेरी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“अन्तवाला लोक है” ?

भिक्षुओ ! रूप के होने से ।

§ १२. अनन्तवा सुत्त (२३ १. १२)

अनन्त-वाट

भिक्षुओ ! किसके होने से —“लोक अनन्त है” ?

§ १३. तं जीवं तं सरीरं सुत्त (२३ १. १३)

‘जो जीव है वही शरीर है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से —जो जीव है वही शरीर है ?

§ १४. अञ्जं जीवं अञ्जं सरीरं सुत्त (२३ १. १४)

‘जीव अन्य है और शरीर अन्य है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से —“जीव अन्य है और शरीर अन्य है” ?

§ १५. होति तथागतो परम्परणा सुत्त (२३ १. १५)

‘मरने के बाद तथागत फिर होता है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से —“मरने के बाद तथागत होता है” ?

§ १६. नृहोति तथागतो परम्परणा सुत्त (२३. १. १६)

‘मरने के बाद फिर तथागत नहीं होता है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से —“मरने के बाद तथागत नहीं होता है” ?

§ १७. होति च न च होति तथागतो परम्परणा सुत्त (२३ १. १७)

‘तथागत होता है और नहीं भी होता है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से “तथागत होता है और नहीं भी होता है” ?

§ १८. नेव होति न न होति तथागतो परम्परणा सुत्त (२३ १. १८)

‘तथागत न होता है, न नहीं होता है’ की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से —“तथागत न होता है, और न नहीं होता है” ?

भिक्षुओ ! इन छ स्थानों में आर्यश्रावक ।

पइला, भाग समाप्त

दूसरा भाग

(पुरिमसममं—अगरुह वेप्यावरण)

§ १ वात सुत्त (३ ० १)

मिथ्या दृष्टि का मूल

भावस्ती ।

मिथुभा ! किसके होने से जमी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है— 'त इवा बहती है न महिषी प्रवाहित होती है न गर्मिजिषी जगती है न मूरुज चोद उगत इवते है । विण्डुम अचक स्थिर है ?

मन्ते ! बर्म के मूल मगबाम् ही ।

मिथुभा ! क्यसे होये स ? वेदना के जाने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान

मिथुभा ! रूप गिर्य है या अगिर्य ?

अगिर्य मन्ते !

उसके उपादान नहीं करने से क्या पूर्ण मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी ?

नहीं मन्ते !

मिथुभा ! इस तरह बुद्ध के होने से बुद्ध के उपादान से बुद्ध के अमिनिषेत से ऐसी दृष्टि उत्पन्न होती है ।

§ २-१८ सय्ये सुचन्ता पुग्गे आगता येव (३३ २ ०—१८)

[ऊपर के पाठे १८ वेप्यावरण को विस्तार कर ऊना जादिये]

द्वितीय गमन (तिसीव बार)

§ १९ रूपी अथा होति सुत्त (०३ २ १९)

आरमा रूपवान् होता इ की मिथ्या दृष्टि

भावस्ती ।

मिथुभा ! किसके होने से — "मरने के बाद आत्मा रूप बाका जरोग होता है" ?

मिथुभा ! क्यसे जाने से ।

मिथुभा ! इस तरह बुद्ध के होने से बुद्ध के उपादान से बुद्ध के अमिनिषेत से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है ।

§ २० अरूपी अथा होति सुत्त (०३ २ २)

'अरूपबाम् आरमा है' की मिथ्या दृष्टि

मिथुभा ! किसके होने से — 'मरने के बाद आत्मा रूपरहित अरोग होता है' ?

§ २१ रूपी च अरूपी च अथा हाति सुत्त (२३ २ २१)

रूपबाम् और अरूपबाम् आरमा होता है की मिथ्या-दृष्टि

"मरने के बाद आत्मा रूपबाका और रूपरहित जरोग होता है" ।

§ २२. नेयस्वी नारुपी अत्ता होति मुत्त (२३ २. २२)

'न रूपवान्, न अरूपवान् आत्मा होता है' की मिथ्या दृष्टि
... "मरण के बाद आत्मा न रूपवान् और न अरूपकित अरोग होता है" ।

§ २३. एकन्तमुखी अत्ता होति मुत्त (२३ २. २३)

'आत्मा एकान्त सुखी होता है' की मिथ्या दृष्टि
मरण के बाद आत्मा एकान्त-सुख अरोग होता है ।

§ २४. एकन्तदुःखी अत्ता होति मुत्त (२३ २. २४)

'आत्मा सुख दुःखों होता है' की मिथ्या दृष्टि
मरण के बाद आत्मा एकान्त-सुख अरोग होता है ।

§ २५. सुखदुःखी अत्ता होति मुत्त (२३ २. २५)

'आत्मा सुखदुःखी होता है' की मिथ्या-दृष्टि
मरण के बाद आत्मा सुखदुःखी अरोग होता है ।

§ २६. अदृक्प्रमसुखी अत्ता होति मुत्त (२३ २. २६)

'आत्मा सुख दुःख से रहित होता है' की मिथ्या दृष्टि
मरण के बाद आत्मा अदृक्प्रमसुखी अरोग होता है ।

दूसरा भाग

(पुरिमगमल—अगरह वैय्याकरण)

§ १ वात सुच (२३ २ १)

मिथ्या वृष्टि का मूळ

भावस्ती ।

मिथुभो ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-वृष्टि उत्पन्न होती है—“म हवा बहती है न नदियाँ प्रवाहित होती हैं न गर्मिणियाँ जलती हैं न सूरज चर्च उगते-डुबते हैं । विष्कण्ड अचञ्चल स्थिर हैं ?”

मन्ते ! धर्म के मूळ भगवान् ही ।

मिथुभो रूपके होने से ? वेदना के होने से । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान

मिथुभो ! रूप मिथ्य है वा अमिथ्य ?

अमित्य मन्ते !

उसके उपादान तर्ही करने से क्या जमी मिथ्या-वृष्टि उत्पन्न होगी ?

वहीं मन्ते !

मिथुभो ! इस तरह बुद्ध के होने से बुद्ध के उपादान से बुद्ध के अमिथिनेस से ऐसी वृष्टि उत्पन्न होती है ।

§ २-१८ सम्भे सुचन्ता पुम्भे आगता येव (२३ २ ०—१८)

[ऊपर के भागे १८ वेचनकरनों को विस्तार कर केना चाहिये]

द्वितीय गमन (द्वितीय बार)

§ १९ रूपी अचा होति सुच (२३ २ १९)

भारमा रूपयान् होता है की मिथ्या-वृष्टि

भावस्ती ।

मिथुभो ! किसके होने से —“मरने के बाद आत्मा रूप काका अरोग होता है ?

मिथुभो ! रूपके होने से ।

मिथुभो ! इस तरह बुद्ध के होने से बुद्ध के उपादान से बुद्ध के अमिथिनेस से ऐसी मिथ्या-वृष्टि उत्पन्न होती है ।

§ २० अरूपी अचा होति सुच (२३ २ २०)

अरूपयान् भारमा है' की मिथ्या वृष्टि

मिथुभो ! किसके होने से —“मरने के बाद आत्मा रूपरहित अरोग होता है” ?

§ २१ रूपी च अरूपी च अचा होति सुच (२३ २ २१)

रूपयान् भीर अरूपयान् भारमा हाता है की मिथ्या-वृष्टि

मरने के बाद आत्मा रूपयान् भीर रूपरहित अरोग होता है ।

चौथा भाग

चतुर्थ गयन

§ १. वात सुत्त (२३ ४ १)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

श्रावस्ती...।

भिक्षुओ ! किसके होने से मेरी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—“हवा नहीं बहती है ” ?

भिक्षुओ ! रूप के होने से । वेदना । सज्ज । सस्कार । विज्ञान ।

भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?

भिक्षुओ ! इसलिये, जो कुछ रूप—अतीत, अनागत है सभी न मेरा है, न मैं हूँ और मेरा वात्सा है । इसे यथार्थत ढीक से प्रजापूर्णक जान लेना चाहिये ।

यह जान ।

§ २-२६. सत्त्वे सुत्तन्ता पुब्बे आगता येव (२३. ४ २-२६)

[इसके आगे ऐसा ही विस्तार करके समझ लेना चाहिये]

भिक्षुओ ! यह जान, पण्डित आर्यश्रावक रूप से वैराग्य करता है । वेदना से । सज्जा । सस्कार । विज्ञान । वैराग्य करने से रागरहित हो विमुक्त हो जाता है । तब, उसे 'मैं विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है । जाति क्षीण हुई, पद्मपर्य्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, धुनजन्म नहीं हुआ—ऐसा जान लेता है ।

दृष्टि-संयुक्त समाप्त ।

तीसरा भाग

तृतीय गमन

§ १ षाठ सुप्त (२३ ३ १)

मिथ्यादृष्टि का मूल

धावन्ती ।

मिथुनो ! किसके होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है— 'न हवा बहती है ?

मत्ते ! धर्म के मूल मगवान् ही ।

मिथुनो ! कर्म के होने से । बेचना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

मिथुनो ! कर्म विरक्त ही या अभिव्यक्त ?

मिथुनो ! इस तरह जो अभिव्यक्त है वह सुख है । उसके होने से उसके उपादान से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—हवा नहीं बहती है ।

§ २-२५ सम्ने सुप्तन्ता पुष्पे आगता येष (२३ ३ २-२५)

[इसके आगे ऐसा ही विस्तार करके समझ लेना चाहिये]

§ २६ भ्रोगो होति परम्परया सुप्त (२३ ३ २६)

आत्मा भ्रोग होता है' की मिथ्या-दृष्टि

मिथुनो ! किसके होने से ऐसी मिथ्या दृष्टि उत्पन्न होती है—“मरने के बाद आत्मा अहुलम मुली भ्रोग रहता है ?

मिथुनो ! इस तरह जो अभिव्यक्त है वह सुख है । उसके होने से उसके उपादान से उसके अभिविभेस से ऐसी दृष्टि उत्पन्न होती है ।

§ ५. वेदना सुत्त (२४. ५)

वेदना अनित्य है

मिथुओ ! चक्षु-स्पर्शजा वेदना अनित्य है ।

§ ६. सञ्जा सुत्त (२४. ६)

रूप-संज्ञा अनित्य है

मिथुओ ! रूप-संज्ञा अनित्य है ।

§ ७. चेतना सुत्त (२४. ७)

चेतना अनित्य है

मिथुओ ! रूप-संचेतना अनित्य है ।

§ ८. तृष्णा सुत्त (२४. ८)

तृष्णा अनित्य है

मिथुओ ! रूप-तृष्णा अनित्य है ।

§ ९. धातु सुत्त (२४. ९)

पृथ्वी-धातु अनित्य है

मिथुओ ! पृथ्वी-धातु अनित्य है ।

§ १०. खन्ध सुत्त (२४. १०)

पञ्चस्कन्ध अनित्य हैं

मिथुओ ! रूप अनित्य है, परिवर्तनशील है, बदल जानेवाला है । वेदना । संज्ञा ।

संस्कार । विज्ञान ।

मिथुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार विश्वास-पूर्वक जान लेता है

मिथुओ ! जिन्हें ये धर्म प्रज्ञा-पूर्वक ध्यान में आते हैं ।

मिथुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार जानता देखता है, वह स्रोतापन्न कहा जाता है ।

ओकन्त-संयुत्त समाप्त

चौथा परिच्छेद

२४. ओककन्त-सयुक्त

§ १ चक्षु सुच (२४ १)

चक्षु अनिरय है

भाष्यस्ती ।

मिथुनो ! चक्षु अनिरय है परिवर्तनशील है बदल जाने वाला है । ज्योत अनिरय है । प्राण विद्या । कावा । मन अनिरय है परिवर्तनशील है बदल जाने वाला है ।

मिथुनो ! जो इन धर्मों को इस प्रकार विश्वासपूर्वक जान लेता है वह सुख ही जाता है । इसी को करते हैं—सद्यःमानुसारी जिसका मार्ग समाप्त हो गया है सत्यरूप-भूमि को जिनम पा किया है पुरुस्वर्ग-भूमि से जो हट गया है । वह उस धर्म का नहीं कर सकता जिसके करने से नरक में तिर शीत बोगि में या प्रेता में जलज होना पड़े । जब तक ज्योतापत्ति-रुद्ध की प्राप्ति न हो के तब तक वह मर नहीं सकता ।

मिथुनो ! जिन्हें ध धर्म प्रज्ञा पूर्वक ज्ञान में जाते हैं वे धर्मानुसारी कह जाते हैं जिसका मार्ग समाप्त हो गया है, । जब तक ज्योतापत्ति-रुद्ध की प्राप्ति न हो के तब तक वह मर नहीं सकता ।

मिथुनो ! जो इन धर्मों का इन प्रकार जानता लेता है वह ज्योतापत्ति कदा जाता है ।

§ २ रूप सुच (२४ २)

रूप अनिरय है

भाष्यस्ती ।

मिथुनो ! रूप अनिरय है परिवर्तनशील है बदल जाने वाले हैं । शब्द । गन्ध । रस । स्पर्श । धर्म अनिरय है परिवर्तनशील है बदल जाने वाले हैं ।

मिथुनो ! जो इन धर्मों को इन प्रकार विश्वासपूर्वक जान लेता है [शीघ्र पूर्ववत्]

§ ३ विद्वज्ज्ञान सुच (२४ ३)

चक्षु-विद्वान अनिरय है

मिथुनो ! चक्षु-विद्वान अनिरय है परिवर्तनशील है बदल जाने वाला है । प्रात-विद्वान । प्राण-विद्वान । विद्या-विद्वान । ज्ञान-विद्वान । मनो-विद्वान ।

§ ४ फस्म सुच (२४ ४)

चक्षु-रूपदा अनिरय है

मिथुनो ! चक्षु-रूपदा अनिरय है परिवर्तनशील है बदल जाने वाला है । शीघ्र-रूपदा । प्राण-रूपदा । विद्या-रूपदा । काव-रूपदा । मन-रूपदा ।

§ ६. सञ्जा सुत्त (२५. ६)

संज्ञा

भिक्षुओ ! जो रूप-संज्ञा की उत्पत्ति ।

भिक्षुओ ! जो रूप-संज्ञा का निरोध ।

§ ७. चेतना सुत्त (२५. ७)

चेतना

भिक्षुओ ! जो रूप-संचेतना की उत्पत्ति ।

भिक्षुओ ! जो रूप-संचेतना का निरोध ।

§ ८. तृष्णा सुत्त (२५. ८)

तृष्णा

भिक्षुओ ! जो रूप-तृष्णा की उत्पत्ति** ।

भिक्षुओ ! जो रूप-तृष्णा का निरोध ।

§ ९. धातु सुत्त (२५. ९)

धातु

भिक्षुओ ! जो पृथ्वी-धातु की उत्पत्ति ।

भिक्षुओ ! जो पृथ्वी-धातु का निरोध ।

§ १०. खन्ध सुत्त (२५. १०)

खन्ध

भिक्षुओ ! जो रूप की उत्पत्ति । वेदनाकी । सञ्जाकी । सस्कारकी** । विज्ञानकी*** ।

भिक्षुओ ! जो रूप का निरोध ।

उत्पाद-संयुक्त समाप्त

पाँचवाँ परिच्छेद

२५ उत्पाद-संयुक्त

§ १ चक्षु सुच (२५ १)

अधु निरोध से बुद्ध निरोध

आवस्ती ।

मिथुनो ! जो अधु की उत्पत्ति स्थिति और प्रादुर्भाव हैं वह बुद्ध की उत्पत्ति रागों की स्थिति और करामरम का प्रादुर्भाव है । जो भोज की । जो प्राण की । जो जिह्वा की । जो कर्पा की । जो मन की ।

मिथुनो ! जो अधु के निरोध प्युपद्यम और अस्त हो जाना है वह बुद्ध का निरोध रोगों का प्युपद्यम और करामरम का अस्त हो जाना है । जो भोज का निरोध । प्राण । जिह्वा । कर्पा । मन ।

§ २ रूप सुच (२५ २)

रूप-निरोध से बुद्ध-निरोध

आवस्ती

मिथुनो ! जो रूपों की उत्पत्ति स्थिति और प्रादुर्भाव हैं वह बुद्ध की उत्पत्ति रोगों की स्थिति और करामरम का प्रादुर्भाव है । जो शब्दों की । जो रसों की । जो रसों की । जो रसों की । जो रसों की । जो रसों की ।

मिथुनो ! जो रूपों के निरोध प्युपद्यम और अस्त हो जाना है वह बुद्धों का निरोध रोगों का प्युपद्यम और करामरम का अस्त हो जाना है । जो शब्दों का । जो रसों का ।

§ ३ विज्ञाप सुच (२५ ३)

अधु विज्ञान

मिथुनो ! जो अधु-विज्ञान की उत्पत्ति । जो भोज विज्ञान की । जो मनो-विज्ञान की ।

मिथुनो ! जो अधु-विज्ञान का निरोध ।

§ ४ फस्त सुच (२५ ४)

स्पर्श

मिथुनो ! जो अधु-स्पर्श की उत्पत्ति ।

मिथुनो ! जो अधु-स्पर्श का निरोध

§ ५ वेदना सुच (२५ ५)

वेदना

मिथुनो ! जो अधु-स्पर्श-वेदना की उत्पत्ति ।

मिथुनो ! जो अधु-स्पर्श-वेदना का निरोध ।

§ ८, तण्हा सुत्त (२६. ८)

तृष्णा

भिक्षुओ ! जो रूप-तृष्णा में छन्दराग हैं ।

§ ९, धातु सुत्त (२६. ९)

धातु

भिक्षुओ ! जो पृथ्वी धातु में छन्दराग हैं ।

§ १०, खन्ध सुत्त (२६. १०)

स्कन्ध

भिक्षुओ ! जो रूप में छन्दराग हैं । जो वेदना में* । जो सज्ञा में । जो संस्कार में* । जो विज्ञान में* ।

केश संयुक्त समाप्त

छठाँ परिच्छेद

२६ क्लेश-सयुक्त

§ १ षष्ठसु सुच (२६ १)

षष्ठु का छन्दराग चित्त का उपह्लेश है

भावस्ती ।

मिथुनो ! जो षष्ठु में छन्दराग है वह चित्त का उपह्लेश है । जो क्रोध में जो मन में ।

मिथुनो ! जब इन छः स्वार्थों में (= षष्ठु धीरे प्रथम जिह्वा, कण्ठ मज) मिथुन का चित्त उपह्लेश-रहित होता है तो उसका चित्त मीच्छन्त्य की ओर मुक्त होता है । मीच्छन्त्य में अन्त्यस्त चित्त महापूर्वक साक्षात्कार करने योग्य चर्यों में समता है ।

§ २ रूप सुच (२६ २)

रूप

मिथुनो ! जो रूपों में छन्दराग है वह चित्त का उपह्लेश है । जो सार्वों में जो चर्यों में ।

मिथुनो ! जब इन छः स्वार्थों में मिथुन का चित्त उपह्लेश रहित होता है ।

§ ३ विक्रान्त सुच (२६ ३)

विक्रान्त

मिथुनो ! जो षष्ठु विक्रान्त में छन्दराग है ।

§ ४ क्षुब्ध सुच (२६ ४)

क्षुब्ध

मिथुनो ! जो षष्ठुर्भस्वरा में छन्दराग है ।

§ ५ वेदना सुच (२६ ५)

वेदना

मिथुनो ! जो षष्ठुर्भस्वरांजा वेदना में छन्दराग है ।

§ ६ सञ्जा सुच (२६ ६)

सञ्जा

मिथुनो ! जो रूप सञ्जा में छन्दराग है ।

§ ७ सञ्चेतना सुच (२६ ७)

सञ्चेतना

मिथुनो ! जो रूप सञ्चेतना में छन्दराग है ।

§ ३. पीति सुत्त (२७ ३)

तृतीय ध्यान की अवस्था में

श्रावस्ती ।

.. आयुस ! यह मैं प्राप्ति में और विराम में उपेक्षा करने लुपे विहार कर रहा था—जिसे पण्डित लोग कहते हैं कि उपेक्षा के साथ स्मृतिमान हो मुत्तपूर्वक विहार करता है उस तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार कर रहा था.. ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ४. उपेक्खा सुत्त (२७ ४)

चतुर्थ ध्यान की अवस्था में

आयुस ! यह मैं मुग्ध और दुःख के प्रहाण हो जाने में, पहले ही संमनस्य-संमनस्य के अस्त हो जाने में मुग्ध-दुःख में रहित उपेक्षा, स्मृतिपरिच्छिन्न वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार कर रहा था .।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ५. आकास सुत्त (२७ ५)

आकाशानन्त्यायतन की अवस्था में

भिक्षुओ ! यह मैं रूप-मज्ञा का धित्कुल समतिक्रमण कर, प्रतिघमजा के अस्त हो जाने से, नानाधम-सज्ञा के मन में न जाने से, 'आकाश अनन्त है' ऐसा आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ६. विज्ञाण सुत्त (२७ ६)

विज्ञानानन्त्यायतन की अवस्था में

' आयुस ! यह मैं आकाशानन्त्यायतन का धित्कुल समतिक्रमण कर, "विज्ञान अनन्त है" ऐसा विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ७. आकिञ्चञ्ज सुत्त (२७ ७)

आकिञ्चन्यायतन की अवस्था में

आयुस ! यह मैं विज्ञानानन्त्यायतन का धित्कुल समतिक्रमण कर, "कुछ नहीं है" ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ८. नेवसञ्ज सुत्त (२७ ८)

नेवसंज्ञानासंज्ञायतन की अवस्था में

आयुस ! यह मैं आकिञ्चन्यायतन का विल्लकुल समतिक्रमण कर नेवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

सातवाँ परिच्छेद

२७ सारिपुत्र-संयुक्त

§ १ विवेक सुप्त (२७ १)

प्रथम स्थान की अवस्था में

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र भावस्ती में अनाद्यपिच्छिक के कारण जेतवन में विहार करते थे ।

तब पूर्वार्द्ध में आयुष्मान् सारिपुत्र पहन और पात्रपीवर के भावस्ती में सिंहावन के किने पड़े ।

सिंहावन से ऊँट भोजन कर कने पर दिन के विहार के लिये वहाँ अन्धवन ही वहाँ गये । अन्धवन में पैठ किसी वृक्ष के नीचे बैठ गये ।

तब संज्ञा समथ आयुष्मान् सारिपुत्र प्यान से उठ वहाँ अनाद्यपिच्छिक का कारण जेतवन ही वहाँ आये ।

आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् सारिपुत्र को पूर ही संभाते देखा । देखकर आयुष्मान् सारिपुत्र से कहा "आजुस सारिपुत्र ! आपकी इन्द्रियों बहुत प्रसन्न हैं सुप्त की कान्ति बड़ी छन्द हो रही है । आज आप कैसे विहार कर रहे थे ?

आजुस ! यह मैं क्या से विविक्त हो पाप धर्मों से विविक्त हो बितर्कवाले विचारवाले तथा विवेकज्ञ प्रीतिसुप्त वाले प्रथम स्थान का ध्यान कर विहार करता था । आजुस ! तब मैं वह नहीं समझ रहा था कि मैं प्रथम प्यान को प्राप्त कर रहा हूँ, या प्रथम प्यान को प्राप्त कर किता हूँ, या प्रथम प्यान से उठ रहा हूँ ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ममङ्कार, माध और अनुसय बहुत पहले ही मर ही चुके थे । इसलिये उनको इसका भी पता नहीं था कि मैं प्रथम प्यान को प्राप्त कर रहा हूँ, या प्रथम प्यान को प्राप्त कर किता हूँ, या प्रथम प्यान से उठ रहा हूँ ।

§ २ अधितक सुप्त (२७ २)

द्वितीय स्थान की अवस्था में

भावस्ती ।

[पूर्वार्द्ध]

आजुस ! वह मैं बितर्क और विचार के शान्त हो जाते सं, आप्पास मंत्रसाध विज्ञ की न्यायगत अधितक अविचार समाधिज्ञ प्रीतिसुप्त वाले द्वितीय स्थान प्राप्त हो विहार कर रहा था । आजुस ! तब मैं वह नहीं समझ रहा था कि मैं द्वितीय स्थान को प्राप्त कर रहा हूँ । या द्वितीय स्थान को प्राप्त कर किता हूँ । या द्वितीय स्थान से उठ रहा हूँ ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ...।

§ ३. पीति सुत्त (२७ ३)

तृतीय ध्यान की अवस्था में

श्रावस्ती***।

आवुस । यह मैं प्रीति से ओर विराग से उपेक्षा रखते हुये विहार कर रहा था—जिसे पण्डित लोग कहते हैं कि उपेक्षा के साथ स्मृतिमान् हो सुखपूर्वक विहार करता है उस तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ४. उपेक्खा सुत्त (२७ ४)

चतुर्थ ध्यान की अवस्था में

आवुस । यह मैं सुख और दुःख के प्रहाण हो जाने से, पहले ही सौमनस्य-दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से सुख-दुःख से रहित उपेक्षा, स्मृतिपरिशुद्ध वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ५. आकास सुत्त (२७ ५)

आकाशानन्त्यायतन की अवस्था में

भिक्षुओ ! यह मैं रूप-सज्ञा का विलकुल समतिक्रमण कर, प्रतिघसज्ञा के अस्त हो जाने से, नानात्म-सज्ञा के मन में न आने से, 'आकाश अनन्त है' ऐसा आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ६. विज्जाण सुत्त (२७ ६)

विज्ञानानन्त्यायतन की अवस्था में

आवुस । यह मैं आकाशानन्त्यायतन का विलकुल समतिक्रमण कर, "विज्ञान अनन्त है" ऐसा विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ७. आकिञ्चञ्ज सुत्त (२७ ७)

आकिञ्चन्यायतन की अवस्था में

आवुस । यह मैं विज्ञानानन्त्यायतन का विलकुल समतिक्रमण कर, "कुछ नहीं है" ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ८. नेवसञ्ज सुत्त (२७ ८)

नेवसज्ञानासंज्ञायतन की अवस्था में

आवुस । यह मैं आकिञ्चन्यायतन का विलकुल समतिक्रमण कर नैवगज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था ।

आयुप्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार ।

§ ९ निरोध सुच (२७ ९)

संज्ञाबोधयितनिरोध की अवस्था में

आयुष ! यह मैं निवर्तशामान्यशायतन का बिल्कुल समतिक्रमण कर संज्ञाबोधयितनिरोध को प्राप्त हो बिहार कर रहा था ।

आयुष्मान् सारिपुत्र क भइहार ।

§ १० सूचिमुखी सुच (२७ १०)

मिथु धर्मवृत्तक आहार ग्रहण करते हैं

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र राजगृह में देवदुवन कच्छवृत्त निवाप में बिहार करते थे । तब आयुष्मान् सारिपुत्र बृहन्न समय पहन और पात्र भीतर के राजगृह में मिश्राण के सिधे पड़े । राजगृह में शर-शर पर मिश्रा के उस मिश्राक को एक वीबास से लगे बैठकर खा रहे थे । तब सूचिमुखी परिमात्रिका वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र से वहाँ आई और बोली "धमन ! नीचे मुँह क्यों क्यों खा रहा है ?

बहन ! मैं नीचे मुँह क्यों नहीं खा रहा हूँ ।

धमन ! तो ऊपर मुँह करके खा रहे हो ?

बहन ! मैं ऊपर मुँह करके भी नहीं खा रहा हूँ ।

धमन ! तो चारों ओर मुँह घुमा घुमाकर खा रह हो ?

बहन ! मैं चारों ओर मुँह घुमा घुमाकर भी नहीं खा रहा हूँ ।

धमन ! जब तुम सभी में 'नहीं' कहत हो तो भस्म कैसे खा रह हो ?

बहन ! जो धमन या ब्राह्मण पशुविद्या तिरश्चीन विद्या के मिथ्याजीव स जीवन निर्वाह करते हैं वे नीचे मुँह करके खानेवाले कहे जाते हैं ।

बहन ! जो धमन या ब्राह्मण मनुष्यविद्या के मिथ्याजीव स जीवन निर्वाह करते हैं वे ऊपर मुँह करके खानेवाले कहे जाते हैं ।

बहन ! जो धमन या ब्राह्मण मूल के काम के मिथ्याजीव स जीवन निर्वाह करते हैं वे दिसाओं में मुँह करके खानेवाले कहे जाते हैं ।

बहन ! जो धमन या ब्राह्मण भद्रविद्या के मिथ्याजीव स जीवन निर्वाह करते हैं वे विद्विषाओं में मुँह करके खानेवाले कहे जाते हैं ।

बहन ! इनमें मैं किसी तरह जीवन निर्वाह नहीं करता । मैं धर्म-वृत्तक मिश्राण करक खाता हूँ

तब सूचिमुखी परिमात्रिका राजगृह में एक गली से दूसरी गली और एक बौरादे से दूसरे बौरादे पर जा आकर बहने लगी—आजवपुत्र धमन धर्मवृत्तक आहार ग्रहण करते हैं राजवपुत्र धमिन्य आहार ग्रहण करत हैं । राजवपुत्र धमन को बिहार हो ।

सारिपुत्र-संयुक्त समाप्त

आठवाँ परिच्छेद

२८. नाम-संयुक्त

§ १. सुद्धिक सुत्त (२८. १)

चार नाम योनियों

श्रावस्ती***।

भिक्षुओं ! नाम-योनियों चार हैं। कान में चार ? (१) अण्डज नाम, (२) पिण्डज नाम, (३) सम्बेदज नाम, (४) औपपातिक नाम। भिक्षुओं ! यहाँ चार नाम-योनियों हैं।

§ २. पणीततर सुत्त (२८. २)

चार नाम-योनियों

श्रावस्ती ।

भिक्षुओं ! नाम-योनियों चार हैं।

भिक्षुओं ! अण्डज नाम से ऊपर के तीन नाम ऊँचे हैं।

भिक्षुओं ! अण्डज और पिण्डज नाम से ऊपर के दो नाम ऊँचे हैं।

भिक्षुओं ! अण्डज पिण्डज और सम्बेदज नाम से औपपातिक नाम ऊँचा है।

§ ३. पठम उपोसथ सुत्त (२८. ३)

कुछ नाम उपोसथ रखते हैं

श्रावस्ती ।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ अण्डज नाम उपोसथ रखते हैं और अच्छे शरीर वाले हो जाते हैं ?

भिक्षु ! कुछ अण्डज नामों के मन में ऐसा होता है, “हम पहले शरीर से, वचन से और मन से पुण्य-पाप करने वाले थे, सो हम मरने के बाद अण्डज नाम-योनि में उत्पन्न हुये।

तो, हम अब शरीर, वचन और मन से सदाचार करें, जिससे मरने के बाद हम स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करें।

भिक्षुओं ! यही हेतु = प्रत्यय है कि कुछ अण्डज नाम उपोसथ रखते हैं और अच्छे शरीर वाले हो जाते हैं।

§ ४-६. द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ उपोसथ सुत्त (२८. ४-६)

कुछ नाम उपोसथ रखते हैं

भन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ पिण्डज नाम , सम्बेदिक नाम ? औपपातिक नाम...?

§ ७ पठम तस्स सुत्त सुत्त (२८ ७)

नाग-यानि में उत्पन्न होने का कारण

भावस्ती ।

एक ओर बट वह मिथु भगवान् स बोला 'अन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ लोग मरने के बाद अण्डज नाग-योनि में उत्पन्न होते हैं ?

मिथु ! कुछ लोग शरीर पचन और ममसे पुन्य-याप करने वाले होते हैं । वे मरते हैं—अण्डज नाग शीघ्र पु सुन्दर और सुखी होते हैं । अतः उनके मनमें होता है "अरे ! हम मरने के बाद अण्डज नागों में उत्पन्न होंगे ।

वे मरने के बाद अण्डज नागों में उत्पन्न होते हैं ।

मिथु ! यही हेतु = प्रत्यय है ।

§ ८ १० दुतिय-त्तविय चतुत्थ तस्स सुत्त सुत्त (२८ ८-१०)

नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण

अन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ लोग मरने के बाद पिण्डज संस्वेदज भीषपातिक नाग-योनि में उत्पन्न होते हैं ?

§ ११ पठम दानुपकार सुत्त (२८ ११)

नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण

इसके मन में पूसा जाता है अरे ! हम भी मरने के बाद अण्डज नाग-योनि में उत्पन्न हों ।' वह अन्न पाक अच्छा सचारी आच्छा शब्द विच्छेपन सत्त्वा पर प्रतीप का शान करता है । वह मरने के बाद अण्डज नाग योनि में उत्पन्न होता है ।

मिथु ! यही हेतु = प्रत्यय है ।

§ १२-१४ दुतिय-त्तविय-चतुत्थ दानुपकार सुत्त (२८ १२-१४)

नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण

'वह मरने के बाद पिण्डज नाग योनि में संस्वेदज नाग-योनि में भीषपातिक नाग-योनि में उत्पन्न होता है ।

नाग संयुक्त समाप्त

नवाँ परिच्छेद

२९. सुपर्ण-संयुक्त

§ १. सुद्धक सुत्त (२९ १)

चार सुपर्ण-योनियाँ

थावस्ती ।

भिक्षुओ ! चार सुपर्ण-योनियाँ हैं । कौन नयी चार ? अण्डज, पिण्डज, सस्वेदज, और औप-पातिक ।

§ २ हरन्ति सुत्त (२९ २)

हर ले जाते हैं

थावस्ती **।

भिक्षुओ ! अण्डज सुपर्ण अण्डज नागों को हर ले जाते हैं, पिण्डज, सस्वेदज और औपपातिक को नहीं ।

पिण्डज सुपर्ण अण्डज और पिण्डज नागों को हर ले जाते हैं, सस्वेदज और औपपातिक को नहीं । सस्वेदज सुपर्ण अण्डज, पिण्डज और सस्वेदज नागों को हर ले जाते हैं, औपपातिक को नहीं । औपपातिक सुपर्ण सभी लोगों को हर ले जाते हैं । भिक्षुओ ! यही चार सुपर्ण-योनियाँ हैं ।

§ ३. पठम द्वयकारी सुत्त (२९ ३)

सुपर्ण-योनि में उत्पन्न होने का कारण

थावस्ती ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कुछ लोग मरने के बाद अण्डज सुपर्ण योगि में उत्पन्न होते हैं ?

भिक्षु ! कुछ लोग शरीर, वचन और मन से पुण्य-पाप करने वाले होते हैं । वे सुनते हैं—अण्डज सुपर्ण दीर्घायु, सुन्दर और सुखी होते हैं । अतः, उनके मन में होता है, “अरे ! हम मरने के बाद अण्डज सुपर्णों में उत्पन्न होंगे ।

वे मरने के बाद अण्डज सुपर्णों में उत्पन्न होते हैं ।

भिक्षु ! यही हेतु=प्रत्यय ।

§ ४-६. तृतीय-तृतीय-चतुर्थ द्वयकारी सुत्त (२९ ४-६)

सुपर्ण-योनि में उत्पन्न होने का कारण

थावस्ती ।

भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कुछ लोग मरने के बाद पिण्डज, सस्वेदज, औपपातिक सुपर्ण योनि में उत्पन्न होते हैं ?

§ ७ पठम दानुपकार सुक्त (२९ ७)

दान भादि दान से सुपर्ण योनि में

उसके मरने में पंसा होता है 'मरे। हम भी मरने के बाद लम्बे सुपर्ण-योनि में उत्पन्न हों' ।

बह मरने पान बरस सखारी माका गन्ध विखेपन कस्या कर प्रदीप का दान करता है। बह मरने के बाद अण्डित सुपर्ण योनि में उत्पन्न होता है ।

मिथु ! पही हेतु=मरण ।

§ ८-१० द्वितीय-तृतीय चतुर्थ दानुपकार सुक्त (२९ ८-१०)

दान भादि दान से सुपर्ण योनि में

बह मरने के बाद पिचइक सुपर्ण-योनि में संश्लेषक सुपर्ण योनि में क्षीपपाठिक सुपर्ण-योनि में उत्पन्न होता ।

सुपर्ण संयुक्त

दसवाँ परिच्छेद

३०. गन्धर्वकाय-संयुक्त

§ १. सुदृक सुत्त (३० १)

गन्धर्वकाय देव कौन है ?

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! गन्धर्वकाय देवों के विषय में कहोगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! गन्धर्वकाय देव कौन से है ?

भिक्षुओ ! मूलगन्धर्व में वास करने वाले देव हैं । सारगन्धर्व में वास करने वाले देव हैं । कच्छी लकड़ी के गन्धर्व में वास करने वाले देव हैं । छाल के गन्धर्व में वास करने वाले देव हैं । पपड़ी के गन्धर्व में । पत्तों के गन्धर्व में । फल के गन्धर्व में । फल के गन्धर्व में । रस के गन्धर्व में । गन्धर्व के गन्धर्व में ।

भिक्षुओ ! यही गन्धर्वकायिक देव कहलाने हैं ।

§ २ मुचरित सुत्त (३० २)

गन्धर्व-योनि में उत्पन्न होने का कारण

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, “भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कोई यहाँ मरकर गन्धर्वकायिक देवों के बीच उत्पन्न होता है ?

भिक्षु ! कोई शरीर, वचन ओर मन से सदाचार करता है । वह कहीं सुन पाता है—गन्धर्वकायिक देव दीर्घायु, सुन्दर और सुखी होते हैं ।

तब, उसके मन में ऐसा होता है, “अरे ! मरने के बाद मैं भी गन्धर्वकायिक देवों में उत्पन्न होऊँ । वह ठीक मैं मरने के बाद गन्धर्वकायिक देवों में उत्पन्न होता है ।

भिक्षु ! यही हेतु=प्रत्यय है कि कोई यहाँ मरकर गन्धर्वकायिक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

§ ३. पृथग् दाता सुत्त (३० ३)

दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

श्रावस्ती ।

उसके मन में यह होता है—अरे ! मरने के बाद मैं मूलगन्धर्व में वास करनेवाले देवों के बीच उत्पन्न होऊँ । वह मूलगन्धर्वों का दान करता है । वह मरने के बाद मूलगन्धर्वों में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

§ ४-१२ दाता सुक्त (३० ४-१२)

दाम से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

बह सारगन्धर्वों का दाम करता है । बह मरने के बाद सारगन्धर्वों में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है ।—

बह ककषी के गन्धर्वों का दाम करता है ।

बह काक के गन्धर्वों का दाम करता है ।

पपड़ीके ।

पत्ती के ।

पूक के ।

कक के ।

रम के ।

गन्ध के ।

मिथु ! यही हेतु=व्यत्यय ।

§ १३ पठम दानुपकार सुक्त (३० १३)

दाम से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

धावस्ती ।

सन्तो ! क्या हेतु=व्यत्यय है कि कोई यहाँ मर कर मूकगन्धर्व में दाम करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है ?

उसके मन में ऐसा होता है—भरे ! मरने के बाद मैं मूकगन्धर्व में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होऊँ । बह बह पाम बह सचारी का दाम करता है । बह मरने के बाद मूकगन्धर्व में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

मिथु ! यही हेतु=व्यत्यय ।

§ १४-२३ दानुपकार सुक्त (३० १४-२३)

दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

[शेष दस गन्धर्वों के साथ भी जगाकर समग्र बना चाहिये]

गन्धर्वकाय-संयुक्त समाप्त

ग्यारहवाँ परिच्छेद

३१. बलाहक-संयुक्त

§ १. देसना सुक्त (३१. १)

बलाहक देव कौन हैं ?

श्रावस्ती ।

भिक्षुओ ! बलाहककायिक देवा के विषय में कहूंगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! बलाहककायिक देव कौन से हैं ? भिक्षुओ ! शीत बलाहक देव हैं । ऊष्ण बलाहक देव हैं । अन्न बलाहक देव हैं । वात बलाहक देव हैं । वर्षा बलाहक देव हैं ।

भिक्षुओ ! इन्हीं को बलाहककायिक देव कहते हैं ।

§ २. सुचरित सुक्त (३१ २)

बलाहक योनि में उत्पन्न होने का कारण

भिक्षु ! कोई शरीर, वचन और मन से सदाचार करता है । वह कहीं सुन लेता है । उसके मन में ऐसा होता है ।

मरने के बाद वह बलाहककायिक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

भिक्षु ! यही हेतु = प्रत्यय ।

§ ३. पठम दानुपकार सुक्त (३१ ३)

दान से बलाहक-योनि में उत्पत्ति

वह अन्न, पान, वस्त्र का दान करता है । वह मरने के बाद शीत बलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

§ ४-७. दानुपकार सुक्त (३१ ४-७)

दान से बलाहक-योनि में उत्पत्ति

ऊष्ण बलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

अन्न बलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

वात बलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

वर्षा बलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है ।

§ ८. शीत सुक्त (३१ ८)

शीत होने का कारण

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठ, यह भिक्षु भगवान् से बोला, "अन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कभी शीत होता है ?"

मिथु ! दक्षिण बछाहक नाम के देव हैं। उनके मन में जब बह होता है—इसलिये अपनी रति से रमण करें तब उनके मन में ऐसा होने में सीत होता है।

§ ९ उण्ड मुत्त (३१ ९)

गर्मी होने का कारण

मिथु ! उण्ड बछाहक नाम के देव हैं।

§ १० अरुम मुत्त (३१ १०)

वाक्छ होने का कारण

मिथु ! अरुम बछाहक नाम के देव हैं।

§ ११ घाठ मुत्त (३१ ११)

घायु होने का कारण

मिथु ! घाठ बछाहक नाम के देव हैं।

§ १२ वस्स मुत्त (३१ १२)

वर्षा होने का कारण

मिथु ! वर्षा बछाहक नाम के देव हैं।

बछाहक संयुक्त समाप्त

बारहवाँ परिच्छेद

३२. वत्सगोत्र-संयुक्त

§ १. अञ्जाण सुक्त (३२ १)

अज्ञान से नाना प्रकार की मिथ्या दृष्टियों की उत्पत्ति

श्रावस्ती ।

तत्र, वत्सगोत्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और कुशल क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला, “गौतम ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि ससार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—“लोक शाश्वत है, या लोक अशाश्वत है । लोक सान्त है, या लोक अनन्त है । जो जीव है वही शरीर है, या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है । मरने के बाद तथागत होता है, या मरने के बाद तथागत नहीं होता है । मरने के बाद तथागत होता है भी और नहीं भी होता है । मरने के बाद तथागत न होता है और न नहीं होता है” ?

वत्स ! रूप के अज्ञान से, रूप-समुदय के अज्ञान से, रूपनिरोध के अज्ञान से, रूप-निरोधगामिनी प्रतिपदा के अज्ञान से, ससार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—“लोक शाश्वत है ।

§ २-५. अञ्जाण सुक्त (३२ २-५)

अज्ञान से मिथ्या दृष्टियों की उत्पत्ति

वत्स ! वेदना के अज्ञान से ।

वत्स ! संज्ञा के अज्ञान से ।

वत्स ! संस्कार के अज्ञान से ।

वत्स ! विज्ञान के अज्ञान से, विज्ञान-समुदय के अज्ञान से, विज्ञान निरोध के अज्ञान से, विज्ञान-निरोधगामिनी प्रतिपदा के अज्ञान से, ससार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—“लोक शाश्वत है ।”

§ ६-१०. अदस्सन सुक्त (३२ ६-१०)

अदर्शन से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति

श्रावस्ती ।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला, गौतम ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि ससार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—“लोक शाश्वत है ।” ?

वत्स ! रूप के अदर्शन से । वेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान ।

§ ११-१५ अनभिसमय सुक्त (३२ ११-१५)

ज्ञान न होने से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति

भायस्ती ।

बल्ल ! रूप में अभिसमय नहीं होने से ।

बल्ल ! वेदना में ।

बल्ल ! संज्ञा में ।

बल्ल ! संस्कार में ।

बल्ल ! विज्ञान में ।

§ १६-२० अननुबोध सुक्त (३२ १६-२०)

भली प्रकार न जानने से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति

भायस्ती ।

बल्ल ! रूप में अनुबोध नहीं होने से ।

बल्ल ! वेदना में ।

बल्ल ! संज्ञा में ।

बल्ल ! संस्कार में ।

बल्ल ! विज्ञान में ।

§ २१-२५ अप्यटिवेध सुक्त (३२ २१-२५)

अप्रतिवेध न होने से मिथ्या-दृष्टियों

बल्ल ! रूप के अप्रतिवेध से विज्ञान के अप्रतिवेध से ।

§ २६-३० असहस्रण्य सुक्त (३२ २६-३०)

भली प्रकार विचार न करने से मिथ्या-दृष्टियों

बल्ल ! रूप के असहस्रण्य से विज्ञान के असहस्रण्य से ।

§ ३१-३५ अनुपलक्षण्य सुक्त (३२ ३१-३५)

अनुपलक्षण्य से मिथ्या-दृष्टियों

बल्ल ! रूप के अनुपलक्षण्य से विज्ञान के अनुपलक्षण्य से ।

§ ३६-४० अपर्युपलक्षण्य सुक्त (३२ ३६-४०)

अपर्युपलक्षण्य से मिथ्या-दृष्टियों

बल्ल ! रूप के अपर्युपलक्षण्य से विज्ञान के अपर्युपलक्षण्य से ।

§ ४१-४५ असमपेक्षण्य सुक्त (३२ ४१-४५)

असमपेक्षण्य से मिथ्या-दृष्टियों

बल्ल ! रूप के असमपेक्षण्य से विज्ञान के ।

§ ४६-५० अपर्युपेक्षण्य सुक्त (३२ ४६-५०)

अपर्युपेक्षण्य से मिथ्या-दृष्टियों

बल्ल ! रूप के अपर्युपेक्षण्य से विज्ञान के ।

§ ५१ अपच्युपेक्षण सूक्त (३२. ५१)

अप्रत्यक्ष कर्म से मिथ्या-दृष्टियाँ

ध्यायन्ती १।

तब, चरसगौत्र परिब्राजक जहाँ भगवान् ने वहाँ आया, नीर कुशल क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, चरसगौत्र परिब्राजक भगवान् से बोला, "गौतम ! क्या हेतु-प्रत्यय है कि संसार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—"शोक शाङ्गत है ।"

व्यस ! रूप से, अप्रत्यक्ष-कर्म से, रूप समुच्च के अप्रत्यक्ष कर्म से, रूपनिरोध के अप्रत्यक्ष कर्म से, रूप निरोधगामिनी प्रतिपदा ? अप्रत्यक्ष कर्म से इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं ।

§ ५२-५५ अपच्युपेक्षण सूक्त (३२. ५२-५५)

अप्रत्यक्ष कर्म से मिथ्या-दृष्टियाँ

- व्यस ! वेदना के अप्रत्यक्ष कर्म से ।
- व्यस ! मजा के अप्रत्यक्ष कर्म से ।
- व्यस ! स्पर्श के अप्रत्यक्ष कर्म से ।
- व्यस ! चिज्ञान के अप्रत्यक्ष कर्म से ।

चरसगौत्र समुच्च समाप्त

तेरहवाँ परिच्छेद

३३ ध्यान संयुक्त

§ १ समाधि-समापत्ति सुक्त (३३ १)

ध्यायी चार हैं

भावस्त्री ।

मिथुना ! ध्यायी चार हैं । कीज मे चार ?

मिथुनी ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-बुझाक होता है समाधि में समापत्ति-कुसक नहीं ।

मिथुनी ! कोई ध्यायी समाधि में समापत्ति-कुसक होता है समाधि में समाधि-बुझाक नहीं ।

मिथुना ! कोई ध्यायी न समाधि में समाधि-बुझाक होता है न समाधि में समापत्ति-कुसक ।

मिथुनी ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-बुझाक भी होता है और समाधि में समापत्ति-कुसक भी ।

मिथुनी ! जो ध्यायी समाधि में समाधि-बुझाक भी होता है और समाधि में समापत्ति-बुझाक भी रही इन चार ध्यायियों में जग-भेद = मुरप-इत्तम-अवर है ।

मिथुनी ! जमे गाय न रूप रूप से रही रही स मवपल मवकव से भी और भी स भी मवव जपज ममम जाता है । मिथुनी ! ईम ही जो ध्यायी समाधि में समाधि-बुझाक भी होता है और समाधि में समापत्ति-बुझाक भी रही इन चार ध्यायियों में जग-भेद = मुरप-इत्तम-अवर है ।

§ २ ठिति सुक्त (३३ २)

स्थिति कुशाक ध्यायी छेप

ध्यायस्त्री ।

मिथुना ! ध्यायी चार हैं । जान मे चार ?

मिथुनी ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि बुझाक होता है समाधि में स्थिति बुझाक नहीं ।

मिथुनी ! कोई ध्यायी समाधि में स्थिति बुझाक होता है समाधि-बुझाक नहीं ।

मिथुनी ! कोई ध्यायी न समाधि में समाधि-बुझाक होता है न समाधि में स्थिति-बुझाक ।

मिथुनी ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-बुझाक भी और समाधि में स्थिति-बुझाक भी होता है ।

मिथुनी ! जो ध्यायी समाधि में समाधि-बुझाक भी और समाधि में स्थिति-बुझाक भी होता है वही इन चार ध्यायियों में जग-भेद = मुरप-इत्तम-अवर होता है ।

मिथुनी ! जमे गाय मे रूप ।

§ ३ पुढान सुक्त (३३ ३)

ध्यायधाम कुशाक ध्यायी इजम

मिथुनी ! ध्यायी चार होते हैं । जान मे चार ?

मिथुनी ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-बुझाक होता है समाधि में ध्यायधाम-बुझाक नहीं ।

बिभ्रुओ ! कोई ध्यायी समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, समाधि में समाधिकुशल नहीं ।

बिभ्रुओ ! कोई ध्यायी न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, न समाधि में समाधिकुशल ।

बिभ्रुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में व्युत्थानकुशल भी ।

बिभ्रुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में व्युत्थानकुशल भी, वही इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ=सुयोग=उत्तम=प्रथम होता है ।

§ ४. कल्पित सुक्त (३३ ४)

कल्प कुशल ध्यायी श्रेष्ठ

श्रावस्ती ।

बिभ्रुओ ! ध्यायी चार होते हैं । कान में चार ?

बिभ्रुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में कल्पकुशल नहीं ।

बिभ्रुओ ! कोई ध्यायी समाधि में कल्पकुशल होता है, समाधि में समाधिकुशल नहीं ।

बिभ्रुओ ! कोई ध्यायी न समाधि में समाधिकुशल होता है, और न समाधि में कल्पकुशल ।

बिभ्रुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है और समाधि में कल्पकुशल भी ।

बिभ्रुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में कल्पकुशल भी,

वही इन चार ध्यायियों में अग्र = श्रेष्ठ होता है ।

बिभ्रुओ ! जेम्, गाय से दूध ।

§ ५. आरम्भण सुक्त (३३ ५)

आलम्बन कुशल ध्यायी श्रेष्ठ

श्रावस्ती ।

बिभ्रुओ ! चार ध्यायी ।

बिभ्रुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में आलम्बनकुशल नहीं ।

बिभ्रुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी, और समाधि में आलम्बनकुशल भी है, वे

ही इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ ।

§ ६. गोचर सुक्त (३३ ६)

गोचरकुशल ध्यायी

चार ध्यायी ।

बिभ्रुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में गोचरकुशल नहीं ।

बिभ्रुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी, और समाधि में गोचरकुशल भी है, वे ही

अग्र ।

§ ७. अभिनीहार सुक्त (३३. ७)

अभिनीहार-कुशल ध्यायी

चार ध्यायी ।

बिभ्रुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में अभिनीहार-कुशल नहीं ।

मिथुना ! जो प्यारी समाधि में समाधिबुझाक भी आर समाधि में नमिमीहर-बुझाक भी है वही भद्र ।

§ ८ सफ़रुच सुच (३३ ८)

गीरव करनेवाला प्यापी

आर प्यापी ।

मिथुनो ! कोई प्यारी समाधि में समाधिबुझाक होता है समाधि में गीरव करनेवाला नहीं ।

मिथुनो ! जो प्यापी समाधि में समाधिबुझाक भी, आर समाधि में गीरव करनेवाक भी है वही भद्र ।

§ ९ सातव सुच (३३ ९)

निरुद्धर लगत रहनेवाला प्यापी

आर प्यापी ।

मिथुना ! कोई प्यापी समाधि में समाधिबुझाक हाता है समाधि में सातवकारी नहीं ।

मिथुना ! जो प्यापी समाधि में समाधिबुझाक भी हाता है और समाधि में सातवकारी भी वही भद्र-भेद ।

§ १० मप्याय सुच (३३ १०)

समापकारी प्यापी

मिथुनो ! जो प्यापी समाधि में समाधिबुझाक भी हाता है और समाधि में समापकारी भी

वही भद्र-भेद ।

§ ११ निति सुच (३३ ११)

प्यापी आर है

आरुमती ।

आर प्यापी ।

मिथुनो ! कोई प्यारी समाधि में समाधिबुझाक होता है समाधि में नितिबुझाक नहीं ।

मिथुनो ! कोई प्यारी समाधि में नितिबुझाक हाता है समाधि में समाधिबुझाक नहीं ।

मिथुनो ! कोई प्यापी समाधि में न समाधिबुझाक होता है और न नितिबुझाक ।

मिथुनो ! कोई प्यारी समाधि में समाधिबुझाक भी हाता है आर नितिबुझाक भी ।

मिथुनो ! जो प्यारी समाधि में समाधिबुझाक भी हाता है और नितिबुझाक भी न भद्र-भेद ।

§ १२ गृहान सुच (३३ १२)

ग्याति बुझाक

मिथुना ! जो प्यारी समाधि में समाधिबुझाक भी हाता है और ग्यातिबुझाक भी वही भद्र ।

§ १३ कलित सुत्त (३३ १३)

कल्य-कुशल

“ भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल भी होता है, और कल्यकुशल भी, वह अग्र ”।

§ १४. आरम्भण सुत्त (३३ १४)

आलम्बन कुशल

“ भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में आलम्बनकुशल भी, वह अग्र ”।

§ १५ गोचर सुत्त (३३ १५)

गोचर-कुशल .

“ भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में गोचरकुशल भी, वह अग्र ।

§ १६. अभिनीहार सुत्त (३३. १६)

अभिनीहार-कुशल

“ भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में अभिनीहारकुशल भी, वह अग्र ।

§ १७ सक्कच्च सुत्त (३३ १७)

गौरव करने में कुशल

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में सक्कल्यकारी भी, वह अग्र ”।

§ १८ सातच्च सुत्त (३३ १८)

निरन्तर लगा रहने वाला

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में सातल्यकारी भी, वह अग्र ”।

§ १९. सप्पाय सुत्त (३३ १९)

सप्रायकारी

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में सप्रायकारी भी, वह अग्र ।

§ २० त्रिति सुत्त (३३. २०)

स्थिति-कुशल

चार ध्यायी ।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में स्थितिकुशल होता है, समाधि में व्युत्थानकुशल नहीं ।

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में स्थिति कुशल होता है, और समाधि में व्युत्थानकुशल

भी, वह अग्र ।

§ २१-२७ पुष्पे आगत सुसन्ता सुप्त (३३ ४ २१-२७)

[इसी तरह 'शक्ति के साथ कल्पकुशल आत्मजनकुशल गोबरकुशल भूमिनीहार सत्कृत्यकारी सातत्यकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ २८-३४ पुद्गल सुप्त (३३ २१-३४)

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में ध्युत्पन्नकुशल होता है समाधि में कल्पकुशल नहीं ।

[इसी तरह आत्मजनकुशल गोबरकुशल भूमिनीहार कुशल सत्कृत्यकारी सातत्यकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ३५-४० फलित सुप्त (३३ ३ — ४०)

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में कल्पकुशल होता है समाधि में आत्मजनकुशल नहीं ।

[इसी तरह गोबरकुशल भूमिनीहार कुशल सत्कृत्यकारी सातत्यकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ४१-४५ आरम्भण सुप्त (३३ ४१-४५)

[इसी तरह गोबरकुशल भूमिनीहारकुशल सत्कृत्यकारी सातत्यकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ४६-४९ गोषर सुप्त (३३ ४६-४९)

[इसी तरह भूमिनीहारकुशल सत्कृत्यकारी सातत्यकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये ।]

§ ५०-५२ अमिनीहार सुप्त (३३ ५०-५२)

[इसी तरह सत्कृत्यकारी सातत्यकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ५३-५४ सककच्छ सुप्त (३३ ५३-५४)

[इसी तरह सातत्यकारी समापकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ५५ सायन्-सप्याय सुप्त (३३ ५५)

व्यापी चार हैं

आपस्ती ।

मिथुनो ! प्यत्वी चार हैं । कान से चार ?

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में सातत्यकारी होता है समाधि में समापकारी नहीं ।

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में समापकारी होता है सातत्यकारी नहीं ?

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में सातत्यकारी होता है और न समापकारी ।

मिथुनो ! कोई व्यापी समाधि में सातत्यकारी होता है और समापकारी भी ।

मिथुनो ! जो व्यापी समाधि में सातत्यकारी होता है और समापकारी भी वह इन चार व्यापियों में अम=श्रेष्ठ=सुन्दर=उत्तम=प्रथम होता है ।

मिथुनो ! जैसे घाम से दूब दूब से नहीं दूब से मन्त्रण मन्त्रण से भी धी धी मन्त्रण कच्छ होता है । वैसे ही मिथुनो ! जो व्यापी समाधि में सातत्यकारी होता है और समापकारी भी वह इन चार व्यापियों में अम=श्रेष्ठ=सुन्दर=उत्तम=प्रथम होता है ।

मगवान् वह बोधे । संतुष्ट होकर इन मिथुनों ने मगवान् के बोधे का अनुसोदन किया ।

ध्यान संयुक्त समाप्त

अन्य चर्चा समाप्त

परिशिष्ट

१. उपमा सूची

अनाथ ६२	गङ्गा नदी २७१, ३८२
अन्धकार में जानेवाला पुरुष ८३	गङ्गाघाता हुआ मेघ ८७
अपराधी चोर २३५	गङ्गाघाते मेघ की यिजली ९२
अमनुष्यवाले स्थान का जल ८१	गाड़ी की हाल ९४
आकाश में चाँद १५७	गाय का दूहन ३०७
आकाश २७७	गाथ ४४८
आग की डेर २२९	गुह २६१
आग का गङ्गा २३५	ग्रहगढ़वा ३८८
आभाद्वर देव ९९	घी २६१
आम के गुच्छे ३८८	जपथ कुत्ता २९६
उत्पल ३८२	चक्रवर्ती का जेठा पुत्र १५२
उत्पल का गन्ध ३७८	चक्रवर्ती राजा १५३, ३८८
ऊपर जानेवाला पुरुष ८४	चहान से शिर टकराना १०७
ऊपर से नीचे आने वाला पुरुष ८४	चन्द्रमा ३८८
एगिमृग १८	चौद खून की तेजी ३०८
वैपथि तारका ६४	चौद २७७, २८०
वैकुण्ठी केरनेवाला २८७	छोछ लगी गाय २३४
कहुआ का खोपड़ी में अंग छिपाना ८	छोटी नदियों का चढ़ा पानी ९४
कट्टियों का परिहार २८८	जम्बू द्वीप के घास-लकड़ी २६९
कटी घास १०६	जर श्वापल ३१०
कमल की माल से पर्वत मथना १०७	जाल के बुलबुले ३८०
कान्तार पाथेय २३४	जादूगर ३८३
कान्तार-मार्ग का कुँआ २४२	जाल में पक्षी का फँसना ४६
कालजुसारी ३८८	जूही ३८८
कुत्ता ३८५	जेतवन के सुण-काष्ठ ३७७
कुम्हार का घड़ा ८५	जगली हाथी १०६
कुम्हार का लौआ से निकला बतैन २२५	झपटने वाला कौआ १०५
कुदागार २३६, ३०६, ३८८	तरुण वृक्ष २३१
केला २९५	तेज २६१
कोसल की धाली ९२	तेल भक्षी २३०
कौंधे की खींचना १६५	दत्तारथों का आनक मृदा ३०८
कवचरी का गर्भ १०५, २९५	दाम विद्या हुआ १६९

- रूप २६१
 सो बंधुके मर प्रज्ञावाणी १ ९
 सो पुरुष ३६८
 धनुर्धर ३ ७
 पार्श्व का कपड़ा १६३
 पुरा दृष्ट हुना गादीवान् ९
 नक्षत्री कुण्डल ७५
 मक २९५
 मकडकाप २७
 पक्षी का भूक बजाना १५७
 पद्म ११५
 पर्वत पर पद्म पुरुष ११५
 पर्वत १८९
 मदीप का हुसना १२८
 पहाड़ को मक से खोदना १ ७
 दुष्परी पदना ९८ १ २
 पाताल का अन्त खोजना १ ७
 पीने का बरतार २३९
 पीब २६१
 पुराता मार्ग २३७
 पुराता कुँआ २७७
 पूर्वमा की रात का बर्ष १८७
 पूस की क्षोपणी १२७ १२८
 सैका मुर्दा ६२
 सैकापी काक ७१
 सपेरी बीसा सुष्म १ १
 सपे बुद्ध की भाव ९२
 सार्ध का बसुका ३८७
 परास की लाकायें १६५
 सर्डी ३ ७
 सखवान् पुरुष ११७ १७९ २९७
 सखुत विपरीताका सुक ३ ९
 सावर २३३
 साखु का कप ९५
 साखु का मर ३ ६
 दिना नवभार की भाव ८९
 विकार ३ ९
 बीजरोपना ११३
 बीज १८ ३६१
 बुधा मर्यादा २८९
 बल १७५
 भट्टीदार की घटाई ९२
 भाका सुभना ५६
 भेडा २८८
 मछली का काक काटना ५७
 मनु २६१
 मरीचिका ३८२
 महक पर बडा ११५
 महामेघ १५३
 महारुस २३
 महानदियों का संगम २५१
 महापृष्ठी २५१ २६९
 महान् पर्वत २७
 माता ३६१
 माता द्वारा पुत्र की रक्षा ७७
 मातृवा कला १६५
 मुर्गी के अण्डे ३८७
 मूल २६१
 मूल का बीजना १६
 मयराज सिंह ३५८
 मेक के समाज पर्वत ८७
 मीका २६१
 मीका कावेकाका पिच्छ ९८८
 मीका कपड़ा ३७८
 रज-कम ३ ३
 रथ ११३
 राही १६९
 रई का काहा १ ७
 रंगरेव २३६
 सखणियों की राग २३७
 सखणी २६१
 सखु २६१
 सखार सैकदा १ ५
 सखी २७२
 सखकाम्य ३८८
 सुधरी २५९
 खोड़े की बर्त से बधना १ ७
 खोड़ी का खर १३५
 खोड़े से बिरा मगर २७१
 खिपीके तीर बुना २८९

विज्ञ का सूर्य को मुँह लगाना १७५
 घेणु २९५
 वेरम्भ हुआ २८९
 वैदूर्यमणि का भासना ६४
 शरत् काल का सूर्य ६४
 शारिका की बोली १५२
 शमशान की लकड़ी ३६२
 समुद्र में चलने वाली नाव ३८७
 खरोवर ३०९
 सात गोलियाँ २५१
 सारथी १७३, २७
 सार-गवेषक ३८२
 सिखाया हुआ घोड़ा ८
 सिंह २७, ९५

सुमेरु २५२
 सुई बेचने वाला २८२
 सूत की बोली ४१८
 मूरज १६८
 सूर्य ३८८
 सोने का आभूषण ६४
 सौ वर्ष की आयु के धावक २७१
 स्वच्छन्द सृग १५९
 स्थिरता से चलने वाला नाग ११७
 हरे नरकट का फटना ५
 हाथी का पैर ७९
 हिमालय २५२
 हुँआ हुँआ कर रोनेवाला सियार ६५
 लोहार की भाथी ९२

२ नाम-अनुक्रमणी

अग्गाक्षय १४९	अभिह (अक्षजोक) ३५ ३२
अग्गाक्षय शेष १४८	असम ३४
अङ्गीरस (= शुद्ध) ७९	असुरेन्द्रक मारहाण १३१
अग्निह मारहाण १३३	असुरेन्द्र शत्रु ५२
अक्षयाळ मिश्रोव ८९ ९ १ ४ ११४ ११५	अस्तसि ३७५
अद्यातद्यानु (= मगधराज वैदेहीपुर) ७९ ७७	अहह (गरक) १२४
२९३ ३ ८	अहिंसक मारहाण १३२
अकित २१५	आकाशाधन्वापतव १२८
अक्षितकेसकम्बकी ६७	आर्कियन्वापतव १२८
अज्जलतम युगादाव ५९	आकोरक ३४ ३५
अम्माकोण्डम्भ १५४	आत्मीय २८
अट्ट (गरक) १२४	आणक (सूर्यग) ३ ८
अमापदिपिटक १ ६ १९ २ ३३ २४ २५	आणन् ५८ ६३ ७९ १२८ १४६ १५ १५९,
३ ४८ ५८ ५९ ६७ ९८ ९५ ९७	२१२ २३ २३२ २३८ २४ २४२
१ ८ ११६ १३८ १५ १५१ १५३	२४३ २६ २७९ २८२ २९४, ३३८
१५५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७२	३६७ ३७९ ४ ३ ४३
१८९ १९३ १९८ २२३ २२८ २३३	
२४२ २४७-२५५ ३ ६ ३६७	आभावर वैव ९९
अपुत्र १२ १२८ १५९ १६७ २३	आराम (विहार) १ ६ १९, २ २५, ४८
अन्वत्त पत्त १ ८	६७ ९३ ९५ ९७ १ ८ ११६ ११८
अन्वत्त पत्त १ ९ ११ ११३	अक्षयक १७
अन्वत्तसिन्धु १९५	आकक हत्यक २९२
अपुत्र (गरक) १२४	आकविक (मिथुपी) १ ८
अभिलक्ष २७९	आक्षपी १४८ १४९ १७ १७१
अभिभू (अप्रजावक) १२६ १२७	इन्द्र ४९, १८१
अभिसाव अक्ष (माहाण) १४२ १४३	इन्द्रक १६४
अक्षयकाहक ४३९	इन्द्रक १६४
अक्षोपा ३८९	इन्द्रक १६४
अक्षि (मारकम्बा) १ १ १ ६, १ ७	इंसान १७२
अक्षयवती (नगर) १२६ १२७	उक्षयक (रोग) ३१
अक्षयवाद् (राज्य) १२६ १२७	उत्क (उत्पीसा) ३५३
अक्षय-कोक ११	उत्तर वैवपुत्र ५७
अक्षुद् (गरक) १२३	उत्तरा १६८
अक्षणी ३६४ ३२६	उत्तरक (गरक) १२४
	उत्तरकवर्मा मिथुपी ११ २९३
	उत्तरक व्राह्मण १३९

उप्यामसंज्ञी देवता २४	कुररघर ३२४, ३२६
उपक ३५	कुल जमपट २३२, २३८
उपचाला १११ (-भिष्णुणी)	कुशावती ३८४
उपधत्तन १२८	कुशीनारा १२८
उपवान १४०, २१२	कूटागारशाला २८, २९, ९८, १८२, ३०८, ३१४, ३५२, ३७२
उपालि २६०	कृशागौतमी (भिष्णुणी) १०९
उरुवेला ८९, ९०, ९१, १०४, ११४, ११५	कृषिभारद्वाज १३८
ऋषिगिरि १०३, १५५	केला ३८३
ऋषिगिरि शिला ३७४	कोकनदा २८, २९, (-छोटी) २९
ऋषिपतन मृगादाय ९०, ९१, २३९, २७६, २८५, ३५१, ३७९, ३९४	कोकनद ७५
एकनाला १३८	कोकालिक १२२, १२३, १२४
एकनाला (- ब्राह्मण-ग्राम) ९६	कोणागामन (- बुद्ध) १९७, २७५
एणिमृग १८	कोण्डञ्ज १५४
एलाला ३२३	कोशल ६२, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१-८७, ९६, १००, १२४, १३४-१४४, १५७ १६२
औपधि तारका (= शुक्र तारा) ६४	क्रोधभक्ष यक्ष १८७, १८८
ककुध देवपुत्र ५६	कौशाम्ब्री २४०, ३६३, ३७७, ३७९
ककुसन्ध (- बुद्ध) १९७, २७४	क्षेमदेवपुत्र ५९
कतसौरक तिस्तक मिष्णु १२२	क्षेमा ३९३
कदलिमृगा ३८४	खण्डदेव ३५
कपिलवरह २६, ३६१	खुजमुत्तरा २९२
कप्प ११९, ३९५	खेमक ३७७
कपिन (- महा) १२०	खोटा मुँह (- भारद्वाज ब्राह्मण) १३०, १३१
कम्मासदम्म २३२, २३८	खोमदुस्त १४६, १४७
कलन्दक निवाप (- वेळुवन) ५४, ६४, ९३, १०३, १२९, १३०, १३१, १३३, १५४, १६९, १७०, १८२	गंगरा १५५
कलार क्षत्रिय २१६, २१७, २१८	गङ्गा ११९, १६५, १७०, २७१, ३८२
कलिग राजा ३०४	गन्धर्वकायदेव ४३७
काल्यायन गोत्र २००, २०१	गया १६४
काल्यायन २५९	गरुड १२१
कामद-देवपुत्र ५०	गिञ्जकावसथ २२५, २५९
कालशिला (राजगृह में) १०३, १५५	गुहकट पर्वत ९५, १२५, १८३, २६०, २७२, २७४, २९५, ३०१, ३०२, ३०४, ३७४
कालानुमारी ३८८	गोविक १०३, १०४
काशी ७४, ७६, ७७, २७०	गौतम २७, ३४, ४४, ४४, ४९, ५४, ६०, ६७, ९५-९९, १०५, १०७, ११८, २२९-१३५, १३८-१४७, १५० (- कुल), १५५, १५८, १५९, १८७, २०२, ३८३, ४४३
काश्यप (- बुद्ध) ३६, (- देवपुत्र) ४८, (- महा) १२०, (- गोत्र) १५८, (बुद्ध) १९७, २०२, २७५, २७६, २८१, २८२, ३०४	घटीकार देवपुत्र ६१,
काश्यपकाराम ३७५	घोपिताराम २४०, ३६३, ३७७
कसुद (नरक) १२४	

चक्रवर्ती राजा ३८/
 चन्द्र (—जाती का) ७४
 चन्द्र देवपुत्र ५५
 चन्द्रगणिक उपामक ७५ ७६
 चन्द्रमा देवपुत्र ५२
 चन्द्रमस देवपुत्र ५४
 चण्डा १५५
 चारी महाराज १८४
 चाका मिथुली ११ १११
 चिन्न गृहपति ७९२
 चीरा मिथुली १७
 चीप १४८
 छद्म ३७
 जहा भारतनाम १३२ १३३
 जेतवन १ ६ १९ २ ३३ २५ ३ ३३, ४८
 ४९ ५८ ५ ६७ ९३ ९५ ९७ १ ८
 ११६ ११८ १२२ १५ १५५ १६६ १६७
 १७२ १७४ १८१ १८९, १९३ १९८ २१५
 २२८ २३३ २४२ २४७ ५५ ५६ ३ ६
 ३३७ ३६७ ३८ ३८१ ३८४ ३८९ ४३
 जगपद २६ ८५ १ १ १ ० १३६ १४६
 जम्बू देवपुत्र ६९
 जम्बूद्वीप २६९
 जानुप्रोधि २२६
 जातिमी १५९ १६
 जूरी ३८८
 जगती (एक वर्ष) १६१
 जगदाक्ष (भाइनाम) १४३
 जातिक २६५, २५९
 टंकियमस १६४
 जगदश्रिती ८१
 जगदाक्ष २५ १ ११४ ३५१ ४१९
 जगदीश्वर ९ १ (जगदीश्वर) ११
 जगद देवपुत्र ५१ ५२
 जिम्बूद्वीप २ ४
 जिम्बर ३ ४
 जिप्य ३६
 जिरग २७५ ३१५
 जुहु ज्योतिष ज्ञाना ११४
 जुम्बिन १११

तुप्पा (भार-कम्पा) १ ५ १ ६ १ ७
 त्रपक्षिना (जम्बूद्वीप लोक) ६ १११, १५९, १७३
 १७४ १७५ १८१ १८२ १८३ १८७
 १८८ १८९
 त्रिदश लोक (जम्बूद्वीप-लोक) ६
 तुष्कनाम्बा २८३
 तुष्कतिस्सा २८२ २८३
 तुष्कनागिरी १३८
 तुषावक २ ७
 तुषारह ३७८
 तुषामि, देवपुत्र ४९ ५
 तुषीर्षपति देवपुत्र ५५
 तुषदत्त १२५ २९५ २९६ ३६ ३६१
 तुषराज १८८
 तुषद्विज आकाश १४
 तुषज्जानि १९
 तुष्कलपिवा ३२१
 तुम्बुल बल ६ ३२ १५९
 तुम्बु देवपुत्र ५५
 तुम्बु देवपुत्र ६३ ३१५
 तुम्बुद्विजाल देवपुत्र ६३
 तुम्बुद्विजाल भारतनाम १४३ १४४
 तुम्बा २७ २८
 तुम्बादत्त १६
 तुम्बाद २४ २४१ २४२
 तुम्बान्दा २८४
 तुम्बि ६४ ६५
 तुम्बाद्वीप आशुपुत्र ६५ ६७
 तुम्बोच ६९ ९ १ ४ ११४ ११९
 तुम्बोधरकव १४८ १४९
 तुम्बोधराराम ३६१
 तुम्बाधरति १११
 तुम्बुरा ८९, ९ १ ४ ११४ ११५
 तुम्बुद्वीपनामसंग्रहण १९८
 तुम्बुद्वीप जगदिवान ६५ ६७
 तुम्बुद्वीपति ३५
 तुम्बुद्वीप (—मिथु) ३५१
 तुम्बाक्ष जगद ५ ५१
 तुम्बाक्ष (भाइनाम) ८
 तुम्बाक्षी ३८६

पद्म (—नरक) १२३, १२४

परिनायक रत्न ३८४

पल्लवाण्ड ३५

पाचीनवदा २७४

पारिलेख्यक ३६३

पावा २७४

पिङ्गिथ ३५

पुण्डरीक १६२

पुण्यमन्तानि-पुत्र २६०

पुनर्वसु १६८, १६७

पुराणकाश्यप ३५२

पुरिन्दद १८१

पूर्वाराम ७४, १५२, ३६५

प्रज्ञापति १७३

प्रद्युम्न की वेदी २८, २९

प्रत्येक बुद्ध ८१

प्रसेनजित् ६७, ६८, ६९, ७०-८७

प्रियङ्कर-माता १६७

यक ११८

यदरिकाराम ३७७

यन्त्रज ३८१

वीरण ३८१

वलाहक देव ४३९

बहुपुत्रक चैत्य २८४

बहेलिया १५८

वाधिन १२१

शाहुरागि ३५

विलंगिक भारद्वाज १३१, १३२

बुद्ध ३२, २५, २७, २९, ३३, ३४, ४४, ४८,

५२, ५३, ५४, ५८, ६४, ६६, ६७,

(—प्रत्येक) ८१, ८८, ९२, ९३, ९५, ९६,

९८, १०६, १०७, १११, ११२, ११९, १२०,

१२३, १२५, १२७, १२८, १२९, १३५,

१३९, १४०, १४८, १५१, १५३-१५६,

१६२, १६४, १६७, १६८, १७१, १८२,

१८३-१७५, २०५, २०७, २९०, ३०८,

३१४, ३८२

बुद्धघोष (—आचार्य) १४

बुद्ध-चक्र ११५

बुद्धनेत्र ११५

बोधिसत्त्व १९५, १९६, ३३४

ब्रह्मदेव (—भिष्णु) ११६, ११७

ब्रह्ममार्ग ११७

ब्रह्म-सभा १२७

ब्रह्मलोक ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१,

१२६

ब्रह्मा ११५, ११७, ११८, १२० (—महा), १२२,

१२५

भञ्ज ३५३

भण्ट २७९

भद्रिय ३५

भर्ग ३२१

भारद्वाज १२९, १३०, १३१, १३४, १३६, १३७,

१४९, २७५

भिष्णुक ब्राह्मण १४५

भिरयो २७५

भूमिज २११, २१२

भेसकलावन ३२१

भोजपुत्र (व्रश्चि) ६२

मन्मथलि गोसाल ६५, ६७

मगध ७६, ७७, ९८, ११४, १२५, १३८, १५९,

१६५

मघवा १८१, १८५, १८८

मणिभद्र १६५

मणिमालक १६५

महकुक्षि २७, ९५

मन्तानिपुत्र पूर्ण ३६७

मल्ल १२८

मस्त्रिकादेवी ७१, ७८

मरीचि ३८३

महावन (कपिलवस्तुमें) २६, २८, (वैशालीमें) ९८,

१८२, ३१४, ३५२, ३६१, ३७२

महामौर्यव्यायन ११९, १२०, १२२, १२३, १५५,

२६०, २७५, २९२, ३०१, ३०२, ३११, ३१२

महा-काश्यप १२०, २६०, २७८, २८३, २८५

महा-कपिन १२०, ३१६, ३१७

महा-ग्रह्या १२०

महा-काल्यायन ३२४, ३२६

महा-कोहित २३९, ३०४

महालि १८२

महा-शुष्की ३८५
 मागक २७५
 भाग्य-शैबपुत्र ४९
 भाग्यशिव ३२४
 भाग्य-शैबपुत्र ४८
 भाग्य-गामिय ६४
 भाग्य, १०४ १०७ १८४ १८५ १८६
 भाग्योपक भाग्य १४५
 भार ३५ २० ८२, ९१ ९३ (-सेना) ९७ ९८
 १ १ १ ४ ११५ १३९, ४ ९

मिथिल प्रश्न (ग्रन्थ) ११
 भृगुसामा (विज्ञान) ७४ १५२ ३६५
 मूषिक २४ २४१
 मोक्षिण कर्मण्य १९९ २१३
 पम २२
 पमक ३६९
 पाम १११
 पना (मार-कर्मण्य) १ ५ १०६ १ ७
 राजगुह ९ १ २७ ५४ ६४ ६५ ९२ ९३
 ९५ १ ३ १२५ १२९, १३ १३१ १३३
 ७५४ १५५ १६४ १६६, १६९ १८२ १८३
 २ ९ २ ९ ३१ २४३ २६ २७१ २७४
 २७८ २६ २८३, २८४ २९५, ३ ७
 ३ २ ३०४ ३१२ ३१३ ३४३ ३४४
 ३७३ ३७५, ४३२
 राव ३५६ ४ ५-१४
 राहु ५२
 राहुक २९७ २९९ ३
 रूप-कोक ११
 रोहितस (मनुष्य) २७५
 रोहितस शैबपुत्र ३९
 रीरव (भारत) २९ ८२
 रुद्रगुहक मरिय ३१४
 रुद्रक ३ १
 रुद्रकान्त ३०८
 रुद्रकवि १८२ ३ ८
 रुद्रकान्तिक २२६
 रुद्रक २७५
 रुद्रक ३७३
 रुद्रोत्तरा १४८ १४९ १५ १५१ १५२ १५४ १५५

रुद्रि १५९ (-युत्र) १६१
 रूपा मिथुनी ११३
 रुद्र (-मनुष्य) ४९
 रुद्रम १७३
 रुद्रवर्ती (रीरव) ३५ १११
 रुद्र ३५३
 रुद्रगोत्र परिभाषक ४४१ ४४३
 रुद्रवर्ती ९ २१ २३९ २७६ २८५ ३५१
 ३७२, ३९४
 रुद्रि १६२
 रुद्रि १७५ १७६ १८१ १८५, १८६
 रुद्रिया मिथुनी १७९ ११
 रुद्रिनायक्यापत्र १२८
 रुद्रि २७४
 रुद्रि १९५ १९६
 रुद्रि १५३
 रुद्रि (-वर्त) ६३
 रुद्रिपण्डु वीणा १ ४
 रुद्रिपाठ पाश्चात्कृत ३१४
 रुद्रिभिमगा (ग्रन्थ) १४
 रुद्रि ६४ ६५
 रुद्रि १२५
 रुद्रि शैबपुत्र (मरियु) ५४
 रुद्रि २८
 रुद्रि २८२ २८३
 रुद्रि ५२ ५३ १७४ १७५ १७६
 १७७ १७८ १ ९ १८८
 रुद्रि २७२ २७४ २ ५
 रुद्रि (बाधु) २८९
 रुद्रि २९९
 रुद्रि २७१ २७२ २७४ २७६ २८३ ३ १
 ३१२ ३४३ ३४४ ३७२ ३७५, ४३२
 रुद्रि (रुद्र) १९७
 रुद्रि ३६
 रुद्रि (भासाद) १८४ १८५ १८६ ३८४
 रुद्रि (पम की) २९
 रुद्रि ३६

वेरोचन १७८
 वैशाली २८, २९, ९८, १६१, १८२, ३०८, ३१४,
 ३५२, ३७३
 शक्र (इन्द्र) १२८, १६४, १७२-१८९
 शाक्य २६, ७९, १०१, १०२, १४६, ३२२, ३६१
 शाक्य-कुल ११२
 शाक्य जनपद ७९
 गाल (=साखू) ११०, १२८, १४४
 गालवन उपवत्तन (कुदीनारा में) १२८
 गिरी (शुद्ध) १२६, १२७
 शिव ५८
 शीतवन १६८, १६९
 शीलवती (प्रदेश) १०१, १०२
 शीवक १६८
 शीर्षोपचाला ११२ (-भिक्षुणी)
 शुक्रा भिक्षुणी १६९, १७०
 शुद्धावास २६, १२१, १२२
 शुद्धिक भारद्वाज १३३
 शुचिसुखी परित्राजिका ३३२
 शैला भिक्षुणी ११२, ११३
 श्वेत (= कैलाश) ६६
 श्रावस्ती (लेतवन) १, ६, १९, २०, २१, ७५,
 ३०, ४८, ४९, ५२, ५४, ५९, ६२, ६७, ६८,
 ६९, ७०-८७, ९३-९९, १०८-११३, ११६-
 १२६, १३२, १३३, १३९-१४६, १५०-१५५,
 १६६, १६७, १७२-१८९, १९३, १९५, १९८,
 २००-२१८, २३६, २४२, २४७, २५०-२५८,
 २०६, ३११, ३१३, ३२७, ३६५, ३६७,
 ३८०, ३८३, ४३०
 सगारव १३६
 सजय वेकट्टिपुत्र ६७
 सखीय २७४
 सत्तुल्लपकायिक देवता १९, २०, २१, २२, २३, २६, २७
 सनत्कुमार (यथा) १२५
 समुद्धि १०, ११, १०२
 सम्भर १७९, १८०
 सम्बरी माया (जादू) १८८
 सम्मुल २, ४९, १०२ ११४, ११६, १२१, १२६,
 १२८, १२९, १५३, १५६, १७३, १७४, १८५,
 १९५, २३७, २८४, ३०४, ३५१,

सपिणी नदी १२५
 सधिष्ठ २४०, २४१, २४२
 सहस्रपति ब्रह्मा ११४, ११५, ११६, ११७, १२३,
 १२४, १२५, १२६, १२८, १८४, ३६१
 सहली ६४, ६५
 सहस्र नेत्र (इन्द्र) १७९
 सहस्राक्ष (इन्द्र) १८१
 साकेत ५६
 सानु १६६
 सारिपुत्र ३३, ५८, ६३, ६४, १२२, १२३, १५१,
 १५२, २१०, २११, २१२, २१५, २१६,
 २१७, २१८, २३९, २६०, २७५, २७६,
 २९२, ३११, ३१२, ३२१, ३२३, ३४९,
 ४३०, ४३१, ४३२
 सिखी (बुद्ध) १९६
 सिंह २७, २८
 सुगत २९ (= बुद्ध), ६४, २८४
 सुदत्त ५६, १६९
 सुधर्मा सभा १७४, १८९
 सुजम्पति १८२, १८५, १८६, १८८
 सुजा १७८, १८२
 सुजात ३१३
 सुत्तर २७५
 सुदर्शन माणवक ७६
 सुन्दरिका नदी १३४
 सुन्दरिका भारद्वाज १३४, १३५
 सुपर्ण ४३५
 सुपत्स २७५
 सुपिय २७५
 सुभद्रा देवी ३८४
 सुमेक ३८५
 सुराध ३५६
 सुवीर १७२
 सुखा १३५
 सुसिम वेवपुत्र ६३, १७३, २४३, २४४, २४५
 सुवन्न ५६
 सुवस्था १२१, १२२
 सुंभुमत्तर गिरि ३२१
 सुचिलोम १६४, १६५
 सुर्वदेव पुत्र ५२, ५३

मन्मथी ग्राम ९१

मेरी वृत्तपत्र ६ , ६१

मोग ३७७

सोमा मिष्टुणी १ ८ १ ९

सौरभिक (मरक) १२७

हंस १२१

द्विसप्त ६२

द्विसप्त ६६ १

हारिक ३ ७

हाकिहिकानि ३२६

३. शब्द-अनुक्रमणी

- अनामिक १०४ (=विना देरीके मफल होने वाला)
 अनामिकी १०१ (=नींद का लफल होने वाला)
 अकृत ४१८ (=अनिर्मित)
 अकृतज्ञता १०८
 अतिपापाद्री २०३
 अक्षर ३९
 अर्धोत्थ (= उठ) ७६
 अग्नि ४३
 अग्नि-अपन १३३, १३४
 अक्षर-पट-गामी (=निचाण गामी) १०५
 अजेय १३१, १५४
 अटकरुषा (=अर्थकथा=भाषण) १, २, ४, ५
 अणुल ४३३
 अतीत (=भूत=गीता हुआ) २६०
 अद्वैत २००
 अधर्म ६०
 अधिपचन पथ ३५३
 अधुन १५८
 अध्वयमाय २४९
 अनन्त ४१९
 अनन्तदर्शी ११८
 अनागत (=अविद्यत) ११६, २६०
 अनानामी १००, १०४, १८३
 अनाताप २०६
 अनात्म १५०
 अनार्य ५०
 अनासक्त २३, ३२, ४८, ५५, ६४
 अनित्य १२८, १४९, १५०, १५८, १५९
 अनित्यता ६२
 अनुताप ५१
 अनुत्तर १०६, ११६, १४४, १४५, १०३, १०४,
 २७६
 अनुपलक्षण ३४२
 अनुप्राप्तमयरी (=निर्वाण-प्राप्त) ३९०
 अनुबंध ४४०
 अनुमोदन ४४८
 अनुरोध ०६
 अनुशामन ४८, ७८, ०६
 अनुश्रव २४१
 अनुष्ठान १००, १०२
 अनोत्तापी २४६
 अनोम (= सुख) ३२, १८५
 अन्तरु (= मार) ८९, ००, ९७, १६०
 अन्तर कल्प ४१८
 अन्तर्धान ४८, ५१, ५६, ५८
 अन्तर्वाला ४१०
 अन्नपान ४४
 अन्यथात्व ४३८
 अपद्रवा (= संकोच) २८०
 अपराजेय १५०
 अपरान्त २०६
 अप्रमत्त ५४, ८०, १०१, १०२, १०३, ११६,
 १३०, १५४, १७१, १८५
 अप्रमाद ६२, ७८, ८०, १२८, २४९
 अपेक्षा ७३
 अप्रतिबन्धीय १६९
 अप्रतिबंध ४४२
 अप्रत्युपलक्षण ४४२
 अप्लरा ३२
 अद्वैत (= गर्भ में सत्य की कलक अवस्था के
 बाद की दूसरी अवस्था) १६४
 अभय १०४
 अभिजातियौ ४१८
 अभिनिवेश ४००
 अभिनिर्घृति २६७
 अभिनीहार ४४५

भारत ७३

भारत (विहार) १, १५०, १५१, १५३, १५५,
१६६, १६७, १७२, १८३, १८०

भार्त-स्वर ३०१

भार्ये १२३

भार्येमार्ग ८, ३०

भार्यधर्म २९

भार्य अष्टांगिक मार्ग ७०

भार्यमल्य (चार) २, १६८

भालम्भन ४४५

भालमी ४७

भालस्य ८६

भावागमन ३८, १३४, १६०, ३८५

भाबुस १७०

भाष्य ३१ (= गृह), ३०

भाष्य (= चित्त मल) १००, (चार) १३३,
२०८, ३८६

भासता १४५

भासक्ति १३, १६९

भाहुति ११७

भुच्छा ४१

भुम्भिय-सवर ५६

भुरियापथ (चार) १७ (= शारीरिक अवस्थायें)

भुलोम ३००

भुश्वर ११८

भुभण-भ्रमण ११५

भुभणक (- रोग) २८९

भुभेद-वाद २०३

भुभान-सजा (= ठठसे का विचार) ९२

भुभद २६७

भुभक-भुभिक १४६

भुभन-चित्त १५२

भुभन २८ (= प्रीति वाक्य)

भुभत १६२

भुभगी ४७

भुभदिष्ट १८२

भुभधि ६२, ९३

भुभधि १०५, १०६, ११२, ११४, ११७, १५५,

१६९, २३८

भुभसम्पदा १३०

भुभदान लक्ष्म (पाँच) ९७, १९३

भुभपास २३५ (= परेशानी), २५९

भुभसक १३९, १४०, १४१, १४०, १४३, १४४,
१४५, १४६, १४७, १५५, १७०, १८५, २०४

भुभसथ ६२, १६६, ३६५

भुभण १०६

भुभुदतिपत्र १७४

भुभुभूत १८३

भुभुदि १०३, ११०, १२०, १२१

भुभुदिपाठ १०० (= चार)

भुभुदिथल १२७

भुभुदिमान् ६०, १२१ १५६

भुभुधि ३१, ५८, ६०, ६२, १०९, १५३, १७९, १८६

भुभुकरथ २०७

भुभुश्राटिक ७४ (= एक बन्धधारी)

भुभुभन्त ४८, ९२ (- वास), ९६, १००, १०२,
१०८, ११६, १२६, १४५, १६१

भुभुपस्सिको (= 'आओ देख लो' कहा जाने योग्य)
१०१

भुभुनर्य ४५, ४६, ८७, १०५

भुभुक्ता (= तीला) ३०७

भुभुध (= वाद, चार) १

भुभुज १६९

भुभुपनेयिको (= परमपद तक ले जानेवाला) १०

भुभुलारिक ३१२

भुभुद्वय-कौकुल्य (= उद्धरण-पश्चात्ताप, नीवरण)
२, ८६

भुभुपयातिक (= अ-योनिज स्वयं) ४३३

भुभुयाधिक १८३, १८४

भुभुभभागीय ३४७ (= निचले बन्धन, पाँच)

भुभुकाल ३०१

भुभुकथ ३०५

भुभुकर्म ३३, ५८

भुभुकर्मवादी २०९

भुभुकर्ता ११८

भुभुकल १६४

भुभुकलेवर (= क्षरीर) ६३

भुभुकल्प २७१

भुभुकल्याणमित्र ७९

भुभुकधि ३९

कहापत्र (= कार्यापत्र) ७१	वीवर (= विमिश्र वक्त्र) १ ८ १३४ १३८ १ ८
काम १ १ ७ (-विचार) १११ (-सुष्मा) ११	२७६
(-योग) १	वैद्य ११५, १८३
कामपत्र ४ ८६	उद्य ३९
कामपत्र-वृत्ति १५०	उद्याराग १५६
कामपत्र ३०५	उद्य (= सुष्मा) १४
कार्य १ ७	उद्य ७४
कार्यापत्र ७१ (= कहापत्र)	कतपत्र ८५
कर्म (= मृत्यु कर्म) १	करा ४२ ८७, ११८ ११७ ११३
कर्मपत्र ३ ३ (= पत्र)	कायस्थ (= नीला) २९१
कर्मपत्र १ २ १३	कति ११६ १२२
कुरागार ३८४ (= Watch tower)	क्योति-उत्तम परापत्र ८३ ८४
केवर्क १३४ १३९	क्योति-क्योति-परापत्र ८३ ८४
कोकपत्र (= कर्मक) ७५	क्याम १ ९
कोकटि १२३ (= वीर का बीज)	गायी १२६ १४९ १६८ १६९
कोसकराज ६७ ६८ ६९ ७०-८०	कृषर ३ ८
कर्म ४ १ ३	कर्मदा ८ ४५
कर्मिण ४७ ६७ ८६, ८७ ८८ १२५ १३३	कप ३९
कर्मिण १७१ १७५ १७६ २४१	कपल्ली १४
कर्मिणपत्र (= कर्मिण) १२ १४, १५ १७ १	कर्म-कर्म-परापत्र ८३ ८४
५५ ६९ १३४ १३९ २९४	कर्म-क्योति-परापत्र ८३ ८४
कर्म १५१	कप ७६ १ ३ १६७
कर्म १२४	कर्मिण (= कर्मिण) १२६ (-क्योति) २९३ ३८६
कर्म २७ २८ २९ ११	४३३
कर्मिण १६९	कर्मिण (= कर्मिण-साधु) ५१ ६०
कर्मिण (= कर्मिण) १ २ ३ ४ ५ ६ ७	कर्मिण १ १२ १७ २३ २६ ३८ ४ ४१
कर्मिण ३९ (= कर्मिण)	४२ ५३ १ ४ १ ७ ११ १९३
कर्मिण ७४	कर्मिण १ ३
कर्मिण ७१ १६८	कर्मिण २६६
कर्मिण ७४-५	कर्मिण २४३
कर्मिण ३३ ४५ ५८ १२९	कर्मिण १३४ १५२ १५३ १५४ १५५ १८४
कर्मिण १४	१८५
कर्मिण १७	कर्मिण २९
कर्मिण १७	कर्मिण (= कर्मिण-सत्य) ७२
कर्मिण-कर्मिण (= कर्मिण का पत्र) १ ८	कर्मिण १७१ (= कर्मिण-कर्मिण)
कर्मिण २९ २३	कर्मिण २८ ६४ ११७ १३
कर्मिण ८२ ८८ १३३	कर्मिण ४७
कर्मिण-कर्मिण (= कर्मिण का कर्मिण से	कर्मिण २१ १५६
कर्मिण) ३३३	कर्मिण-कर्मिण ११९
कर्मिण-कर्मिण ५	कर्मिण-कर्मिण १९
कर्मिण (= कर्मिण) १५८	

दुःख ४२, १५०

दुर्गाति २०

दुर्भाषित १७६

दृष्टिनिध्यान २४१

देव-कन्या १५९

देवत्व ११०

देवपुत्र ४८, ४९, १७२, १७३

देमलोक २७, २९, १६०, १८०

देवासुर-संग्राम १०३, १०४, १०६, १०७, १०९

देवेन्द्र १०८, १०७, १०३, १०५-१८०, १८४,
१८६-१८९

दो-अन्त २०३

द्वेष १०, १७, ३५, ३६, ६८, ८५, १४७, १६५,
१८५

धर्म (= बुद्ध धर्म) १०, १९, ३२, ३३, ३४,
३५, ३६, ४०, ४३, ४४, ४५, ४९, ५१,
५८-६०, ६८, ७८, ८५, ८८, ९९, १०१,
१०७, १११, ११२, ११४, ११६, १२९,
१३४, १३५, १३९, १४८, १५४, १५६,
१६०, १६८, १७१, १७४, १७५, १७७,
१८५, १८७, ३७४

धर्मकथिक (= धर्मोपदेशक) २०१, ३९२

धर्म-वेदाना ९१ (= धर्मोपदेश)

धर्मानुधर्म प्रतिपन्न २०१

धर्म-घातु २५६

धर्मासन २८०

धर्म-दर्शन १८३

धर्मपद १६१

धर्मानुसारी ४०४

धर्मराज (= बुद्ध) ३३, ५८

धर्म-विनय १०, १८२, १२७, १७३, १७५, १८०,
२४३

धातु ११३, १५६

धारा १६, १७

ध्रुवाय २६०

ध्रुव ११८

धूम ४३

धृति (= धैर्य) १७१

ध्यान १०७, १२८

ध्यानरत ५५

ध्यानी ४८, ५०, ५५

ध्यानी ४४८

ध्वजा ४३

ध्वजाग्र १७३

नरक २१, २९, ५१, ८२, ८४, १२३, १६१,
१६७, १८८

नलकलाप (=नरकट का घोड़ा) २४०

नाग २७, ११७

नागवास ४१८

नाम ४०, ४५

नामरूप १०, १४, १६, २७, २३, २६, ३५,
१९३, २३१

नालि ७६

नास्तिकवादी ३५३

नास्तित्व २०१

निगण्ठ ७४

निद्रा ८, ४५

निद्रिचिदा २०८

नियाम १५६

निरगोल (यज्ञ) ७२

निरहङ्कार ५१

निरुक्ति-पय ३५३

निरुद्ध १२८, १६०, २२७ (=शान्त)

निरोध ६३, ७९, ११ (= निर्वाण), ११२, ११३,
११४, १९२, २३७

निर्ग्रन्थि-गार्म ४१८

निर्वाण १, २३, ३२, ३९, ४०, ५१, ५८, ९९,

१०३, ११८, १३०, १३८, १४८, १७९,

१५१, १५३, १५८, १५९, १७१, १७३,

१७४, २४१, २७६, २८५, २९०

निर्मोक्ष २ (= निर्वाण)

निर्माता ११८

निर्वेद २०१, ४०९

निर्वेधिकप्रज्ञ २१९

निपाद ८३

निवाप ५४, ६४, ९२, ९३, १०३, १२९, १३०,
१३१, १३३, १६९, १७०, १८२

निट्ट २९१

निष्ठा ३६४

निष्पाप १६९

विमररज २६५	पुष्करिणी १५५ १६२, १८३ २५
वीवरज (पर्व) ४	पूर्वकोटि (= पहाडा सिरा भादि) २६९
मैवसंज्ञायासशायसज २५८	वर्षान्त २ ६
विष्कम्भ २५९	पृथक्-जल १९२ १५९ २३३
पञ्चस्कन्ध २ ४	पेशी १६४ (= गर्म में छारक की अनुद के पहाडा
पञ्चांगवेद २८	लीसरी अवस्था)
पञ्चोदिक साज ११	पैसाज ४१८
परमपद (ज्निर्वाण) १ ३३, ५८	प्रगम्भ १६
परमार्थ ४६ ९६ १ ६ ११६ १०१ १०५,	प्रशस्ति ३५३
१८८	प्रशा (-इतिप) ४ ९३ ३० ३० ५८ ८९
परकोक ४४ ६ ६१ ७८ ९४ ११५ १०१	१ २ ११६ १३२ १०१ १८९ १८३
परिचर्मा १३४	प्रशाबाह् ५४ ५५ ७४ १०
परिहार ३९ ४ ६	प्रशाबिमुक्त १५२ २४४
परिजाता ३९ ४ ६	प्रशास्कन्ध ८६
परिशेष ४ ६	प्रमिधि २५९
परितस्तना ३२८	प्रतापी १५४
परिविर्वाण १ ४ १२८ २०४	प्रतिप १४
परिजातक ७४ २४३	प्रतिपदा २८५
परिष्ठा २५९	प्रतिपक्ष १५
पौष-ज्वर-भागीय बन्धन २	प्रतिशोम २५६
पौष-हृमिन्म ४	प्रशोत (चार) १६ ४६ ४७ ४९
पौष-हृदय-भागीय बन्धन २	प्रतीत्वसमुत्पाद १०३ २ ५ २३३
पौष-हामगुण १८ ७४ ७५	प्रत्याज्य २२३
पौष-वीवरज ४	प्रजुह १६६
पौष-स्कन्ध ११	प्रसंगुर १३
पौषुच्छ २७८ २८४	प्रसव २१०
पौषुच्छिक २०३, २१५	प्रसज १ ८
पाताक ३१ १ ४	प्रसाह ४५ १५९
पाथ १ ८ १३८	प्रसवित ५ १ २ १ ७ १५६ १५८ १७३,
पारकीदिक ८ १०१	१०५
पिण्डज ४३३	प्रजम्भा १३
पिण्डपात (= मात) ७२ २ ८	प्रज्ञान ४१ ४२ ४९ १५
पिण्डपातिक २७३, २७८ ३१५	प्रधिताव्य (= धर्मगरी) १ १ १ २ १ ३ ११६
पिशाच ३२ (-वैमि) १६०	१३ १५८ २६४
पुष्कम्भ ८३, ८८ १३३	प्रधिवि (= क्षामित) २
पुष्प ३० ६ ६१ ९४ (-शेठ) १०४	मादिहार्न १६६
पुष्पात्मा १ २	प्रामोक्ष १ (= विर्वाण)
पुष्प ३९	प्रसाह १६४
पुर (= शहर) १८१	प्रेमविषयीपम ३८३ (अर्वाणी के वाज के क्षमान)
पुष्पमैप (-वस) ००	पन्धन ४ ४९

वाक्तर (-व्राता) ११८
 बहुश्रुत २६१
 वृत्त्य ६७, ८०, ९०, ११४, ११५, १४५, १५६,
 १९६, २३६, २३४
 बोधिसत्त्व २३६
 बोध्यय ५६
 ब्राह्मचर्य ३०, ४५, ५१, ५२, ६३, ६०, ९१, ९४,
 ११६, १२६, १३५, १४५, १८५
 ब्राह्मचर्य वास ४७, ११७, १३०
 ब्राह्मचारी १३५
 ब्राह्मण १२४
 ब्राह्मण ८८, १३३, १३५, १४५, १७१
 ब्राह्मण-ग्राम १३८
 भद्रन्त ६, ९०, ९३, १२६
 भव १, १९२, २४१
 भवनेत्ति (= वृत्त्या) ४०६
 भवसागर २५, ३५, ५७, ९५, ११८
 भारवाहक २८, ३६
 भाविसत्त्व ५५, ११७
 भिक्षु-संघ ३६, ४४, ६८
 भूत ४१७
 भोग १० (पाँच कामगुण), ११, २४, ४६
 भ्रुभग १०१
 भण्ड (= गमा हुआ घी) ४४८
 मध्यम-मार्ग १, १३६
 मन १४, ४४
 मनुष्य-योनि ३४, ३५
 मनकार ३००
 मरण १९३
 मल ३९
 महल्लक (= वृद्ध) ३२१
 महर्षि ३०, १३४, १३९
 महाकल्प ४१८
 महाज्ञानी ४४
 महाप्रज्ञ ६०, १०३
 महावज्र ७२
 महाविष ४३
 महावीर १७, ५२, ९५, १०३, १५३
 महासमुद्र २४२
 माणवक (= ब्राह्मण तरुण) ७६, १८१
 ५६+३

मानानुशय ३००
 माया १८८
 मारिष १२०, १२१, १७४, १७८, १८२, १८७
 मिथ्या १, (-दृष्टि) १, (-मार्ग) १९५
 मुनि ९२, (-महा) ९२, १४०, १४९, १५५, १५६
 मुनिभाव २८
 मूर्धाभिषिक्त ३८४
 मूल ४३, ४९, १०२, १२९, १४५
 मृगदाव ५६
 मृत्यु ४१, ४२
 मृत्युञ्जय १०३, १५५
 मृदगा ३०८
 मीमांसी १५२
 मेत्री-भावना १६६
 मोक्ष २ (निर्वाण)
 मोह १२, ३५, ३६, ६८, ८५, १४७
 यक्ष ५७, १४१, १६२, १६४, १६५, १६६, १६८
 यक्षिणी १६७
 यथाभूत (= यथार्थ) २६५
 योगक्षेम २७६
 योनि १२६, २७२
 रत्न ३७
 रथ ४३
 रथकार (-जाति) ८३
 रथसुद्ध ८७
 रस ९७, ९८, ९९, १००
 राग १२, १७, ३५, ३६, १०६, १२७, १६५, १८५
 रागक्षेप १४
 राष्ट्र ४३
 रूप ९७, ९८, ११०, १११, १६४
 रूपसंज्ञा १४
 लघु-चित्त १६०
 लोक १०, ३०, ३५, ४०, -४७, ६१-६३, ७८,
 ९१, १११, ११४, ११५, १२०, १२९, १५५,
 १६५, १७१, १८९, ४१९
 लोक-विद् १७३
 लोभ ४५, ६८, ८५
 लौकिक २२६
 दचन ४४
 वासपेय (यज्ञ) ७२

बाह-रोग १७	सप्तमासल २ ८
बिद्याल २५९	शास्त्र १५३
बिषयज्ञ १०१	शास्त्रत ३८१
बिषिकल्प (बीषण) ४ २१० ३६९	शास्त्रत बाह ११८ १२ २ ३
बिषितसंग्राम १८४	शास्त्रत १ ३ ११२ १२० १५६
बिष १ १	शास्त्र (शुद्ध) २
बिष्याल ९० (-भाष्यत) ९९ १ ४ १९७	शास्त्र ४५
बिष्यालान्त्यावतन २५८	शिष्यमाणा ३०५
बिष्य ४ ० ०९, ८९, १ १ १ ३	शिल १७ ३३ ३० ५ ५८ ७४ ८९ ११५
११५ १५० १६२, १६५ १००	१३२ १३५ १६२ १६३
बिष्य ४३	शिकवन्त १०९ १८५
बिष्यसिद्धा १४	शिकवन्त ५५ १ २
बिष्या ३३, ४४ १८ १२५	शिकवन्त ८६
बिष्यपर ३९१	शिकविक-द्वार १६८
बिष्यस्य ४ ३	सुप्त २५८
बिष्याक १३ (फल)	सुप्तका १०१
बिष्याल १६२	सुप्त ८९ ८८, १३३
बिष्युक्त २८ ३५, ४८ ५२ १ ० ११२ १५५	सुप्त ५ १ ३ १२६ १८५ १८९
१६४ १६९	सुक्त ८८ ११५, २१९
बिष्युक्ति १ ३ ११६ १५५	सुक्त ११८
बिष्युक्ति-संग्रह ८९ ९१ १ ३	सुखा (इतिहास) २ ४ २२ २६ ३० ३९, ४४
बिष्युक्त ९०	४५, ५८ ८९ १ २ १२३, १३८ १५६
बिष्युक्त ९८	१५८ १६२ १६० १० १८२ १८३
बिष्युक्त २ (विर्वाण) ७९ १५०	संग्रह (-भाष) ८ ५१, ४० ९१ ९५-९९,
बिष्युक्तसंग्रह १४	१ ६ ११५ ११६ १२९ १३ १३६
बिष्युक्त १९१	१४२ १४३ १४४ १६४ १६५ १० १०१
बिष्युक्त १०४	भारतक ६७ ६४ ९८ १ ३ १७ १३५, १५
बिष्युक्त १०४	१५२ १५५, १५६ १५९, १०४
बिष्युक्त १ ३ १५० १०४	भुक्तवाह ३९३
बिष्युक्त (इतिहास) ४	पद्यमित्र १५७
बिष्युक्त ०	पद्यवतन (= छा: भाष्यत) १९३
बिष्युक्त ० ०	संस्कृतिका १८१
बिष्युक्त ८९ ८८ १३३	संग २ (विद्यालय पत्र)
बिष्युक्त ३९ ९१	संग्रहसंग्रह ११५
बिष्युक्त ४ (बीषण) १६१	संग्रहक १ ४ १०० १८४ १८५
बिष्युक्त ९३	संग ३० ६२ ८८ १०९ ११९, १३९, १६९
बिष्युक्तसंग्रह ७९४	१ ४ १८३, १८४
बिष्युक्त-संग्रह ४४४	संघटी २ २८४
बिष्युक्तसंग्रह ११	संघटना ३३५
बिष्युक्त ९ ९८ ९९ ११	संग्रह ९ १ ०

सजावेद्विग-गिरा ४३०

सप्रण १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०

संप्रसाद ४३०

सपथ १०५

सयम १५१, १८८

संभार ४३, ४८, ४९, ४९, ५५, ५५, ६०, ६४०,
१४९ १६१, १६३, १६८

सन्तान ९३, ११३, ११४, १२४, १५०, १५९,
१९३

सन्तान ९०

संश्लेषक ८३३

संश्लेषक (= सारथी के सामने फल देने वाला) १०,
१०१, १०८

संश्लेषक १०४, १८३

संत ४०५

सन्निधि ३००

सन्निधि ३३८, ३४०

सन्निधि-रुद्धि १३

सन्निधिकारी ४२६

सन्निधि ०४

सन्धि १०१

सन्धिमात्र १९१

सन्धि ५०

सन्धि २८

सन्धि १०७, ११६

सन्धिमात्रकारी ४०४

सन्धि १४७, १०८

सन्धिकारी ४२६

सन्धिमात्र १४६

सन्धि १५१

सन्धि (हन्दित्रय) ४, १४, ८९, १००, १०३,

१८३, (स्कन्ध) ८६, ११६

सन्धिस्थ १५०

सन्धिपति २४६

सन्धिपति ५१, ५४, १०९, १३५

सन्धिपति १९६, २३७

सन्धि ३१

सन्धिपति ११२

सन्धिपति २८५

सन्धिपति १०, १०२, १०३, १०४, १८५, (पादा-) ७२,

सन्धि, २९, ३०, १०३

सन्धिपति ३१६

सन्धिपति-प्रयोग ५५

सन्धिपति ३१६

सन्धिपति २११

सन्धिपति २१६

सन्धिपति ३०

सन्धिपति ११५

सन्धिपति २०, ९०

सन्धिपति १०३, १४, १६०, १८०

सन्धिपति १०५

सन्धिपति १५१, १७६, १७७

सन्धिपति ११५

सन्धि ६४, (-भावा) १६

सन्धिपति ३०३

सन्धिपति ३४०

सन्धिपति १०४, १८०

सन्धिपति १०६, २१०, ४०४

सन्धिपति १०५

सन्धिपति ३४०

सन्धिपति १३८

सन्धिपति ११ (पाँच), ११३, १५६

सन्धिपति ४ (नीवरण)

सन्धिपति ३०९

सन्धिपति ९० (-भावात्तन), ९८, ११०, १६५, १९३

सन्धिपति (हन्दित्रय) ४, (= होश) १०, ३०, ४०,

५१, १००, १०६

सन्धिपतिस्थान १५४

सन्धिपतिमात्र १२, १३, २०, २०, २९, ५४-५६, ७६

८९, ९०, ९६, ९८, १०७, १०६, १४४,

१५७, १६४, १६५, १६६, १७५

स्वर्ग १०, २४, २६, ३०, ३३, ३४, ६१, ८०, ८५

१२०, १४४, १४५, १६१

स्वाध्याय १०३, १०४

स्वाध्याय १६१

स्थिति २६७

स्थिरात्म ५०

हस्ति-सुद्ध ८७

हस्ति-सुद्ध १३४, १३५

ही (= लज्जा) ३२

हेतु ११३

बाह-योग १४	दायमासन २ ८
बिधात २५९	सक्य १५३
बिबधण्य १०१	दाहवत् ३८१
बिबिकिस्ता (भीवरण) ४ २१० ३६९	साकृत वाच ११८ १२ १ ३
बिधितसंमाम १८४	सासन १ ३ ११२ १२० १५९
बिज्ज १ १	शास्ता (बुद्ध) २
बिज्जाम २० (—आपत्त) २९ १ ४ १२२	शास्त्र ४५
बिज्जाभामन्यावत्तम २५८	सिद्धयमाणा ३ ५
बित्तर्त्त ४ ० ७९, ८९, १ १ २ १ ३	शीक १४ ३३ ३० ५ ५८ ७४ ८९ ११५,
११५ १५० १६२ १६५ १००	१३२, १३५ १६२ १८३
बिज्ज ४३	शीकवन्त १०९ १८५
बिद्धर्त्तना १४	शीकवात् ५५ १ २
बिद्या ३३, ४४ ५८ १२५	शीकस्कन्ध ८६
बिदपवत् २६१	शीकविक-द्वार १६८
बिबिबन्ध ४ ३	शुभ २५८
बिपाक १३ (फल)	शुभ्य १०१
बिप्राम्ता १६२	शुद्ध ८९ ८८, १३३
बिमुक्त २८ ३५, ४८ ५२ १ ० ११२ १५५	शैत्य ५ १ ३, १२६ १८५ २८९
१६४ १६९	शैक ८८ ११५, २१२
बिमुक्ति १ ९ ११६ १ ५	शोक ११८
बिमुक्ति-स्कन्ध ८९ ९१ १ ३	श्रद्धा (इन्द्रिय) २ ४ २२ २६ ३० ३९, ४४
बिरन्त ९०	४५, ५८ ८६ १ २ १२३ १३८ १५९
बिरोध ९८	१५८ १६२ १६० १० १८२ १८३
बिरोध २ (निर्वाण) ७९, १५०	श्रमण (—साध) ८ ५१ ४० ९१ ९५-९९,
बिरोधशील १४	१ ६ ११५, ११६ १२९ १३ १३६
बिदिग्धा १६१	१४२ १४३ १४४ १६४ १६५ १० १०१
बीतद्वेष १०४	श्रावक ६२ ६४ ९८ १ ३ १२ १३५, १५
बीतमाह १०४	१५२-१५५ १५८ १५९ १०४
बीतराग १ ६ १५० १०४	श्रुतवात् ३९३
बीर्य (इन्द्रिय) ४	शुद्धिमात्र १५९
बद्धना ०	पदावत्तम (= छा: आपत्तम) १९३
बभारघ २ ०	सर्कीरता १८१
बीज ८९ ८८ १३३	संग २ (चित्तमाल सर्क)
बभान्त ३९ ९१	संगामत्रिन् ११५
बगवत् ४ (भीवरण) १६१	संग्राहक १०४ १०० १८४ १८५
बगवत् ६३	संग ३४ ३४ ८८ १२६ १२९ १३९, १३३
बगवत्तचिन् ७६४	१०४ १८३, १८४
बगु-बाम-मुगाम ४४४	संघाटी २ २८४
बगु-गाम ३९	संवेगता २३५
दाह ९० ९८ ९ ११	संग ९० १ ०

सजावेदमित्त-निरोध १३०	संज्ञ, २०, ३०, १०३
संप्रज १०, २३, २०, ९०, ९६, २४९	संज्ञिः ३१४
संप्रयात् २३०	सर्वदोष-प्रयोग ५५
सपत् १०६	सर्वाभिभू ३१६
सपत् १६५, १८८	सकथामिद २११
संसार ४३, ४४, ५५, ४६, ५५, ५६, ६०, १४०, १२९, १४१, १६३, १६८	सत्ता-प्रकारी ४४४
संस्कार ०, ११३, ११४, १२८, १५०, १५०, १९३	सागरी ३०
संस्पर्श ०९	सार्थसा ११५
संस्पृष्टि ४३३	सिद्धाया २७, ९०
सार्ष्टि (= अर्थो वे सामने पाठ वेनेसाग) १०, १०१, १०४	सुपति ८३, ८१, १४०, १८०
सकृदागामी १०५, १८३	सुप्रतिपा १७३
सक्त ४०५	सुभक्ति १५१, १७६, १७७
सन्निहोम ३००	सुमेध ११५
संस्कार ३३८, ३८०	सुरत ४२, (-भाव) ८६
संस्कार-रुष्टि १३	सूचिलोम ३०३
संस्कृत-प्रकारी ४४६	सूपकार ३४२
संस्पृष्ट ९२	स्योहापत्ति १७२, १८०
सन्ध १०१	स्योतापत् १०६, २१०, ४२४
सन्धसार्ग १०५	स्योत्पत् १०५
सन्ध ५०	स्योमन्ध ३४९
सन्ध २८	सोत्पत् १३८
सन्धर्म १०७, ११६	सन्ध ११ (पाँच), ११३, १५६
सन्धसार्ग ४०४	सन्धसन्ध ४ (सीधण)
सन्ध १२७, १७८	सन्धिर ३०९
सन्धायकारी ४२६	सन्ध ९७ (-आपत्तन), ९८, ११०, १६५, १९३
सन्धाय १२६	सन्धि (इन्द्रिय) ३, (= होदा) १०, ३०, ४७, ५१, १००, १०६
सन्ध १५१	सन्धिसिस्थान १५४
सन्धाधि (इन्द्रिय) ४, १४, ८९, १००, १०३, १८३, (-स्कन्ध) ८६, ११६	सन्धिसाम् १०, १३, २५, २७, २९, ५३-५६, ७६, ८९, ९०, ९६, ९८, १०७, १०६, १४२, १५७, १६४, १६५, १६६, १७५
सन्धाधिस्य १५०	सर्वार्ग १२, २२, २६, ३०, ३३, ३४, ६१, ८०, ८५, १००, १४४, १४५, १६६
सन्धापत्ति २२६	स्योत्पत् १७३, १७४
सन्धाहित ५१, ५५, १०९, १३५	स्योत्पत् १६१
सन्धुष १०६, २३७	स्योत्पत् २६७
सन्धुष ३१	स्योत्पत् ५०
सन्धुषदाय ११२	स्योत्पत्-सुद्ध ८७
सन्धुषि २८५	स्योत्पत् १३३, १३५
सन्धुष १०, १०२, १०३, १०४, १८५, (पादा-) ७०, हेतु ११३	ही (= लज्जा) ३०